अंतर्भारतीय पुस्तकमाला

सुदामा के चावल

सुदामा के चावल

श्रीपाद कष्ण कोल्हटकर

अनुवाद

कृष्णगोपाल अग्रवाल



नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया,

1975 (शक 1897)
द्वितीय संस्करण 1985 (शक 1907)

मूल मराठी : मॉडर्न बुक डिपो पुणे
हिंदी अनुवाद : नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया 1975

रु 12 00

Original Title Sudamyache Pohe (*Marathi*)
Hindi Translation Sudama Ke Chawal

निदेशक नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया ए 5 ग्रीन पार्क नयी दिल्ली 110016 द्वारा प्रकाशित और क्रिसेन्ट प्रिंटिंग वर्क्स 14/90 कनाट सर्कस नई दिल्ली 110001 द्वारा मुद्रित।

भूमिका

हास्य विनोद मे मानव के दुखो का निवारण करने की अद्भुत शक्ति है। मानसिक चिंता, रागद्वेष, दुखदद आदि का परिहार करने वाली दिव्य औषधि के रूप मे हास्य-विनोद की गणना की जा सकती है। आनद और उल्लास की निर्मिति तो हास्य विनोद का मुख्य प्रयोजन है ही, पर उसका एक सामाजिक पहलू भी है। इस दृष्टि से देखन पर, सामजिक रीति रिवाजो की अनिष्टता अथवा व्यक्तिमात्र मे पाए जाने वाले विभिन्न दोषो पर प्रकाश डालकर उन्हे उपहासास्पद सिद्ध करना, सिफ इतना ही उसका काम नही है अपितु उनके निराकरण का माग सुझाना भी उसका प्रमुख उद्देश्य है। चुभने वाला व्यग्य या उपहास सामाजिक और राजनीतिक सुधारो का कितना सामथ्यवान शस्त्र हो सकता है यह मराठी के विष्णुशास्त्री चिपलूणकर, आगरकर, लोकहितवादी, शिवराम महादेव पराजपे, श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर प्रभृति व्यग्य सम्राटो की तरह पश्चिम के अॅरिस्टोफेनिस, वाल्तेयर, बायरन, स्विफ्ट, पोप, बर्नार्ड शॉ आदि समथ व्यग्य कारो ने भी सिद्ध कर दिखाया है।

व्यग्य-विनोद समाज के द्वेषी नहीं बल्कि मीठी चुटकी काटकर उसकी कमियो को उजागर कर दिखाने वाले उसके मित्र ही हैं। उच्चकोटि का हास्य-विनोद सदा दशरहित, सुरुचिसपन्न और उदात्त स्वरूप का होता है। वह किसी व्यक्ति या व्यक्तिसमूह पर प्रहार नही करता। विशुद्ध हास्य विनोद के द्वारा भावनाओ का उदात्तीकरण होने के साथ-साथ समाज के विचारो को योग्य दिशा भी प्राप्त होती है। श्री कृ कोल्हटकर ने अपने 'सुदामा के चावल' नामक ग्रथ मे इसी उद्देश्य की प्राप्ति का प्रयास किया है। समाज पर व्यग्यास्त्र छोडकर उन्होने समाज जागृति का दुष्कर काय किया है। आगरकर अपनी ज्वलत लेखनी के आवेशपूण आघातो से जो काय न कर सके उसे कोल्हटकर ने

हास्य विनोद के मखमली आवरण के पीछे से वार करने वाली अपनी व्यग्य विदग्ध कलम से सिद्ध कर दिखाया। व्यग्य विनोद के सामर्थ्य को कोई माने या न माने पर उसकी शक्ति अबाधित और स्वयपूर्ण है। इसीलिए मराठी के व्यग्य साहित्य मे कोल्हटकर का नाम सदव अमर रहेगा इसमे कोई सदेह नहीं।

मराठी हास्य विनोद के आद्य प्रवतक

कोल्हटकर को मराठी व्यग्य विनोद का जनक कहते समय उनसे पहले मराठी साहित्य मे हास्य विनोद था ही नही या महाराष्ट्र के जनमानस का उससे परिचय ही नही था, यह कहने का उद्देश्य नही है। ऐसा कोई नही कह सकता कि प्राचीन सस्कृत वाड्मय मे या मराठी के पुराने सतसाहित्य मे हास्य विनोद का अस्तित्व ही नही था। लेकिन आज हम जिसे व्यग्य साहित्य कहते हैं और आधुनिक युग मे उसके द्वारा जिस अथ की अभिव्यक्ति होती है, उस प्रकार के हास्य विनोद से प्राचीन समाज अवगत नही था। उन्नीसवी शताब्दी म पाश्चात्य साहित्य के ससग परिशीलन और अनुकरण से अर्वाचीन भारतीय भाषाओ मे आधुनिक हास्य विनोद का बीजारोपण हुआ, इससे कोई इकार नही कर सकता। एडिसन स्टन, गोल्डस्मिथ, जेरोम, मार्कट्वेन प्रभृति पाश्चात्य के समथ लेखको ने जिस अभिजात व्यग्य विनोद की निर्मिति की उसकी पृष्ठभूमि पर ही (बिलकुल मौलिक स्वरूप मे) मराठी साहित्य मे *व्यग्य लेखन का श्रेय* निर्विवाद रूप से कोल्हटकर को दिया जा सकता है। कोल्हटकर के व्यग्य साहित्य का विचार करने से पहले सस्कृत वाड्मय और मध्यकालीन मराठी साहित्य (विशेषत सतसाहित्य) मे हास्य विनोद की उत्पत्ति, विकास और उत्कप पर विचार एवम् उसके स्वरूप का विवेचन कर लेना उपयुक्त होगा। इससे कोल्हटकर की अपूवता और अद्वितीयता प्रस्थापित होन के साथ-साथ उनके व्यग्य की अभिनवता और श्रेष्ठता पर भी प्रकाश पड सकेगा।

सस्कृत साहित्य में हास्य विनोद

मराठी साहित्य मे हास्य विनोद की परपरा का अन्वेषण करते हुए मराठी की गगा का उद्गम गगोत्री सस्कृत तक पहुचें तो कुछ निराशा ही पल्ले पडती है। सस्कृत साहित्य मे हास्य विनोद का स्वस्थ विकास नहीं हो पाया था।

संस्कृत साहित्य अन्य दृष्टियों से कितना ही संपन्न और समृद्ध क्यों न हो, हास्य विनोद का स्वतंत्र और स्वस्थ्य रूप उसमें दिखाई नहीं देता। संस्कृत काव्यशास्त्र के अंतर्गत नवरस मालिका में हास्य की स्वतंत्र रस के रूप में गणना अवश्य की गई है। भरत से लगाकर जगन्नाथ पंडित तक प्रत्येक साहित्य-मीमांसक आचार्य ने उसे स्वतंत्र रस स्वीकार किया है (केवल भरतमुनि ने उसकी उपपत्ति शृंगार के साथ बठायी है)। हास्यरस के मूल में अनौचित्य या विसंगति के अस्तित्व की कल्पना अधिकांश संस्कृत काव्य मीमांसकों की थी। इसीलिए उन्होंने हास्य के स्मित, हसित, विहसित, उपहसित, अपहसित और अतिहसित, यह छह प्रभेद माने हैं।

संस्कृत नाटकों का विदूषकी हास्य विनोद

परंतु संस्कृत काव्यशास्त्र के रसमिद्धांत के अनुसार हास्य को एक अनुभाव अर्थात आंतरिक भावनाओं का शरीर पर दिखाई देने वाला एक बाह्य लक्षण अथवा मनोगत भाव की सूचक बाह्य क्रिया मात्र माना है। विकृत वेश, टेढ़े तिरछे अंगविक्षेप धृष्टता, जिह्वालौल्य, शारीरिक स्थूलता, छद्म प्रवंचना इत्यादि विभावों की सहायता स हास्यरस उत्पन्न किया जाता है। यों संस्कृत साहित्य में नाटकों, प्रहसनों, भाण, चंपू या काव्य में हास्यरस का आविष्कार जहां भी कहीं हुआ है, वहां उसका केंद्रबिंदु और एकमात्र आलंबन विदूषक ही है। संस्कृत नाट्य-साहित्य में तो विदूषक की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण है और उसी के बलबूते पर 'भिन्नरुचि' रसिकों के मनोरंजन का कष्टसाध्य काम संपन्न होता है। इसीलिए यह कहना कितना अरुचिकर हो पर अनुचित नहीं होगा कि संस्कृत साहित्य का हास्य-विनोद अधिकांश विदूषकी कोटि का ही है। कालिदास का गौतम, शूद्रक का मत्रेय और भास का संतुष्ट, ये तीन विदूषक संस्कृत नाट्य-साहित्य में अमर हो गए हैं।

भामह, दंडी, रुद्रट क्षेमेंद्र प्रभृति साहित्याचार्यों ने हास्य की चर्चा रसचर्चा के अंतर्गत और रस का विवेचन काव्य विवेचन के प्रसंग में ही किया होने के कारण गीर्वाण भाषा में हास्यरस का स्वतंत्र विवेचन या उसके परिपोष का मौलिक ऊहापोह अधिक दिखाई नहीं देता। गुणचंद्र और रामचंद्र ने अपने 'नाट्यदर्पण' में अनेक हास्यविषयों का उल्लेख किया है। धनंजय और अभिनव गुप्त

ने भी हास्यरस की मीमासा की है। श्रीशखधर, मुकुदानद और श्रीकाशीपति द्वारा हास्यरस प्रधान रचनाए की जाने का उल्लेख भी मिलता है। क्षेमेंद्र का 'कलाविलास' काव्य उपहासपूर्ण है और 'मत्तविलास', 'भगवदज्जुकीय', 'लटकमेलक' आदि प्रहसन हास्यरस की रचनाओ के रूप म ही प्रसिद्ध हैं। सस्कृत सुभाषितरत्न भाडागार के अनेक सुभाषित अन्योक्ति, श्लेष, प्रहेलिका, आहृति आदि शाब्दिक चमत्कारो से भरे हुए हैं। कही-कही शब्दालकार के साथ अर्थालकार भी सुदर ढग से प्रयुक्त हुआ है। इनमे नम हास्य के दशन तो कही-कही होते हैं, परतु आजकल हम जिसे व्यग्य विनोद कहते हैं उसके अधिक दशन सस्कृत साहित्य मे नहीं होते।

मध्यकालीन मराठी साहित्य मे हास्य विनोद

सस्कृत वाड्मय से मुड कर मध्यकालीन मराठी साहित्य की ओर दृष्टिक्षेप करें तो यही दिखाई देता है कि उस क्षेत्र मे भी आधुनिक पद्धति के हास्य विनोद का विकास नही हुआ था। प्रसग विशेष पर उसकी स्वाभाविक झलक कही-कही दिखाई दे जाती है, पर उसका निर्वाह नही हो पाता। ज्ञानेश्वरी से लगा कर लावणी और शाहिरी वाड्मय तक जो अनेक सत कवि, शृगारी कवि और पडित कवि हुए, उनके सपूर्ण साहित्य मे शुद्ध विनोद लेखन अत्यल्प मात्रा मे ही दृष्टिगोचर होता है। मध्यकालीन सत वाड्मय मूलत आध्यात्मिक, पारमार्थिक, निवृत्तिपरक और वेदात के मायावाद की भूमिका पर आधारित होने के कारण उसमे विशुद्ध हास्य-विनोद की अधिक गुजाइश भी नही थी। उस साहित्य मे आधुनिक व्यग्य की अपेक्षा करना वदतोव्याघात के सिवा कुछ नही होगा। इन प्राचीन कवियो ने प्रासगिक और शाब्दिक विनोद किया ही न हो, यह बात नही, पर उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति विनोद निर्मिति के लिए अनुकूल नही थी। इसके अलावा हास्य विनोद को ग्राम्यजनोचित अशिष्टता मानने की वृत्ति का भी उनके मन पर काफी प्रभाव था। उस युग मे हास्य विनोद को अक्सर छिछोरपन और जहालत का पर्याय माना जाता था। तत्कालीन सामाजिक और धार्मिक परिस्थिति विनोद लेखन के लिए अनुकूल न होकर, मारक ही थी। विनोदमय परिस्थिति ही विनोद साहित्य का निर्माण करती है। इग्लड की तत्कालीन सामाजिक स्थिति ने ही एडिसन को द प्रधान लेखन की स्फूर्ति दी थी और स्विफ्ट को व्यग्य के भेदक अस्त्र का

प्रयोग करने को मजबूर किया था। सर्वांटीज, स्टील, थैकरे, डिकन्स और मार्क ट्वेन का विनोद भी उनके युगों की परिस्थिति का द्योतक है। मराठी संत कवियो के काल मे यह बाह्य स्थिति विनोद लेखन के लिए प्रेरक नही थी। वह काल ही परमार्थपरक, वैराग्यपरक और ईश्वरस्तुतिपरक काव्य लेखन का था। इस कारण संत कवियो की दृष्टि इहलोक की अपेक्षा परलोक पर और भौतिक के बजाय आध्यात्मिक उपलब्धियो पर ही अधिक केंद्रित रही। यही स्वाभाविक भी था।

संत कवियों के हास्य विनोद के कुछ उदाहरण

फिर भी ज्ञानेश्वर, तुकाराम की गाथा, एकनाथ के भारूड, भास्कर भट्ट के शिशुपाल वध, मुक्तेश्वर के महाभारत, नागेश के चद्रावली वर्णन, लोलिंब राज के वद्यजीवन इत्यादि अनेक काव्य ग्रथो मे प्रासगिक विनोद अथवा विनोद-प्रचुर वर्णनो और उपहासपूर्ण उपमा उत्प्रेक्षाओ के कई उदाहरण मिलते हैं। सामाजिक उपहास करने मे संत कवि कितने सिद्धहस्त थे इसके दर्शन तुकाराम के 'आवा चली पढरपुर को' शीर्षक अभग मे स्पष्ट मिलते हैं। एकनाथ के 'रोडगा वाहीन तुला' (भैंसा चढाऊगी भवानी मैया) और 'दादला नको ग बाई' (निखट्टू मर्द नही चहिये री दैया) आदि भारूड हास्यप्रधान हैं। वामन के 'राधाविलास' और 'राधाभुजग' ये दोनो काव्य और शाहिरो की लावणिया तो उत्तान शृगार के साथ हास्यरस के मिश्रण के छलकते हुए रम्य सरोवर हैं जो भरतमुनि के 'शृगाराद्धि भवेत हास्य'—इस सूत्र का मानो प्रत्यक्ष उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। राव बाजी के युग मे इस प्रकार के साहित्य का निर्माण होना युगधर्म के अनुरूप ही था।

अग्रेजी शिक्षा और सामाजिक क्राति

मराठाशाही का अस्त और अग्रेजी शासन का उदय होने के बाद महाराष्ट्र मे यदि कोई पहली क्रातिपूर्ण घटना हुई तो वह थी अग्रेजो की शिक्षा। इस शिक्षा के प्रसार से महाराष्ट्र का सामाजिक और राजनीतिक जीवन आमूल बदल गया। आग्लभाषा के साथ-साथ पाश्चात्य रीति रिवाज, आचार विचार, रहन-सहन, खान-पान पहनाव ओढाव और अन्य विदेशी वस्तुओ की हमारे समाजजीवन मे

जिस प्रकार एक बाढ़ सी आ गई, उसी प्रकार अंग्रेजी की ग्रंथसंपत्ति और ज्ञान-साधना का भी प्रचार हुआ। इन सब का तत्कालीन समाज के विभिन्न अंगों की तरह साहित्य पर प्रभाव पड़ना भी स्वाभाविक था। उस काल में भारतीय चिंतन-मनन और संस्कृति-सभ्यता पर पाश्चात्य विचारधारा का कितना मर्मस्पर्शी प्रभाव पड़ा इसके दर्शन विष्णुशास्त्री की 'निबंधमाला' में व्यक्त उपहासात्मक आलोचनाओं में कदम-कदम पर होते हैं।

मराठी में विनोद साहित्य की शैशवावस्था

सन् 1818 से 1874 तक का युग मराठी गद्य साहित्य की पूर्वपीठिका निर्माण का था। इस काल में संस्कृत और अंग्रेजी ग्रंथों के अनुवाद और अनुकरण का प्राधान्य रहा। पंचतंत्र, हितोपदेश, वैताल पचीसी, शुक बहत्तरी आदि संस्कृत ग्रंथों की रचना इसी समय हुई। साथ ही 'बीरबल विनोद', 'देशविदेश की चातुर्य कथाएं' और 'अरेबियन नाइट्स' की सरस कथाओं का भी खूब प्रचलन हुआ। आधुनिक मराठी साहित्य की यह जिस प्रकार यह बाल्यावस्था थी उसी प्रकार विनोद साहित्य की भी यह शैशवावस्था थी।

इस युग में प्रहसन अर्थात फार्स नामक हास्यप्रचुर विदेशी नाटक और भाषांतरित 'किताबी' नाटकों का प्रचार होने से पहले कुछ समय तक हास्यप्रधान कथाओं का बोलबाला रहा। 'चमत्कारपूर्ण कथाएं', 'टिमाजी बंदर की चतुराई', 'विनोद रत्नमाला', 'घटा भर मनोरंजन' आदि पुस्तकों का उल्लेख दाते के तत्कालीन सूचीपत्र में मिलता है। विष्णुशास्त्री का 'विनोद और महदाख्यायिका' नामक वृत्तपत्रीय स्तंभ भी इसी कोटि का था। समाचारपत्रों में हास्यरस के चुटकुले और लतीफे भी छपते रहते थे। परंतु इन सब को 'विनोद साहित्य' की संज्ञा नहीं दी जा सकती। विष्णुशास्त्री चिपलूणकर ने अपनी 'निबंधमाला' के 27वें अंक में यह उल्लेख किया है कि विनोदपूर्ण लेखन की प्रवृत्ति मराठी के न तो गद्य में पाई जाती है न पद्य में। संस्कृत में भी इसकी कोई परंपरा नहीं रही यह उस भाषा के विद्वान भी स्वीकार करेंगे। संस्कृत में इतने नाटक हैं पर हास्य का स्वस्थ परिपाक केवल मृच्छकटिक में ही हो पाया है। प्रहसन नामक एक नाट्य प्रकार भी संस्कृत में प्रचलित है पर उसमें विनोद उच्चकोटि का नहीं होता। अत: यह मानना ही पड़ेगा कि यह प्रवृत्ति हमारे यहां अंग्रेजी भाषा से आयी है।

पाश्चात्य वाङ्मय की छाया

उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध से ही अंग्रेजी साहित्य की छाया मराठी लेखकों पर पड़ने लगी थी। अंग्रेजी से अनूदित या अंग्रेजी के अनुकरण में साहित्य की अनेक अभिनव विधाएं मराठी साहित्य में दिखाई देने लगी थी और रंगभूमि पर तो फार्स अर्थात् प्रहसनों की बाढ़ सी आ गई थी। फ्रेंच नाटककार मोलियर के आधार पर लिखे हुए कई प्रहसन उस समय बहुत लोकप्रिय हुए थे। 'मोर एल एल बी', 'खटपटी पंचा', 'रायबहादुर पवले', 'सटवाजीराव ढमाले', 'मारमार कर हकीम', 'सोया हुआ जाग गया' इत्यादि कई प्रहसनों का बहुत प्रचलन रहा। ये सारी रचनाएं प्रसंगोनुकूल और स्थूल हास्य से युक्त थी और उनका व्यंग्य-विनोद अत्यंत सामान्य कोटि का था।

इस प्रहसनात्मक साहित्य के अलावा 'रंगभूमि' मासिक पत्रिका में नाटकों और नाटकमंडलियों पर उपहासमय विनोद प्रधान टीका प्रकाशित होती थी। इस प्रकार के निबंधों में 'नाटक के तारे' नामक संकलन और कोल्हटकर के 'गुप्त मंजूष' नाटक की 'नाट्यकलारसकुठार' नाम से प्रकाशित संवाद प्रधान टीका हास्यरस की रचनाओं के रूप में बहुत उल्लेखनीय रही हैं। इस पुस्तक में कोल्हटकर के नाटकों का विश्लेषण करने के बहाने उन नाटकों की असभ्यता से खिल्ली उड़ाई गई है। इसे आलोचना और हास्य-विनोद, दोनों का निकृष्ट प्रकार मानना चाहिए। 'हिंदू पंच' नामक समाचारपत्र में वैयक्तिक स्तर पर प्रहार करने वाले हास्यपूर्ण व्यंग्यचित्र प्रकाशित होते थे। चिपलूणकर की 'निबंधमाला' में पाताल की मराठी भाषा', 'सत्य समाज का अहवाल', 'आजकल के अन्नपूर्णागृह' जैसे प्रचुर और तीक्ष्ण धार वाले उपहास निबंध प्रकाशित हुए। उनकी भाषा शैली को नजर में रखा जाए, तो विष्णुशास्त्री चिपलूणकर ही मराठी साहित्य में व्यंग और उपहास के आद्य प्रणेता सिद्ध होते हैं। इस काल में शेक्सपियर के नाटक और रेनॉल्ड्स के उपन्यास अंग्रेजी से अनूदित हो कर बड़ी संख्या में प्रकाशित होने लगे थे। सर्वान्टीज के 'डॉन क्विक्झोट' का 'शामभट्ट और उनके अंतेवासी का वृतांत' नाम से रूपांतर सन् 1893 में प्रकाशित हुआ था। मराठी का आद्य विडंबन-काव्य माना जाने वाला 'संगीत हजामत' भी इस युग (1889) की रचना है।

शिवराम महादेव पराजपे के लेखों मे वक्रोक्ति का नया क्षेत्र

काल के सपादक शि म पराजपे जब वक्रोक्ति, व्यग्योक्ति व्याजोक्ति, उपरोध और उपहास के अस्त्रा से सज्जित होकर सन 1897 मे मराठी समाचार पत्रा के क्षेत्र म अवतीर्ण हुए तो पाठका को एक नइ लेखनशैली का साक्षात्कार हुआ। यो विदशी सरकार की खुल्लम खुल्ला तथा स्पष्ट आलोचना करना मुमकिन नही था। अत शिवरामपत ने वक्रोक्ति का सहारा लिया और परोक्ष टीका के लिए यह शस्त्र कितना प्रखर और प्रभावशाली हो सकता है यह सिद्ध कर दिखाया। जनसाधारण के मन म परतत्रता के प्रति गहरी खीझ उत्पन्न कर उसका पयवसान स्वातत्र्य की लालसा मे ही नही बल्कि सशस्त्र क्राति की प्रेरणा मे हो, यही शिवराम पत के 'काल' का उद्देश्य था। उन्होने विदेशी हुकूमत की आलोचना करते समय कुछ ऐसी कुशलता से कलम चलाइ कि शस्त्र का ममभेदी प्रहार तो हो जाए पर खून की एक बूद भी न गिरे।

मराठी के युगप्रवतक ग्रथकार

श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर सच्चे अर्थों मे बीसवी शताब्दी के प्रथम चरण के युग प्रवतक ग्रथकार थे। मराठी नाटक के क्षेत्र मे उन्होने निस्सदेह एक नये युग का निर्माण किया। तत्कालीन पौराणिक रगभूमि म आमूल परिवतन करके उन्होने उस सामाजिक दिशा मे मोडा और कदाचित पहली बार स्वाभाविक हास्य-विनोद का अविर्भाव हुआ। साहित्य की अन्य विधाओ के क्षेत्र म उन्होने नइ पद्धति की तत्वप्रचुर, विवेचनात्मक और धार्मिक आलोचना प्रणाली का आरभ किया। कोल्हटकर की बुद्धिमत्ता, लेखनसामथ्य और कल्पनाशक्ति का आत्यतिक प्रतिभाविलास उनके प्रस्तुत ग्रथ 'सुदामा के चावल' मे भी दिखाइ देता है।

हास्य-व्यग्य समाज सुधार का प्रभावपूर्ण शस्त्र

यह निर्विवाद है कि कोल्हटकर से पहले मराठी साहित्य म सटीक व्यग्य विनोद नही के बराबर था। व्यग्य विनोद केवल जनमनोरजन का ही साधन नही है अपितु वह समाजसुधार का बडा सक्षम हथियार भी हो सकता है, ऐसा ...ोग के कारण ही उन्होने प्रयोजनात्मक व्यग विनोद का सेवन मराठी

साहित्य मे प्रारभ किया। सामाजिक और धार्मिक सुधारो पर दृष्टि को केंद्रित करके उन्होंने अनिष्ट रूढ़िया लोकभ्रम, जातिभेद, अधश्रद्धा, पोगापथी, छुआछूत, जरठ-कुमारी विवाह, दहेज, सतमहतो की अखाडेबाजी, शकुन-अपशकुन, फलित-ज्योतिष, भविष्यकथन, अस्पृश्यता, मनत मनौति, भाग्यवाद, भूतप्रेत, स्वग-नरक, श्राद्ध-तरपण आदि हिंदू समाज की समस्त अज्ञानमूलक और मिथ्या कल्पनाओ पर उपहास का शस्त्र चलाया। आगरकर की तरह उन्हें भी समाजसुधार की तीव्र उत्कठा थी। परतु 'सुधारक' के सपादक (आगरकर) की तरह समाज पर विदारक टीका के प्रत्यक्ष हमले न करते हुए, उन्होंने युक्तिपूण और तार्किकता का आश्रय लेकर एक नये प्रकार की लेखनशली का विकास किया और उपहास-व्यग्य और व्याजोक्ति जैसे अहिंसक शस्त्रों की सहायता से समाज को जागृत करने का काय आरभ किया।

पाश्चात्य पद्धति का अनुकरण स्वतत्र व्यग लेखन

कोल्हटकर ने विनोदप्रचुर एव व्यग्यात्मक मौलिक लेखन का आरभ सन 1902 से किया। इसकी प्रेरणा उन्हे कहां से मिली, इसका स्पष्ट सकेत उन्होने अपने 'मेरे आलोचक' नामक निबध मे इस प्रकार किया है "विनोदप्रचुर और उपहासपूण भाषाशैली पश्चिम के देशो मे बहुत अधिक प्रचलित है। वाल्तेयर, मोलियर, रॅबेले, पास्कल और सर्वान्टीज से लगा कर स्टन, फील्डिंग, स्मॉलिट, स्विफ्ट और माकट्वेन तक वहा के कुशल व्यग्यकारो का इसीलिए हमने गहन अध्ययन किया। इन निबधों मे उनका अल्प सा अनुकरण करने का प्रयत्न किया गया है।" साहित्य की एक नई विधा और शैली के रूप मे उनके द्वारा इन अपने अग्रजो का ऋण स्वीकार किया जाने के बावजूद यह कहा जा सकता है कि कोल्हटकर का व्यग्य विनोद विषयवस्तु और आलबन की दृष्टि से पूणत स्वतत्र और स्वयभू है। विषय के चुनाव मे उन पर किसी पाश्चात्य लेखक की छाया नही पडी।

कोल्हटकर ने 'गवाह' निबध से इस परपरा का आरभ किया है और फिर तो हिंदूधम के कालबाह्य आचार विचारो पर उनके व्यग्यबाण नियमित रूप से छूटने लगे। उनके इन उपहासमय और व्याजस्तुतिपूण लेखो के खिलाफ आलोचको और सनातन धर्माभिमानियो ने टीका का बवडर खडा किया और अखबारो मे

उन पर विरोध और गालियों की वर्षा शुरू हुई। 'विविध ज्ञान विस्तार' के ग्राहकों ने तो चंदा बंद कर देने की धमकी भी दी। उनका व्यंग्य कितना मर्मभेदी सिद्ध हुआ था, इसका यह प्रत्यक्ष प्रमाण था। 'होली', 'गणेशचतुर्थी' 'श्रावणी', 'भीष्म प्रतिज्ञा की विजय' साधुसंत', चित्रगुप्त का जमाखर्च, 'मरणोत्तर क्रिया-श्रम आदि सामाजिक और धार्मिक पाखंडों पर प्रहार करने वाले निबंध पूरे समाज में खलबली मचा देने वाले सिद्ध हुए, जबकि 'निर्जला एकादशी', 'बुढ़ापे के फायदे', 'पानी का अकाल' आदि निबंधों में विशुद्ध स्वरूप का निर्व्याज विनोद दिखाई देता है। 'चोर सम्मेलन' का वर्णन करने वाला विडंबनाप्रधान निबंध तो बड़े ही सुंदर ढंग से लिखा गया है। उसे कोल्हटकर की विनोदप्रधान लेखमाला का मेरुमणि कहा जा सकता है।

उपहासाचार्य कोल्हटकर का व्यंग्य विनोद

कोल्हटकर का हास्य विनोद मात्र मनोरंजनात्मक प्रयोजनहीन, स्वभावनिष्ठ, या प्रसंगयुक्त नहीं है। उनके विनोद में एक प्रकार की तिलमिला देने वाली तीक्ष्ण धार है जो पूर्णत प्रयोजनपूर्ण है। बेन जॉनसन ने चासर के संबंध में कहा था "If any man ever deserved to be called a humourist it is chaucer His genius is so exactly poised as to give us a feast of malignant enjoyment without the out break of offended sympathy' —ये उद्‌गार कोल्हटकर के संदर्भ में भी पूर्णत सटीक हैं।

कोल्हटकर को 'विनोदाचार्य' कहने के बजाय 'उपहासाचार्य' या 'व्यंग्याचार्य' कहना ही अधिक उपयुक्त होगा। उनके उपहास में प्रयोजनपूर्ण विनोद के साथ-साथ श्लेष और अतिशयोक्ति का समुचित प्रयोग होने के कारण उसे एक प्रकार का गुरुत्व और गांभीर्य प्राप्त हो सका है। ऍरिस्टोफेनिस हॉरेस, जुवेनाल आदि यूनानी-रोमन साहित्यकारों और वॉल्तेयर, बायरन, थैकरे, बटलर स्विफ्ट, पोप, ड्रायडन बर्नार्ड शॉ प्रभृति परवर्ती योरोपीय लेखकों को अपने-अपने युग में व्यंग्याचार्य ही समझा जाता था। कोल्हटकर का स्थान निर्विवाद रूप से इसी परंपरा में है।

अंग्रेजी कोशकार फाउलर ने अपने 'मॉडर्न इंग्लिश यूसेज नामक ग्रंथ में
द और उससे जुड़े हुए भावों की एक तालिका दी है। हास्य विनोद के

अंतर्गत किन किन भावों का समावेश होता है, कौन कौन से मनोविकार किन भावों के साथ संलग्न हैं, उनका हास्य विनोद के साथ क्या संबंध है, और उनके घात प्रतिघात से हास्य विनोद की निर्मिति किस प्रकार होती है, इसकी विस्तृत विवेचना इस सूची में की गई है। हास्य विनोद के लिए—Humour—यह व्यापक संज्ञा निश्चित करके उसके श्लेष या शब्दनिष्ठ विनोद (Wit), उपहास या व्यंग्य (Satire), उपरोध या वक्रोक्ति (Sarcasm), गालीप्रधान (Invective), गूढाक्षित (Irony), छद्म हास्य (Sardonic), विडंबन (Parody), तुच्छता वृत्ति (Cynicism), आदि प्रभेद माने गए हैं और उनके अलग-अलग लक्षण भी दिए गए हैं।

समाजसुधार को व्यंग्य का मुख्य उद्देश्य मान लिए जाए तो सामाजिक कुरीतियों और हानिप्रद प्रथाओं पर प्रहार करना उसका प्रधान कार्य हो जाता है जिसे प्राप्त करने में व्याजोक्ति और अतिशयोक्ति सबसे प्रभावी साधन सिद्ध होती है। इस सैद्धांतिक दृष्टि से विचार करने पर 'सुदामा के चावल' का समावेश निर्विवाद और निरपवाद रूप से 'व्यंग्यात्मक सहेतुक विनोद' के अंतर्गत होता है।

मानव जीवन की विनोदात्मक टीका

एक साहित्यिक विधा के रूप में व्यंग्य या उपहास की यह व्याख्या भी की जाती है कि वह मनुष्य मात्र के अज्ञान और मूर्खताओं एवं मानव जीवन की त्रुटियों और अपूर्णताओं पर की गई विनोदात्मक टीका है। शर्त सिर्फ इतनी है कि यह टीका कलात्मक और यथासंभव वैयक्तिक द्वेषरहित होनी चाहिए। गार्नेट के कथनानुसार व्यंग्य में यदि विनोद का पुट नहीं हुआ तो वह निंदा या कुत्सा का रूप धारण कर लेता है और कलात्मकता न हुई तो वह निम्न कोटि का विदूषकी विनोद बन जाता है। अतः उच्च कोटि के व्यंग्य में दोषदर्शनपूर्ण टीका के साथ विनोद का समन्वय होना नितांत आवश्यक है। व्यंग्यात्मक साहित्य समाज के हास्यास्पद पहलू को इस प्रकार प्रस्तुत करता है कि पाठकों को उसका तीव्र निषेध करने की इच्छा हो उठे। व्यंग्यकार के प्रमुख हथियार हैं व्याजोक्ति, वक्रोक्ति, तुच्छताबुद्धि, निंदा, निर्भत्सना, श्लेष और अतिशयोक्ति। परंतु इन सब हथियारों में धार हास्य विनोद की ही होनी चाहिए। जुवेनाल के

कथनानुसार समाज मे मूर्खों की तो कोई कमी नही और उनकी मूर्खता की कोई सीमा भी नही। इस हालत मे उनकी बेवकूफिया का पर्दाफाश करके उनके नग्न स्वरूप को प्रकाश मे लाना ही व्यग्य का मर्म सिद्ध होता है। किसी भी प्रकार के सुधार का विरोध करने वाले पुरातन पथी परपरानिष्ठो पर शाब्दिक प्रहार करके उनकी खिल्ली उड़ाने का व्यग्य से बढ कर कोई साधन नहीं है। स्विफ्ट की तरह कोल्हटकर का व्यग्य भी इसी श्रेणी का है। गोमल खाने का अधिकार केवल परम पवित्र ब्राह्मणो के लिए ही सुरक्षित रखने की जो मार्मिक मीमासा उन्होंने 'श्रावणी' मे की है, वह खुल्लमखुल्ला व्यग पर आधारित है। 'हिंदूधर्म ने बदरो के आनद के लिए हनुमान-जयति और सिहो के समाधान के लिए नृसिह जयति का आयोजन किया, और हाथी को शिकायत का मौका न मिले इसलिए उसका शिरच्छेद करके उस सिरकमल को साक्षात् गणेशजी के धड पर स्थापित कर दिया।'—इत्यादि सैकड़ो उद्धरण 'सुदामा के चावल' में से दिए जा सकते हैं। कोल्हटकर के व्यग्य विनोद को शायद इसीलिए श्री न चि केलकर ने जर्मन दार्शनिक नीत्शे के शब्दो का प्रयोग करके 'हसने वाला सिंह' की पदवी प्रदान की है।

व्यग्य विनोद के विविध रूप

श्लेष और अतिशयोक्ति कोल्हटकर के व्यग्य विनोद के मुख्य आधार स्तभ हैं। कही-कही उन्होंने अतिशयोक्ति की भी अतिशयोक्ति की है, पर तब भी उनका व्यग्य बडा सटीक रहा है और वह विषय प्रष्ठति का चमत्कृतिपूर्ण साधन बन कर आया है। बडूनाना ने नीद आने के लिए क्या-क्या किया और किन किन भलेबुरे उपायो की सहायता ली, यह पढते समय कोल्हटकर की अत्युक्ति चुभती है पर खटकती नहीं। 'घरेलू खेल', 'साहित्य परिषद की तैयारी', या 'यात्रिक चमत्कार' आदि निबधो मे भी ऐसे प्रसग बहुतायत से मिलते हैं। शाब्दिक श्लेष की तो उनके लेखन मे बाढ सी आ गयी है। उसके प्रवाह मे बह कर और कभी-कभी केवल हास्य के लिए हास्य उत्पन्न करने के प्रयत्न मे कहीं-कही उनके साहित्य मे कृत्रिमता भी आ गयी है। कल्पना को तो उन्हे बेहिसाब खीचातानी करनी पड़ी है। 'भाषा और इतिहास (शब्दसाधना) नामक निबध मे इतिहासाचार्य राजवाडे की व्युत्पत्ति विषयक गवेषणाओ का जो खडन

किया गया है उसमे मल्पवता तो है, पर सभ्यता भी है यह नही कहा जा सकता।

तथापि, समग्रता मे विचार करने पर श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर का व्यग्य उच्च कोटि का, गाभीययुक्त, विग्धतापूण और कल्पनाप्रवण है, इसम कोई सदेह नही। उनके अधिकाश निबध विद्वत्ता प्रचुर होने के कारण सामान्य पाठको द्वारा उनके रहस्य का आकलन सभव नही। इन निबधो म बुद्धिमत्ता, बहुश्रुतता और अध्ययनप्रियता के दशन कदम-कदम पर होते हैं। इन्ही कारणो से मराठी व्यग्य साहित्य म आज भी उनके 'सुदामा के चावल' का स्थान अपूव और अद्वितीय है। उनकी जोड का और कोई विनोद लेखक या व्यग्यकार मराठी मे अब तक नही हुआ।

व्यग्य विनोद के क्षेत्र म राम गणेश गडकरी (बालकराम) चिंतामण विनायक जोशी, आचाय अत्रे कैप्टन लिमये, रागणेकर, दत्तू बादेकर, प्र श्री कोल्हटकर (वायुपुत्र), श्यामराव ओक, 'दाजी' के निर्माता ना धा ताम्हनकर बाक्लि, पु ल दशपाडे प्रभृति समथ साहित्यकारो ने कोल्हटकर की विरासत को आगे बढाया है और अब बुवा, ठनठनपाल जैसे व्यगकारो का उदय हो रहा है, यह सतोष की बात है।

कोल्हटकर के व्यग्य विनोद का रहस्य

कोल्हटकर के व्यग्य विनोद की पाश्व भूमि और रहस्य का उद्घाटन उन्ही के शब्दो म करना उचित होगा। प्रस्तुत लेख के समापन के लिए ये ही शब्द उपयुक्त होग। मरे आलोचक' निबध म वे लिखते हैं —

"अभिमानी आखो के लिए उपहास से बढ कर कोई अजन नही यह रोज के अनुभव की बात है। अपनी गलतियो और कमजोरियो का स्वीकार करने का मानसिक धय जिनम नही है, अपनी हर बुरीभली रूढि को येनकेन प्रकारेण दूसरो के गले उतारने का जो प्रयत्न करते रहते हैं और देश की वतमान दुदशा को दवगति के मत्थे मढ कर जो निश्चित हो जाना चाहते हैं उन पाखडी पोगापडितो की खबर लेना और इस बहाने रूढियो की अनिष्टता के प्रति पाठको को जागरूक करना ही इन निबधो के पीछे हमारा प्रधान उद्देश्य रहा है। फ्रास मे व्यग्य विनोद को इतनी अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त है कि कोई अभियुक्त या

सजायाफ्ता अपराधी भी विनोदप्रचुर भाषण करे, तो समाज उसके बडे से बडे अपराध का क्षमा कर देता है। इसके विपरीत हमारे यहा हास्य विनोद को इतना हीन माना जाता है कि अत्यत विशुद्ध भावना से प्रेरित होकर भी यदि कोई लेखक या वक्ता अपने विषय को हास परिहास के मिश्रण से मनोरजक बनाने की कोशिश करे, तो इसे तुरत एक साहित्यिक अपराध घोषित कर दिया जाता है और उस पर छिछोरा, बचकाना, वीभत्स, अश्लील आदि विशेषणा की पुष्पवष्टि होने लगती है। व्यग्य प्रधान लेखा द्वारा समाजसुधार का प्रचार करन का हमने जो प्रयत्न किया है, उसका कारण समाज को दुलार कर सुधार के अनुकूल बनाना नही है बल्कि उस छेड कर और चिढाकर स्वदोष निरीक्षण के लिए प्रेरित करना है। समाजसुधार के गुणा की चर्चा हमने अपने नाटको मे की है। प्रस्तुत निबधा म रुढि और अध श्रद्धा के दोषो को उजागर करना ही हमारा प्रधान उद्देश्य रहा है।'

—रा प्र कानिटकर

अनुक्रम

1 गवाह

कोर्ट-कचहरी के वातावरण म रमे हुए लोगो के लिए गवाह कितना विलक्षण प्राणी होता है यह बताने की आवश्यकता नही। परतु इस अलौकिक प्राणी की बुद्धिमत्ता, नैतिकता, व्यवसाय और कार्य पद्धति की जानकारी सभी सामान्य जना का हो सके इसीलिए यह वर्णनात्मक निबंध लिखा जा रहा है।

इस विलक्षण प्राणी के प्रमुख मूलाधार दो हैं—'सबूत की आवश्यकता' और 'दनिक भत्ता'। आवश्यकता को आविष्कार या कल्पनाशक्ति की जननी माना जाता है। यह नाता तो जगप्रसिद्ध है। इस प्रकार माता एक ही होने के नाते गवाह और कल्पनाशक्ति के बीच भाई-बहन का रिश्ता स्थापित होता है। इन दोनो का आपसी सबंध कितना घनिष्ठ होता है, और भाई को बहन ठीक मौके पर किस हद तक सहायता करती है इसका सही अदाज अनुभव से ही प्राप्त हो सकता है।

इस अद्भुत प्राणी का प्रमुख व्यवसाय होता है लोगो के झगडे फसाद मिटाना। इसलिए जहा-जहा लेनदेन के व्यवहार या भविष्य मे टटा होने की सभावना के दूसरे व्यापार चलते हैं, वहा इसकी उपस्थिति अनिवार्य ही समझिये। जहा साहूकार आसामी से दस्तावेज लिखवाता है या कर्जदार साहूकार को ऋण की अदायगी करता है वहा यह सर्वव्यापी प्राणी अत्यत सूक्ष्म दृष्टि स अवलोकन करता रहता है। उसे मालूम होता है कि भविष्य मे कभी न कभी उसकी अवलोकनशक्ति ही कसौटी मानी जायेगी। इसलिए कौन-सा मनुष्य किस रग का पगड बाधे हुए था, भुगतान के समय रुपये किस प्रकार गिने गये, उन्हे किस चीज मे बाधकर लाया गया, व्यवहार यदि वस्तु का हो, तो माल को नापने का पात्र किस धातु का बना हुआ था, माल ढोने वाली बलगाडी के बैल किस रग के

थे,—आदि छोटी मोटी किंतु परमावश्यक बातो को वह ब्योरवार याद रखता है।

इसी प्रकार ब्याह शादी या गोद लेन देने के समारभो म भी इस प्राणी की उपस्थिति अनिवाय ही समझिये। विवाह के समय एक बार पडितजी उपस्थित न हो तो काम चल सकता है, पर गवाह के बिना नही, फिर चाहे वह अन्य जाति का ही क्या न हो। हमारे परिचित एक मुसलमान गवाह न एक बार किसी हिंदू के विवाह मे अपने हाथो से अतरपट थामने की गवाही हलफनामे पर, खुदा को हाजिर नाजिर मान कर दी थी।

यह प्राणी केवल सावजनीन प्रसगो पर ही उपस्थित रहता हो ऐसी बात नही। कभी कभी तो यह लोगो के अत्यत निजी और गोपनीय व्यवहारो के समय भी हाजिर रहता है। पति पत्नि के बीच की वैयक्तिक बातचीत या हत्यारो के षडयत्र जैसे नितात गोपनीय प्रसगो पर सबधित लोगो के अलावा अक्सर दो ही लोग उपस्थित रहते हैं। एक सवव्यापी परमेश्वर और दूसरा उतना ही सवव्यापी गवाह।

इस सज्ञा का एकवचनी प्रयोग हमन सिफ सुविधा की दृष्टि से किया है। इस से पाठको को गलतफहमी होने की सभावना है। इसलिए आरभ मे ही यह स्पष्ट कर देना ठीक रहेगा कि गवाह कभी, कही, अकेला नही रहता। हमेशा दो चार क गुट मे ही जीवन व्यतीत करता है। यही कारण है कि किसी भी घटना को देखन वाले तीन तीन, चार चार तक गवाह मिल जाते हैं। इस दृष्टि से गवाह को समूह बना कर रहने वाला प्राणी मानना चाहिये।

औरो के झगडे फसाद मिटाना गवाहो का प्रमुख व्यवसाय होन पर भी वे आपस मे एकमत कभी नही होते। बल्कि किसी भी सूरत मे एक-दूसरे से सहमत न होना ही उत्तम गवाह का प्राथमिक लक्षण माना जाता है। उदाहरणाथ यदि तीन गवाहो से यह पूछा जाय कि कोई विशिष्ट घटना किस समय हुई थी, तो पहले के मतानुसार वह भोर की बेला होगी, दूसरे की राय दोपहर या शाम के पक्ष मे होगी और तीसरे का कथन होगा कि उस समय तो आधी रात बीत चुकी थी और उसने सिवा सारी दुनिया गहरी नीद म सो रही थी। यदि केवल तीन गवाहो म इतना मतवैचित्र्य होकर पूछने वाले की मति कुठित हो सकती है तो । अधिक होने पर तो न जाने क्या-क्या हो सकता है।

एक बार हमने चार गवाहो से किसी विशिष्ट घटना का समय जानना चाहा। पहले ने कसम खाकर (खरा पेशेवर गवाह हलफ उठाये बिना कभी जबान भी नही खोलता) कहा कि बारिश के दिन थे और मूसलाधार वर्षा हो रही थी। दूसरे ने कहा कि जाडो के दिन थे और आग सेंकने के लिए सब तरफ अलाव जले हुए थे। तीसरे के अनुसार गरमी के दिन थे और लोग चादनी मे बैठे रसिया गा रहे थे। चौथे गवाह ने कोई नयी बात न कहते हुए अलग-अलग समय पर इन तीनो मे से किसी एक का समर्थन किया। पर इसके लिए उसे दोष नही दिया जा सकता क्योकि सर्दी गर्मी और बरसात के सिवा और किसी मौसम की उसे जानकारी नही थी।

ये बयान परस्पर विरोधी होने पर भी झूठे होते हैं ऐसा नही कहा जा सकता। कारण, एक तो यह सारे बयान शपथ लेकर दिये जाते हैं। कसम खाकर भला कौन झूठ बोलेगा ? दूसरे, गवाहो के बिधान अक्सर भवभूति द्वारा वर्णित 'वाचमर्थोऽनुधावति' श्रेणी मे आते हैं। अर्थ की स्वतत्र सत्ता ही कहा है ? वह तो बेचारा वाणी के पीछे-पीछे भागता है। वह उसे जहा भी ले जाय ! क्षुद्र शब्द और उनके सूक्ष्म अर्थों की क्या गिनती, अभिजात गवाहो के सामने तो पचमहाभूत भी हाथ बाधे खडे रहते हैं। वरना काली, अधेरी रात मे घूमने के लिए निकलने वाले गवाह को गहन अधकार मे चलने वाले चौर्यकर्म की जानकारी कैसे होती ? चैत की निरभ्र रात्रि मे भी जब ऐन वक्त पर बिजली चमक उठती होगी, तभी तो उस घटना के दर्शन होते होंगे। जहा पचमहाभूतो की यह हालत हो, वहा साधारण मनुष्य की क्या गिनती ? उन्हे तो सदा-सर्वदा इस श्रेष्ठ प्राणी के साथ सहकार करना पडता है। यही कारण है कि कभी कभी बडे नामी गिरामी चोर भी किसी के मकान मे भीतर से साकल लगाकर चोरी करते समय गवाह की आहट सुनते ही कुडी खोल कर उसे भीतर बुला लेते हैं और फिर उसकी साक्षी मे ही अपना पेशा करते हैं।

दूसरो की बातो मे दखल देने की जन्मजात इच्छा के साथ-साथ कुदरत ने इस प्राणी को उतनी तीव्र बुद्धि और इद्रिया भी दी हैं, यह बडे सौभाग्य की बात है। एक बार एक अधे गवाह ने मुलजिम के साफे का रग पीला होने की चश्मदीद गवाही दी। अब आखो देखी बात को भला झूठी भी कौन कह सकता है ? इसी प्रकार वज्रबधिर गवाहो के कान दूसरों के निजी व्यवहारो की बातचीत सुनते

समय गुज़र के वे सूक्ष्म पाये गये। इतना ही नहीं बहुत दूर होने वाली बातचीत भी उन्हें स्पष्ट सुनाई दी। यह सब अलौकिक गुण हैं, यह माना, परन्तु स्मरणशक्ति के मामले में तो वाकई गवाहों की गणना सामान्य मनुजों के अंतर्गत नहीं होनी चाहिये। किसी विशिष्ट कारण के अभाव में औसत आदमी की याददाश्त पांच-दस वर्षों से अधिक का दायरा पार नहीं करती और उसकी पकड़ सिर्फ महत्वपूर्ण बातों तक ही सीमित रहती है। परन्तु गवाहों के मन पर स्मृति का नागपाश बड़ा प्रबल होता है। बात कितनी ही छोटी क्यों न हो, और उसे बीते कितने ही वर्ष क्यों न हो गये हों, गवाहों की सदाबहार स्मृति में वह सदा तरोताजा रहती है। पंद्रह पंद्रह वर्ष पहले के व्यवहारों को भी फिर वे चाहे जितने उलझे हुए क्यों न हों, वे यों धड़ाधड़ दोहरा देंगे मानो वे कल ही हुए हों और सारी बातें उन्हें जबानी याद हों। उन्हें देखकर आजकल के कुछ वक्ताओं की याद आ जाती है। ये लोग अपना जोशीला व्याख्यान अक्सर घर में रट आते हैं। कभी कभी तो भाषण का पूरा मजमून पहले से छाप दिया जाता है। फिर भी, सभा में किसी सुभाषित को दोहराते समय या किसी प्रसिद्ध पुरुष के विचारों का उल्लेख करते समय जान बूझ कर, सशंक मुद्रा से इफ आइ रिमेंबर राइटली (यदि मेरी याददाश्त धोखा नहीं दे रही है तो) इत्यादि शब्द जरूर जोड़ते हैं।

जन्मजात गवाहों की बिरादरी के लोग ऐसी कोई दुर्बलता प्रकट नहीं करते। उन्हें अक्सर बड़ी बड़ी रकमों के जमाखर्च वर्षों के बाद भी ज्यों के त्यों याद रहते हैं। बल्कि सच तो यह है कि बात जितनी ही क्षुद्र और छोटी हो, उतना ही उसका इनके मन पर अधिक स्पष्ट प्रभाव पड़ता है। अभी उस रोज एक गवाह ने पच्चीस साल पहले के किसी व्यवहार की सिर्फ कानों सुनी तफसीलों को आने पाई के साथ दोहराया था और एक अन्य महानुभाव ने चालीस वर्ष पहले पालने में पड़े हुए अंगूठा चूसते चूसते सुनी हुई किसी भूमि विभाजन की बारीकियों का न्यायालय में आद्योपान्त वर्णन किया था। दरअसल इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। माता के गर्भ में रहकर कृष्ण की व्यूहनीति को आत्मसात् कर अठारह वर्ष बाद चक्रव्यूह भेदन के समय उसका समुचित प्रयोग करने वाले अभिमन्यु का उदाहरण इस प्रकार के संशय को दूर कर सकता है।

अंततोगत्वा गवाह भी मनुष्य ही होता है। इसलिए कभी-कभी उपरोक्त नियम के अपवाद भी पाये जाते हैं। उदाहरणार्थ किसी किसी गवाह में यह कमजोरी

होती है कि वर्षों पहले की बातें जहा उसे ज्यों [illegible] याद [illegible] कुछ रोज पहले की घटनाएं उसकी याददाश्त के शिकंजे [illegible] ही [illegible] जाती है। कभी कभी तो उसके स्मृतिपट पर अंकित होने वाले चित्रों की स्पष्टता कालसांनिध्य के विपरीत अनुपात में पायी जाती है। दशाब्दियों पहले की बातें जहा उसे सिलसिलेवार याद रहती हैं वहा कल दोपहर को कौन-सी सब्जी खायी थी यह उसे अक्सर याद नहीं रहता। इतना ही नहीं कभी कभी तो दो मिनट पहले मुह से निकली हुई बात याद न रहने के कारण वह परस्पर विरोधी बयान कर बैठता है। इसके अलावा परोपकार के व्यापक सिद्धांत पर अटल श्रद्धा होने के कारण खानदानी गवाह अपने वयक्तिक मामलों के प्रति अक्सर उदासीन भी होता है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' उसका चरम ध्येय होता है। इस नियम के अनुसार उपरोक्त सफल गवाह से आप यदि पूछें कि "जहा यह लेनदेन और जमापत्र की बातें चल रही थी वहा तुम्हारा क्या काम था" तो वह शायद आपके प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकेगा। इसी प्रकार उससे यदि यह पूछा जाये कि "पारसाल तुमने अपने पिता का श्राद्ध किस ब्राह्मण से करवाया था?" तो यह भी शायद उसे याद नहीं होगा। ऐसे प्रश्न पूछ कर उसे कुंठित करना उचित नहीं। परंतु बीस साल पहले के किसी समारोह में एकत्रित पचासों व्यक्तियों के नाम, वल्दियत दो-तीन पीढ़ियों की वंशावली उम्र, जाति, व्यवसाय इत्यादि ही नहीं बल्कि जरूरत पड़ने पर प्रत्येक ने किस प्रकार के कपड़े पहने थे इसका वर्णन भी वह बिना हिचकिचाये कर सकेगा।

उपरोक्त उदाहरणों में जिस प्रकार अंधे बहरे, लंगड़े आदि विकलांग गवाहों की नष्ट इंद्रियां पुनरोज्जीवित होती देखी गयी है उसी प्रकार कभी कभी उनकी स्वस्थ और कार्यक्षम इंद्रियां नाकाम होती भी देखी जाती है। आंखों वालों को कभी कभी कुछ दिखाई नहीं देता और कान वालों को कुछ सुनाई नहीं देता। यह विकार अकसर आसामी से दस्तावेज या अनुबंधपत्र लिखवाने वालों में पाया जाता है। इसी कारण से सादे बंधकपत्र के बजाय भोगबंधक या बेदखल रेहननामा और रेहननामे के स्थान पर विक्रयपत्र लिखवा लेने का प्रमाद कभी-कभी उनके हाथों होता रहता है।

गवाहों में प्रायः चिलम पीने का एकमात्र व्यसन पाया जाता है। परंतु यह आदत अकसर उनके हित में ही प्रमाणित होती है। उनकी यह लत सुविख्यात

होने के कारण समान व्यसनी लोगों की ओर से उन्हें तबाकूनोशी का निमंत्रण मिलता रहता है। इससे गवाहों को बड़ा लाभ होता है। अपने समव्यवसायी लोगों के साथ परिचय होने के अलावा एक लाभ यह भी होता है कि उनकी झिझक खुल जाती है और तरह-तरह के लोगों के व्यवहार का सूक्ष्म निरीक्षण करने का भी उन्हें मौका मिलता है। साथ ही विपक्षी की छावनी में प्रवेश मिल जाने पर दुश्मन के दाव पेंचों की जानकारी भी मिल जाती है। जहां तबाकू पीने की सुविधा नहीं होती वहां के गवाहों की प्रिय आदत होती है बाजारों का चक्कर लगाना। परंतु इसमें एक खतरा रहता है। मुकदमेबाज लोग अक्सर उन्हें अपने टंटे फसाद मिटाने के लिए पकड़कर ले जाते हैं और उनकी उपस्थिति में फिर वही सारे काम करते हैं जिनकी भविष्य की किसी गवाही में फिर आवश्यकता पड़ सकती है।

उपरोक्त दो प्रसंगों के सिवा खरे गवाह आपस में कभी बात नहीं करते। एक साथ लंबी यात्रा करने का मौका आन पड़े तो अभिजात गवाहों का बर्ताव अक्सर अंगरेज अपरिचितों की तरह औपचारिक और रूखा रहता है। न्यायालय में कदम रखने से पहले तो उनका एक-दूसरे से परिचय भी नहीं होता।

सत्यप्रियता के लिए भारतीय गवाहों की ख्याति तो ब्रह्मांड में फैली हुई है। अब यह बात अलग है कि जिसके पक्ष में वे गवाही देते हैं वे अक्सर उनके सगे संबंधी या साहूकार ही होते हैं। परंतु इसमें कोई संदेह नहीं कि गवाह हमेशा सच ही बोलते हैं और सच के सिवा कुछ नहीं बोलते। एक बार जो बात मुंह से निकल गयी वह पत्थर की लकीर बन जाती है और उससे वे "प्राण जाय पर वचन न जाइ" की टेक से चिपके रहते हैं। तफसील बताने पर उतारू हुए तो किसी भी प्रश्न के उत्तर में 'मालूम नहीं' उनके मुंह से नहीं निकलेगा और एक बार यदि 'मालूम नहीं' की परंपरा शुरू हो गयी तो साक्षात ब्रह्मदेव भी उनके मुंह से एक शब्द भी नहीं उगलवा सकते। हां कभी-कभी प्रसंगानुसार वे अपने उत्तरों का ढांचा अवश्य बदल देते हैं। उदाहरणार्थ जिरह के समय यदि गवाह से पूछा जाए कि "अमुक अमुक इकरारनामा गांव के चौपाल में हुआ या क्या ?" तो इसका उत्तर 'हां या नहीं' में देने के बजाय निम्नोक्त दो प्रकारों में से एक में दिया जा सकता है। कुछ गवाह तो 'इस प्रकार के समझौते चौपाल में नहीं तो और कहां होंगे तुम्हारे घर में ?' इत्यादि त्वरित प्रतिप्रश्न पूछ

कर आपको निरुत्तर कर सकते हैं जबकि कुछ "इस प्रकार के करार-मदार तो चौपाल मे ही होते हैं। गाव का बच्चा-बच्चा यह जानता है" आदि निश्चयात्मक बयान देकर पूछने वाले को मूर्ख प्रमाणित कर सकते हैं। उत्तर देने की इस पद्धति मे वैचित्र्य के अलावा लोगो को लौकिक ज्ञान प्रदान करने की और कभी-कभी हाकिम की हमदर्दी प्राप्त करने की भी शक्ति होती है। कभी-कभी तो इस उत्तर पद्धति मे गवाह इतने पटु हो जाते हैं कि कचहरियो मे निम्नलिखित श्रेणी की मनोरजक प्रश्नोत्तर माला सुनाई दे सकती है —

किसी मुसलमान गवाह से पूछा गया, 'तुम्हारी चार बीविया हैं ?"

उत्तर "सभी की चार-चार बीविया होती हैं।"

प्रश्न "पहली स्त्री शायद मर गयी ?"

उत्तर "जो जनमता है वह कभी न कभी मरता ही है।"

प्रश्न "तुम्हारे ससर्ग से उसे एक लडका हुआ था ?"

उत्तर "मेरी बीवी को बच्चा मुझसे नही होगा तो क्या आप से होगा ?" इत्यादि।

गवाहो की सबसे बडी बीमारी यह होती है कि कभी-कभी पूछे गये प्रश्न उनकी समझ मे नही आते और वे उनके विसगत उत्तर देने लगते हैं। एक बार यह प्रक्रिया शुरू हो गई कि पूछने वाले की खैर नही। कब, कहा, कैसे, इत्यादि प्रतिप्रश्न पूछ-पूछ कर या पूछे गये प्रश्नो के कुछ शब्दो को ही दोहरा-दोहरा कर वे प्रश्नकर्ता की नाक मे दम कर देते हैं। किसी प्रसग का वर्णन करने की कुछ गवाहो की पद्धति तो किसी उपन्यासकार की वर्णन शैली की तरह सुनियोजित और लच्छेदार होती है। 'अमुक प्रश्न के सबध मे तुम्हे क्या जानकारी है ?" ऐसे सीधे-सादे प्रश्न का सरल सा उत्तर देने के बजाय वे "छह महीने पहले की बात है। एक दिन सुबह मैं सो कर उठा और मुह हाथ धोकर खेत की ओर जा ही रहा था कि " आदि शब्दो से आरभ करके उक्त घटना के देशकालादि ब्यौरे के साथ अपनी वैयक्तिक दिनचर्या को जोड कर पूरे प्रसग का सूक्ष्म वर्णन धाराप्रवाह गति से करने लगेंगे। किसी भी प्रकार की पूर्व तयारी किये बिना इस प्रकार का सुसबद्ध और स्पष्ट व्याख्यान दे सकने वाला वक्ता साधारण सामाजिक जीवन मे विरला ही होता है।

एक महत्व की बात का उल्लेख रह गया। वह यह कि इस सर्वज्ञ प्राणी को

बहुत सी निजी बातों की कतई जानकारी नहीं होती। उदाहरणार्थ अपनी उम्र का सही-सही अंदाज शायद ही किसी गवाह का होता है। फलस्वरूप कोई नौजवान गवाह अपने आपको मृत्यु के बिलकुल करीब पहुंचा हुआ मानता है तो कब्र में पांव लटकाये बैठा हुआ कोई खूसट अपने आप को नौजवान समझता है। परंतु गवाहों की उम्र की जानकारी न्यायाधीशों को भलीभांति होती है। उन्हें मुकदमे के लिखित बयानों से इसका पक्का पता हो जाता है। दूसरी आश्चर्य की बात यह होती है कि गवाहों की उम्र अक्सर पांच के पहाड़े में ही घटती-बढ़ती है। मसलन किसी गवाह की उम्र का पचासवां वर्ष पूरा होते ही वह अन्य क्षुद्र प्राणियों की तरह छत्तीस, सैंतीस आदि के सोपान पार करता हुआ आगे नहीं बढ़ता बल्कि एकदम चालीसवें वर्ष में ही पदार्पण करता है। गवाहों की एक खासियत यह भी होती है कि गवाही देते समय वे अक्सर ऊपर की ओर शून्य में ताकते हुए बोलते हैं मानो अपने वक्तव्य की सच्चाई प्रमाणित करने के लिए उस त्रिकालज्ञ परमेश्वर का आवाहन कर रहे हों। इसी प्रकार बोलते समय वे अक्सर खांसते-खखारते भी रहते हैं। यह प्रायः चिलम पीने का दुष्परिणाम होता है। व्यसनी लोगों को इस से सबक सीखना चाहिए।

2 ताले

ताले जैसा स्वामिभक्त और ईमानदार पहरदार तीनो लोक मे ढूढे नही मिलेगा। उसके सामने अपार सपत्ति ऊ"ल दने पर भी वह विचलित नही होता और दरवाजे पर की उसकी पक" ढीली नही पडती। किसी त्रिभुवन सुदरी के नेत्रकटाक्ष स भी उसका लाहहृदय पिघलता नहीं। पहरा देत समय उसे न तो नीद की झपकी आती है न भूख प्यास जसी सामान्य बाधाए ही उसे सताती है। सर्दी गर्मी या धूप छाव का भी उस पर काई प्रभाव नही पडता। लुहार को बुलवा कर उसके वज्र हृदय का प्रहारा द्वारा छिन्न भिन्न करवा दिया जाय तो बेशक उसके सामने कोई चारा नही रहता। प्राचीन रोमन सनिका की तरह कत्तव्यपालन करते करते मृत्यु का मुकाबला करना ही उसका परम ध्येय हाता है।

परतु इस ससार म सवगुणसपन्न तो शायद कोई भी नही है। बेचारा ताला भी इस नियम का अपवाद कैस हो सकता है? उपरोक्त दुलभ गुणा का आत्मसात करन क लिए जिस बुद्धिशून्यता की आवश्यकता पडती है उसी के कारण कभी कभी उसके हाथा बडे बडे काड घटित हो जात हैं। उसका काम हाना है मुख्यत कुडे और साक्ल की जाडी म वियाग न हान दना। पर काई चोर यदि कुडी को तोड कर दाना का वियोग कर दे तो ताले को कदाचित् कोई आपत्ति नही हाती। इसी प्रकार साकल की सबसे ऊपर वाली कडी का दायरा ताले म अधिक हो और काई वद ताल को उसके बीच मे से निकाल कर साकल खोल ले, तो इस चमत्कार को भी चकित दृष्टि से दखते रहने क सिवा और काई विरोध ताले की ओर स प्राय नही होता। लकडी के बक्सा के तख्तो का किसी तीक्ष्ण औजार की मदद से निकालकर भीतर का माल गायब कर दिया जाय तो ताल का उसस काई लेना दना नही माना जा सकता। इतना ही नहीं, कभी-कभी ता

ताले के माथ पूरा बक्सा ही उडा लिया जाय तो भी उस विशेष हृप या शोक नही होता। वस्तुत किसी भी परिस्थिति मे अपने स्थान से विचलित हुए बिना स्थितप्रज्ञता से सामना करना ही उसके जीवन का चरम ध्येय है।

ताले के जैसे दृढनिश्चयी और कृतसंकल्प प्राणी पर भी कभी कभी स्थानभ्रष्ट और कर्तव्यच्युत होने का आरोप लगता है। ऐसा किस कारण से होता है यह ईसाई धर्मग्रथो के अध्येताओ का बताने की आवश्यकता नही। उन ग्रथो के अनुसार मानवजाति के आदिपुरुष के अध पतन का कारण भी नारी है। ताले की कर्तव्यभ्रष्टता के लिए भी उसकी स्त्री चाभी ही जिम्मेदार है। चमत्कार की बात तो यह है कि आदम का पतन जिस प्रकार हव्वा की अतिरिक्त जिज्ञासा के कारण हुआ था उसी प्रकार ताले का अध पतन भी उसकी स्त्री चाभी की अति-जिज्ञासा के कारण ही होता है। यह विचित्र स्त्री पति के पेट मे बैठकर अदर के कोने-कान की जानकारी प्राप्त कर लेती है और अत मे उसके हृदय पर कब्जा जमाकर उसकी निश्चलता का भग कर देती है। और तो और इस स्त्री का अपने पति पर ऐसा दबदबा रहता है कि उसकी अनुपस्थिति मे ताले महाशय अपने स्वामी की भी एक नही सुनते।

चाभी को ताले मे दाहिनी ओर घुमाने पर वह बद हो जाता है और बायी ओर घुमाने से खुल जाता है। स्त्री-पुरुष की अर्धांगिनी होती है और उसका स्थान पति के वामाग मे होता है। मनुष्य के हृदय का स्थान भी छाती मे बायी ओर ही होता है। प्रकृति ने ये सारी योजनाए शायद ताले की रचना को देखकर ही की होगी।

कुछ ताले आजीवन अविवाहित रहते है। इन ब्रह्मचारी तालो को अक्षर या सख्या वाले ताले (Letter locks or Combination locks) कहा जाता है। हमारे सनातनी मित्रो के समाधान के लिए हम यह निश्चय पूर्वक कहने को तयार हैं कि इन इने गिने धर्मच्युत तालो के भ्रष्टाचार को नजरअदाज कर दिया जाय तो बाकी के बहुसख्यक तालो का व्यवहार इस आर्यभूमि के सुपुतो को शोभा देने वाला ही होता है। मतलब यह कि प्रत्येक ताले के साथ दो-दो चाभिया मिलती हैं। इतना ही नही, ये दोनो नष्ट हो जायें, तो ताला को तीसरी या चौथी भार्या करने की भी धर्माज्ञा है।

हमारे मित्र बहू माना को तरह-तरह के ताले इकट्ठे करने का गजब का शौक है। अनेक धातुओ के बने हुए, विविध आकृतियो वाले विभिन्न प्रकार के सकडो

ताले इकट्ठे करके उन्होंने घर में एक छोटा-मोटा संग्रहालय इकट्ठा कर लिया है। इतना ही नहीं, वे उन्हें काम में भी लाते हैं। घर में रुपयों की तिजोरी से लगाकर दूध दही रखने की जालीदार आलमारी तक और नाज की कोठरी से लेकर उसका अंतिम विसर्जन होने की कोठरी तक हर जगह ताले लगाकर पक्की मोर्चेबंदी कर रखी है। घर पर डाका पड़ने वाला है। ऐसी सूचना मिलने पर भी किसी ने शायद इतनी पुख्ता नाकेबंदी न की होती। ऐसा मुकम्मल बंदोबस्त उन्होंने अपनी संपत्ति की रक्षा करने के क्षुद्र हेतु से नहीं बल्कि अपने प्रिय तालों पर आने-जानेवाले मित्रों की नजर पड़ती रहे और वे सहज कौतूहल से उनके संबंध में पूछताछ करते रहें इस उदात्त भावना से प्रेरित होकर किया है। इस शौक की खातिर नाना ने कहीं कहीं तो एक एक कुंडी में दो दो और कहीं एक ही दरवाजे को दोनों ओर भी ताले लगा रखे हैं।

इस विचित्र आयोजन के कारण उन्हें कई बार बड़ी विचित्र परिस्थितियों का मुकाबला करना पड़ा है। एक बार गल्ले के कोठार की चाभी उनकी पत्नी से कहीं खो गयी। ताला विदेशी और विजातीय होने के कारण उसके लिए दूसरी सह-धर्मिणी पूरा बाजार ढूंढ़ने पर भी नहीं मिली। लोहार को बुलवाकर ताले का उदरविदीर्ण करना संभव नहीं था। अपनी संतान में भी अधिक जतन किये हुए ताले के इस प्रकार अंजरपंजर अलग होते देखना नाना के बूते से बाहर की बात थी। फिर थे वे स्वाभिमानी व्यक्ति और इसीलिए किसी पास पड़ोसी से दो छबड़ी गेहूं मांगने में उनकी नाक नीची होने की संभावना थी। परिणाम यह हुआ कि उस रोज पूरे परिवार को ताले के कारण उपवास करना पड़ा। खैर, उस रोज एकादशी होने के कारण किसी को यह बात अखरी नहीं और अनायास ही उपवास का पुण्य सबके पल्ले पड़ गया। परंतु दूसरे दिन भी यही हालत रही। नाना की नाक में दम आ गयी। आखिर हमें सब बातें मालूम हुईं और हम खुद लोहार को लेकर उनके घर पहुंचे। ताला तुड़वाया तब कहीं बच्चों को खाना नसीब हुआ। परंतु इस छोटी-सी बात को लेकर हमारे इस अभिन्न मित्र को इतना गुस्सा आया कि कई दिनों तक उन्होंने हमसे बात करना भी छोड़ दिया। तीन दिन तक उन्होंने उस टूटे हुए ताले का मातम मनाया और घर में सूतक रखा। इन तीन दिनों में अपने प्राणप्रिय ताले को छिन्न विच्छिन्न देह को चूमते हुए भी उन्हें कई लोगों ने देखा था।

रोजमर्रा के व्यवहार में आनेवाले तालों की चाबियाँ तो वह नाना जनेऊ में बाँधे रखते हैं। इसी कारण वे कभी खोती नहीं हैं। अक्सर उनकी अर्धांगिनी के अधिकार की चाबियाँ ही खोती है। उपरोक्त अनर्थकारी घटना के बाद उन्होंने यह नियम बनाया कि पत्नी के हाथों में अपने खानदानी और अभिजात ताले सौंपने के बजाय बाजार में बिकने वाले मामूली ताले दिये जायें। ये ताले चाबी के मामले में किसी विशिष्ट विधिनिषेध का पालन नहीं करते। उन्हें खोलने के लिए कोई-सी भी चाबी, कील या मादी सलाई भी पर्याप्त होती है। कभी कभी तो वे मामूली से झटके से भी खुल जाते हैं। अपने हृदय की अंतरंग बातें किसी विशिष्ट ताली के सामने ही प्रकट करने की कोई जिद इन स्वच्छाचारी तालों को नहीं होती। दूसरे शब्दों में वह तो ये नाना जैसे पत्नीव्रती नहीं होते। इन बाजारी तालों की इस वसुधैव कुटुम्बकम नीति को देख कर ही एक बार नाना के एक पुराने नौकर को चोरी करने की प्रबल प्रेरणा मिली थी और वह कई हजार रुपये का माल लेकर चंपत हो गया था। इसके बाद अब वे फिर अपनी पत्नी को अधिक निपुण और विश्वसनीय ताले सौंपने लगे हैं।

और किसी ताले का लेकर तो विशेष तर्क वितर्क नहीं हुआ, पर तिजोरी में कौन सा ताला लगाया जाय इस समस्या को वह नाना बहुत दिनों तक हल नहीं कर सके। पहले उन्होंने विशिष्ट अक्षरों के योग से खुलने वाला ताला (Combination lock) लगा कर देखा पर तिजोरी वाले कमरे में अंधेरा होने के कारण अक्षर देखने में कठिनाई होने लगी। फिर बड़े प्रयास से उन्होंने उस भारी भरकम और महाकाय तिजोरी को बाहर के कमरे में रखवाया। परन्तु इससे एक और बाधा खड़ी हुई। रोशनी में सबको सामने अक्षर जोड़कर ताला खोलते समय अक्षरों का गोपनीय योग सबको दिखाई पड़ने लगा। इस पर नाना ने फतवा दिया कि पढ़े लिखे लोगों की तरह ये साक्षर ताले भी निकम्मे होते हैं। इससे तो भारतीय परंपरा के निरक्षर ताले कहीं अच्छे हैं। आधुनिक शिक्षा पद्धति पर यह नारा लगाकर वे फिर पुराने तालों की शरण में गये और कई प्रकार के तालों की योजना बनायी। परन्तु किसी से भी उन्हें संतोष नहीं हुआ। अंत में उन्होंने किसी अनूठी किस्म का अजब ताला खुद ईजाद करने का निश्चय किया। नाना के साथ के ... आर घनिष्ठ संपर्क के कारण वे अपने आपको इस विषय का ... विशेषज्ञ मानने लगे थे।

उन दिनों बाजार में एक नये प्रकार के जापानी ताले मिलने लगे थे। इनकी विशेषता यह थी कि चाभी की जरूरत सिर्फ उन्हें खोलते समय पड़ती थी; बन्द वे सिर्फ दबाने भर से हो जाते थे। नाना की आविष्कारक प्रतिभा के लिए यह एक चुनौती थी। एक दिन वे प्रसन्न मुद्रा में हमारे पास आये और कहने लगे, "हमारी इस आर्यभूमि में कल्पनाशक्ति और आविष्कारक प्रतिभा का नितान्त अभाव है, ऐसी शिकायत अक्सर सुनाई देती है। पर यह इलजाम है बिलकुल झूठा। बात यह है कि हमें ऐसा कोई मौका ही नहीं मिलता। मौका मिला होता तो हमारे यहाँ भी सैकड़ों एडीसन पैदा हुए होते।' देशाभिमान के इस आकस्मिक उफान का कारण पूछा जाने पर नाना ने पहले तो हम से यह वादा करवाया कि हम उनकी प्रशंसा नहीं करेंगे। फिर किसी लोहार की सहायता से उन्होंने स्वयं निर्माण किया हुआ एक ताला हमें दिखाया। कहने लगे, "इस ताले की मौलिक कल्पना मुझे इन खटके वाले तालों को देखकर सूझी। पर मेरे इस ताले के गुणधर्म इन जापानी तालों से ठीक उलटे हैं। उन तालों को सिर्फ खोलने के लिए चाभी की आवश्यकता पड़ती है, इसे सिर्फ बंद करने के लिए पड़ेगी। उनको बंद करने के लिए सिर्फ दबा देना काफी होता है, इसे खोलने के लिए मामूली सा खटका पर्याप्त है। वे खटके से बन्द होते हैं, यह खटके से खुलता है। अब मेरी जान में निश्चिन्त हुआ। पुराने ताले निकालकर सब जगह और खासतौर से तिजोरी को तो मैं यही ताला लगाऊँगा।"

हमने उन्हें समझाने का भरसक प्रयत्न किया, पर सब बेकार! लोग भले ही इसकी कीमत न समझें, पर हठ निश्चय नाना का एक दुर्लभ और अलौकिक गुण रहा है। "कला या कारीगरी की प्रशंसा करना तो हम लोगों के खून में ही नहीं है'—इत्यादि बड़बड़ाते हुए वे चले गये। घर पहुँचते ही उन्होंने अविलंब अपनी योजना को कार्यान्वित किया। यह अलग बात है कि हमारी आशंका के अनुसार कुछ ही दिनों में उनके यहाँ चोरी हुई। नाना तिलमिलाए तो बहुत, पर किया क्या जाय! उन्हीं के शब्दों में कहें तो, "इस देश के चोर भी ससुरे कलाद्रोही और स्वदेशी कारीगरों को प्रश्रय न देने वाले होते हैं।'

इसके बाद नाना ने तिजोरी को अपने सोने के कमरे में रखवाया और उसमें घंटी बजानेवाला अलार्म ताला लगवाया। हमसे कहने लगे, "अब स्वप्न में भी चोर मेरे हाथों से बच नहीं सकता है। चिटकनी का मातम भी नहीं पड़ेगा। जरा सा तार

म चाभी लगायगा कि घटी बजन लगेगी और घर भर के लाग इकट्ठे हो जायेंगे। फिर ता ससुर को सीधे हवालात के ही दशन हागे। इसके अलावा आजकल मरी नींद भी बहुत सतक हो गई है। य तो सोती रहती हैं कुभकण की तरह, पर मुझे तो अपन खर्राटे भी सुनाई दत रहत हैं। घटी की पहली आवाज के साथ ही मैं उठकर चोर की गदन पर सवार हा जाऊंगा।"

सब मिलाकर उनकी यह योजना हम भी बहुत पसद आयी। परतु जिस रोज यह स्वयनिदानी ताला लगाया गया उसी रोज आधी रात बीत हम घटी की आवाज जोर जोर से सुनायी दी। हम भागत हुए पहुचे और उनके कमरे मे जाकर देखत हैं तो हसी रोकना मुश्किल हो गया। नाना खुद ही दाहिने हाथ स तिजोरी के ताले का खोलने की कोशिश कर रहे थे और बाए हाथ से दाहिने हाथ का कसकर पकडकर 'चोर चोर' चिल्ला रहे थे।

इसके कई दिना बाद बलूची खानाबदोशा के एक गिरोह न शहर के बाहर पडाव डाला। य लाग अक्सर तरह तरह के चाकू छुरिया, कैंची ताले आदि वस्तुए बेचन का धधा करते हैं। बडू नाना को मालूम पडते ही उन्होंन इन लोगा के पास के तमाम ताले खरीद लिए और घर के सब पुरान तालो के स्थान पर इन नये तालो की प्रस्थापना कर दी। सयोग से उन्ही दिनो एक नाटक कपनी भी शहर म आयी हुई थी। हमारे नाना ठहर नाटक के गजब के शौकीन। पहले ही दिन सपरिविार नाटक देखन गये। खेल था 'सुभद्राहरण उफ चौयकम विपाक'। उन नये श्रेष्ठ ताला की वजह से अब चोरी वोरी का तो कोई डर रहा ही नही। ऐसा उन्ह दढ विश्वास था। इसलिए व निश्चित मन से वहा पहुचे। इतना ही नही, जाते समय कहन लगे, 'चोरो से कहो कि बेटे अब आकर करो चोरी! सारी अक्ल ठिकाने आ जायेगी। बापजनम ऐसे ताले कभी देखे भी नही हागे।'

नाटक सुबह पाच बजे समाप्त हुआ। आकर दखते है तो सब सदूको के ताले ज्या के त्यो मौजूद थे पर भीतर का माल गायब था। कीमती चीजो के अलावा घर के बतन भाडे और कपडे-लत्ते तक नदारद थे। पूछताछ करने पर मालूम हुआ कि बलूचियो की टोली भी रफूचक्कर हो चुकी थी। इस अनुमान के लिए तकशास्त्र पढने की आवश्यकता नही थी कि बलूचियो ने बेचारे सीधे-साधे नाना को उल्लू बना दिया था। पहले तो अपन सारे ताले उन्हने बेचे और फिर मौका देखकर अपनी चाभिया लगाकर माल लेकर चपत हो गये।

गनीमत यह हुई कि उस रोज नाना की पत्नी पति के मना करने के बावजूद अपने सारे गहने पहन कर नाटक देखने गयी थी, इसलिये गहने बच गये। नाना पत्नी की आभूषणप्रियता की सदा आलोचना करते रहते थे। अब श्रीमतीजी को मौका मिल गया। अब वे उठते उठते नाना को ताना सुनाती रहती हैं कि उनके असख्य तालो की मोर्चेबदी की अपेक्षा आखिर उनका गहनो का शौक ही घर की सपत्ति की रक्षा करने म काम आया।

बेचारे वृद्ध नाना ! जवाब भी क्या देते ! उनके मुह पर तो जैसे उन्ही के सग्रहालय का सबसे मजबूत ताला लग गया था।

3 होली

हमारे सिद्धांतवादी पूर्वजों ने हमारे लिए जो अनेक रस्मोरिवाज बनाये थे उनमें होली धुलैंडी के त्योहार और उन्हें मनाने के तरीकों का स्थान बहुत ऊंचा है।

बाह्य दृष्टि से निरर्थक ही नहीं बल्कि अनुचित और अनीतिपूर्ण दिखाई देने वाली बातों में भी कितना सत्यांश छिपा रहता है इसकी गवेषणा करने का हमें कुछ दिनों से नया शौक लगा है। इसका सारा श्रेय प्रोफेसर अतीतप्रिय को है। ये प्रोफेसर साहब दो-तीन वर्ष पूर्व हमारे शहर में पधारे थे और लंबे चौड़े एवम सरस व्याख्यानों द्वारा लोगों को विश्वास दिला गये थे कि आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता में नया कुछ भी नहीं है। अग्निमीडे पुरोहितम आदि वेदमंत्रों की सहायता से उन्होंने सप्रमाण सिद्ध कर दिया था कि वेदकाल में रेलगाड़ियों का अस्तित्व था। इसी प्रकार तार टेलीफोन बिजली आदि सारे आधुनिक आविष्कार अत्यंत पुरातन हैं और प्राचीन भारतीयों को वे अवगत थे। इस संबंध में भी उन्होंने किसी के मन में कोई शंका नहीं छोड़ी थी। श्रोतागण उनके वक्तव्य से आनंद विभोर होकर तालियों की वर्षा करते। यह बात इस हद तक बढ़ी कि अंत होते होते तो उनका व्याख्यान स्पष्ट सुनाई भी नहीं देता था। फिर भी उनके व्याख्यानों पर से लोगों की श्रद्धा रत्तीमात्र भी कम नहीं हुई। अपने सिद्धांतों के लिए तार्किक आधार या अपनी अनूठी गवेषणाओं के लिए शास्त्रीय प्रमाण देने के झंझट में तो वे कभी नहीं पड़े, परंतु उनके आवेशमय भाषणों के मध्य सुनाई दे जाने वाले 'वेदकाल में कोट-पतलून ही नहीं, बूटों का भी अस्तित्व था' 'स्मृतियों में एनक और इस्तरी का उल्लेख पाया जाता है', 'अगस्त्य ऋषि ने सागरस में मिलाने के लिए सोडावाटर का कारखाना खोला था' इत्यादि महत्वपूर्ण और ऊंची आवाज में कहे गये वाक्य

को सुनकर श्रोतागण वक्ता की विद्वत्ता पर मुग्ध हो जाते थे।

अंत में उन्होंने जब यह स्थापित किया कि पूर्वकालीन ऋषिमुनि मद्यमांस का सेवन भी करते थे तब तो हमारे आनंद की सीमा न रही। हम आधुनिक सुधारवादियों को ओर तुच्छता और तिरस्कार की दृष्टि से देखने लगे। इन उन्मत्त सुधारकों को लगता है कि मद्यमांस की ईजाद उन्होंने ही की है। इन पामरों को इतना भी ज्ञान नहीं कि भोजन करते समय वशिष्ठ ऋषि पूरा का पूरा बछड़ा पार कर देते थे और सोमरस नामक विशुद्ध भारतीय ठर्रे का सेवन करके नालियों में लोट लगाने से देवराज इंद्र की प्रतिष्ठा रत्तीमात्र भी कम नहीं होती थी। इन कमअक्ल लोगों को मालूम नहीं कि उनके सारे आधुनिक आचार हमारे पूर्वजों ने पहले ही उच्छिष्ट कर दिये हैं।

इसके बाद तो शीघ्र ही शहर में एक शराब के ठेके की और एक कसाई की दूकान की स्थापना हुई। तब से लगा कर आज तक इन दोनों प्रतिष्ठानों की निरंतर प्रगति हो रही है और अपने पूर्वजों की परंपरा को आत्मसात करके बहुत से सनातन धर्माभिमानी लोग सुधारवादियों से भी कई कदम आगे बढ़ गये हैं। इससे सुधारकों की बड़ी हेठी हुई और कम-से-कम हमारे शहर में तो सुधारकों का नामोनिशान भी नहीं बचा। ताड़ीखाने के मालिक ने बीच में एक ऐसा प्रवाद फैलाया था कि उपरोक्त प्रोफेसर महोदय को घूस देकर उसीने मद्यमांस के प्रचार के लिए भेजा था। परंतु हम सबको विश्वास दिलाते हैं कि यह निरी अफवाह है, झूठा अभियोग है। हम जैसे कुछ गिने चुने लोगों ने यह बात फौरन ताड़ ली और इस मिथ्यावादी कलार का विरोध करने के लिए उसकी दूकान के ठीक सामने हमने एक विशुद्ध आर्य मधुशाला की स्थापना की। कहने की आवश्यकता नहीं कि इसकी भी आशातीत प्रगति हुई। इन सब बातों से सुज्ञ पाठकों की समझ में आ गया होगा कि सत्य की सदा जय होती है।

उपरोक्त प्रोफेसर साहब ने यह भी बताया था कि हमारे दूरदर्शी पूर्वजों ने भोजन-पूजन के समय रेशमी पीतांबर पहनने की प्रथा क्यों शुरू की। जाहिर है कि उन्हें रेशम में विद्युत का निवास होने की बात मालूम थी। इससे पहले रेशमी वस्त्रों में छिपी रहने वाली बिजली की बात हमने सुनी भी नहीं थी। व्याख्यान का हमारे मन पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि उसी रोज से हमने रेशमी पीतांबर पहनना छोड़ दिया। बल्कि यों कहिए कि पहनने की हमारी हिम्मत ही

नही हुई। न मालूम लाग बाधते समय या अटी धासते समय घषण स कब बिजली उत्पन्न हो जाय और हम भस्म कर दे। इस हालत म दशोपकार की हमारी अनेक याजनाए मन म ही रह जाती। वस अपन प्राणा की हम रत्ती भर भी परवाह नही है। परतु हमार चले जान से दश और जाति का कल्याण अधूरा रह जाय यह हम बिलकुल गवारा नही था।

तो इस प्रकार के दूरदर्शी और सिद्धातवादी पूवजा द्वारा निर्माण किया हुआ हाली धुनैडी का त्योहार अहतुक कैसे हो सकता है ? हमारी विनम्र राय म इसके मूल म चार प्रकार के हतु हो सकते हैं। पहला एतिहासिक, दूसरा सद्धातिक, तीसरा स्वास्थ्यसबद्ध और चौथा नतिक। हमारा अतीत का रहन-सहन कितना प्रबुद्ध और वैज्ञानिक था, यह सिद्ध करने का प्रयत्न ऐतिहासिक प्रयोजन के अतगत आता है। यारप क लोग अभी कुछ शताब्दियो पहले तक नगे घूमत थे यह बात तो हमारी कई सास्कृतिक पत्रिकाआ ने निर्विवाद रूप स सिद्ध कर दी है। नगेपन मे तो आज भी कोई विशेष फक नही पडा है, सिफ अब वे तरह-तरह के रग और लेप तैयार कर शरीर के विभिन्न भागा पर चुपडन लगे हैं। कृत्रिम रग बनाकर उ ह शरीर पर चुपडने की क्रिया, कुछ भी कहिए, पर है आधुनिक और पाश्चात्य ! उसकी अपक्षा हमारी इस स्वणभूमि की निसगनिर्मित और सब जगह प्रचुर मात्रा मे बनी बनायी तयार मिल जाने वाली धूल और प्राकृतिक रूप से उपलब्ध गोबर का शरीर पर विलेपन करके घूमना क्या बुरा है ? सिफ इसी एक प्रथा से हमारी सस्कृति की प्राचीनता और श्रेष्ठता सिद्ध हो जाती है। इसके बाद पाश्चात्य विद्वान हमारी सास्कृतिक प्राचीनता के बारे मे चाहे जितनी शका-कुशका व्यक्त करते रह वे अपने आप अप्रामाणिक और मिथ्या सिद्ध हो जाते हैं।

दूसरा हेतु है सैद्धातिक ! सब चराचर वस्तुओ का अतिम विनियोग मृत्यु म ही होता है यह सिद्ध करने के लिए हमारे पूवजो को इससे अच्छा साधन कही ढूढे न मिलता। देखिए न, कितनी तकसगत बात है कि चैत्र की प्रतिपदा के दिन वष का आरभ हो फूल-तोरणो से और उसका अत हो धूल धुआ गोबर-कीचड, हाहल्ला और अत्ययात्रा के जुलूसो से। नासमझ लोग चाहे ता इससे कितना सबक सीख सकते हैं। मृत्यु और विनाश के अवश्यभावी होने के उदात्त तत्व को ~ ~ प्रकार का पर्दा न रखते हुए कुछ अभद्र और अशिव तरीके से ही सही

पर इतने स्पष्ट रूप म प्रस्थापित कर देने के लिए हम हमारे पूवजो के सदा ऋणी रहगे। हमारी अल्प बुद्धि को तो ऐसा भी लगता है कि इस हुडदग मे शामिल होन की स्त्रिया को भी छूट दी गयी होती तो इसस होने वाला लाभ कई गुना बढ गया होता।

तीसरा हेतु है आरोग्य विपयक ! उस जमाने म आज की तरह म्युनिसिपल कमेटिया तो थीं नही। वपभर म एकत्रित होने वाली गदगी को सामुदायिक प्रयत्नो से ही उलीचना जरूरी होता था। इन उपाया मे धुलेंडी का त्योहार अत्यत लोकप्रिय, सवमाय और कायक्षम सिद्ध हुआ होगा। आज के भ्रमभ्रष्ट युग मे भी गदी नालिया और पूर धुलेंडी के दिन जितने साफ दिखाई देते हैं उतने और किसी दिन नही। अय प्रगतिशील देशा मे प्रयुक्त कृत्रिम उपायो की अपेक्षा यह कितना अच्छा तरीका है कि बिना किसी प्रकार का आईन-कानून बनाय और बिना कुछ खच किये इतना बडा काम केवल धार्मिकता के बल पर सरलता स हो जाता है। चारो ओर की गदगी अनायास ही नष्ट हो जान के उपरात इन दिना और भी कई वैज्ञानिक लाभ होते हैं। चारो ओर छोटी मोटी अनक होलिया जलने से दूषित हवा स्वच्छ हो जाती है। गला फाड फाड कर चिल्लाने से फेफडे मजबूत होते हैं और चारा ओर गोबर का विपुल छिडकाव होन के कारण लोगो का स्वास्थ्य बढता है। इन बातो को तो बडे-बडे डाक्टर भी स्वीकार करेंगे। हमारे पूवजो को शरीरविज्ञान और आरोग्यशास्त्र का कितना सूक्ष्म ज्ञान था यह बात इन रिवाजा का निरीक्षण करने वाले किसी भी समझदार व्यक्ति की समझ म आ सकती है। जिसे ऐसा दिखाई नही देता वह मनुष्य या तो नासमझ होना चाहिए या फिर उसकी निरीक्षण शक्ति अति सूक्ष्म नही होनी चाहिये।

अब रहा नतिक हेतु ! पाश्चात्य विज्ञान म ऐसा एक नियम है कि किसी भी क्रिया के साथ उसकी प्रतिक्रिया भी जुडी रहती है। विपरीत दिशा म होने वाली यह प्रतिक्रिया मूल क्रिया के जसी ही बलवती होती है। यह नियम यहा भी चरिताथ होता है। कोई मनुष्य यदि हमेशा ही सभ्यतापूण वर्ताव करता रहे, तो उसे कभी न कभी असभ्य व्यवहार करने की इच्छा अवश्य होगी। उदाहरणाथ द्रौपदी जसी सतीसाध्वी को भी जो, केवल पाच पतिया के प्रति एकनिष्ठ रही थी, कण के प्रति आकषण उत्पन्न हुआ था। इसका एकमात्र कारण था प्रतिक्रिया

अथवा खुजाकर खेलने के मौके का अभाव। इसी नियमानुसार हम यदि हमेशा शरीर को स्वच्छ और उजले कपड़े आदि से सुवासित रखने के आदी हों तो कभी न कभी हमें नाली में नाक रगड़ने की इच्छा भी हो सकती है। पाश्चात्य की दयादजी हमारे देश के बहुत से सुधारक भी हाथी जुलती का उपहास करके सदा साफ सुथरे रहने का प्रयत्न करते हैं। लेकिन फिर नववर्ष का स्वागत करते समय नशे में धुत होकर नालियों में नाक नहीं रगड़ते हैं या नहीं? इसी प्रकार हम यदि सदा सभ्य शिष्ट भाषा में संभाषण करते रहें तो कभी न कभी हम किसी अभद्र बातों का प्रयोग करने की भी इच्छा होगी ही। हम यदि हमेशा ही ब्रह्मचारी बने रहें तो द्रौपदी के प्रति आसक्ति की तरह हमारे मन में भी हमारे पुराने मित्र श्री गजराज नवबन्धु की सवारी करने की इच्छा होगी ही। इन सब बातों का विवेचन हुए यही प्रमाणित होता है कि जिन जिन अशिव और वीभत्स बातों का प्रतिक्रिया के रूप में होना अवश्यंभावी है उन्हें यदि हम स्वेच्छा से स्वीकार कर लें तो अतिरिक्त भाप को निकलने का मौका मिल जायेगा और स्फोट कभी नहीं होगा। इसके अलावा आदत के रूप में ये बातें स्थापित हो जाने पर ये क्रिया का रूप न लेंगी और फिर इनकी प्रतिक्रिया रूप सभ्य संभाषण और सुसभ्य बर्ताव भी हमारे हाथों होता रहेगा। साल में तीन चार दिन हम यदि स्वेच्छा से बदन में गोबर, कीचड़ और कोलतार पोत कर शहर भर के धूरों में लोट लगाते रहें, अभिनन्दन मित्रों और निकट के सबंधियों को अश्लील गालियाँ देते रहें, गधों पर उनको मुँह कर बैठा कर जुलूस निकालते रहें और भयावह हुड़दंग मचा कर होहल्ले से आसमान सर पर उठाते रहें तो शीघ्र ही इन बातों से ऊब कर हमारे मन में प्रतिक्रिया उत्पन्न होगी और फिर वर्ष के बचे हुए दिनों में भूल कर भी हमारे हाथों असभ्य बर्ताव होने की संभावना नहीं रहेगी। अन्य हमारा ही उदाहरण ले सकते हैं। होली धुरड्डी के त्यौहार को बचपन से ही निस्सीम भक्तिभाव से पालन करने के कारण आज तक हमारे मुँह से दस पाँच चुनींदा गालियों को छोड़ कर और कोई अश्लील शब्द नहीं निकला।

भारत के अन्य स्थानों की तरह हमारे शहर में भी लोगों के मन में होलिकोत्सव और धूलिकोत्सव के प्रति नितांत पूज्यभाव है। प्रतिवर्ष ये त्यौहार बड़ी धूमधाम से मनाए जाते हैं। महीने भर पहले से ही छोटे बच्चों को उदात्त श्रृंगारिक रसिया गाने की और विशुद्ध अभिधार्थ गालियाँ बकने की तालीम दी

जाती है। इसी प्रकार गोबर के गोलों की अचूक निशानेबाजी, हुडदंग के विभिन्न शास्त्रोक्त प्रकार, नालियों का पानी गुब्बारों में भरकर दूर तक फेंकने की कला, अश्लील शब्दों के छाप बना कर उन्हें लोगों की पीठ पर जड़ने का कौशल इत्यादि बातों की तालीम बड़े मनोयोग से दी जाती है। दुर्गापूजा के उत्सव में जिस प्रकार लड़कों से कवायद करवायी जाती है उसी प्रकार होली के दिनों में भी एक पंक्ति में पांच पांच लड़कों को खड़ा करके मुखिया के सीटी बजाते ही एक साथ अभद्र शब्दों का तोपखाना दागने की तालीम दी जाती है।

परंपरा से इस मुहीम में हमारे पक्ष के नेता होते हैं हमारे पुराने मित्र बंडू नाना और विपक्षियों के अग्रणी होते हैं हमारे दूसरे मित्र पांडू तात्या। परंतु नाना के जैसा कठोर अनुशासनप्रिय नेता विरोधी पक्ष में न होने के कारण हमारा पक्ष सदा बाजी मार ले जाता है। उपरोक्त कवायद में कुछ लड़के तैयार हो जाने पर उनकी नियुक्ति विभिन्न कामों पर की जाती है। कुछ चतुर लोगों को गोबर इकट्ठा करने का काम सौंपा जाता है। इन लोगों की टुकड़ियां गली गली घूम कर हफ्तों का सड़ा हुआ गोबर एकत्र करके उसकी प्रचंड राशि जमा कर लेती हैं। कुछ लोग मवेशियों के पीछे पीछे घूमकर गोबर इकट्ठा करते रहते हैं जबकि कुछ अति उत्साही लोग गाय भैंसों को डंडों से पीट पीट कर राजस्व वसूल करने से भी नहीं चूकते। इस प्रकार गोबर का पर्याप्त संग्रह हो जाने के बाद उस पर पहरा देने के लिए एक पहरेदार की नियुक्ति होती है और बाकी के लोग गोबर के छोटे-छोटे गोले बनाकर उनके बीच में कौशल से कंकड़ पत्थर भरने के महत्वपूर्ण कार्य में जुट जाते हैं।

इस प्रकार सेना का तोपखाना और पैदल दस्ते सज्जित हो जाते हैं। कसर रह जाती है सिर्फ घुड़सवार फौज की। इसके लिए कुम्हारों के यहां से गधे मांग मांगकर एक पलटन तैयार की जाती है। हमारे धर्म की यह एक विशेषता है कि उसमें प्रायः सभी जानवरों को समय समय पर महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। स्वयं श्री विष्णु भगवान ने मत्स्य, कच्छ, वराह आदि रूप धारण कर के इन प्राणियों की श्रेष्ठता प्रस्थापित की है। नंदी की नियुक्ति भगवान शिवशंकर के अनन्य अनुचर के रूप में है। इसी प्रकार ऋषिपंचमी के दिन बैलों की और दशहरे के दिन घोड़ों की पूजा करने का विधान है। गोमाता की पवित्रता पर तो पूरे हिंदू धर्म की बुनियाद टिकी हुई है। वानरों की प्रतिष्ठा के लिए हनुमान जयंती

और सिंहों के समाधान के लिए नृसिंह जयंती के त्योहार मनाए जाते हैं। हाथी को तो शिकायत का बिलकुल मौका नहीं दिया गया। उसका तो शिरच्छेद करके उसकी स्थापना स्वयं विघ्नहर्ता गणेशजी के धड़ पर की गयी है और उनका वजन ढोने के लिए परम चपल, सर्वव्यापी और महाबुद्धिमान प्राणी मूषकराज की नियुक्ति की गयी है। इस उपकार का ऋण चुकाने के लिए चूहे आजकल कितने प्रयत्नशील रहते हैं इसका अनुभव तो प्लेग का प्रकोप होने वाले सभी क्षेत्रों को है। अहसान फरामोश मनुष्य मूषक को प्लेग के आगमन की पूर्व सूचना देने वाला परोपकारी प्राणी मानने के बजाय प्लेग का प्रवर्तक समझने लगे, तो इसे उनकी कृतघ्नता और धर्मभ्रष्टता के सिवा और क्या कहा जा सकता है?

इस प्रकार सब प्राणियों का महत्व सिद्ध हो जाने पर बेचारे गदर्भ को ही क्या वंचित रखा जाय। उसके हिस्से में तो ले देकर धुलैंडी का एक दिन आता है और वह इसी में खुश हो लेता है। अतः पर्याप्त संख्या में लबकर्णों की पलटन एकत्रित हो जाने पर कुछ लोगों को उन पर उलटे मुंह बैठने का अभ्यास कराया जाता है। इन चमूपतियों को कवच के स्थान पर फटे हुए चिथड़ों की धज्जियां और मुकुट के बजाय फटे हुए जूतों की माला पहनाई जाती है। बीच-बीच में शोभा के लिए कुछ लोगों को अर्थियों पर बांध कर खड़ा कर दिया जाता है। मृत्यु का यह उपहास हमारे मन से मृत्यु का भय दूर करने में बहुत सहायक सिद्ध होता है। इस प्रकार पूरे आयोजन के साथ बड़ू नाना के नेतृत्व में हमारा डेढ़-दो सौ हुड़दंगियों का जुलूस शहर के राजमार्गों से कूच करता हुआ गुजरता है। ऐसे मौकों पर यदि भूले भटके भी कोई खानदानी स्त्री खिड़की खोलकर बाहर झांकने की धृष्टता करे तो उसे अवाच्य गालियों की वर्षा द्वारा मर्यादाशीलता का ऐसा सबक सिखाया जाता है कि वह जिंदगी भर याद रखे। आर्यनारी की मर्यादा को हमने आज तक इन्हीं उपायों से बांध कर अक्षुण्ण रखा है।

इस प्रकार यह जुलूस राजमार्ग से आगे बढ़ता रहता है। हर गली और हर मोड़ पर छोटी मोटी स्थानीय मंडलियां उसमें आकर मिलती रहती हैं। आखिर उसकी संख्या पांच-सात सौ तक पहुंच जाती है। चौक में पहुंचने पर हम चतुरंग-वाहिनी का स्वागत करने के लिए पाड़ू तात्या की सेना सदल बल तैयार रहती है। दोनों सेनाओं की मुठभेड़ होते ही जो हुड़दंग मचता है उसका वर्णन करने में यह पामर लेखनी असमर्थ है। 'युद्धस्य वार्ता रम्या' से लगाकर शक्य दहमो

पृथक पृथक' तत सारे महाभारत की पुनरावत्ति होती है और हृदय वीर एव भक्ति रस स गद्‌गद् हो उठता है। पहली मौखिक सलामी समाप्त होते ही दोनो सनाओ की ओर से प्रतिपक्ष पर कीचड मिश्रित नालो के पानी का अभिषेक और गोवर स अवगुठित पत्थरो की वर्षा शुरू होती है। यह अलग बात है कि इन पत्थरो की बरसात कभी कभी ठठरियो पर बधे हुए सूरमाओ की प्रत्यक्ष मुरदा बनने की नौबत आ जाती है। सात्या का पक्ष कुछ दुबल होने के और कवायद मे उतना पारगत न होने के कारण अत म उसकी पराजय होती ह जिसके फलस्वरूप हमारी वाहिनी विभिन्न प्रकार की अभिनव गाली गलौज के रूप मे विजयदुदुभी बजाने लगती है।

इस मुकाबले क लिए जिस प्रकार हमे महीने भर पहले से तयारी करनी पडती है उसी प्रकार होली के लिए काठ कबाड जमा करने के प्रयत्न भी कई दिन पहले से शुरू हो जाते हैं। मुहल्ले वालो के घर के लकडी के समान की टोह लेने के लिए हमारे जासूस रातदिन गश्त लगाते रहते हैं और मौका देखते ही सामान पार कर देत हैं। इस सबध म किसी भी प्रकार के विधिनिषेध का पालन नही किया जाता। लकडी की बनी हुई हर वस्तु उपयोगी होती है। खिडकी दरवाजे, फाटक, कुरसी टेबल, चकले-बेलन, ओखली मूसल, गाडियो के पहिये, हल, रहट, चौकी, कटघरे, खूटिया—गरज यह कि लकडी से निर्मित कोई भी वस्तु इन स्वय-सेवको की नजर से नही बचती। नाना की इस सबध मे बडी कडी हिदायतें रहती हैं। एक बार तो किसी सन्यासी की खडाऊ और पडौस मे स किसी के शतरज के मोहरे भी (राजा, वजीर, ऊट, हाथी घोडे सहित) अग्नि मे स्वाहा कर दिए गये थे। इन दिनो फौजदारी, कानून की चोरी, मारपीट, दगा फसाद और मानहानि सबधी कलमे शायद मुअत्तल हो जाती हैं। इसलिए किसी प्रकार की दाद फरियाद का प्रश्न ही उपस्थित नही होता

अत म एक महत्व की बात का उल्लेख करके यह लेख समाप्त किया जाता है। ऊपर अश्लील शब्दो के ठप्पे बना कर उन्हें लोगो की पीठ पर छापने की लोकप्रिय क्रीडा का उल्लेख हुआ है। इससे यह प्रमाणित होता है कि हमार पूवज छपाई की कला से अवगत थे। इस हालत म उनका गौरवगान करने के बजाय मुद्रणकला के आविष्कार का श्रेय चीनियो या अग्रेजो को देना सरासर अन्याय की बात है।

4 गणेशचतुर्थी

[महाराष्ट्र म गणेशचतुर्थी का उतना ही महत्व है जितना बगाल मे दुर्गापूजा या उत्तर प्रदेश म दशहरे का है। चतुर्थी के दिन घर घर मे और सावजनिक स्थानो पर बडी धूमधाम से गणेशमूर्ति की स्थापना होती है। प्रतिमा के सामने विभिन्न प्रकार की सजावट और प्रकाश-योजना की जाती है। दस रोज तक मूर्ति के सामने गाने-बजाने और अन्य प्रकार के सास्कृतिक कायक्रम होते रहते हैं। अनत चतुदशी के रोज प्रतिमाओ का जुलूस निकाला जाता है और उन्हे नदी, समुद्र या अन्य किसी जलाशय म विसर्जित कर दिया जाता है। इसमे धार्मिकता का अश तो प्राचीन है। उत्सव के अश का आरभ लोकमान्य तिलक ने हिंदू सगठन की दृष्टि स किया था। —अनुवादक]

'गणेशचतुर्थी'! यह नाम सुनते ही मेरे रोम रोम मे आनद का सचार होने लगता है। इस नाम के साथ जुडी हुई अनेक आह्लादपूर्ण और मजेदार कल्पनाए बचपन स ही मेरे मन मे बद्धमूल हो गयी है। गणेशजी के सामने की वह सजावट वह रोशनी, वे प्रसाद के ढेर वे सलघोप वे कथा कीतन वे जुलूस वे तरह-तरह के कायक्रम—सभी मेरे मन मे इतने जीवित हो उठते हैं कि उनका स्मरण होते ही मन क्षण भर के लिए उन्ही म लीन हो जाता है।

गणेशजी बचपन स ही मेरे प्रिय देवता रहे है। पुराणो के अनुसार प्रत्येक युग म उनका दृश्यावतार भिन्न भिन्न प्रकार का रहा है। सतयुग म उनके दस हाथ थे और देह की काति थी दिव्य एव सुनहरी! इतने हाथो म क्या किया जाय यह समस्या सामने उनके सामने आयी होगी। इसलिए बाद के त्रेतायुग म उन्होने चार हाथ कर दिये और शरीर धारण किया श्वेत वण का। फिर इस विलासी वण स द्वापर म उन्होने रक्तवण धारण किया। हाथ भी दस म स दो कम होकर

चार रह गये। इसके बाद तो इस देश की जलवायु के नितांत अनुकूल कृष्णवर्ण से आकर्षित होकर कहो या आँखों में लगाने का काजल चेहरे पर क्यों नहीं मला जा सकता ऐसे किसी तर्क से प्रेरित होकर कहो, कलियुग में उन्होंने धूम्रवर्ण या स्पष्ट शब्दों में कहें तो काले रंग को स्वीकार कर लिया। हाथ भी अन्य मर्त्य मनुष्यों की तरह दो ही रह गये। हम अज्ञानी मनुष्यों की दुनिया में यदि किसी चीज पर काला रंग लग जाय तो उसे रासायनिक प्रक्रियाओं से दूर करने का प्रयत्न किया जाता है। परंतु देवताओं की दुनिया के सारे रिवाज निराले होते हैं।

यही वैचित्र्य गणेशजी के वाहन के संबंध में पाया जाता है। कृतयुग में उनका वाहन सिंह था और त्रेता में मयूर। परंतु इन वाहनों में चपलता का नितांत अभाव था। यह बात उस बुद्धिमान की तुरंत समझ में आ गयी। इसलिए द्वापर में उन्होंने मूषक पर जीन कसा। कलियुग में उनकी शास्त्रोक्त सवारी है अश्व। परंतु कुछ धर्ममार्तंडों ने अन्य सब बातों में परिवर्तन स्वीकार करके भी वाहन में तब्दीली करना उचित नहीं समझा। इसलिए गणेशजी आज भी अपने द्वापरयुग के पुराने वाहन पर आरूढ़ हैं।

इन बातों से हमारे सुधारवादी मित्र मितव्ययता और सादगी जैसे उदात्त गुणों का सबक सीख सकते हैं। गणेशजी ने उनकी तरह घुंघराली जुल्फों वाले विलायती बाल नहीं रखे, आँखों पर ऐनक नहीं लगायी या बूट पतलून नहीं पहने। उनका बाहर निकला हुआ एक दाँत सिगार के जैसा दिखाई अवश्य देता है, पर वास्तव में उन्होंने सिगार सिगरेट की छूत से कभी अपने मुख को अपावन नहीं किया। शाम को दो घोड़ों की बग्घी में बैठ कर वे कभी घूमने भी नहीं निकले। कभी-कभी मूषक पर सवार होकर गश्त लगाते हुए अवश्य देखे जाते हैं। बाह्य सौंदर्य और शृंगार की नितांत महत्वहीनता प्रमाणित करने के लिए ही उन्होंने हाथी जैसे भद्दे गावड प्राणी का सिर अपने कंधों पर लगा रखा है और उनके उदर का विस्तार भी कुछ कम नहीं है। सिर्फ भक्तों को सुबुद्धि देने के हेतु से ही विघ्नहर्ता ने यह सारा परिश्रम किया है। इस विचार के मन में आते ही उनके प्रति भक्तिभाव से हमारा मन सराबोर हो उठता है।

देशकाल के अनुरूप साधनों का प्रयोग करने का गुण भी गणेशजी में प्रचुरता से दिखाई देता है। सिंह जब उनका वाहन था तब उसे काबू में रखने के लिए उन्होंने दस हाथ धारण किये परंतु उस स्थान पर चूहे की नियुक्ति होते ही वे दो

हाथो से ही काम चलाने लगे। चूहे पर कोई बिल्ली न झपट पडे इस ख्याल से सुरक्षा के लिए उन्होने चेहरे पर सूड लगायी। किंतु इन सब बातो की अपेक्षा कृष्णवर्ण और अश्व वाहन को स्वीकार करने म ही उनका चातुर्य अधिक दिखाई देता है। कलियुग के नास्तिक लोग गौरवर्ण के साथ ऐसी उबड-खाबड देह देख कर उनका उपहास करेंगे और वक्रतुड धूम्रवर्ण लबोदर आदि सम्मानसूचक विशेषणो का प्रयोग करने के बजाय दुमुख, कलूटा, पटू इत्यादि प्राकृतिक शब्दो का प्रयोग करने लगेंगे इस आशका से उन्होने स्वेच्छा से कृष्णवर्ण स्वीकार कर लिया। इसकी भला कोई क्या खाकर खिल्ली उडायेगा। सूरदास की कारी कमरी चढे न दूजो रग। इसी प्रकार प्लेग की महामारी आते ही अपने वाहन का बडी सख्या म सहार होकर पैदल चलने की नौबत आ सकती है यह सोचकर उन्होने युग भर की कठोर सेवा के बाद मूषक को इस जिम्मेदारी से मुक्त कर दिया और सवारी के रूप मे घोडे की नियुक्ति करना उचित समझा। गणेशजी की यह स्पष्ट मर्जी होने के बावजूद हमारे धर्माभिमानी लोगो ने उनकी सवारी को द्वापरयुगीन रूप मे ही कायम रखा है यह बडे खेद की बात है। कलियुग मे जिस प्रकार अग्निहोत्र, युवासन्यास इत्यादि वर्जित हैं उसी प्रकार ताम्रवर्ण गजानन भी निषिद्ध हैं। एक तरह से यह उचित भी है। इस देश म और किसी वर्ण के देवता की अपेक्षा कृष्णवर्णीय देवता की उपासना करने से ही सिद्धि की आशा अधिक हो सकती है।

शारीरिक अवयवो और वाहनो की योजना म इतना चातुर्य दिखाई देने पर भी गणेशजी की एक कमी आखो मे खटकती है। परतु जरा गहराई से विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यह त्रुटि नही बल्कि उसका आभासमात्र है। सवाल उठता है कि भक्तो के अपराध पचात पचात पेट बडा होगा ही यह मालूम होने पर भी गणेशजी ने चूहे जैसे क्षुद्र प्राणी पर आसन क्या जमाया। सुधारक लोग यह प्रश्न बडे अभिमान से पूछते हैं। उन्हे यह मालूम नही कि बहुत दिन हुए एक बार गणेशजी को चूहे पर से कूदते हुए देखकर चद्रमा ने खिलखिला कर उनका उपहास किया था और गणेशजी ने उसे शाप दिया था। चद्र उस शाप के परिणाम को अब तक भुगत रहा है। गणेश चतुर्थी के दिन कोई उसका मुह भी नही देख सकता। हमारे सुधारवादी मित्र यदि समय रहते नही समझे तो किसी रोज उसी प्रसग की पुनरावृत्ति हो सकती है और हमारे यह प्रबल-पराक्रमी

एकदंत देवता दांत निपोरने वालों में सारे दांत तोड सकते हैं ऐसा हमें दृढ विश्वास है। परंतु ऐसा होने से पहले हम अपनी अल्प बुद्धि के अनुसार इस विरोधाभास का निराकरण करने का प्रयत्न करने हैं। आशा है वह सबको मान्य होगा और मूषक की योग्यता के संबंध में प्रश्न पूछा जाना हमेशा के लिए बंद हो जायेगा।

बात दरअसल यह है कि चूहों में भी मनुष्यों की तरह अनेक जाति-उपजातियां पाई जाती हैं। उनमें से कुछ का यहां उल्लेख किया जाता है। बहुत दिन पहले चूहों की एक विराट सभा में बिल्ली के गले में घंटी बांधने का प्रस्ताव सर्वानुमत से पारित हुआ था। "घंटी बांधेगा कौन ?" इस गौण प्रश्न को लेकर बात खटाई में पड गयी और बिल्ली मौसी की गर्जनाएं आज भी अबाधित रूप से सुनाई देती रहती हैं, यह अलग बात है। इस सभा में सम्मिलित होने वाले चूहे वाचाल जाति के थे। उनकी तुलना आजकल के सिर्फ नारेबाजी के बलबूते पर सुधार चाहने वाले बाजारू राजनीतिज्ञों से की जा सकती है।

बच्चों की कहानियों में वर्णित राजा की भी चिंदी वाले मूषकों की गणना दूसरी जाति में होती है। इनकी तुलना उन कर्मठ राजनीतिज्ञों से हो सकती है जो आवश्यकता पडने पर जेल जाने से भी नहीं डरते। इनका नैतिक धैर्य इतना प्रबल होता है कि राजा यदि क्रोध में आकर उन्हें कारागृह (चूहेदानियों) में बंद कर दे तो भी वे डरते नहीं और अपनी चीख पुकार उसी प्रकार जारी रखते हैं। इस जाति में अनेक विशिष्ट मानसिक और नैतिक गुण दिखाई देते हैं। शरीरबल और क्षात्रतेज के लिए तो उनकी संसार भर में प्रसिद्धि है। इस जाति में अनेक उप-जातियां भी पाई जाती हैं। कुछ केवल कपडे कुतरने के विशेषज्ञ होते हैं जबकि कुछ नाज के मोटे मोटे बोरों की भी धज्जियां उडा सकते हैं। इससे भी आगे बढ़कर कुछ लकडी की वस्तुओं का बुरादा बनाने में प्रवीण होते हैं। परंतु इन सबमें श्रेष्ठ है जाल में फंसे हुए शेर की मुक्ति करने वाला जवांमर्द मूषक शिरोमणि ! वैसे प्राचीन ग्रंथों में इनसे भी अधिक शक्तिशाली जातियों का उल्लेख पाया जाता है। गणपति का वाहन बनने वाला मूषक इन्हीं में से किसी श्रेष्ठ जाति का प्रतिनिधि रहा होगा ऐसा हमारा अनुमान है।

इस जाति के पूर्वपुरुष की जन्मकथा इस प्रकार है। एक बार एक पहाड को तीव्र प्रसववेदना होने लगी। मनुष्यसृष्टि में गर्भधारण का दायित्व मात्र स्त्रियों

न समाना हुआ है, परन्तु अकाल सृष्टि में ऐसा कोई नियम नहीं होता। स्त्रियों की तरह कभी-कभी पहाड़ भी मनोरंजन के लिए गर्भधारण करते हैं। हमारी पुराणकथाओं में इसका उल्लेख कई बार हुआ है। तो पहाड़ की प्रसववेदना होने का समाचार सुनकर इर्द-गिर्द के लोग उमड़े। कुछ तो पूछने के लिए आने लगे। उनमें कुछ वैद्य भी थे। उन्होंने सुलभ प्रसूति के लिए औषधियां में भर हुए पात्र पहाड़ की कंदराओं में उंडेले परन्तु वेदना कम होने के बजाय बढ़ती ही गयी। इर्द-गिर्द की पहाड़ियों में से जो अनुभवी लगती थीं वे भी समीप आकर जिज्ञासु दृष्टि से परिणाम की राह देखने लगीं। सीने पर ज्वार छाए हुए वादलों की गर्जना के मिष से पहाड़ चीत्कार करने लगा। अब तो लोगों के मन में बड़ा कुतूहल उत्पन्न हुआ और विभिन्न देशों के वैज्ञानिक और स्वर्ग के देवता विमानों में बैठकर दूरबीनों से स्थिति का निरीक्षण करने लगे। इस गड़बड़ी में एक महीना बीत गया। अंत में जब पहाड़ के स्वास्थ्य के विषय में लोगों की उत्कंठा पराकाष्ठा को पहुंच गयी तब एक दिन पहाड़ के विवर में से एक चूहा कूद कर बाहर निकला और देखते-देखते पहाड़ की सारी वेदना का शमन हो गया। इससे पहाड़ को तो राहत मिली परन्तु तमाशा देखने के लिए गांठ से पैसे खर्च करके दूर दूर से आये हुए जिज्ञासुओं को बड़ी निराशा हुई। तमाशबीनों की अपेक्षा थी कि इतने बड़े पहाड़ की होने वाली संतान उसके सर्वथा अनुरूप यानी कम से कम कोई पहाड़, कोई शिखर या गये बीते किसी टीले के आकार की तो अवश्य होगी। परन्तु यहां तो अक्षरशः खोदा पहाड़ और निकला चूहा। लोगों को निराशा अवश्य हुई परन्तु पहाड़ का यह सुपुत्र निकला बड़ा प्रतापी और बलवान। आगे चलकर गणेशजी जैसे विघ्नहर्ता देवता का वाहन बनने का सम्मान इसी को मिला। तभी से यह अपने स्वामी की नाक का बाल बना हुआ है। यह मूषक श्रेष्ठ पर्वतराज हिमालय के छोटे भाई का पुत्र होने के नाते गिरिजासुत गणेश का मामा लगा। इस निकट के रिश्ते को गणेशजी ने आज तक मर्यादापूर्वक निभाया है यह उनके लिए बड़े गौरव की बात है।

यह तो हुआ गणेशजी के वाहन का जन्मवृत्तान्त। खुद गणेशजी के जन्म की कथा इससे भी अधिक रोचक है। उपरोक्त कथा की तरह इसमें भी निर्जीव वस्तु या शरीर के किसी भी अंग में से सन्तानोत्पत्ति होती देखी जा सकती है। उस युग में आजकल की तरह गर्भधारण के संबंध में कोई निश्चित नियम नहीं था।

शकरजी की जटा मे से वीरभद्र और भस्म मे से भस्मासुर का निर्माण हुआ था। मधु और कैटभ नामक दैत्यो का जन्म श्रीविष्णु जब बेखबर सो रहे थे तब उनके कान मे से हुआ था और कमलासनस्थ ब्रह्माजी का प्रादुर्भाव उनकी नाभि मे से। ब्रह्माजीने भी यह परपरा जारी रखी। उनकी जम्हाई मे स सिंदुरासुर दैत्य उत्पन्न हुआ और चातुवर्ण्य की उत्पत्ति भी क्रमश उनके मुख, बाहु, जघा और चरणा म से मानी जाती है। इतना ही नहीं, आजन्म नैष्ठिक ब्रह्मचय का पालन करन वाले और ब्रह्मचारियो के परम आदश हनुमानजी को भी अपने पसीने से एक पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई थी। ऐसा उल्लेख पुराणो मे पाया जाता है। यदि इसी प्रकार सतानोत्पत्ति जम्हाई छीक, हिचकी, डकार इत्यादि से होती रहे तो इस पथ्वीतल पर खडे रहने की जगह मिलना भी मुश्किल हो जायेगा। आधुनिक युग म प्रचलित गर्भाधान के सुनिश्चित नियम परमेश्वर ने शायद इसी आशका से घबरा कर रचे होगे। *यह जो कुछ भी हुआ वह अच्छा ही हुआ,* वरना रोज सुबह उठकर जम्हाई लेते ही एक और दोपहर को भोजनोपरात डकार लेते ही दूसरा, यो दो पुत्र उत्पन्न होकर साधारण नागरिक के घर म सालभर मे सैकडो पालने हिलने लगते। ये सब पुत्र ही होते, क्योकि उपरोक्त पौराणिक कथाओ मे इन अवयवो म से जन्म लेने वाली सताना मे कही भी कन्या का उल्लेख नही है। आजकल समय का अदाज जिस प्रकार घडी के हिलने वाले लबक द्वारा किया जाता है उसी प्रकार वप के दिनो की गणना इन हिलने वाले पालनो की सख्या से की जाती।

हा तो हम वणन कर रहे थे गणेशजन्म की कथा का। एक बार भगवान् भूतनाथ भगवती गिरिजा से रुष्ट हो गये। पावती उन्हें प्रसन्न करने के लिए तपस्या करने लगी। इसके लिए उन्होने निबिड अरण्य मे किसी कदरा को चुना। एक दिन स्नान करते समय उन्होने अपने शरीर के मल से एक पुतला बनाया और 'मेरी आज्ञा के बिना किसी को अदर मत आने देना ऐसी कडी सूचना देकर उसे पहरा देने के लिए कदरा के द्वार पर बिठा दिया। इधर भगवान शकर को पावतीजी की याद आयी और उन्हे ढूढते हुए वे वन-वन मे भटकने लगे। घूमते-फिरते वे पावती की कदरा के पास आ पहुचे, परतु भीतर जाते समय द्वार के पहरेदार ने उन्हें रोका। उस बेचारे सद्यजात बालक का शिव पावती के रिश्ते की जानकारी भला कहा से होती। शिवजी ने क्रोधित होकर पति पत्नी के वियोग

की मुछ कल्पना इस नासमझ बालक को देने के इरादे से उसका सिर धड से अलग कर दिया। भीतर पहुचने पर पार्वती न पूछा—"भगवन्, द्वार पर मेरा कृतकपुत्र पहरा दे रहा था, फिर भी आप भीतर कैसे आ सके ?" शकरजी ने सब बात कह सुनाई। सुनते ही भगवती गिरिजा पुत्रवियोग मे विलाप करने लगी। शकरजी ने उन्हे बहुत समझाया। अपनी जटाए खीचकर या कान मरोड कर एक नही बीसियो पुत्र उत्पन्न कर देने की बात कही, पर पार्वती का समाधान नहीं हुआ। उन्हे तो अपना वही देहज पुत्र प्यारा था। शिवजी ज्यो-ज्यो सान्त्वना करते गये त्यो-त्यो पार्वती क मन मे अपने उस मलोत्पन्न पुत्र को दुलारने की इच्छा प्रबल होती गयी। आखिर शिवजी ने किसी हथिनी के सद्यजात शिशु का सिर काटकर बालक के कटे हुए धड पर जोड दिया और उसे जीवन प्रदान किया। इस प्रकार हाथी के सिर और मनुष्य के धड का जो द्वद्व समास तैयार हुआ वही आगे जाकर गजानन कहलाया।

शकरजी ने जो हाथी का सिर चिपकाया था उसमे पहले दोनो तरफ दो विशाल गजदत थे। इससे वह अत्यत प्रमाणबद्ध और सुदर दिखाई देता था। सवाल उठता है कि फिर आजकल एक ही दात क्या दिखाई देता है। क्या दात का दद होने के कारण विघ्नहर्ता ने अश्विनीकुमारो द्वारा एक दात जडमूल सहित उखडवा दिया था ? या ब्रह्माजी ने जब अपनी पुत्रिया बुद्धि और सिद्धि उन्हे ब्याह दी, तब पान का बीडा चबाने म अडचन न हो इसलिए एक दात को उन्होंने तिलाजलि दे दी ? नही, ऐसा कोई भी कारण नही था। इस एक दात का रहस्य बहुत थोडे लोगो को मालूम है, पर वह सक्षेप मे बताया जा सकता है। बात यह हुई थी कि शिवजी एक बार कही स एक अमृतफल लाये। गजानन और षडानन दोनो उसे मागने लगे। पर छोटा पुत्र अधिक प्यारा होने के कारण शिवजी ने वह अकेले गजानन को दिया। इससे क्रोधित होकर षडानन ने एक जोर का रहपट गणेशजी के मुह पर जड दिया जिससे उनका एक दात स्थान च्युत हो गया। तभी से उन्हें एकदत की सज्ञा प्राप्त हुई। गणेशजी ने बडे भाई साहब का आदर करते हुए इस कठोर दड को चुपचाप सह लिया। इससे उनका भ्रातृ प्रेम स्पष्ट दिखाई देता है।

गणेशजी को हरी दूब बहुत प्रिय होती है। इसका भी पौराणिक कारण है। दव की किसी समय उन्हे बहुत आवश्यकता प[illegible]ी थी। रावण ने जब तंतीस

करोड देवताओ को अपने यहां विभिन्न सेवाओ में जोत रखा था तब गजानन के हिस्से भी दशानन के गधे चराने का काम आया था। शांत चित्त से चिंतन मनन के लिए पशु चराने का काम बहुत अनुकूल है, शायद इसीलिए गणेश जी ने स्वेच्छा से यह काम स्वीकार कर लिया। इससे उनकी प्रतिभा और दूरदृष्टि ही प्रमाणित होती है। परंतु गधो को चराते समय उन्हें चारे की बडी कमी महसूस होने लगी। लवकर्णों का दल चारे के ढेर के ढेर साफ कर देता था और गणेशजी बेचारे काटते-काटते थक जाते थे। अतएव उन्होने अपने भक्तो के सामने इच्छा प्रकट की कि वे उन पर पूजाद्रव्य के रूप मे दूब चढाया करें। बस, तब से दूब की रसद विपुल मात्रा म उपलब्ध होने लगी। गणेशजी को घास छीलने से राहत मिल गयी और गधे भुखमरी से बच गये। इससे यही सिद्ध होता है कि विघ्नहर्ता का हृदय कितना दयालु और कोमल था।

इस समय तो गणेशजी चरवाहे के रूप में चुपचाप रावण की सेवा करते रहे परंतु एक अन्य मौके पर उन्होंने रावण को चकमा देकर मृत्युलोक के निवासियो पर बडा उपकार किया था। दशकंठ अपनी संगीतकला से भगवान भोलेनाथ को प्रसन्न करके वरदान के रूप म उनके आत्मलिंग को जब लंका लिये जा रहा था तब रास्ते म गणेशजी ने ही चरवाहे का रूप धारण करके बड़ी युक्ति से उसके हाथ से उसे जमीन पर रखा लिया था। पृथ्वी पर रखते ही शिवलिंग पाताल तक पहुच गया और रावण फिर उसे उखाड न सका। भारतभूमि इस प्रकार शिवलिंग से सदा के लिए वंचित होते-होते बच गयी। आगे चलकर उसकी गणना महादेवजी के द्वादश ज्योतिर्लिंगो म हुई। गोकर्ण महादेव माहात्म्य में यह कथा इतने विस्तार से वर्णित है कि यहा उसे फिर से दोहराने की आवश्यकता नही। इस प्रसंग से गणेशजी की त्वरित बुद्धि और शठम् प्रति शाठ्यम् की नीति स्पष्ट होती है।

गणेशजी पर हमारा स्नेह बाकी के बत्तीस करोड निन्यानबे लाख निन्यानबे हजार नौ सौ निन्यानवे देवताओ से अधिक है इसका मुख्य कारण है उनके शारीरिक व्यंग। उनका बचाखुचा एक दात भक्ता के हृदय मे करुणा के स्रोत बहाता रहता है। विस्तृत उदर की वजह से मूषक पर सवारी जमाने मे उन्हें होने वाले कष्ट को देखकर भी हमारा मन विचलित हो जाता है। अनंत चतुर्दशी के दिन गणेश प्रतिमा का विसर्जन करते समय हम सुबकने लगते हैं और रुलाई

से हमारा गला भर आता है उसका भी कारण यही है। वास्तव मे भय से नही बल्कि दया से प्रीति उत्पन्न होने वाली बात अक्षरश: सत्य है।

'गणेशचतुर्थी के दिन कोई तेरा मुह नही देखेगा, और देखेगा तो उस पर झूठा कलक लगेगा' ऐसा शाप गणेशजी ने चद्रमा को दिया था, इसका उल्लेख हम कर चुके हैं। उस दिन चद्रदर्शन न करने का दृढनिश्चय करके, शहर की छोटी बडी सभी गणेशमूर्तियो का दर्शन करने के हेतु हम घर से निकलते हैं। परतु मनुष्य स्वभाव भी कितना विचित्र है! निषिद्ध वस्तुओ की तरफ मानव मन की सदा से आसक्ति रही है। एकादशी के रोज दाल चावल खाने को मन बेहद ललचाता है और चतुर्मास मे प्याज की याद अवश्य आती है। हमे ये चीजें अधिक प्रिय न हो, तो भी। किसी चद्रमुखी परस्त्री से किसी न किसी बहाने बात करने की इच्छा भी बडी बलवती होती है। इसी प्रकार भाद्रपद की शुक्लचतुर्थी के दिन चद्र की ओर देखने की इच्छा (चोरी छिप ही सही) हमारे मन मे अवश्य होती है। वैसे देखा जाय तो इस रोज चद्र मे कोई वैशिष्ट्य नही होता। किसी भी महीने की शुद्धचतुर्थी के दिन जैसा ही वह उस रोज भी दिखाई देता है। परतु फिर भी उसकी ओर देखने का मोह टाले नही टलता। हम उसकी ओर अदबदा कर देखते हैं और दोष के भागी बनते हैं।

परतु हमारे शास्त्रो ने इस दोष के परिमार्जन का उपाय भी बताया है। उपाय बहुत सरल है। पराये घर पर तब तक पत्थर मारते रहिये जब तक गृहस्वामी आप को गालिया न देने लगे। बस, गालिया सुनते ही आपके दोष का निवारण हो जायेगा। एक बार गणेशचतुर्थी के दिन चद्रदर्शन का पातक (जान बूझकर) करने के बाद हमारी मित्रमडली ने पडोसियो के घर पर पत्थर फेंकना शुरू किया। परतु हाय रे दुर्भाग्य! घटो तक पथराव करने पर भी कोई हमे गाली देने को तैयार नही हुआ। उस समय हमारे कान गालियां सुनने को जितने उत्सुक थे, उतने साधारण दिनो मे कभी नही रहते। हमारा यह धर्मावेश बढता ही गया और अत मे उसकी परिणति यह हुई कि हमारे पत्थरो की बौछार से रास्ते से गुजरने वाले एक आदमी की आख फूटकर उसे शुक्राचार्य बनने की नौबत आयी, दूसरे एक वृद्ध के दो अवशिष्ट दातो मे से एक टूटकर वह एकदत हो गया और तीसरी किसी की खोपडी फटकर खून बहने लगा। तब कही जाकर हमे मा बहन की कर्णमधुर गालिया सुनाई दी। इस प्रकार हमारे पातक का

शास्त्रोक्त परिमार्जन करके हम घर लौटे। यह अलग बात है कि दूसरे दिन हमारे ऊपर दगा फसाद करने और गभीर चोट पहुचाने के जुर्म मे मुकद्दमे दायर होकर सबको एक एक दो दो साल की सजा हुई। धर्मपालन के मार्ग मे ऐसी छोटी मोटी बाधाए तो आती ही रहती हैं। हम पर सचमुच का अभियोग बेशक लगा, पर चद्रदर्शन के कारण लगने वाले किसी झूठे कलक से हम सदा के लिए मुक्ति मिल गई यह कुछ कम सतोष की बात नही थी।

गणेशचतुर्थी के उत्सव मे दिनोदिन वृद्धि हो रही है यह बडे आनद की बात है। अब तक मुसलमानो के मुहर्रम के त्योहार को देखकर हमे उनसे बडी ईर्ष्या होती थी और ऐसा लगता था कि हमे भी उनकी तरह उछल-कूद करने का मौका न जाने कब मिलेगा। अब यह कमी सपूर्णत दूर हो गई है। इतना ही नही, कई बातो मे तो हमने उनको मात भी दे दी है। उनका तमाशा तीन चार रोज मे समाप्त हो जाता है जब कि हमारा दस-बारह दिन तक और कभी-कभी तो पूरे पखवाडे तक चलता रहता है। वर्तमान व्यवस्था मे हमे सिर्फ दो बातो की कमी महसूस होती है। एक तो अब तक हमने नाल साहब की सवारी की तरह गणेशजी की मूर्ति का सिर पर उठाकर नाचने की प्रथा शुरू नही की है। यह सही है कि ऐसा करने मे उस विघ्नहर्त्ता के विशाल उदर के कारण कुछ कठिनाई होगी। पर हमे अधिक दिनो तक इस मामले म पीछे नही रहना चाहिए। लबोदर के विशाल पेट के कारण बढ़ने वाले वजन की टूटे हुए दात के गढे से क्षतिपूर्ति हो जाएगी ऐसा हमे दृढ विश्वास है। दूसरी कमी यह है कि अनत-चतुर्दशी के जुलूस म अब तक हमारे यहा बाघ के स्वाग दिखाई नही दिये। इसमे भी कुछ व्यावहारिक कठिनाइया अवश्य हैं। गणेशोत्सव के व्याख्यानो मे लबी-चौडी डीगे हाकने वाले हमारे धर्ममार्तंड हाथ भर लबी पूछ लगाकर और शरीर पर काली पीली धारिया खीचकर नाचने लगें और नकली गर्जना करने लगें, तो आरभ म लोग हसेंगे जरूर, पर अत में धार्मिक अनुष्ठान की प्रतिष्ठा बढेगी, इसमे कोई सदेह नही।

प्लेग की महामारी का प्रकोप अकसर गणेशोत्सव के दिनो मे होता ही है और उसका आरभ चूहो के मरने से। इससे प्रेरित होकर कुछ धर्मद्रोही सुधारक ऐसा प्रलाप करने लगे हैं कि प्लेग को मूषकवाहन का अवतार मानना चाहिए। इस अनुमान का आधार पूछा जाने पर वे कहते है कि प्लेग के आगमन से पहले

चूहे मरने लगते हैं इसलिए दोनों में कार्यकारण संबंध अवश्य होना चाहिए। परंतु यह उनका मिथ्या प्रलाप है। पहली बात तो यह कि गणेशजी जान-बूझकर भला अपने प्रिय वाहन का संहार क्यों करने लगे? और दूसरी बात यह कि गजानन जब जब भक्तों पर प्रसन्न होते हैं वे उन्हें शारीरिक और मानसिक उन्नति का दोहरा वरदान देते हैं। उदाहरणार्थ बंगाली लोगों का यदि पेट बड़ा होता है तो बुद्धि भी तीव्र होती है। पारसी लोगों की नाक की तरह उनकी बुद्धि भी तीक्ष्ण होती है। इन दोनों जातियों पर श्री गजानन का वरद हस्त है ऐसा निश्चित रूप से मानना चाहिए। मशुडि नामक ऋषि पर तो गणेशजी की इतनी कृपा हुई कि उन्होंने उसे अपनी तरह विशाल उदर देने के अलावा उसकी भृकुटि के बीचोबीच एक सूंड भी प्रदान की थी। इससे ऋषि को बड़ी राहत मिली। तपस्या करते समय परेशान करने वाले मक्खी-मच्छरों से उनकी रक्षा हो गई। प्लेग के रोगियों में गणेशकृपा का ऐसा कोई लक्षण दिखाई नहीं देता। प्लेग के रोगी की बुद्धि तीव्र होने के बजाय सुन्न हो जाती है और अधिकांश समय वह बेहोश पड़ा रहता है। इसी प्रकार शारीरिक वरदान का कोई चिन्ह भी उसमें दिखाई नहीं देता। एकाध गांठ वांठ निकल कर सूजन आ जाती है। परंतु रोगी को सूजन आती है बगल में जबकि गणेशजी को यह विकार पेट पर ही अधिक पसंद है। इसीलिए गणेशजी का इससे कोई संबंध नहीं हो सकता। इस सारे विवेचन से यह स्पष्ट प्रमाणित हो जाता है कि सुधारकों का यह अभियोग सर्वथा बेबुनियाद है।

हमारे परम प्रिय त्योहार का हमने अपनी अल्पबुद्धि के अनुसार विवेचन और समर्थन किया है। जिस बुद्धिदाता की कृपा से ये चार पंक्तियां घसीटने की योग्यता हम में आई उसका जयघोष करके यह लेख समाप्त किया जाता है

बोलो श्री गजानन महाराज की जय!

5 गवैये

ललित-कलाओ म सगीत को जो मूध"य स्थान प्राप्त होता है उसे अनुचित भला कौन कह सकता है। स्वरो के आरोह-अवरोह के बल पर मन की समस्त भावनात्मक स्थितियो का अनुभव कराने वाली इस कला की जितनी महिमा गाई जाए, थोडी है। सगीत अल्हड जवानो को गभीर बना सकता है तो गभीर बुजुर्गों को मदहोश करके नचा भी सकता है ! सुखी को दुखी और उदास को आनदमय बना सकता है। स्वार्थी मनुष्यो के मन को उदात्त कर उन्हे कुछ समय के लिए स्वहित का विस्मरण करवा सकता है। उसम श्रोताओ के अत करण को ही नही बल्कि समूचे वातावरण को उल्लसित करने की शक्ति है। मृदग के घनगभीर ताल पर किसी रचना के बोल झूम रहे हो तब सुनने वालो को विश्व सगीतमय प्रतीत होने लगता है। देशकाल के बधन अपने आप तिरोहित हो जाते हैं और विराट विश्व की भावना हृदय मे घर कर लेती है।

ऐसी इस महान कला मे वाद्यो का स्थान बडा महत्वपूण है। उनमे भी ततुवाद्यो का वणन भला कहा तक किया जाय ? इस ससार मे लोहे या ताबे के तार का प्रताप चारो दिशाओ मे व्याप्त है। परतु सितार या वीणा के तार के रूप मे उसका जितना प्रभाव है उतना एक बिजली के अपवाद को छोडकर अन्य किसी क्षेत्र मे दिखाई नही देता। परतु बिजली के तार की भी सीमाए हैं। टेलीग्राफ के जड तारो द्वारा प्राप्त होने वाले सदेश कभी तो हमारी निराशा को मार भगाते हैं तो कभी हमारे आनद का ही जडमूल से विध्वस कर देते हैं। विद्युत् के अन्य उपकरणो के तार एक झटके मे निर्जीव को सजीव और सजीव को निर्जीव बना सकते हैं। ऊची इमारतो के शिखरो पर लगे हुए तार खुद बिजली को धरती के गभ म समाधि दे देते हैं। परतु सगीत के तार ऐसा बेतुका व्यवहार कभी नही

करते। वे तो सदा आनंद की दिशा मे ही उन्मुख होते हैं और श्रोताओ को सदा सवगसुख पहुचाते हैं।

वीणा या सितार के तूबे का महत्व तारा की अपेक्षा रत्ती भर भी कम है ऐसा मानने का कोई कारण नही। तूबे लौकी की बेल पर लगते हैं और उनम दो मुख्य प्रभेद पाये जात हैं मीठे और कडवे। इसमे से मीठे का उपयोग तो सबको मालूम है। उसकी सब्जी सभी खाते हैं। कही-कही इसे कद्दू भी कहा जाता है। शादी-ब्याह की ज्योनारा म मेजबान की इज्जत अक्सर इसी सब्जी की बदौलत बचती है। अत्यत सस्त दामा बिकने वाली तरकारी होने के कारण यह प्रचुरमात्रा म बनाई जाती है और विशेष स्वादिष्ट न होने के कारण उसकी अधिक खपत भी नही होती। मिठाइया म जो स्थान लड्डू या जलेबी का है, सब्जियो मे वही कद्दू का समझिए। निमंत्रिता की सख्या कितनी ही क्यो न हो, तीन बुलाने पर तेरह आये हो, तो भी इसके खत्म होने की सभावना नही रहती। दावता मे रसगुल्ले या समोसे तो अक्सर खतम होते देखे जाते हैं, पर कद्दू की सब्जी चुक गई हो, ऐसा कभी सुनने म नही आया। दरिद्र या मक्खीचूस लोग इसके छिलको की चटनी तक बनात हैं। इनम से दूसरे वग के लोगो म तो यह खास तौर पर लोकप्रिय है।

इस सवगुणसपन्न सब्जी के मीठे फला का सबध जिस प्रकार खाद्य सामग्रिया के साथ है उसी प्रकार कडवे का सबध पानी के साथ है। कडवे तूबा को सुखाकर और भीतर स खोखला कर अनेक प्रकार के उपयोग म लाया जाता है। सन्यासियो के कमडल अकसर इन्ही के बने हुए होते हैं। परतु प्यास बुझाने का काम यह हमेशा ही करता हो, सो बात नही। तरना सीखते समय लोग मुह बद किए हुए दो तूबो को दोना ओर बाध लेते हैं। इस हालत म कोई नौसिखिया यदि डुबकिया खाने लगे तो ये जिद्दी तूबडे उस एक बूद भी पानी नही पीने देते। उनका यह भेदभाव बिलकुल सराहनीय नही है। शायद इसी वजह से, उन्हे नीचा दिखाने के लिए याचक लोग कभी कभी तूबडो का उपयोग भिक्षापात्र के रूप मे भी करते हैं।

परतु रसनेंद्रिय को कडवा लगने वाले इस कटु तूबे का सबसे अधिक उपयोग होता है सितार या तानपूरे के नाद को घुमाकर उसे कर्णेद्रिय के लिए मधुर बनाने के लिए। किसी किसी ततुवाद्य मे तो दो दो तीन तीन तूबे होते हैं। उनकी सख्या के हिसाब स वाद्य को अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त होती है और वह वीणा या

रुद्रवीणा कहलाता है। इस प्रकार के किसी दर्शनीय वाद्य को कंधे से टिकाए या गोद में लिए जब कोई गवैया गाने लगता है तो वह हूबहू कद्दू की बेल के जैसा दिखाई देता है। श्रोताओं के सागर को सुरक्षित ढंग से पार कर जाने में इन तूंबों से उसे पर्याप्त सहायता मिलती है इसमें कोई संदेह नहीं।

इस प्रकार के तूंबों से मंडित और तारों से कसे हुए वाद्य बहुत मधुर बजते हों, तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। उनके साथ मृदंग हुआ फिर तो श्रोताओं के लिए आत्मरक्षा की कहीं कोई गुंजाइश नहीं रहती। घूम कर बज उठने ही यह चमवाद्य बहुत जल्द श्रोताओं को भी अपने नाम के समान बधिरांग कर डालता है। उसके मधुर नाद को सुनकर शायद ही कोई श्रोता कच्ची मिट्टी के ढेले की तरह गल जाने से बचता हो।

हमारे पूज्य पिताजी को संगीत का बेहद शौक था। जिस कला में वे खुद पारंगत न हो सके उसे अपने पुत्र को सिखाने की उनकी हार्दिक इच्छा थी। नामी गवयों का गाना मेरे कानों में पड़ता रहे इस महत् विचार से वे हर महीने गाने की दो-तीन महफिलों का आयोजन घर पर करवाते रहते थे। गाने की समाप्ति से पहले कहीं नींद न आ जाय इसलिए मैं अपनी बुद्धि के अनुसार उपायों की योजना बनाया करता था। दोपहर को दो-तीन घंटे सो जाता और गाना शुरू होने से पहले आंखों में कपूर या सुरमा आंजता। परन्तु सब व्यर्थ! उस्तादजी सितार के तार और तबले का ताल मिलाते तब तक तो किसी न किसी तरह मैं आंखें खुली रख लेता था। परन्तु जैसे ही गवये ने आलाप लेने के लिए मुंह खोला कि मेरी आंखें बंद होने लगतीं। मेरे जैसा शांत और एकाग्रचित्त श्रोता शायद ही किसी गवये को नसीब हुआ हो। जब नींद पर किसी प्रकार काबू न रह सका तो थोड़ी थोड़ी देर बाद चिकोटी काट कर मुझे जाग्रत रखने के लिए मैं अपने किसी साथी को अपने साथ बठाने लगा। आरंभ में तो गवयों का जैसा विश्वास तबलची पर होता है कुछ उसी प्रकार का भरोसा मुझे भी मेरे साथी पर रहता था। परन्तु बाद में वह युक्ति नाकामयाब सिद्ध होने लगी। गवैये के सम्मोहनास्त्र का असर मेरी तरह मेरे साथी पर भी पड़ने लगा। कभी-कभी तो उसकी चिकोटी के बजाय उसके खर्राटों से मेरी आंख खुलने लगी और अंत में तो नौबत यहां तक पहुंची कि मुझे ही उसे चुटकी काट कर जगाना पड़ता।

इस प्रकार जागते रहने के सारे प्रयत्न असफल हो जाने पर मैंने नींद के मार्ग

में रुकावट डालना छोड दिया। तकदीर सिकंदर होने के नाते मेरे नीद के झोको की गणना गर्दन हिला कर दी जाने वाली दाद म होने लगी और मेरी सुषुप्तावस्था की ओर अक्सर किसी का ध्यान ही न जाता। कभी कभी तो काकतालीय न्याय से गाने के चरमोत्कर्ष बिंदु गवैये की दृष्टि और मेरी गर्दन के झोके का ऐसा अदभुत त्रिवेणीसगम होता कि बडे बडे काइया गवैये भी धोखा खा जाते। शीघ्र ही ऐसी प्रगाढ सगीतमर्मज्ञता के लिए मेरी प्रशसा होने लगी। नीद को सभाल कर यह यश मिलता हो, तो सौदा बुरा नही था। अधिकाश गवैये मेरे इस प्रामणिक ग्रीवाभग की दाद देने लगे और पिताजी के सामने तारीफ करने लगे कि इतनी छोटी उम्र में तालसुर की इतनी गहरी समझ अन्य किसी बालक म मिलना मुश्किल है। एक बार इस तरह निश्चित हो जाने पर मैं भरी महफिल मे पर्याप्त निद्रासुख का उपभोग करने लगा और कभी कभी तो जोर के खर्राटो द्वारा ताल के समान सुरो का भी भान प्रकट करने लगा।

परतु यह सुख अधिक दिनो तक नही टिका। मेरे ऊपर जबरदस्ती थोपी गई इस मर्मज्ञता का यह दुष्परिणाम निकला कि पिताजी ने मुझे गाना सिखाने के लिए एक मुसलमान उस्तादजी की नियुक्ति की। उनका नाम था उस्ताद टर्रखा। यथा नाम तथा गुण होने वाले इन हजरत ने शीघ्र ही मेरा जीना मुहाल कर दिया। इन दिनो तो गाना सुनते ही नीद आने की मेरी आदत इस हद तक बढ चुकी थी कि यदि मुझे कभी नीद न आने की शिकायत होती और वैद्यजी सारे उपचार करके थक जाते तो अत म वे पिताजी को गाने की महफिल का आयोजन करने की सलाह दे सकते थे। गवैये के मुह खोलते ही मुझे कुभकर्ण सी नीद आ जाती। परतु अफसोस ! वे दिन अब कहा ? अब तो उस्तादजी ने टर्रा-टर्रा कर नाको दम कर दिया था। फिर उनकी आवाज इतनी मधुर थी कि गाना शुरू होते ही मुहल्ले भर के कुम्हारो के गधे एकचित्त होकर पूर्ण एकाग्रता और शात चित्त स गायन सुनने लगते और कभी कभी तो अपने इस सहोदर बधु के सुर म सुर मिलाने लगते। इस सुरीली आवाज ने शीघ्र ही मेरी नीद का जडमूल से नाश कर दिया।

इस अलौकिक माधुर्य के अलावा उनकी आवाज का दूसरा गुण था कर्कशता। गाने म मामूली सी खटक लाने के लिए उन्ह भयानक झटको के पश्चात की ताड-मरोड करनी पडती थी। तान फेंकने के समय तो मानो पूरे

शरीर मे भूचाल आ जाता और फिर भी वह ऐसी मद गति से निकलती कि तान के बजाय सुरो की धडधडाती हुई मालगाडी मालूम देती। कई बार तो व तान को गले से निकालने के बदले हाथो से उसका अभिनय करते और सुरो को ऊपर चढाने के बजाय पूरे शरीर को आसन छोडकर फुटा ऊचा उठा लेते। उनकी अपनी तैयारी इतनी उच्च कोटि की होने के कारण मुझे सिखाते समय भी वे आतरिक और नैसर्गिक गुणो की अपेक्षा बाह्य और कृत्रिम साधनो की ही अधिक सहायता लेते। गाने म मूच्छना नामक एक चीज होती है। इसे साध्य करने के लिए वे मुझे मूर्च्छा आने तक पीटते रहते। आवाज मे खटक लाने के लिए मेरी चुटिया पकड कर सिर को जोर का झटका देते और तान की गति को तीव्र करने के लिए जाडो म भोर होते ही ठडे पानी का घडा सिर पर उडेल देते।

उस्तादजी के इन अघोरी उपायो की बदौलत शीघ्र ही मुझे तिजारी बुखार आने लगा। तिजारी चढने का और उस्तादजी के आने का समय प्राय एक ही होता। कभी उस्तादजी समय बदल देते तो हमारी तिजारी भी आगे पीछे हो जाती। आखिर मेरी बीमारी और उस्तादजी के आगमन के बीच का कार्यकारण सबध समझ मे आ जाने पर और उस्तादजी का न आना ही मेरे रोग की एकमात्र प्रभावकारी औषधि है यह मालूम हो जाने पर, पिताजी ने उनकी छुट्टी कर दी। उसके बाद शीघ्र ही मेरी तबीयत सुधरने लगी। वैद्यजी ने पिताजी को कडी हिदायत दी कि कुछ दिनो तक मेरे कानो मे किसी भी प्रकार के गाने-बजाने का एक सुर भी नही पडना चाहिए। इतना ही नही, सितार या तानपूरे के तूबे की कही याद न आ जाय इस डर से मैंने लौकी की सब्जी खाना भी कई दिना तक छोड दिया था।

गवैयो की महफिल मे अकसर ख्याल नामक चीज गाई जाती है। इसकी विशेषता यह है कि यह अत्यत सक्षिप्त होती है। कभी कभी तो पूरा गाना दो पक्तियो मे समाप्त हो जाता है। गवैये उन्ही दो पक्तियो को सैकडो बार दोहरा-दोहरा कर घटो तक घोटते रहते हैं। तीन पक्तिया हुइ तो विस्तार की परा-काष्ठा समझिये। यह सक्षिप्तता उनके रचयिताओ ने शायद गाने वालों के मस्तिष्क की सीमाओ को ध्यान मे रखकर निश्चित की होगी। 'ख्याल' शब्द का अर्थ 'विचार' या 'याद' भी होता है। इससे भी हमारे विचार की पुष्टि होती है और यह प्रमाणित होता है कि रचना छोटी होने के बावजूद भी गवैया की स्मृति

मे जब तक चारो ओर जीवन कटकाकीर्ण हो गया है और जीवित रहने के लिए सभी को जीवो जीवस्य जीवनम' के सिद्धात पर अमल करना पड रहा है तब तक एक गुणी दूसरे का इसी प्रकार उपहास करता रहे, तो इसमे बुराई की कोई बात नही।

4 महफिल म अपना गाना होने वाला हो तो हमेशा कुछ देर से जाना चाहिए। दूसरो को परेशान किए बिना अपना महत्व कभी नही बढता इस सिद्धात को गिरह म बाध रखना चाहिए।

5 महफिलो के सयोजको और निमत्रको के प्रति अत्यत बेरुखी और लापरवाही का बर्ताव करना चाहिए। उदाहरणार्थ किसी ने यमन कल्याण की फरमाइश की हो तो आप भैरवी का आरभ करें केदार की सूचना आए तो मध मल्हार छेड दें ख्याल का माहौल हो तो धितलाग तननन तोम का रेला बढायें और ठुमरी का मौका हो तो ध्रुपद को थाटें। कलाकारो को अक्सर मनमौजी माना जाता है। इस प्रवाद को जारी रखना प्रत्येक खानदानी गवैये का कर्तव्य है।

6 गाना आरभ करने से पहले घट डेढ घटे का समय वीणा या सितार के तार यमन म और तबले का ताल सही करने म बिताना चाहिए। तार कसने की क्रिया के साथ-साथ श्रोताओ की उत्कठा भी बढती जाती है। कभी कभी कसने अधिक कस हुए तार जो तरह वह भी टूट जाती है यह अलग बात है। समय नष्ट करके अपना महत्व रखने की इस तिकडम म एक और खतरा भी रहता है। गवैये को बहुत अधिक समय तक तानपूरे की खूटिया मरोडते या तबले पर थाप देते [illegible] श्रोताओ के मन मे भी कभी कभी उनके कान ऐंठन या गाल पर दो [illegible] जमा देने की इच्छा जगती हो उठती है। परतु ये सब असबद्ध और [illegible] बातें हैं। खानदानी गवैया को इनकी उपेक्षा करके अपने उसूलो के प्रति [illegible] रहना चाहिए।

7 हर अभिजात्य गवैये को [illegible] की कोशिश अवश्य करनी चाहिए। [illegible] और [illegible] दृष्टि से घूरते रहने [illegible] भी काम चल सकता है। यह [illegible] है। [illegible] है कि गाना [illegible] सकता है।

8 श्रोता या सयोजक आपकी तारीफ करें, उसमे पहले ही आत्मप्रशसा का आरभ कर देना चाहिए। अपनी कामयाबी के सच्चे झूठे लतीफे या चुटकुल सुनाने से यह सहज ही साध्य हो जाता है। अधिकाश पाश्चात्य विद्वानो की राय ह कि हममे आत्मसम्मान या आत्मगौरव होगा तो लोग हमारा सम्मान और गौरव करेंगे। यह बात अक्षरश सत्य है। हमारे यहा भी प्राचीन काल म महाकवियो द्वारा अपने काव्य या नाटक के आरभ मे अपनी और अपने ग्रथ की प्रशसा करने की प्रथा थी। इससे हमारे उपरोक्त कथन की पुष्टि होती है। बस तो आत्म श्लाघा की प्रवत्ति हमारे यहा के हर छोटे-बडे कलाकार को जन्मघुट्टी मे ही पिला दी जाती है। इसी कारण स उनके द्वारा सुनाए जाने वाले पद्य की अपेक्षा यह आत्मस्तुति का गद्य ही अधिक मनोरजक होता है।

9 आत्मस्तुति के साथ साथ अन्य गवयो की निंदा करत रहना भी उतना ही आवश्यक है। आत्मश्लाघा की कशीदाकारी अक्सर परनिंदा की पृष्ठभूमि पर ही खिलती है।

10 नाटको म गाने वाल लोकप्रिय गायको की सदा खिल्ली उडाते रहना चाहिए। यह मत भूलिये कि ये आपके प्रतिस्पर्धी और जन्मजात बैरी हैं। उनके तबले हारमोनियम ने ही आपके मृदग तानपूरे का पत्ता काटा है। उनके अथपूर्ण और भावमधुर पदो न ही आपके सैंया गुइया गायन को देशनिकाला दिया है। यह बडे महत्व की बात है। इसकी उपेक्षा करने पर आत्मनाश के सिवा कोई चारा नही रहेगा।

11 आवाज जन्मजात ही कर्कश हो, तब तो उत्तम बात है। यदि न हो, तो रेक रेंक कर और गले की नसो को तान तान कर उसे यथासभव कणकटु बनाना चाहिए। याद रहे, हमारी आवाज जितनी ही कणकर्कश होगी, उतनी ही हमारी सगीतपटुता की अधिक शोहरत होगी।

12 परतु इन सब नियमो की अपेक्षा अधिक महत्व का नियम यह है कि गात समय चेहरे का जितना हो सके उतना टेढा मेढा और भयानक बनाया जाय। आपका चेहरा जितना अधिक विद्रूप और भीषण दिखाई देगा उतनी ही आपके गाने की श्रेष्टता सिद्ध होगी। जिस प्रकार अधरे मे छोट स दीपक का प्रकाश भी अधिक मालूम दता है या सहारा के रेगिस्तान के बीचोबीच कोई रमणीय उद्यान हो तो वह अधिक मनोरम मालूम देता है उसी प्रकार भयावह मुखमुद्रा म म

मधुर गीत सुनाई देने पर उसकी प्रतिष्ठा भी दस गुनी बढ जायेगी। हमारे धूर्त पुराणकारो ने शायद इसीलिए श्रेष्ठ गायक देवर्षि नारद के घुटमुंड सिर पर सरो के पेड की तरह खडी हुई चुटिया चिपकाकर और बेचारे तुबरु को अश्व का मुख देकर जान बूझकर बदसूरत बना दिया है।

6 हजामत की नैतिक मीमासा

"जो रोज मरे उसके लिए भला कौन रोये" यह कहावत बहुत प्राचीन काल से प्रचलित है। इसका अथ समझने समय सिफ शब्दाथ से काम नही चलेगा, क्योकि आहार निद्रा की तरह प्रकृति ने मरने को नित्यकम नही बनाया। ससार के आरभ से लगाकर आज तक किसी को रोज मरने की अभिलाषा हुई हो ऐसा कोई उदाहरण सुनने मे नही आता। आत्महत्या करने वाले आदमी को एक बार मरने की उत्कट इच्छा अवश्य होती है। परतु वह यदि मरने के बाद पुनर्जीवित हो जाय तो दूसरी बार मरने की अपेक्षा ससार के समस्त कष्ट सकटो को झेलकर भी वह जीवित रहने का ही प्रयत्न करेगा। पाठको को इस विषय से सबद्ध ईसप नीति की कहानी याद होगी। अतएव इस कहावत का हम लाक्षणिक अथ लेना होगा। वास्तविकता के सदभ मे उपरोक्त कहावत का भावाथ केवल इतना है कि कोई भी दुखदाई घटना यदि रोज-रोज होने लगे, तो कालातर म उसमे होने वाला दुख कम हो जाता है। एक तो लगातार होते रहने के कारण हम उस दुख को सहन करने की आदत पड जाती है और दूसरे, आरभ म दुख की अभूतपूवता के कारण हम उसका जो डर रहता है वह नित्य परिचय के कारण शनै शनै नष्ट हो जाता है।

हमारे चारो ओर व्याप्त अनेकविध सुविधाओ के पीछे निश्चय ही एक लबा इतिहास छिपा होता है। उन्ह प्राप्त करने के लिए प्राचीन युग म हजारो लोगो को अनत कष्ट झेलने पडे होगे और सैकडो को प्राणो का बलिदान करना पडा होगा तब कही बीसियो पीढियो के बाद वे सफलता पा सकी होगी। बाद म अति-परिचय के कारण लोग उनके महत्व को भूल बठे। हजामत भी इसी प्रकार की अब महत्वहीन लगने वाली परतु अत्यत उपयुक्त और सस्कृति के विकास के साथ

क्रमश साध्य हान व ली कला है। नाई की सदूकची म मिलने वाली कैंची, उस्तरा, साबुन, शाशा आदि वस्तुआ म स प्रत्यक न मालूम कितनी पीढ़िया की गहन गवषणाआ का परिपाक ह। ये सारी वस्तुए जब एक साथ उपलब्ध होती हैं तब कही हजामत का आरभ हा पाता ह।

बाला की यह विशेषता है कि एक दिन की मोहलत मिली कि वे तुरत जड जमा लत ह। हम हर सप्ताह हजामत बनवात (या बनाते) हैं इसलिए बाल बढ जान पर हमारी कैसी दुदशा हो सकती है इसका हमे अन्दाज नही होता। परतु सौभाग्य स अशौच या दुर्भाग्य स सूतक पालन का मौका आ जाए तो हजामत की महत्ता दस-बारह दिना मे ही प्रगट हाने लगती ह। सच कहा जाय तो हजामत को चित्रकारी सगीत नाटय आदि कलाआ के बीच मूध य स्थान मिलना चाहिए। हाथ मे उस्तरा लेकर हमारे चेहरे को रक्तरजित कर डालने वाला नाई हाथ मे कूची लेकर रग भरन वाले चित्रकार स किस बात मे कम है ? इसी प्रकार साबुन चुपडकर चेहर को झाग म आवत्त करन और नाटक के पात्रो के चेहरो को रग पोतकर सजाने म कोई मौलिक अतर नही ह। चेहरे पर होने वाले जख्मो के कारण बिलबिलाने वाले लागा की कराहना ध्यान मे रखा जाए तो सगीत का प्रमशूकना स बिलकुल ही सबध नही है यह बात भी कोई कसम खाकर नही कह सकेगा। साराश यह कि हजामत म उपरोक्त तीना कलाओ का सुभग समिश्रण होन क कारण उसका स्थान उनस रत्तीमात्र भी नीचा नही माना जाना चाहिए।

इस कला का जिन लोगा म जितना अधिक प्रचार होता ह उन्ह उतना ही अधिक सुसस्कृत माना जाना है। पशुआ म हजामत का बिलकुल ही रिवाज नही होता। बकरे की दाढी आमरण उस्तरे क सस्कार स अछूती रहती है। पशुआ मे इस विषय मे नर मादा को लेकर भी कोई भेदभाव नही पाया जाता। बिलाव की तरह बिल्ली को भी मूछे हाती है जिन पर वह फुरसत के समय ताव देती रहती ह। इसमे उसके जन्मजात स्त्री-स्वभाव के कारण कोई बाधा खडी नही होती। मोर क सिर पर की कलगी नारदजी की चुटिया की तरह सदा खडी रहती ह और सिहो की अयाल पशु-नाइयो के अभाव म शाकुतल के सातवें अक म वर्णित वृद्ध ऋषि की जटा की तरह सदा उलझी रहती ह। इस हालत म यह मानी हुई बात ह कि सास्कृतिक दृष्टि स पशुआ का स्थान सबसे नीचे आता है। जगली लागा का स्थान पशुआ स सिर्फ एक श्रेणी ऊपर हाता ह। चाहे व औजार आसानी म

उपलब्ध न होने के कारण इनमें भी हजामत का प्रचार अत्यंत सीमित होता है।

पहली बार जब उस्तरे का आविष्कार होकर हजामत का आरंभ हुआ होगा तब पृथ्वी के असभ्य लोगों में बड़ी खलबली मची होगी। अमरीका की शोध से कोलंबस को या मुद्रणकला के आविष्कार से कैक्सटन को जितना आनंद हुआ था उतना ही इस कला के आविर्भाव से इन असभ्य लोगों को हुआ होगा। हर्षावेश में शायद उन्होंने नाइयों को बड़ी-बड़ी पदवियाँ देकर उनका गौरव भी किया होगा। खंडेराव महाराज के राज्यकाल में जिस प्रकार पहलवानों और नौटंकी वालों की खूब आवभगत होती थी उसी प्रकार उस युग में नाइयों का पलना भी बहुत महत्त्वपूर्ण रहा होगा। केवल शब्दार्थ से ही नहीं बल्कि लाक्षणिक अर्थ में भी पूरे समाज की चुटिया इन्हीं लोगों के हाथ में रही होगी। आज भी नाइयों में जो एक विशिष्ट प्रकार के वाक्‌चापल्य और गहरी धूर्तता के दर्शन होते हैं वे शायद इसी उत्कर्षावस्था के अवशेष हैं।

केशकर्तन कला का इस प्रकार समुचित विकास हो जाने के बाद भी कुछ दिनों तक लोगों को सारे के सारे बाल मुड़वाने में हिचकिचाहट हुई होगी। इसलिए आरंभ में उनमें केवल दाढ़ी मुड़वा कर सिर के बालों को कैंची से कतरने की प्रथा प्रारंभ हुई। पाश्चात्य देशों के लोग आज तक इसी अर्धसभ्य अवस्था में हैं। इससे आगे बढ़कर पूर्णावस्था को प्राप्त किया हमारे पड़ोसी चीनियों ने और हम भारतीय आर्यों ने। हमने बालों की प्राकृतिक बाढ़ के लिए गाय के खुर के जितनी जगह खोपड़ी के मध्य में निश्चित कर दी और इस मर्यादा के बाहर कदम रखने का प्रयत्न यदि एक भी बाल ने किया तो उस बलवाई का जड़मूल सहित नाश कर देने का शास्त्रों ने विधान बना दिया।

हजामत करवाने का अधिकार हमारे यहाँ के पुरुषों ने पाश्चात्य पुरुषों की तरह स्वार्थभावना से सिर्फ अपने लिए ही सुरक्षित नहीं रखा। पति की मृत्यु के कारण जिन्हें विशेषाधिकार प्राप्त हो चुका है उन विधवा स्त्रियों को भी इसमें सहभागी बनाया गया। बल्कि उन्हें यह अधिकार कुछ अधिक व्यापक रूप में मिला। पुरुषों के सिर पर तो फिर भी गोखुर के जितनी जगह पर शिखा रखने की पाबंदी थी। स्त्रियों को इस बंधन से सर्वथा मुक्त करके उनके सिर को तो पूर्णतः घुटाने के लिए स्वाधीन कर दिया गया। पुरुषों में यह अधिकार सिर्फ संन्यासियों को ही

प्राप्त है। लोग नाहक इलजाम लगाते हैं कि भारतीय समाज व्यवस्था में स्त्रियों को कोई अधिकार प्राप्त नहीं।

केशकर्तन का सभ्यता के साथ क्या संबंध है इस पर हमने गहराई से विचार किया। अब यह देखना है कि नैतिक दृष्टि से उसका क्या परिणाम होता है। दुर्भाग्य से नैतिकता के क्षेत्र में इसकी प्रतिक्रिया ठीक उलटी पाई जाती है। जिस दिन हम हजामत बनवाते हैं उस दिन मानो हम जवानी का फिर से अनुभव होता है, फिर उम्र हमारी कितनी ही क्यों न हो। उस दिन पूरे शरीर में एक विलक्षण उत्साह का संचार होता है। हमें सिर ऊंचा उठाकर और छाती फुला कर चलने की इच्छा होती है। रास्ते पर जाती हुई युवतियों से छेड़छाड़ करने की और घर के बड़े बुजुर्गों को ठेंगा दिखाने की प्रबल अभिलाषा होती है। धर्म और ईश्वर सब झूठी बकवास है यह प्रतिपादित करने का प्रबल आवेश भी इसी दिन उत्पन्न होता है। मूछों पर अकारण ताव देने में आवारागर्दी की कोई बात मालूम नहीं देती और संभाषण में गालियों का अनुपात अनायास बढ़ जाता है। टोपी का एक कान पर तिरछी किये बिना चैन नहीं पड़ता। इसी प्रकार और भी कई यौवनसुलभ चेष्टाएं इस दिन होती हैं।

परंतु दो-तीन दिन बीतते ही हमारा नूर बदलने लगता है। टोपी फिर एक बार क्षितिज के समांतर हो जाती है। 'तू' के बदले 'तुम' और 'तुम' के स्थान पर 'आप' का प्रयोग अपने आप होने लगता है। चलते समय कुछ झुककर और इधर-उधर आंखें लड़ाये बिना नाक की सीध में चलने की वृत्ति होती है। दार्शनिक विचारों की उत्पत्ति शुरू हो जाती है और "जगत का नियंत्रण करने वाली ईश्वर नामक कोई शक्ति हो भी सकती है" इत्यादि संदेह मन में उमड़ने लगते हैं। शीघ्र ही उनकी परिणति गोलमोल और मृदु मधुर भक्तिभाव में हो जाती है। लोगों के गुणों के प्रति आदर और दोषों के प्रति सहानुभूति से देखने की वृत्ति अंतःकरण में उत्पन्न होने लगती है।

परंतु इतने में हजामत बनवाने का दिन फिर नजदीक आने लगता है। इन अंतिम दिनों में तो हम अत्यधिक सदाचारी और आदर्शवादी हो उठते हैं। चेहरे पर गंभीरता छा जाती है। जबान पर प्राकृत के बजाय संस्कृत शब्दों की भरमार होने लगती है। अधिक हंसने में लाज आती है और रंगीन कपड़ा के बजाय श्वेत धारण करने की इच्छा होती है। ईश्वर पर तो इन दिनों असीम भक्ति हो

जाती है। यह सारा परिवर्तन सिर्फ सप्ताह भर में हो जाता है। इस अल्पकाल में किया हुआ सारा सदाचार हजामत बनवाते ही न जाने कहां विलीन हो जाता है और हम फिर से एक बार बीस साल के युवक की तरह अल्हड़ छिछोरे और बेलगाम हो उठते है। यदि हम यह कहें कि हर सप्ताह हम अपनी पूरी आयु को फिर से जीते हैं और उसमें के प्रत्येक अनुभव की पुनरावृत्ति करते हैं, तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

परन्तु एक तरफ जहां यह परिवर्तन होता है, वहां दूसरी तरफ एक और फर्क हमारी नीतिमत्ता को प्रभावित करता रहता है। बालों के साथ-साथ नाखून भी बढ़ते रहते हैं। नाखूनों की पर्याप्त वृद्धि हो जाने पर उनकी तीक्ष्णता की जांच करने के लिए उनका प्रयोग दूसरों पर करने की इच्छा बलवती हो उठती है। प्राकृत भाषा में कहें तो दूसरों को नोचने-खरोचने की वृत्ति पनपने लगती है। मनुष्य की देह में सामर्थ्य का संचार हुआ कि उसका दुरुपयोग होना प्रारंभ हुआ ही समझिये। दूर जाने की आवश्यकता नहीं। खुद हमारा ही उदाहरण ले लीजिये। इस समय हमारे हाथ में लेखनी है इसलिए हमारे मन में विचार भी सभ्यता और संस्कृति के उठ रहे हैं। परन्तु इसी कलम को छीलने के लिए चाकू हाथ में आ जाए तो फिर तमाशा देखिये। हमारी आंखें तर्रा जाएगी, खून में सनसनाहट फैल जाएगी और चाकू का वार करने के लिए उपयुक्त लक्ष्य की तलाश में हम घर भर में चक्कर काटते रहेंगे। चाकू जैसा घरेलू और हल्का-फुल्का हथियार हाथ में आने पर जब यह स्थिति हो जाती है तो फिर प्रत्येक उंगली में से प्राकृतिक रूप में ही तीक्ष्ण हथियार बाहर निकलने पर अगर हमारी जिघांसा की सीमा न रहती हो तो आश्चर्य किस बात का ?

इस प्रकार हमने देखा कि नैतिक प्रतिक्रिया की दृष्टि से बालों और नाखूनों की वृद्धि का परिणाम एक-दूसरे से नितांत विपरीत होता है। परंतु प्राकृतिक संतुलन का नियम यहां भी चरितार्थ होता है। हजामत बनवाने के कारण सभ्यता और नैतिकता का जितना नाश होता है, उतना ही नाखून कटवा देने से पाशवी वृत्तियों का ह्रास होता है। हजामत के कारण जितना नुक्सान दिखाई देता है उसकी भरपाई नखकर्तन के द्वारा पूर्ण रूप से हो जाती है।

अब तक हमने हजामत से होने वाले एक ही लाभ का विवेचन किया। वास्तव में इस बहुमुखी कला से और भी अनेक लाभ होते हैं। हजामत बनवाते समय

हमारी चुटिया पूर्णतः नाई के नियंत्रण में रहती है और वह उसे पकड़ कर उत्तमांग को चाहे जिस दिशा में मोड़ सकता है। इसमें हम अनुशासन और आज्ञापालन का सजीव पाठ मिलता है। प्रजाजनों में जिस राजनिष्ठा का होना राज्यकर्ताओं की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण होता है उसका आरंभिक सबक नाइयों द्वारा ही सिखाया जाता है। इस दृष्टि से उन्हें राज्यशासन के खरे हितचिंतक और आधारस्तंभ माना जाना चाहिए। दूसरे, हजामत में कैंची, उस्तरा आदि विविध आयुधों से पाला पड़ने के कारण हमारे मन में हमारे पूर्वजों के जैसा दाहक क्षात्रतेज जाग्रत होने में सहायता मिलती है। कटारी और उस्तरे का पानी हमारी आब को भी जीवित रखता है। शस्त्रों के कानून में कैंची, उस्तरे, नहरनी इत्यादि का समावेश न करके हमारे गौरांग प्रभुओं ने हम पर अत्यधिक उपकार किया है। इसके अलावा, हजामत करवाते समय चेहरे पर जो विविध आकार प्रकार के जख्म होते हैं उनसे सहिष्णुता के गुण का विकास होता है। हजामत पूरी होने तक इस दुख को चुपचाप सहन करने के सिवा और कोई चारा नहीं होता। इससे हर स्थिति में ईश्वर पर भरोसा रखने की और प्राप्त परिस्थिति को शिरोधार्य करने की संतोषवृत्ति मन में जन्म लेती है। उस्तरे के नानाविध वारों का सहन करते-करते इस संसार के दुखमय होने की प्रतीति बड़ी तीव्रता से होने लगती है और मन सांसारिक माया मोह से विरक्त हो जाता है। इस हालत में उन्माद और अभिमान की तो भला भावना ही कैसे जाग्रत हो सकती है।

नैतिकता को बढ़ाने में साबुन का योगदान भी कुछ कम नहीं है। थोड़े से घर्षण से साबुन के एक अणु में से विपुल झाग उत्पन्न हो जाता है। इस चमत्कार को देखते ही शून्य में से इस अपरिमित विश्व की निर्मिति करने वाली पराशक्ति का स्मरण हो आता है। साबुन के बुलबुले कुछ देर बाद अपने आप विलीन हो जाते हैं। इसे देखकर द्रष्टा के मन पर संसार की क्षणभंगुरता अमिट रूप से अंकित हो जाती है।

अब रहा दर्पण! नाइयों के दर्पण अक्सर विषम-स्तर शीशे के बने हुए होते हैं, इसलिए उनकी वृत्ति सत्यनिरूपण की अपेक्षा विनोदप्रियता की ओर अधिक रहती है। किसी भी वस्तु का हूबहू प्रतिबिंब दिखाने के बजाय वे उसका विपर्यास करना ही अधिक पसंद करते हैं। उनके इस उपहासप्रिय स्वभाव के कारण उनमें

देखने वालो की मुखाकृति बडे अजीब अजीब रूप धारण करती है। इसका मतलब यह नही कि कान की जगह घुटना या मुह की जगह पेट दिखाई देता हो। नही वे इतना स्थूल विनोद नही करते। उनकी वृत्ति सूक्ष्म विनोद की ओर ही अधिक रहती है। नाक सीधी हो तो कुछ टेढी दिखाई देगी आखे अकारण ही ऐंचकतानी दिखाई देंगी, मुक्ता-सी दतपक्ति टेढी मढी प्रतीत होगी और सुदर एव प्रमाणबद्ध कान अनायास ही लवकर्ण के कानो से होड करते हुए दिखाई देंगे। रज्जु मे सर्प की भ्रान्ति कराने वाली माया का इससे अधिक प्रभावी प्रदर्शन करना किसी वेदाती के लिए भी मुश्किल होगा।

अब तक हमने हजामत करवाने वालो पर उसके सभाव्य परिणामो की विवेचना की। परतु इन परिणामो का खुद कर्तक महोदय पर भी प्रभाव पडता है और उस पर भी अनेकविध नैतिक सस्कार हावी होते है। सिर झुका कर सामने बैठे हुए असहाय मनुष्य की असह्य यातना होती देखकर उसका मन दयार्द्र हो उठता है। एक क्षण पहले जिसकी चुटिया हाथ मे थी, कुछ ही क्षणो बाद उसी के पाओ की चपी करनी पडेगी इस विचार से उसकी उच्च-नीच भावनाओ का शमन होकर मन मे समता की स्थापना होती है। कैची के एक ही वार से हजारो वालो को स्थानभ्रष्ट होते देखकर उसे सासारिक व्यवहारो की क्षुद्रता और उत्थान पतन के चक्रनेमिक्रम का अनुभव होता है। हर सप्ताह बढने वाले श्मश्रुखादि को काट काट कर ऐहिक वस्तुओ की क्षणभगुरता की उसे गहरी प्रतीति होती है और सामने बैठे हुए निराधार प्राणी के चेहरे पर मले हुए पानी को उसकी आखो मे बहता देखकर भगवान की अगाध लीला पर उसकी प्रगाढ श्रद्धा जमती है।

प्रस्तुत लेख मे हमने यथामति श्मश्रु की नैतिक महत्ता स्थापित की है। मानवजाति की उन्नति के साथ बालो की अवनति का अन्योन्य सबध स्थापित करने का भी प्रयत्न किया है। आशा है, इस प्रथा की उपयुक्तता के विषय मे हमारी तरह पाठको के मन मे भी कोई सदेह नही रहा होगा और वे सुधारको के तर्कशून्य प्रचार की उपेक्षा करके वेशकर्तन की आद्यकालीन प्रथा को उसी रूप मे जारी रखेंगे। हमारा भला इसी मे है। चलते चलते हम सिर्फ एक सूचना और देना चाहते हैं। पाठक अधमश्मश्रु पाश्चात्यो का और असभ्य पशुओ का मतपरिवर्तन करने का प्रयत्न न करें। हमारे कितना ही गला फाडने पर भी वे

हमारी चुटिया को शिरोधार्य नही करेंगे। पशु तो आखिर पशु ही हैं। शेर के सिर पर गोखुर का घेरा नापने का प्रयत्न करने म गाय के सिर पर ही शेर का पजा पडने की अधिक सभावना रहगी यह कभी नही भूलना चाहिए।

7 भविष्यकथन के विविध साधन

अमुक घटना अमुक समय पर होगी, इसकी पूर्व सूचना और उसका होना अनपेक्षित और अनिश्चित होने पर भी, निश्चयात्मक ढग से उसके सबध में आगाह करने को भविष्यकथन कहते हैं। इस व्याख्या पर सही उतरने के लिए *किसी भी भविष्यवाणी को तीन शर्तें पूरी करनी चाहिए। पहली बात यह कि* निष्कर्ष निश्चयात्मक होना चाहिए। 'अमुक बात हुई तो अमुक परिणाम निकलेगा'—इस श्रेणी के निष्कर्ष अक्सर 'बुआजी के मूछें होती तो वे चचा कहलाती' जैसे गोलमोल निर्णयों की कोटि के होते है और उन्हें अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त नही होती। इसी प्रकार 'शायद ऐसा भी हो सकता है' जैसे गुलगुले और गोलमोल निश्चय भी भविष्यवाणी के पद को प्राप्त करने की योग्यता नही रखते। अन्यथा चुनाव के समय उम्मीदवारो की सफलता के विषय मे समाचार-पत्रों मे आने वाली सारी अटकलों को भविष्यवाणी का दर्जा देना पड़ेगा। दूसरी आवश्यक शर्त यह है कि घटना कम से कम उद्घाटित करते समय तक अनपेक्षित या अनिश्चित होनी चाहिए। सन्निपातग्रस्त रोगी के गले की घरघराहट सुनकर उसकी मृत्यु की आगाही कर के श्रेय बटोरने की कोशिश करना विशुद्ध मूर्खता की निशानी है। तीसरी अनिवार्य शर्त यह है कि यह घोषणा घटना के होने से पहले होनी चाहिए। कभी-कभी ऐसा देखा जाता है कि किसी अनपेक्षित चमत्कार के हो जाने के बाद अपने आप को भविष्यवेत्ता कहलाने वाले कुछ लोग 'हमने तो पहले ही कहा था कि ऐसा होगा' इत्यादि वाक्यो का प्रचार बड़े अभिमान से करते हैं। इससे उनके भविष्यज्ञान के बजाय उनकी बेवकूफी ही सिद्ध होती हैं। अक्ल का बटवारा होते समय मौका चूक जाने वाले इन पठितमूर्खों को इतना भी मालूम नही पड़ता कि घटना के होने से ही किए जाने वाली जिस सूचना

की गणना भविष्यवाणी के अंतर्गत हो सकती थी, वही घटना के बाद प्रगट करने पर मात्र हास्यास्पद प्रयत्न सिद्ध होगी और लोग उसे मिथ्या घमंड और कोरी बकवास के सिवा और कुछ नहीं मानेंगे।

इन सब शर्तों के पूरा हो जाने पर भी केवल भविष्यकथन के बलबूते पर ही लोग हम पर विश्वास कर लेंगे ऐसा नहीं समझना चाहिए। लोगों का विश्वास संपादित करने के लिए और भी कई हथकंडे और गुर आवश्यक हैं। उनके अभाव में सारे प्रयत्न व्यर्थ सिद्ध हो जाते हैं। कुछ लोगों को बिना सोचे-समझे कौड़ियों के हिसाब से भविष्यवाणियां करते रहने की आदत होती है। प्रतिष्ठा खोने का यह सरलतम उपाय है। जनमानस में शीघ्र ही उनके नाम के साथ ढपोरशंख आदि प्राकृत विशेषण जुड़ जाते हैं। हमारी सात समुंदर पार की मलिका विक्टोरिया को हम तीस करोड़ भारतीयों की प्रार्थना के बलबूते पर भगवान ने बड़ी लंबी आयु प्रदान की थी। परंतु कुछ लोग उनके जीते जी उनकी मृत्यु की भविष्यवाणी हर साल नियमित रूप से करते रहे और बेवकूफ बनते रहे। अंत में दो साल पहले एक ज्योतिषी को यश मिला। परंतु वह उसके ज्योतिषशास्त्र के ज्ञान के बलबूते पर नहीं बल्कि महारानी साहिबा की वयोवृद्धता के कारण ही मिल पाया।

वंध्या भविष्यवाणी करने में मौसम की आगाही करने वाली वेधशालाओं को कोई मात नहीं दे सकता। उनकी तो पूरी इमारत ही वातावरण की बुनियाद पर खड़ी होती है। और वातावरण क्या है तो 'धूमोज्योति सलिलमरुतांम सन्निपात'। इस हालत में उनकी पेशीनगोइयां हवा के हर झकोरे के साथ सत्य से दूर हटती रहें तो आश्चर्य की कोई बात नहीं। वेधशाला ने अनावृष्टि की आगाही की तो अतिवृष्टि होकर समूची सृष्टि बाढ़ग्रस्त हुई ही समझिये। इसी प्रकार अगर वर्षा की आगाही की गई हो, तो पूरी पृथ्वी इन वायुशास्त्र-वेत्ताओं के मस्तिष्क की तरह शुष्क और बंजर होने में देर नहीं लगेगी। वेधशाला की गणना के अनुसार जब तूफान आना चाहिए तब हवा शांतचित्त से अपनी अनुपयोगिता का चिंतन करती रहती है और वेधशाला जब शांत वातावरण की उत्सुकता से राह देखती है तब प्रचंड झंझावात उन्मत्त हाथी की तरह इर्दगिर्द की बस्तियों को उजाड़ते रहते हैं। इस प्रकार वेधशालाएं सदा प्रकृति के साथ आंखमिचौनी का खेल खेलती रहती हैं और जिस प्रकार रात

और दिन की कभी भेंट नहीं होती उसी प्रकार उनकी भविष्यवाणी की सत्य के साथ वर्षों तक मुलाकात नहीं होती।

वेधशालाओं की इस विलक्षण वृत्ति से सरकार और आम जनता का बहुत फायदा हो सकता है। सरकार को जब जब अकाल के चिह्न दिखाई दें उसे तुरंत वेधशालाओं द्वारा अकाल की अगाही करने का फर्मान जारी कर देना चाहिए। शीघ्र ही उत्तम वर्षा होकर चहुंओर सब चीजों की बहुतायत हो जाएगी। इसी प्रकार अतिवृष्टि की आशंका होने पर वेधशालाओं को वर्षा की भविष्यवाणी करने का हुक्म देना चाहिए। इससे बारिश जहां की तहां रुककर बाढ़ आदि से लोगों की रक्षा हो सकेगी।

भविष्यकथन के जो लोकप्रिय साधन प्रचलित हैं उन्हें दो वर्गों में बांटा जा सकता है। कुछ साधनों का होने वाली घटनाओं के साथ दूरान्वय से ही क्यों न हो पर कुछ कार्यकारण संबंध अवश्य होता है, जबकि कुछ इस प्रकार के संबंध से सर्वथा मुक्त होते हैं। इनमें से पहले वर्ग की विवेचना करना प्रस्तुत निबंध का हेतु नहीं है। हमारा संबंध दूसरे वर्ग में आने वाले साधनों से है। इस वर्ग में फलित ज्योतिष, कज्जलपात्र रमल इत्यादि का समावेश है। ज्योतिषी आकाश में चमकने वाले ग्रहों की स्थिति को देखकर भविष्य बताता है, कज्जलिक काजल के पात्र में देखकर और रमल वाला पासे फेंककर। पहले का आधार है प्रकाश, दूसरे का अंधकार और तीसरे का शुभ्र पासा रूपी प्रकाश पर अंकित काली बिंदिया रूपी अंधकार। इस दृष्टि से देखा जाए तो रमल का स्थान फलित ज्योतिष और कज्जलपात्र के बीच में आता है। हमारी राय में ये तीनों साधक भ्रामक हैं। पासे अमुक तरह से गिरे इसका मनुष्य के भाग्य से क्या संबंध हो सकता है? बहुत हुआ तो चौपड़ आदि खेल खेलने वाला पर उसका कुछ परिणाम हो सकता है, परंतु इस संसार रूपी विशाल बिसात पर खेलने वाले का भाग्य बदलने की शक्ति उनमें कैसे हो सकती है? यही हाल कज्जलपात्र का है। पश्चिम के देशों में इसका स्थान कांच के विशाल गोलक ने ले लिया है। धुंधली जैसी दिखाई देने वाली बुढ़ियाएं उसमें घूर घूर कर लोगों के भविष्य का निरूपण करती रहती हैं। फलित ज्योतिष तो इन दोनों साधनों को मात करता है। अरबों खरबों योजन दूर होने वाले ग्रहों का भला परस्पर क्या संबंध हो सकता है। कल यदि मंगल नष्ट हो जाए तो शनि को उसका सूतक लगने की संभावना नहीं। इसी

प्रकार वरुण (Neptune) और प्रजापति (Urenus) नामक दो नये ग्रहों का अस्तित्व मालूम पड़ने पर अन्य ग्रहों ने मातृजन्म का आनंदोत्सव मनाया हो, ऐसी भी कोई बात सुनाई नहीं दी। इन आकाशस्थ ज्योतिपुंजों में सचमुच ही कोई मित्रता शत्रुता की भावना होती तो अरुंधती वसिष्ठ के पास गए बिना इतने युगों तक चुपचाप न बैठी रहती और सूर्य पुत्रवात्सल्य से शनि के गले में बांह डाले बिना न रहता। इस हालत में पृथ्वी पर रहने वाले मनुष्यों के भाग्य को ग्रहनक्षत्रों से संचालित मानना तो अहमकपन की पराकाष्ठा है।

उपरोक्त साधना के अलावा भविष्यकथन के क्षेत्र में अंतःप्रवृत्ति और कर्णपिशाच नामक दो और साधन भी प्रसिद्ध हैं। इनमें से पहले साधन का प्रवर्तक था सम्राट दुष्यंत। यह बात शायद उन्हीं ने पहली बार कही थी कि 'सतां ही संदेहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः'। परंतु यह विधान सिर्फ साधुपुरुषों के विशुद्ध अंतःकरण के संदर्भ में ही चरितार्थ होता है। दुष्टजनों के कलुषित अंतःकरण या साधारण जनों के सपाट अंतःकरणों तक उसकी व्याप्ति नहीं। आश्रमवासिनी शकुंतला के साथ अत्यंत साधुजनोचित संबंध स्थापित करने वाले दुष्यंत की तरह हम सामान्य जनों का अंतःकरण शुद्ध न होने के कारण इस साधन की रामबाण क्षमता से हमारा परिचय नहीं हो सका और इसमें हमारा विशेष दोष भी नहीं है। अब रहा कर्णपिशाच! इस पिशाच की निरंतर गुनगुनाहट से सुनने वाले भविष्यवेत्ता के कान लंबे होते हैं या नहीं यह तो हमें नहीं मालूम, पर इस साधन पर विश्वास करके प्रश्न पूछने वाले जिज्ञासुओं के कान काफी लंबे होते हैं यह हम विश्वासपूर्वक कह सकते हैं।

पृच्छकों पर भविष्यकथन के अन्य शास्त्रोक्त साधनों की अपेक्षा उपरोक्त अतींद्रिय साधनों का ही अधिक प्रभाव पड़ता है। जिन बातों का भविष्य में होने वाली घटनाओं के साथ का संबंध बुद्धिगोचर होता है, उनके बारे में आगाही करना विशेष चमत्कारपूर्ण नहीं माना जाता। फिर, कभी-कभी उन अनुमानों के झूठे प्रमाणित होने की भी संभावना रहती है। परंतु साधन और साध्य के बीच यदि बादरायण संबंध भी न हो, तो पृच्छक कितना ही चालाक क्यों न हो सिवा सर फोड़ने के वह कर ही क्या सकता है? मनुष्य स्वभाव ही कुछ ऐसा है कि बुद्धिगोचर बातों की अपेक्षा अगम्य और रहस्य के आवरण में लिपटी हुई वस्तु ही उस पर अधिक प्रभाव डालती है। इसलिए बुद्धिमान भविष्यवेत्ता को

अपनी इमारत सदा शास्त्रीय आधारों की बुनियाद पर खड़ी करके दिखावा फलित ज्योतिष, साक्षात्कार या कर्णपिशाच का करते रहना चाहिए। कोलंबस ने भी एक बार चंद्रग्रहण की गणना गणित ज्योतिष के आधार पर करके भोले रेड इंडियनों को चंद्र के संकट की भविष्यवाणी से प्रभावित किया था। जिस प्रकार बाजीगर को हाथचालाकिया का उसके फूंक मारने या जादू की लकड़ी घुमाने के साथ कोई संबंध न होने पर भी प्रेक्षकों को मंत्रशक्ति से प्रभावित करने के लिए वह उनका उपयोग करना रहता है, उसी प्रकार पृच्छकों के मन में कुतूहल निर्माण करके उन्हें भ्रमित करने के लिए कुशल भविष्यवेत्ता को भी बाह्य उपस्करों का अधिकाधिक प्रयोग करते रहना चाहिए।

भविष्य की आगाही करने और घटनाओं के ठीक उसी प्रकार होने का काकतालीय योग बहुत कम भविष्यवादियों के भाग्य में होता है। उपन्यासकारों और नाटककारों का ममावेश अकसर इन इनेगिने भाग्यवानों में होता है। शेक्सपीयर ने अपने 'मैकबेथ' नाटक में एक चेटकी के मुंह से एक विलक्षण भविष्यवाणी करवायी है और उसे अल्पकाल में उतने ही अनपेक्षित ढंग से सत्य होते हुए दिखाया है। कालिदास ने भी शाकुंतल में दुर्वासा ऋषि के मुख से ऐसी ही अकल्पित भविष्यवाणी करवा कर उसे उतने ही अकल्पनीय ढंग से सत्य सिद्ध किया है। चोरों की गणना अकसर कवियों के साथ की जाती है। अचौर्य के साथ साथ भविष्यकथन करने का जो दूसरा साधर्म्य उनमें पाया जाता है वह उन्हें एक ही बिरादरी में ला बिठाता है। यदि किसी का कोई आभूषण चोरी हो गया हो और चुराने वाले ने ही अमुक अमुक स्थान पर खुदाई करने से उसके प्राप्त होने की भविष्यवाणी की हो तो उसका सत्य प्रमाणित होना अनिवार्य है। कवियों और चोरों की भविष्यवाणियां सौ प्रतिशत सत्य प्रमाणित होने का एकमात्र कारण यह होता है कि भविष्यकथन के साथ साथ उसकी पूर्णता की कुंजी भी संपूर्णतः उन्हीं के हाथों में होती है। पहेलियां गढ़ने वाला को जिस प्रकार उनका हल भी मालूम होता है, उसी प्रकार साहित्यिक भविष्यवाणियों को अनेक प्रकार के जोड़-तोड़ से पूरा करवाने की अनेक तरकीबें उनके रचयिताओं को ही अवगत होती हैं।

वैज्ञानिक या अतींद्रिय, किसी भी प्रकार के साधनों की सहायता लिए बिना, केवल धूर्तता और मानव-स्वभाव की जानकारी के बलबूते पर भविष्यकथन

करने का एक निराला ही शास्त्र है। इस सम्प्रदाय में दीक्षित होना चाहने वाले के मार्गदर्शन के लिए यहां उसके मोटे-मोटे गुर दिए जाते हैं —

जिस घटना के संबंध में हम आगाह करते हैं उसका काल या तो पृच्छकों की आयुमर्यादा के अंतर्गत हो सकता है या उनके बीतने के बाद का। इस दृष्टि से विचार करते समय हम पहले जिज्ञासुओं के जीवनकाल के भीतर होने वाली घटनाओं का विवेचन करेंगे। इस प्रकार के भविष्यकथन में दो बातों का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए। एक तो यह कि होने वाली घटना सारी परिस्थिति का विचार करते हुए संभव कोटि की होनी चाहिए, और दूसरे यह कि किसी भी भविष्यवाणी में होने वाली घटना का स्वरूप, उसका समय और उसका स्थान इन तीन आवश्यक अंगों में से एक को हमेशा अनिश्चित रख कर बचे हुए दो को निश्चित घोषित करना चाहिए। निम्नलिखित उदाहरणों में बताए हुए ढंग से भविष्यकथन करते रहने पर सफलता की आशा अधिक रहेगी —

1 'जर्मनी के बादशाह के साथ उसकी राजधानी में एक वर्ष के भीतर एक चमत्कारपूर्ण घटना घटेगी।'

राजा महाराजाओं के जीवन में चमत्कारपूर्ण प्रसंग आते ही रहते हैं। अतः भविष्यकथन की तिथि से लगा कर साल भर के भीतर कैसर के जीवन में कोई भी छोटी मोटी घटना हुई, तो लोगों का ध्यान तुरंत उस तरफ आकर्षित होगा और भविष्यकथन सही निकला ऐसा समझा जाएगा। यहां समय और स्थान को निश्चित रख कर होने वाली घटना के स्वरूप को जानबूझकर अस्पष्ट रखा गया है। इसीलिए कोई भी छोटी मोटी घटना होने पर भी हमारी प्रतिष्ठा सुरक्षित रहेगी।

2 'इस वर्ष के दरमियान पृथ्वी पर कहीं भयानक भूचाल आयेगा।'

इस विशाल पृथ्वी पर हर साल कहीं न कहीं भूकंप आता ही रहता है। इस वर्ष वह कहीं भी हो। स्थान का उल्लेख अनिश्चित रखने के कारण उसका संबंध हमारी भविष्यवाणी के साथ जोड़ने में हमें कोई कठिनाई नहीं होगी। और यह भी अत्यंत स्वाभाविक है कि जिस स्थान पर वह धक्का लगेगा वहां के लोगों को वह मामूली होने पर भी महाभयानक मालूम देगा।

3 'शीघ्र ही इंग्लैंड और रूस के बीच कोई झगड़ा होने वाला है।'

इन दोनों देशों के वर्तमान संबंधों को नजर में रखते हुए उपरोक्त कथन के

देर-अबेर सत्य होने की पूरी संभावना है। अब यह 'शीघ्र ही' होने के बजाय 20-25 वर्ष बाद हुआ, तो भी हमारी शब्द-योजना के कारण विशेष बाधा नहीं आएगी। 20-25 वर्ष का कालखंड व्यक्ति की दृष्टि से लंबा हो सकता है पर राष्ट्र के इतिहास की दृष्टि से देखने पर इस कालावधि का 'शीघ्र ही' में अंतर्गत समावेश कर लेने में विशेष कठिनाई नहीं होगी।

ईसाई धर्मशास्त्र, भविष्योत्तरपुराण इत्यादि धर्मग्रंथों में भविष्य में होने वाली घटनाओं का वर्णन करते समय इसी पद्धति का प्रयोग किया गया है। यूनान में डेल्फाय द्वीप पर जो देवताओं का कौल मिलता था उसमें भी इसी संदिग्ध प्रणाली पर अमल किया जाता था। ईसाई धर्मशास्त्रों में परमेश्वर के पैगंबर का भूतल पर आविर्भाव होने के संबंध में जो भविष्यवाणी पाई जाती है वह इतनी अस्पष्ट और संदिग्ध थी कि मसीहा का अवतार हो जाने के बाद भी उसके पैगंबर होने के संबंध में विवाद उठते रहे। इसी के परिणामस्वरूप उस धर्म में यहूदी और ईसाई नामक दो संप्रदायों का जन्म हुआ। "मैं मेरे प्रियजनों को विश्व का राज्य दूंगा।" इत्यादि ईश्वरीय अभिवचनों को छाती से चिपकाये यहूदी लोग आज भी उस सुदिन की राह देख रहे हैं।

प्रतिवर्ष प्रसिद्ध ज्योतिषियों की ओर से जो वर्षफल प्रकाशित होते हैं उनमें भी कुछ इसी प्रकार की करामात दिखाई देती है। 'देश के कुछ प्रदेशों में वर्षा कम होगी और कुछ में बहुत अधिक।' "पश्चिम के देशों में एक भयानक युद्ध होगा।" "कुछ वस्तुओं के व्यापार में तेजी आयगी और बाकी में मंदी।" "देश में मृत्यु की अपेक्षा जन्म का अनुपात अधिक रहेगा।" इत्यादि कथनों में भविष्यकथन के बजाय हथकंडेबाजी के ही दर्शन अधिक होते हैं। इस अभागे देश में वर्षा के मनमौजीपन से तो सभी परिचित हैं। वह हर वर्ष इसी प्रकार का बर्ताव करती है। दूसरा कथन भी ठीक ही है। पश्चिम के देश आपस में लड़ते ही रहते हैं। अतः युद्ध पश्चिम में हुआ तब तो उसमें बात है। यदि वह चीन जापान आदि पौर्वात्य देशों में हुआ तो भी यह कहा जा सकता है कि उक्त देश भारत के पूर्व में होने पर भी अमरीका के पश्चिम में हैं और भारत से पश्चिम की ओर मुंह करके चलने पर भी वहां पहुंचा जा सकता है। इसी प्रकार अंतिम दो कथन भी कलियुग में आमतौर पर दिखाई देने वाली अर्थप्राप्ति की इच्छा और स्त्री सुखलालसा पर आधारित होने के कारण उचित प्रतीत होते हैं।

कोई घटना यदि हमारी भविष्यवाणी के साथ संबंधित व्यक्तियों की जीवनावधि के बाद होने वाली हो, तो उसके संबंध में अधिक सावधानी बरतने की आवश्यकता नहीं। इतना ही नहीं हमारे श्रोताओं या पाठकों के जीवनकाल के बाद होने वाली घटनाओं के संबंध में तो चाहे जैसी बेबुनियाद गप हांकने में भी कोई हर्ज नहीं। हमारे समकालीनों द्वारा उसकी सत्यासत्यता सिद्ध होने की कोई संभावना नहीं रहती और हमारे बादवाली पीढ़ियों को हमारे भविष्यकथन की अयथार्थता मालूम हो जाने पर हमारी कलई खुल जाएगी ऐसी आशंका के लिए भी कोई कारण नहीं होता। अव्वल तो तब तक हमारी तरह हमारा भविष्यकथन भी काल के गर्भ में न जाने कहां लुप्त हो जाएगा। और दूसरी बात यह कि कर्मधर्मसंयोग से मान लो वह जीवित भी बचा और अपनी बेबुनियादी की वजह से सबके उपहास का पात्र भी बना, तो उसे देखने या सुनने के लिए हम जीवित ही कहां रहेंगे? मृत्यु के बाद हमारा उससे संबंध ही क्या रहेगा? और उपहास का शूल चुभने के लिए हमारे मन का अस्तित्व भी तब कहां होगा?

हमारी भविष्यवाणियां हमारी मृत्यु के बाद भी जीवित रहेंगी ऐसा भय या घमंड हमारे मन में हो और उनकी विफलता से उत्पन्न उपहास की कल्पनामात्र से हमारे रोंगटे खड़े हो जाते हों, तो अलबत्ता हम कुछ अधिक सावधानी बरतनी होगी। वैसे तो आज का युग ही कुछ ऐसा है कि लोगों को वर्तमान की अपेक्षा भविष्य की कहीं अधिक चिंता रहती है। मनुष्य स्वभाव की यह कमजोरी भविष्यवेत्ताओं की बड़ी सहायक सिद्ध होती है। दूसरे, औसत मनुष्य को पुरानी बातों का बड़ा अभिमान होता है। किसी ने छिछोरपन से उनकी खिल्ली भी उड़ाई तो बस उसकी एड़ी की आग चोटी तक पहुंच जाती है। इस कारण से, हमारे भविष्यकथन को भविष्य की पीढ़ियां बड़े गौरव से देखें और हमारी भविष्यवाणियां यदि लाक्षणिक अर्थ में भी पूरी होने लगें तो इस वे अपने पूर्वजों के अगाध ज्ञान का लक्षण समझें इसकी पूरी संभावना रहती है। वर्तमान के संबंध में तो हम छोटी मोटी बातों को भी अनेक तर्क वितर्कों के हालत में लोगों के गले नहीं उतार सकते। परंतु भविष्य की पीढ़ियों पर उन्हें बिना किसी संकोच के बड़ी आसानी से लादा जा सकता है।

हमारे देश में सामाजिक प्रथा परंपराओं और लौकिक रस्मोरिवाज की प्रथा ---ी है। इसलिए आने वाली पीढ़ियों को उनके विषय में संपूर्ण अज्ञान होगा।

विश्वासघात करने से पाप ही पल्ले बधेगा। मैं दूसरी स्त्री के पिड को स्पर्श करने को तैयार हू इस स्पष्ट वादे के बाद ही उसने मेरी मृत स्त्री के पिड को स्पर्श किया था। अब अपना मतलब निकल जाने के बाद इस तरह खुल्लमखुल्ला विश्वासघात करना, और वह भी एक पक्षी के साथ,—यह तो हमारे कुल की रीत नही थी। अत मे काफी सोचविचार के बाद मैं इसी निर्णय पर पहुचा कि एक तो क्या चार स्त्रिया भी करनी पड़ें तो कोई हर्ज नही, पर एक मूक पक्षी को दिए हुए आश्वासन को भग नही किया जा सकता।

इसके बाद और भी कई लडकियो की जन्मपत्रिया आई। अब मैंने निश्चय किया कि जन्मपत्रिया देखने के बजाय प्रत्यक्ष लडकियो को देखना कही अच्छा रहेगा। अत जहा-जहा से बुलावा आता, मैं बडी उत्सुकता से लडकी देखने पहुच जाता। पहली लडकी जो देखी उसके नाक-नक्श तो अच्छे थे पर आगे के दो दात गिरे हुए थे। मेरी यह प्रबल इच्छा थी कि पत्नी के और मेरे दातो का जोड कम-से-कम बत्तीस तो होना ही चाहिए। यहा आरभ मे ही दो का घाटा था। इसके बाद की लडकी रूप मे तो हजारो मे एक थी पर उम्र उसकी कुल जमा ग्यारह वर्ष की थी। मेरा हमेशा से यह स्पष्ट मत रहा है कि विवाह के समय लडकी की उम्र यौवन के जितनी ही निकट हो, उतनी पति-पत्नी के बीच प्रेम की सभावना अधिक रहती है। तीसरी लडकी के भी नक्श तो सीधे थे, पर रग गजब का पक्का। वैसे मैं इसे अधिक महत्त्व नही देता, परतु इस कृष्णकलीको गले मे बाधकर मैं अपनी सतति का नुकसान नही करना चाहता था। यह तो सभी के अनुभव की बात है कि परिवार म एक बार काला रग घुस जाए तो उसके धुलने मे चार-पाच पीढिया का समय लग जाता है। पर अधिक दिनो तक राह देखने की मेरी उम्र नही थी। इस प्रकार हर लडकी म कुछ-न-कुछ कमी दिखाई दी और मेरा यह मत मन-ही-मन और भी पक्का होता गया कि जब तक अपनी पसद पर पूर्णत खरी उतरने वाली लडकी न मिले तब तक विवाह का विचार करना भी पागलपन की निशानी है।

इन सब लडकियो का अस्वीकार करने मे मुझे एक बात से बडी सहायता मिली। पाचवें विवाह के लिए जब मैंने अपने सबधियो का अधिक आग्रह देखा, तो मुझे एक ऐसी युक्ति सूझी जिससे उन्हे भी निराशा न हो और मेरी इच्छा भी पूर्ण हो जाए। मैंने विवाह के लिए दो शर्तें रखीं। एक तो यह कि मेरी होने

वाली पत्नी अद्वितीय सुदरी होनी चाहिए और दूसरे, उसकी उम्र कम-से-कम सोलह वष की होनी चाहिए। इन शर्तों के पीछे विचारधारा यह थी कि हमारे समाज म इस उम्र तक कोई लडकी बिन ब्याही रहती ही नही। इसलिए अव्वल तो उपरोक्त उम्र की लडकी मिलेगी ही नही, और मिल भी गई, तो उसके अप्रतिम सुदरी होने की कोई सभावना नही। मैं मन-ही मन निश्चित था कि न ऐसी लडकी मिलेगी और न मेरा विवाह होगा। और इस प्रकार मेरी प्रतिज्ञा अनायास ही अक्षुण्य रह सकेगी।

परतु मेरा दुर्भाग्य यहा भी आडा आया। दो-तीन दिन तक लडकिया देखने का वृथा परिश्रम होने के बाद एक रोज एक नया प्रस्ताव आया। लडकी बिलकुल मेरी अपक्षा के अनुरूप थी। अल्हडपन को पार करके मुग्धता की सीमा म कदम रखने वाली उम्र, हिम की शुभ्रता और स्वण की काति के बीच का रग, मझोला कद और सुडौल देहयष्टि। उसके एक-एक अग के सौंदय का अलग-अलग वणन करना मेरी सामथ्य के बाहर की बात है। क्षण भर के लिए तो मुझे चौथी स्त्री की मृत्यु के लिए मन-ही मन आनद होन लगा। इसका मतलब यह नही कि मैं कृतघ्न या भावनाशून्य था। परतु मेरे जसे अनुरक्त और उदार पति के मन म भी क्षण भर के लिए स्वाथभावना उत्पन करने की शक्ति उस लडकी के रूप लावण्य मे थी इसमे कोई सदेह नही। लडकी के पिता ने जैसे ही उसकी जन्मपत्री लाकर दी कि तुरत मैं हमारे उपाध्यायजी को साथ लेकर उनके घर पहुच गया।

वर वधू से पहले उनके उच्च-नीच ग्रहो के बीच पटरी बैठनी चाहिए ऐसी मान्यता हमारे देश मे सर्वत्र पायी जाती है। परतु लडके-लडकी की जन्मपत्रियां एक दूसरे से पूणत मिलती हो, ऐसा शायद ही कभी देखा जाता है। अकसर कोई न कोई कमी रह ही जाती है। कभी-कभी तो दोनो टीपनाओ के ग्रह एक-दूसरे के इतने विरुद्ध होते हैं कि वे एक-दूसरे पर आक्रमण करके कही भयानक युद्ध न छेड बठे इस आशका से उन्हे एक साथ रखने मे भी डर लगता है। शायद ऐसे ही किसी रणक्रदन मे पिटाई होने के कारण मगल का मुह लाल और शनि का बदन नीला पड गया है। मेरा ज्योतिष विद्या पर अटल विश्वास होने के कारण मैं दोनो पत्रिकाओ के ग्रहो का बारीकी से अध्ययन करने लगा। परतु बहुत प्रयत्न करने पर भी इस काम मे मन नहीं लगा। चद्रबल का विचार करते ही उस बाला का मुखचद्र आखो के सामने आ जाता और शनि की वक्रगति का

विचार करते समय उसकी गजगति नजर के सामने तैर जाती। मंगल उसके माथे की लाल बिंदिया की याद दिलाता तो गुरु उसके गुरु नितंबों में मन को उलझाता। आखिर कुछ खास-खास बातों का विचार करके मैंने जन्मपत्री लपेट कर रख दी।

पत्रिका-अवलोकन का निष्कर्ष यह निकला कि मेरे ग्रह वधू के अनुकूल नहीं थे। मेरे साथ विवाह होने पर उसका मृत्युयोग बैठता था। परंतु मैंने इस बात को अधिक महत्व नहीं दिया। मेरे ग्रहों की प्रतिकूलता के कारण मान लो वह मर भी गई तो इससे उसका कल्याण ही होगा। सधवावस्था में मृत्यु का सौभाग्य प्राप्त होने के कारण वह सीधी स्वर्ग में जाएगी। इसके अलावा उसकी मृत्यु के बाद फिर से विवाह न करने का दृढ़ निश्चय मैं पहले ही कर चुका था। पुरुष की इतनी निष्ठा साधारण स्त्री के भाग्य में नहीं होती। अतः मेरे साथ विवाह करने में उसका फायदा-ही फायदा था। इस प्रकार प्रमुख बाधा का तो निराकरण हो गया। पर एक छोटी सी अड़चन यह भी थी कि विवाह का मुहूर्त भी अनुकूल नहीं था। परंतु इसे कोई बड़ी दिक्कत नहीं कहा जा सकता। इस दोष के निवारणार्थ मैं जप करवाने वाला था। दो-चार बामनों को पकड़ कर जप के लिए बैठा दिया कि फिर टेढ़े से टेढ़े ग्रह की भला मजाल क्या है कि आपके मार्ग में बाधा डाले। ब्राह्मणों को तृप्त करते ही सारे क्रूर ग्रह अपने-आप तृप्त हो जाते हैं। इसके अलावा, हमारे उपाध्यायजी के हकलाने के कारण मुझे विश्वास था कि एक बार का जाप चार पांच जपों का श्रेय दे जाएगा।

मेरी जन्मपत्री देखकर वधूपक्ष के लोग कहीं बिदक न जाएं इस आशंका से मुझे उसमें कई महत्वपूर्ण रद्दोबदल करने पड़े। ऐसा करके मैंने कोई अपराध नहीं किया। हमारे अपने मकान में चाहे जैसा परिवर्तन करने का जिस प्रकार हमें अधिकार होता है उसी प्रकार अपनी कुंडली में आवश्यक परिवर्तन करने का भी हर आदमी को जन्मजात अधिकार होना चाहिए। इसलिए सूर्य की स्थापना मैंने बिना किसी संकोच के सुशीतल कुंभ राशि में कर दी ताकि वह किसी को दाहक न हो। शशांक पर अंकित शश की चीख पुकार की परवाह किए बिना उसे सिंह राशि में धकेल दिया। बुध की वृषभ से और मंगल की मेष से टक्कर करवा दी। इस प्रकार मार कूटकर जबरदस्ती उनका विषम विवाह करवाने के कारण ये सारे ग्रह यदि मुझ पर कुपित हो उठते तो भी चिंता की

कोई बात नही थी। ब्राह्मणों की मध्यस्थी और जपयज्ञादि की सहायता से उन्हें सहज ही शांत किया जा सकता था। इसलिए उनकी शिकायत की ओर मैंने विशेष ध्यान नही दिया।

इस प्रकार की निरापद और सुसाध्य जन्मपत्री तैयार करके और भोजनादि से निवृत्त होकर मैंने कपडे बदलने की तयारी की। पगडी लेने के लिए अलगनी पर हाथ डालते ही मेरे बडे लडके के नये कपड़ो पर नजर पडी। देखा तो अग्रेजी ढग की कमीज और गोल टोपी। शिव शिव । कितना अध पतन हो गया है इस नयी पीढ़ी का ! इस यवन पोशाक को देखकर मेरे क्षोभ की सीमा न रही। तनियों वाला अगरखा और चक्करदार पगडी की पोशाक निश्चित करने वाले हमारे पूर्वज कोई मूर्ख नही थे। उस पोशाक मे दबदबा था, प्रतिष्ठा थी, दूर से देखते ही वह आखो मे समाती थी। आजकल के इस पहनावे मे तो निरे छिछोरपन और दिखावे के सिवा कुछ भी नही। क्रोध के आवेश मे मैं उन कपडो को बाहर सडक पर फेंकने ही वाला था कि विचार आया कि इतने कीमती कपडो को यो ही फेंक देने से क्या फायदा ? इससे तो उन्ह पहन कर फाडना ही अच्छा रहेगा। परतु अब यह लडके के हाथो मे नही पडने चाहिए। मैं ही पहनकर खतम करूगा। इस विचार से वे कपडे आखिर मैंने ही पहने और नये आलसी नौकर ने बडे शीशे को ठीक से साफ किया है या नही इस हेतु से उसका बारीकी से निरीक्षण करके उपाध्यायजी के साथ मैं लडकी वालो के घर पहुचा।

वहा पहुचते ही पहले तो लडकी के पिता ने हमारी जन्मपत्रियो का मिलान करके देखा। यह रास्ता तो पहले से ही साफ था। मैं छत्तीस गुणो का मेल बठाकर ही टीपना ले गया था। उन्होने सतोष व्यक्त किया। फिर लडकी बुलाई गई। मैंने पहला प्रश्न यह पूछा कि वह पढना लिखना जानती है या नही। मालूम हुआ कि जानती है और पाचवी कक्षा तक पढी हुई है। यह तो प्रथम ग्रासे मक्षिकापात। लडकियो को शिक्षा देने से ही उनका पतन होता है और वे वाममार्ग मे प्रवृत्त होकर प्रेमियो को प्रेमपत्र लिखने लगती हैं ऐसा मेरा दृढ विश्वास था। फिर भी मैंने मन को समझाया कि अभी कोई बडा अनर्थ नही हुआ होगा। चार-पाच दर्जे की ही तो बात है। जितना समय उसने इतना ज्ञान प्राप्त करने मे लगाया है, उतना ही उसे भूलने के लिए दिया जाए तो कुछ ही समय बाद वह फिर से विशुद्ध आर्य नारी हो उठेगी। इसके लिए मैं कोई शिक्षक रखने के लिए भी तैयार था। एक

उनके सामने यदि हम आजकल की बासी और निर्मूल्य प्रथाओं को कुछ रहस्य के आवरण में लपेटकर प्रस्तुत कर सकें, तो वे उसे स्वादिष्ट व्यंजन समझकर चटखारे लेते हुए ग्रहण कर लेंगे। 'कलियुग में प्लेग नामक महामारी फैलेगी' ऐसी भविष्य वाणी जब हमने हमारे किसी पुराण में प्लेग के आगमन के बाद पढ़ी तब हमारे पूर्वजों की सर्वज्ञता को लेकर हमने बड़े अभिमान का अनुभव किया था। इस सबक भविष्यवक्ता के जन्मकाल में ही प्लेग की शुरुआत हो चुकी होगी और उपरोक्त पुराण की रचना भी प्लेग के डर से शहर के बाहर रमाई हुई किसी झोपड़ी में हुई होगी ऐसा सशय हमारे कुछ सुधारक मित्र व्यक्त कर सकते हैं। पर श्रद्धालुओं के मन को यह बात स्पर्श नहीं कर सकेगी। मनुष्य के मन की इस प्राकृतिक प्रवृत्ति को नजर में रखते हुए हम यदि नीचे लिखी हुई सामान्य श्रेणी की भविष्यवाणियां करते रहे तो आगामी पीढ़ियों को वे निश्चित ही असामान्य और विश्वसनीय मालूम देंगी —

"आने वाले युगों में लोग शिश्नोदरपरायण हो जाएंगे। उनकी वृत्ति उदरभरण की ओर और उनका झुकाव स्त्रियों की ओर रहेगा।"

"देश में भयानक दारिद्र्य फैलेगा और लोग अन्न के दाने दाने को तरस कर प्राण छोड़ेंगे।"—इत्यादि

इन कथनों के साथ यदि "लोगों की प्रवृत्ति नास्तिकता की ओर अधिक रहेगी, वेशवपन या धार्मिक आचार बंद हो जाएगा, विधवा स्त्रियां रिश्तेदारों के बच्चे खिलाने का सात्विक व्यवसाय छोड़कर अपने बच्चे खिलाने की अनैतिमय लालसा से प्रेरित होकर पुनर्विवाह करने लगेंगी" इत्यादि धर्मग्लानिपरक विधान भी जोड़ दिए जाएं तो लोगों की हमारे ऊपर की श्रद्धा परमावधि का पहुंच जाएगी। इस संबंध में ध्यान में रखने लायक एक विशिष्ट बात यह है कि हमारी भविष्य वाणियां हमेशा भविष्यकाल की संभाव्य स्थितियों के सदा प्रतिकूल होनी चाहिए। मनुष्य-स्वभाव का यह एक सनातन नियम है कि उसे वर्तमान स्थितियों के प्रति सदा असंतोष रहता है जबकि अतीत की ओर वह सदा ललचाई हुई पर निराश दृष्टि से देखता रहता है। वर्तमान स्थितियां पहले की अपेक्षा अत्यंत निकृष्टावस्था को पहुंच गई हैं ऐसा भी उसे दृढ़ विश्वास होता है।

अंत में, एक और ज्ञातव्य बात यह है कि किसी भी भविष्यवाणी की काल-गणना करते समय हमें उसका आरंभ भविष्यकथन के समय से या अन्य किसी

निश्चित वर्ष से न करते हुए सदा कलियुग के आरंभ से करना चाहिए। कलियुग का आरंभ कब से हुआ इस विषय को लेकर विद्वानों में अब तक मतभेद है और आगे भी रहेगा। पिछली कई शताब्दियों में विभिन्न समय पर समाज के पतन की पराकाष्ठा को देखकर धर्मप्रवण लोगों ने उसका आरंभ अपने-अपने युग की विभिन्न तिथियों से माना है। यह बात भविष्यवेत्ता के लिए बड़ी अनुकूल सिद्ध हो सकती है। उसकी आगाही का कालखंड यदि कलियुग के आरंभ की एक गणनापद्धति से गलत साबित होकर लोगों का उस पर से विश्वास उठने लगे, तो दूसरी किसी गणनाप्रणाली से उसके सही प्रमाणित होने की पूरी संभावना रहती है।

8 मेरी भीष्मप्रतिज्ञा

चार साल पहले, उम्र के साठवें वर्ष में मेरी द्वितीय धर्मपत्नी का देहावसान हो गया। उसके बाद यथाविधि मेरा आक के पौधे के साथ विवाह हुआ[1]। पेड़-पौधों से विवाह करने की हमारी इस प्राचीन प्रथा से यही सिद्ध होता है कि प्राणीसृष्टि और वनस्पति जगत् के बीच अभेद का ज्ञान हमारे पूर्वजों को बहुत पहले से था। पश्चिम के विद्वानों को इसकी जानकारी तो अभी हाल में हुई है। उपरोक्त विवाह तो हो गया, पर आक के पौधे के साथ जीवन व्यतीत करने के मोह में न पड़ते हुए मैंने आत्मसंयम करके शीघ्र ही उसका क्रियाकर्म समाप्त किया और चौथी स्त्री से विवाह कर लिया। परंतु दुर्भाग्य से वह भी शीघ्र ही कालकवलित हो गयी। ऐसे दारुण संकट का मुकाबला करने में मुझे कितना कष्ट हुआ होगा इसे भुक्तभोगी ही समझ सकते हैं। उस दुखावेग में मैंने फिर से विवाह न करने की कठोर प्रतिज्ञा कर डाली जो आज तक अक्षुण्ण है। नौजवान पीढ़ी चाहे तो मेरे इस बर्ताव से सबक सीख सकती है।

परंतु बीच में मेरी इस प्रतिज्ञा-भंग होने का खतरा कई बार उपस्थित हुआ। केवल अपने धैर्य और दृढ़ निश्चय के बलबूते पर ही मैं उन प्रलोभनों को जीत सका। बात यह हुई कि सूतक के दिन पूरे होने से पहले ही दो-तीन कन्याओं की जन्मपत्रियां मुझे दी गईं। मनोरंजन का और कोई साधन न होने के कारण मैं उन

---

[1]महाराष्ट्र में तीसरा विवाह अशुभ माना जाता है। दूसरी पत्नी की मृत्यु के बाद यदि विवाह करना हो तो पहले आक मदार या इसी प्रकार के किसी पेड़ पौधे के साथ विवाह करके तीसरे विवाह की आपत्ति टाल दी जाती है। कुछ दिनों बाद उस पौधे की मृत्यु घोषित कर के उसका क्रियाकर्म कर दिया जाता है और पुरुष चौथे विवाह के लिए मुक्त हो जाता है—अनु

पत्रिकाओं को जानने में और मेरी कुंडली के साथ उनका मेल मीजान बैठता है या नहीं यह देखने में समय व्यतीत करता रहा। परंतु यह उद्योग करते समय भी मन का पक्का निश्चय कायम था कि इससे आगे अब विवाह नहीं करना है।

अंत में सूतक-काल पूरा होकर पिंडदान का दिन आया, पर किसी भी तरह कौआ पिंड का स्पर्श करने को तयार नहीं हुआ। आधा घंटा बीता, एक घंटा बीता परंतु काकराजनि का स्वीकार नहीं हुआ। आखिर मैंने अपनी मृत पत्नी की अंतिमेच्छा का स्मरण करके फिर से विवाह करने का मन ही मन संकल्प किया तब कहीं जाकर कौए ने पिंड को छुआ। मेरी प्रतिज्ञा डगमगाना और कौए के पिंड पर बैठने की क्रियाएं एक साथ हुई। आधुनिक विज्ञान के पास है कोई इसका जवाब? इस घोर कलिकाल में भी इस प्रकार के दैवी चमत्कार की हजारों घटनाएं प्रतिदिन होती रहने पर भी सुधारक लोग सनातन धर्म और उसकी प्रथाओं को सदा नाम धरते रहते हैं। इस दृष्टि से देखने पर तो ऐसा मालूम देता है कि चश्मा पहनकर ब्रह्मज्ञान बघारने वाले हमारे इन सूक्ष्मदर्शी सुधारकों की अपेक्षा एकाक्ष कौए की दृष्टि कहीं अधिक पनी और सारग्राही होती है।

मेरे आंतरिक संकल्प के साथ-साथ ही कौए ने पिंड को छुआ, यह बात जब मेरे संबंधियों को मालूम हुई तो उनका आनंद आकाश को छूने लगा। सबने कौए को उसके निर्णय के लिए धन्यवाद दिया। पर मैं मन ही मन दुखी रहने लगा। कौआ जाते जाते भी अपने निर्णय में दो एक काकपद जोड़कर मेरा छुटकारा करेगा ऐसी आशा कुछ समय तक मेरे मन में रही, पर कौए के उड़ जाने के साथ वह भी समाप्त हो गई। फिर मैंने विचार किया कि मेरे निजी सिद्धांत कुछ भी हो, इष्टमित्रों के आनंद में बाधा नहीं डालनी चाहिए। इस विचार से प्रेरित होकर मैंने ऊपर ऊपर से संतुष्ट होने का दिखावा किया। परंतु इससे संबंधियों के उत्साह में और भी वृद्धि हुई। मेरे मन में तो विचारों का तूफान उठ रहा था। कभी लगता कि मेरी मृत पत्नी की गुणों में बराबरी कर सके ऐसी स्त्री इस भूतल पर मिलना तो मुश्किल है। फिर कभी विचार आता कि गुणों में बराबरी न सही पर रूप यौवन द्वारा उस कमी को पूरी कर देने वाली कोई सुंदरी मिल जाए तो हर्ज भी क्या है। कभी ऐसा लगता कि एक बार विवाह न करने की कसम खा लेने के बाद अब मन को बहकाना क्षुद्रता की निशानी है। तो कभी यह भावना प्रबल हो उठती कि मृत पत्नी की अंतिमेच्छा के वाहक कौए के साथ

साथ बबई पहुचे। एक बहुत बडी इमारत मे हमारे ठहरने का प्रबध किया गया। पूना मे हमसे मिलने वाले सज्जन लडके के पिता नही बल्कि कोई पेशेवर मध्यस्त थे, यह हम यहा आने पर ही मालूम हुआ। हमारे एक सबधी को हमने लडके से मिलने के लिए भेजा। और जानते हो कि क्या हुआ? वह निकला एक ढाबे का मालिक! मध्यस्थ की बात वैसे झूठी नही थी। उसके यहा वाकई सुबह-शाम दो-दो सौ आदमी भोजन करते थे। हमारे तो पावो तले की जमीन खिसक गयी और पहली गाडी पकड कर हम पूना वापस आ गए। उसके बाद जब कभी कोई प्रस्ताव आता है, मैं खुद जाकर सब बातें प्रत्यक्ष देखना पसद करता हू। मसल मशहूर है, दूध का जला छाछ को भी फूक फूक कर पीता है।"

समधीजी की रामकहानी से हमारा बहुत मनोरजन हुआ। इसके बाद वर-वधू की जन्मपत्रिया देखी गयी। वे एक-दूसरे से इस कदर मिलती हुई मालूम दी कि लडके लडकी के बजाय टीपनो का ही विवाह कर दिया होता तो उनका विवाहित जीवन बडे आनद से बीतता। आखिर मे निकली दहेज की बात। हमारे पूर्वजो द्वारा आरभ की गई अनेक परपराओ मे दहेज सबसे अधिक उपयुक्त प्रथा है। सच पूछा जाए, तो सुधारको द्वारा आरभ किये गये अनेक सुधारो मे से कुछ को मैं पसद करता हू। मन से अत्यधिक उदार होने के कारण विरोधियो की उपयुक्त बातो को मान लेने मे मुझे कोई सकोच नही होता। उदाहरणार्थ, शादी-ब्याह मे फजूलखर्ची न करने की बात मुझे पूर्णत मजूर है। इस मामले मे मेरा बर्ताव भी सदा मेरी वाणी के अनुरूप होता है। सिर्फ दहेज का इसमे अपवाद है, क्योकि मैं उसे खर्च मानता ही नही। परतु इस सबध मे भी मेरे मन में कोई विशेष जिद की भावना नही। आज लडके का विवाह होते समय मैं दहेज का प्रबल समर्थक [redacted]। परतु कुछ वर्ष बाद जब उसके बाद की लडकी का ब्याह होगा, तब हो सकता है कि सुधारको के समझाने के कारण मेरे विचार बदल जाए। इतना ही नही, उसकी पीठ का लडका जब विवाह योग्य होगा, तब तक वे फिर बदल जाए इसकी भी पूरी सभावना है। विचारक और उदारमतवादी मनुष्य कभी अपनी बात से चिपक कर नही बैठते। परिवर्तन ससार का नियम है। बदलती हुई परिस्थिति के अनुसार विचारो को भी बदलते रहना समझदारी और परिपक्वता का लक्षण है। इसलिए हमारे इन वैचारिक परिवर्तनो से किसी को अचरज होना तो नही चाहिए।

दहेज के प्रति मेरी इतनी आसक्ति होने का एक और कारण भी था। हाल ही मे मैंने अपनी महारानी विक्टोरिया का जीवन चरित्र पढ़ा था। उनके अलौकिक गुणों का परिचय होने के बाद उनके प्रति मेरी भक्ति इतनी बढ़ गयी है कि जहा से भी हो, मैं उनकी प्रतिमाओं का सग्रह करके उनकी पूजा करने लगा हू। हमारे देश मे उनकी छवि रौप्यमुद्राओ पर अकित रहती है। अत आजकल मैं उन्ही का सग्रह करने लगा हू। यह लगाव यहा तक बढ चुका है कि गाव की जमीदारी से जब कोई आसामी रकम लेकर आता है तब पहले तो मैं घटा तक रुपया पर छपी हुई उस मनोहारी मूर्ति का निरीक्षण करता रहता हू और फिर उन्हें तिजोरी को सुरक्षा के लिए हवाले कर देता हू। कुछ दिन हुए महारानी साहिबा तो हमे छोडकर चली गइ। अब हमारे जैसे उनके परम भक्तो का पवित्र कर्तव्य हो जाता है कि उनकी मुद्राओ का और भी अधिक भक्तिभाव से पूजन करते रहे। उनके वियोग को तो हमने किसी न किसी प्रकार सह लिया। अब उनके रौप्यप्रतीको का वियोग न सहना पड़े ऐसी भगवान से प्रार्थना है।

किस्सा कोताह, काफी सौदेबाजी के बाद ममधीजी से पाच हजार रुपया नकद दहेज तय हुआ। रुपये मिलते ही ब्याह शादी मे अधिक खर्च न करने के सिद्धात पर मैंने तुरत अमल करना शुरू कर दिया। चार हजार रुपये तो उसी रोज सरकारी बैंक मे जमा करवा दिये। बाकी के एक हजार मे से आठ सौ के गहने-कपड़े और दो सौ मे बाकी सब निरर्थक खर्च करना तय किया। इष्टमित्रो और सबधियो को अधिक सख्या मे निमत्रित न करने का निश्चय किया। जिन्हे निमत्रित करना नितात आवश्यक था, उन्हें भी निमत्रण-पत्रिका ऐन समय पर मिले इस तरह भेजने की तरकीब सोची। इससे सबको बडी सुविधा रहती है। हमने आग्रहपूर्वक बुलावा दिया हो, तो सामने वालो को भी ना कहना मुश्किल हो जाता है और उन्हे अपने सौ काम छोडकर और अपना नुकसान करके आना पड़ता है। इस प्रकार दूसरो को तकलीफ देने की अपेक्षा ऐसी व्यवस्था करना कही अच्छा है कि कुकुम् मडित निमत्रण पत्रिका ठीक मुहूर्त के दिन ही उनके हाथो मे पडे। इससे शिष्टाचार भी निभ जाता है और परेशानी भी बच जाती है।

निमत्रण-पत्रिका मे शब्दाडबर फैलाने मे अलबत्ता हमने कोई कसर नही छोडी। सहकुटुब सपरिवार पधार कर समारोह को सफल करें।' 'आपके

आगमन से ही शोभा मे अभिवद्धि होगी।' 'सुदामा की झोपडी मे कृष्ण अवश्य पधारें।' इत्यादि वाक्यो की ऐसी भरमार मचा दी कि पढने वाला उनके बोझ के नीचे ही दब जाए। लोगो को सकुटुब-सपरिवार ही नहीं, बल्कि इष्टमित्रो और आश्रित सेवको के साथ पधारने की विनती भी की गयी। सिर्फ निमत्रण पत्र डाक म ऐसी योजना से डाले कि विवाह के दो दिन बाद मिलें। अब कोई माई का लाल एकादशी को पत्र मिलने पर भी, दो-चार सौ मील की यात्रा करके अष्टमी के मुहूत पर आ धमकने का चमत्कार कर दिखाता, तो हमे पत्रिका म लिखे अनुसार सचमुच ही बहुत आनद होता और उसकी खातिरदारी मे हम कोई कसर न उठा छोडते।

इतनी पूव तैयारी के बाद हम एक रोज पूना जा पहुचे। दूसरे दिन अक्षत-निमत्रण की बारात[1] निकाली गई। हमारे पक्ष के लोग यद्यपि कम थे, पर वधू पक्ष के लोग अधिक होने के कारण बारात मे शोभा की कमी नही रही। दूसरी बात यह हुई कि उसी समय हमारे साथ-साथ सडक पर से और भी दो-तीन बारातें गुजर रही थी। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' धारणा से हमने कुछ देर के लिए उन्हे भी अपनी ही समझ लिया। अक्षत निमत्रण कसबे के गणेशजी को दिया गया। ऐन समय पर उपस्थित रहने म उनसे कोई गलती न हो जाए इसलिए मुहूत की घडी, पल, विपल तक की याद उन्हे बारबार जता जता कर दी गई। वापस लौटते समय आखिर गडबडी हो ही गई। मेहमानो मे स दो पुरुष और तीन स्त्रिया गलती से किसी दूसरी बारात मे शामिल होकर गलत जनवासे म पहुच गये। बाद मे पता पूछते हुए वे बडी मुश्किल से वापस आये।

इसके बाद रात को सीमत-पूजन[2] का समारोह हुआ। इस सबध मे मेरे मन म आरभ से ही कुछ गलतफहमी थी। मैं इसका अथ 'श्रीमत पूजन' किया करता था। इस समारभ मे मैं जब कभी उपस्थित रहता श्रीमता (धनवानो) का बहुत

[1]महाराष्ट्र में वर की बारात निकालने से पहले यह बारात निकालने का रिवाज है। इसमें वर और वधू, दोनो पक्ष के लोग सम्मिलित होते हैं और सबसे पहले विघ्नहर्ता देवता (पूनामें कसबा पेठ के गणपजी) को अक्षत देकर निमत्रित किया जाता है।—अनु

[2]यह उत्तर भारत के 'खत' से मिलती जुलती रस्म है। वधू पक्ष के लोग वर का सम्मान करते हैं और अपनी हैसियत के अनुसार उसे रुपया नारियल वस्त्र अगूठी आदि भेंट देते हैं।—अनु

अधिक आदर-सत्कार करना। अब की बार हमारे उपाध्यायजी ने मुझे इसका यही अर्थ समझाया। तब से पुरानी बेकार रिवाजों के लिए मैं श्रीमंतों के प्रति अत्यन्त तिरस्कार की दृष्टि से देखने लगा हूं।

दूसरे दिन घर में देवी-देवताओं की स्थापना का समारोह हुआ। मेरी पत्नी की मृत्यु हो चुकी थी। इसलिए उसके स्थान पर एक सुपारी की नियुक्ति की गई। उसकी स्थापना होते ही कुछ ऐसा चमत्कार हुआ कि मेरे मन में उसके प्रति सचमुच ही प्रीति उत्पन्न होने लगी। इसलिए मैं लोगों की नजर बचा कर मैं भावपूर्ण और सजल नेत्रों से उसका निरीक्षण करने लगा। पहले एक बार आम के पौधे के साथ मेरा विवाह हो चुका था। इस पर मैंने जैसा अहैतुक प्रेम किया था कुछ वैसा ही आकर्षण मुझे इस सुपारी के प्रति भी होने लगा।

इधर एक तरफ पेट में धीरे धीरे भूख का प्रादुर्भाव होने लगा था तो दूसरी ओर नवग्रह षोडश मातृका इत्यादि तैंतीस करोड़ देवी देवताओं पर पुष्पाक्षत चढ़ाते चढ़ाते हाथों के और हर संकल्प के साथ 'मद्यम्', 'मम' इत्यादि शब्दों की रटन करते-करते मुंह के जोड़ ढीले होने की नौबत आ रही थी। इतने में अग्निनारायण को घृतमिश्रित आहूतियां अर्पण करने का दौर चला। नैवेद्य और हविष्य के विभिन्न पदार्थों को देख-देख कर उन्हें उदरस्थ कर लेने का अधार्मिक और अनाचारी विचार रह रह कर मन में उठने लगा। आखिर हर अनिष्ट की तरह इस लंबी पूजाविधि का भी अंत हुआ और हम मिठाई-नमकीन पर हाथ साफ करने के लिए भीतर के कमरे में चले गए।

देव-स्थापना होते ही मैंने घर के लोगों पर हजामत न बनवाने का कठोर निर्बंध लाद दिया था। इस निर्णय के पीछे धार्मिक विधि के पालन के उपरांत सुधारकों के मत को मान कर कुछ किफायत करने का भी हेतु था। परंतु इस स्पष्ट आदेश की अवहेलना करके घर की किसी विधवा चाची-मामी ने सिर मुंडवाने की धृष्टता की। यह सुनकर मेरी तलवों की आग मस्तक तक पहुंच गयी और विधवा केश-कर्तन की प्रथा को मैंने जी भर कर गालियां दीं। क्रोध के आवेश में धर्म के इस पवित्र आचार के विरुद्ध मतप्रदर्शन करने के लिए बाद में मुझे बहुत पश्चात्ताप हुआ। शाम को तेल चढ़ाना इत्यादि रस्में पूरी होकर गोधूलि में विवाह भी संपन्न हो गया।

इस शुभ प्रसंग पर नृत्य करने के लिए वारांगनाएं उपस्थित नहीं थीं यह

साल म एक कक्षा का ज्ञान भी भुलवाया गया तो पाच चार वर्षों म सब ठीक हो जाएगा और वह हमारी पौराणिक सतीसाध्वियो की श्रेणी मे बैठने के काबिल हो जाएगी ।

हमारी प्राचीन प्रथाओं ने घर की चहारदीवारी के भीतर ही स्त्रीशिक्षा की कैसी सुदर व्यवस्था कर रखी है। स्कूलो म पढाया जाने वाला समस्त ज्ञान उन्हे घर बैठे ही प्राप्त हो जाता है। रसोईघर, कोठार, शयनगह और प्रसूति की कोठरी ---घर का यह सीमित दायरा ही स्त्रियो के लिए सच्चा भूगोल है। अपने अभावो की शिकायत और पडोसियो की निंदा ही उनके लिए सच्चा इतिहास है। चौका-चूल्हा उनका विज्ञान है, रसोई रसायनशास्त्र है और मेहदी बिंदी लगाना उनकी चित्रकला है। झाडना बुहारना, छानना फटकना, चक्की पीसना और बरतन माजना आदि घरेलू काम उनके लिए आवश्यक व्यायाम जुटा देते हैं और सास ननद से बहस कर-करके उनकी तकशक्ति सदा तीखी रहती है।

सनातन धम का पक्ष लेकर किए गए मेरे इन तर्कों से लडकी वालो का विशेष समाधान हुआ हो, ऐसा मालूम नही दिया। वे लोग मेरे आधुनिक फशन के कपडो की ओर भी घूर-घूर कर देख रहे थे। अत म उनमे से एक ने लडके को देखने की इच्छा व्यक्त की। अब कही बात मेरी समझ मे आयी। परतु बात को इस हद तक आगे बढा कर ऐन वक्त पर पीछे हट जाना मेरा स्वभावधम नही। अत रचमात्र भी सकोच प्रदर्शित किये बिना, सीना तान कर मैंने कहा कि लडका मैं ही हू। यह सुनते ही सब लोग तालिया बजा बजा कर हसने लगे। मेरी समझ मे नही आया कि इसमे उपहास की क्या बात थी। खैर, बदतमीजी का यह दौर समाप्त होते ही लडकी के पिता ने स्पष्ट कह दिया कि उनकी यह सबध करने की इच्छा नही है।

मैंने उन्हे समझाने का बहुत प्रयत्न किया। मैंने बार बार कहा कि ' इस प्रकार जल्दबाजी से बनती हुई बात को बिगाडिये मत। दूर की सोच कर निणय कीजिये। मैं यह विवाह कवल मेरी स्वगवासिनी स्त्री का मन रखने के लिए कर रहा हू। अपनी पत्नियो के प्रति मेरे मन मे कितना प्रगाढ स्नेहभाव है यह इससे प्रमाणित हो जाता है। जैसा प्रेम मैंने उन सबसे किया वसा ही इससे भी करूगा। दुर्भाग्य से इसके सामने भी यदि वही प्रसग आया जो अब तक मेरी चार पत्नियो पर आ चुका है, तो जिस प्रकार उनका मन रखने के लिए मैं एक के बाद एक विवाह

करता गया, उसी प्रकार इसकी इच्छा पूरी करने के लिए, इसके बाद विवाह करने की कतई इच्छा न होने पर भी मैं फिर एक बार सेहरा बाधने को तैयार हो जाऊंगा। मेरी ओर से इसे रचमात्र भी कष्ट नही पहुचेगा। हमारे पूर्वज काम वासना की तृप्ति के लिए नही बल्कि सतति के लिए विवाह करते थे। मैं उनसे भी एक कदम आगे बढने को तैयार हू। इस विवाह के मूल मे मेरी पुत्रोत्पत्ति की इच्छा भी नही। भगवान की दया से मेरे बडी उम्र के कई लडके हैं। यह तो विशुद्ध प्रीतिविवाह होगा। इसकी जड मे वासनातृप्ति, पुत्रेच्छा आदि कोई क्षुद्र मनोवृत्ति न होकर विशुद्ध प्रेम ही इसका एकमात्र कारण होगा। दरअसल इस उम्र म मैंने जो विवाह करने की सहमति दी है वह देह का देह से मिलन करने के लिए नही, अपितु मन का मन से और आत्मा का आत्मा से सगम करने के लिए है। एक बात और है। हमारे विद्वान शास्त्रकार हमेशा यही कहते रहे हैं कि कुटुबी सबधियो के बच्चो का पालन-पोषण करते-करते विधवाओ की वासनाए नष्ट हो जाती हैं और वे कष्ट परिश्रम मे ही अपने जीवन की सार्थकता मानने लगती है। इस दृष्टि से भी आपकी लडकी बहुत सुखी रहेगी और उसे आत्मोन्नति का पूरा मौका मिलेगा। भगवान की कृपा से और पूर्वभार्याओ के सहयोग से मेरा कुनबा इतना विस्तृत हो चुका है कि नातीपोता की तो गिनती ही नही। उनकी देखभाल करते-करते आपकी कन्या की सारी तामसिक वृत्तिया नष्ट होकर विशुद्ध सात्विकता मात्र बाकी रह जाएगी। हमारे परम पवित्र धर्म ने बाला जरठ विवाह के मार्ग म कोई बाधा नही डाली। एक के बाद एक चार विवाह करके मैंने तो इस मामले मे मिसाल कायम की है। नगर के लोग इसके लिए मेरा बहुत आदर करते हैं। साराश यह कि इस विवाह को हमारे धर्म, रूढि और लोकाचार, तीनो की मान्यता प्राप्त होने के कारण इसमे समर्थन देने से आप लोग पुण्य के भागी होगे, परतु विरोध किया तो घोर पाप के भागी होगे।'

इस प्रकार के उपदेशपरक सभाषण का उन चिकने घडो पर कोई प्रभाव नही पडा और वे अपने निर्णय से चिपके रहे। आखिर निराश होकर मैं घर लौट आया। दूसरे दिन से फिर लडकिया देखने का नित्यक्रम शुरू किया। परतु जहा जायें, वहा वही बात। कही-कही तो खुद लडकी ने मेरा उपहास करना शुरू किया। यह सब आधुनिक शिक्षा का दुष्परिणाम था और पिछले कुछ वर्षों म सुधारको ने हमारे समाज को किस हीन अवस्था मे पहुचा दिया है इसका प्रमाण था।

बात इस हद तक बढ जाने पर मैं निरुत्साह हो गया। विवाह जैसे धार्मिक, सात्विक और जन्मजन्मांतर के सबध की महत्ता और पवित्रता समझने की भी जिनमे अक्ल नही ऐसी लडकियो और उनके अभिभावकों से फिर से बात भी न करने का मैंने निश्चय किया। फिर से विवाह न करने की मेरी भीष्मप्रतिज्ञा जो आखिर तक अक्षुण्ण रह सकी, वह केवल इस निश्चय के बल पर।

तुकाराम महाराज ने ठीक ही कहा है कि सकल्प का बल ही उसकी सफलता का कारण होता है।

9 विवाह समारोह

पिछले परिच्छेद म मेरे अपने विवाह के सबध मे चर्चा हो चुकी है। उसने बाद मेरे बडे लडके के विवाह का योग आया। प्रस्तुत लेख मे उसका वणन किया जा रहा है।

लडका देखने के लिए पूना से समधी साहब हमारे यहा पधारे। उन्होने लडके को प्रत्यक्ष देखकर और अनेक प्रकार के प्रश्नो द्वारा उसकी परीक्षा करके उसे पसद किया। समधी द्वारा लडके की ऐसी कडी परीक्षा की जाने के कारण पहले तो मुझे बहुत बुरा लगा। परतु उन्होने जब इस सावधानी का कारण बताते हुए हाल ही म हुए अपने अनुभव का वणन किया तब क्रोध के बजाय मुझे हसी आने लगी। समधीजी का अनुभव उन्ही के शब्दो मे इस प्रकार था —

"हमारी लडकी हजारो मे एक, सुदर और गुणी होने के कारण उसके लिए घर बैठे उत्तम वर मिल जाएगा ऐसा हमे विश्वास था। इसलिए आरभ म उसके लिए लडका ढूढने की मैंने कोई भागदौड नही की। धीरे धीरे उसके लिए कई प्रस्ताव घर बैठे आने लगे। परतु कही कुछ तो कही कुछ त्रुटि अवश्य दिखाई देती और रिश्ता कही पक्का नही हुआ। अत म बबई के एक धनी सज्जन हमारे यहा पधारे और लडकी को देखकर उसे पसद किया। वर की वे बहुत तारीफ करने लगे। कहने लगे कि दो-दो सौ लोग तो सुबह शाम उनके यहा भोजन करते हैं। मेरे भी मुह मे पानी भर आया। इतन बडे घराने के लडके को देखने की इच्छा व्यक्त करने स उन्हे कही बुरा न लग जाए इस डर से हमने वह बात ही नही छेडी। इतना ही नही ज मपत्री आदि मिलाने को भी विशेष महत्व नही दिया और तुरत अपनी स्वीकृति दे दी। शीघ्र ही मुहूर्त भी पक्का हो गया। विवाह बबई म होना तय हुआ। विवाह से कुछ दिन पहले हम इष्टमित्रो और सबधियो के

अलग से बनाने की जरूरत नहीं। सुधारकों के दुराग्रह के कारण हमारी इस परम प्राचीन और रसपूर्ण प्रथा से हम वंचित रह गये। एक विचार यह भी मन में आया कि मंगलाष्टक के श्लोकों का उच्चारण करते समय पंडित लोग अधिक मालपलट लेने का प्रयत्न न करें और त्रमुरपन पर कुछ नियंत्रण रखें तो शौकीनों को घुंघरुओं की छमाछम का अभाव उतना खलेगा नहीं।

इसके बाद के दिन में समधियाने में तरह तरह की रस्में अदा होने लगीं। इन रस्मों में स्त्रियों का प्राधान्य रहा। सजीधजी स्त्रियाँ बड़ी ठसक के साथ इधर से उधर और उधर से इधर आने जाने लगीं। भुसावल, इटारसी जैसे बड़े स्टेशनों पर जिस प्रकार रेल के कई इंजन भाप छोड़ते हुए गश्त लगाते रहते हैं कुछ उसी प्रकार समधियाने की इन पुरंध्रियों के झुंड के झुंड मटरगश्ती करने लगे। उनकी इस व्यस्तता का कारण पुरुषों में से किसी की भी समझ में आना मुश्किल था। जेठ की भयानक गर्मी में भरी दोपहर का सूरज सिर पर तपता रहने पर भी ये ब्राह्मण कुलोत्पन्न वारांगनाएँ नंगे पाँवों कोलतार की सड़कें नाप रही थीं और सूरज का मानो उपहास करने के लिए दोशाले ओढ़-ओढ़ कर अपनी संपन्नता का प्रदर्शन कर रही थीं।

इन दिनों समधियाने से रोज सुबह हमारे घर की स्त्रियों के लिए परोसा आता था। उसमें मिठाई नमकीन पूरी-कचौरी आदि सामग्रियाँ तो रहती ही थीं पर साथ ही डंठलों से बनी सब्जियाँ बासी साग रायते इत्यादि भैंसों के खाने योग्य वस्तुओं की भरमार भी रहती थी। कन्यापक्ष के लोग इन परोसों को अपनी सांकेतिक भाषा में तिरस्कार से सानी' क्यों कहते हैं इस बात का इससे स्पष्टीकरण हो गया। इस शब्दप्रयोग के पीछे एक और भी औचित्य छिपा हुआ है। विवाह समारोह में वर की माता से ज्यादा महत्त्व किसी का नहीं होता। वही इस पूरे समारंभ की महारानी होती है। संस्कृत में महारानी और भैंस दोनों के लिए एक ही शब्द महिषी का प्रयोग होता है। अतः हमारा अनुमान है कि समधिन के लिए भेजे जाने वाले परोसे को सानी कहने की परंपरा इस द्वयर्थक शब्द की गड़बड़ी के कारण ही चली होगी। इसके अलावा यह भी सबके अनुभव की बात है कि परोसा आने में कभी नागा या देर हो जाए तो वरमाता समधिनजी सचमुच ही मरकनी भैंस की तरह तैश में आकर जो सामने आ जाए उसी को सींग मारने लगती हैं।

दूल्हा जब पहली बार ससुराल में भोजन करने जाता है, तब किसी बात की फरमाइश को लेकर उसके रूठने की प्रथा हमारे देश के सभी समाजों में पायी जाती है। यह हमारे पूर्वजों की दूरदृष्टि की द्योतक है। इससे हमारे नौजवानों को कुछ सांपत्तिक लाभ होने के साथ-साथ उनमें अपक्षोभगजनित क्रोध जैसे घातक मनोविकार को काबू में रखने की आदत जन्म लेती है। जनेऊ इत्यादि अवसरों पर भी रूठने का दिखावा करने की जो प्रथा प्रचलित है, उसका रहस्य भी यही है। सौभाग्य से किसी नौजवान के सामने हमारी तरह चार-पांच बार विवाह करने का प्रसंग आए, तब तो चाहे जब रूठने की और उतनी ही बार आसानी से खुश हो जाने की कला उसके बायें हाथ का खेल हो उठेगी। इस आर्य परंपरा के अनुसार मैंने जब अपने लड़के को रूठने का दिखावा करने की सूचना दी, तब वह मूर्ख मेरे ऊपर सचमुच ही नाराज हो उठा। परंतु इससे उसकी मुखमुद्रा पर जो तामसी भाव उत्पन्न हुए उनका हमारे समधीजी पर तत्काल प्रभाव पड़ा और जामाता के न मांगने पर भी उन्होंने एक कीमती अंगूठी जबरदस्ती उसकी उंगली में पहना दी।

भोजन के समय पुरुषों की पंगत में दो सनातन नियमों का पालन बड़ी तत्परता से किया जाता है। भोजन करने वाले देर से आने में अपना गौरव मानते हैं और परोसने वाले आग्रह करके ठूस-ठूस कर खिलाने में। भोजन के लिए देर से बैठने पर केले के पत्ते पर परोसा हुआ भात ठंडा होकर कड़क सा हो जाता है। इस बात की मेहमान लोग अक्सर शिकायत भी करते हैं। परंतु इन बुभुक्षितों को यह मालूम नहीं होता कि कड़कियों के उदर में प्रच्छन्न अग्नि का निवास होने के कारण वे पाचन क्रिया में सहायक होती हैं। लड़की वाले बारातियों से भोजन की प्रार्थना करते समय चेहरे पर एक प्रकार की नपीतुली और कृत्रिम मुस्कराहट धारण किये रहते हैं। हाथ जोड़कर दांत निपोरते रहने की प्रथा भी बड़ी पुरानी है। लड़कियों के विवाह के समय मंडप के खंभे को समधी मानकर मैं इस अभिनय का घंटों तक अभ्यास कर चुका हूं। इसलिए अब यह कला मुझे साध्य हो गयी है और उसका स्वांग मैं अनायास ही कर सकता हूं।

जिस प्रकार रेलगाड़ी—फिर वह सवारी गाड़ी हो या मालगाड़ी—इंजन और ब्रेक के बिना एक कदम भी नहीं चल सकती उसी प्रकार विवाह की पंगतों में—फिर वे पुरुषों की हों या स्त्रियों की—वर-वधू के बिना काम नहीं चलता। तेल

चढ़ने के दिन से लगा कर विदा तक उन बेचारो को हर रस्म म भाग लेना पडता है और आखिर तक उनकी बडी दुदशा हो जाती है। पेट मे अजीण होने पर भी दिन मे कई बार—हर पगत के साथ—गरिष्ठ भोजन करना पडता है। नाटको म जिस प्रकार अ य आलतू फालतू पाट करने वालो की अपेक्षा नायक-नायिका पर ही काम का बोझ अधिक पडता है उसी प्रकार विवाह मे भी तमाशबीनो और बारातिया की अपेक्षा वरवधू को ही अधिक परिश्रम करना पडता है। उपस्थिता—विशेष तौर पर छोटी उम्र की लडकिया और बडी उम्र के रसिक वृद्धा—के मनोरजन क लिए उ ह हर पगत म एक-दूसरे का दो चार कौर खिलाने पडते हैं और पगत के अत म एक दूसरे के दातो मे दबाया हुआ पान का बीडा अपने दाता स आधा काट लेने की एक-दूसरे की मुट्ठी खोलने की और एक-दूसरे द्वारा रूमाल मे लगाई हुई गाठें खोलने की कवायत करनी पडती है। इन सबसे भी बौद्धिक क्षेत्र म मानसिक कसरत होती है। पहेलिया बुझाने की और उनमे तुकबदी के साथ एक-दूसरे का नाम चतुराई से जोड देने की[1] प्रथा तो अब हमारे यहा इतनी लोकप्रिय हो उठी है कि उसके बिना विवाह समाराह सपूण ही नही माना जाता।

ज्यौनारो म हमारी रूढियो के कारण पुरुषा की अपक्षा स्त्रियो की पगत म ही अधिक रग जमता है। समधिना का मजाक उडाने के लिए कचौरिया म भूसा और पनौडियो म गोबर भरने की प्रथा बडी लोकप्रिय है। खाते समय पहेलिया बुझा बुझा कर एक-दूसरे पर ताने कसने की प्रथा भी बहुत पुरानी है। हमारे यहा जिस प्रकार मकर सक्राति का पव मधुर भाषण के लिए और होली का त्यौहार गाली गलौज के लिए सुरक्षित रखा गया है उसी प्रकार विवाह-समारोहो म पहेलिया द्वारा वर-वधू की सराहना करने और समधी समधिना की खिल्ली उडाने का रिवाज भी पूणत स्थापित हो चुका है। पहली श्रेणी के सुभाषिता का उपयोग जिस प्रकार वर वधू का आपसी प्रेम सुदृढ करने के लिए हाता है उसी

[1] महाराष्ट्र में विवाह के अवसर पर यह प्रथा बहुत लोकप्रिय ह। इसे उखाणा कहा जाता ह। दो या चार पक्तियो के आशुकाव्य मे काफिया बदी के साथ वर वधू या समधी समधिन का नाम चतुराई से गूथा ह। व्याजस्तुति या व्याजनिदा इसका मुख्य हेतु होता है। अकसर वर-वधू की प्रशसा और समधी-समधिनों पर छीटाकशी होती है। तानेकशी या एक दूसरे पर दुलत्तिया झाडने के लिए भी इसका प्रयोग होता ह।—अनु

प्रकार दूसरी श्रेणी के दुर्भाग्यिता म दोनो कुला मे खानदानी वैर उत्पन्न कराने की क्षमता होती है। यह एक छोटी सी त्रुटि छोड दी जाए तो इस प्रथा म और कोई हानि नही है बल्कि उससे चातुय, प्रसगावधान हाजिरजवाबी, आशुकवित्व आदि गुणो का ही विकास होता है। अत्यानुप्राम मिलाना आवश्यक होने के कारण स्त्रियो को इससे कवित्व की प्रेरणा मिलती है। दोनो पक्षो को अपने अपने अवगुण मालूम पडने से उन्हे उनम सुधार करने का मौका मिलता है। 'निंदक नियरे राखिये आगन कुटी छवाय' वाली उक्ति का उद्देश्य इस प्रथा द्वारा बहुत अधिक चरिताथ होता देखा जाता है।

इस प्रथा का हमने जो समथन किया है वह कितना वस्तुनिष्ठ और पक्षपात रहित है यह प्रमाणित करने के लिए एक ही उदाहरण काफी होगा। समधियाने की एक बालिश्त भर की लडकी ने एक पहेली म मेरे नाम का उल्लेख 'कदरावक्स' कह कर किया था। इसके पीछे एक पुरानी दास्तान है। जवानी म एक बार मेरे अगले दो दात टूट गये थे। तब दोस्तो ने मुझे यह तखल्लुस भेंट किया था। लडकी ने उसी पर ताना कसा था। वसे देखा जाए तो इस विवाह के समय तक मेरे बचे हुए तीस दात भी एक एक करके गिर चुके थे। अब तो मेरा पूरा मुह ही कदरा के समान हो गया था और इस उपनाम की साथकता और भी बढ गयी थी। फिर भी इस असभ्य नाम के उल्लेख द्वारा मेरा अपमान करना अन्याय की बात थी और मुझे इससे बहुत गुस्सा आया। उस बात की याद आ जाने पर आज भी मन अस्थिर हो उठता है। ऐसी चुभन वाली मन स्थिति मे भी हमने जो इस प्रथा का समथन किया है यह हमारी निष्पक्षता, उदारता और सिद्धातप्रियता का ही उदाहरण माना जाना चाहिए।

मेरे अगले दो दात जवानी मे ही गिर गये थे इसका उल्लेख ऊपर हो चुका है। उनके गिरने मे मेरा कोई दोष नही था यह निम्नलिखित वणन से स्पष्ट हो जाएगा —

आज स कोई तीस वष पहले हमारे नगर म अग्रेजी सभ्यता का प्रचार बडी तेजी से होने लगा था। उसी के अतगत एक क्रिकेट-क्लब की स्थापना हुई थी। हर पाश्चात्य प्रथा का विरोधी होने के नाते पहले तो मैं उस क्लब का सदस्य नहीं बना। परन्तु फिर पाडुतात्या जसे मित्रो के आग्रहवश मैंने भी अपना नाम सदस्यता-सूची मे लिखवा दिया। एक बार मेंबर बनते ही मेरी देह म मानो

वीरश्री का सचार हुआ और साहब लोगा का मुकाबला करके उनके इस रजवाडी खेल म उन्ही को शिकस्त देने के विचार मेरे मन मे उठने लगे। उनके कुशल खिलाडियो का हरान की कई योजनाए मन म बनी और आखिर एक दिन हमने गारे बनाम हिंदुस्तानियो का मच निश्चित कर डाला। मैच के दिन हम धोतियो को घुटनो तक चढाकर और लागें कसकर, हाथो म बैट लिए वीरश्री के मद मे पूरे जगत को तुच्छ समझते हुए मैदान पर पहुचे। मेरे उत्साह को पहचान कर हमारे कप्तान न पहले मुझे ही बल्लेबाजी के लिए भेजा। आगे चलकर जब मैं ससार प्रसिद्ध क्रिकेटपटु बन जाऊगा तब मेरा रसभरित जीवनचरित्र प्रकाशित होगा और चरित्रकार चरित्रनायक की मुलाकात के लिए आएगा तब मुझे इस प्रथम मच का वर्णन करना पडेगा इस आशय से दिन, तारीख आदि का ब्योरा मैंने सुबह ही अपनी डायरी म लिख लिया था। मैं निभय मन स पहली गेंद की प्रतीक्षा करन लगा। मेरा मनोरथ पूण होने मे अधिक देर नही लगी। शीघ्र ही गेंद तोप के गोले की रफ्तार से मेरी ओर आती हुई दिखाई दी। उस पहली ही गेंद ने मेरे भविष्य के सारे मनोरथो को और उत्कष की सारी योजनाओ को चकनाचूर करके मिट्टी मे मिला दिया। उसका मुकाबला करने का और कोई उपाय न सूझने पर मैं बैट को फेंककर दोना हाथो से आखो को ढककर खडा रहा। पर सवनाश फिर भी नही रुका। क्रिकेट की गेंद वैसे भी आवश्यकता से कुछ अधिक कडी होती है, और यह तो डाकगाडी की रफ्तार से आकर मेरे दातो पर बजी। उसन विकेट तो नही उखाडी, पर मेरे एक दात को जडमूल स उखाड दिया। पीडा से चक्कर आ जाने के कारण मैं वही बैठ गया। इस आकस्मिक विघ्न के कारण उस रोज का खेल वही स्थगित कर दिया गया और हम घर लौट आए।

दूसरे दिन मदान पर जाते समय मेरे साथियो ने मुझे घर पर ही रुक जाने की राय दी पर इससे मेरा आहत अभिमान और भी जाग्रत हुआ और हाथ म बट लेकर मैं फिर खेलने को चला। मन मे विचार आया कि कल योगायोग स एक बार गेंद दात पर लग गई तो अब रोज राज थोडे ही लगेगी। मेरे दाता म ऐसी कोई गुरुत्वाकषण शक्ति तो है नही कि गेंद बराबर वही पर आकर टकराये। आज उस गेंद और उसे फेंकन वाले खिलाडियो से बदला लेने का बडा अच्छा मौका है। आज तो गेंद को पीट पीटकर और खिलाडियो को पदा-पदाकर सबका

भुरकस निकाल दूगा। इस प्रकार के विचारो से प्रेरित होकर मैं फिर विकेट के सामने पहुचा। बहुत देर तक तो गेंद ने मेरी ओर आने का साहस ही नही किया। शिकार को अपने शिकजे से छूटता देखकर मेरा आवेश और भी बढा और मैंने अपने बचे हुए इकत्तीस दात पीस पीसकर प्रतिपक्षियो को चुनौती देना शुरू किया। बीच मे एक विचार यह भी आया कि मन मे इतना द्वेषभाव रखना अच्छा नही। बेचारी गेंद जब मन ही मन मुझसे इतनी डर रही है तो महज एक दात गिराने के जुर्म मे उस पर इतना दात रखना उचित नही। ऐसे उदार विचार मन मे आ ही रहे थे कि गेंद सनसनाती हुई मेरी तरफ आती दिखाई दी। उसकी इस लगन को देखकर पहले तो मेरे मन मे भी पीठ फेरकर उसी की दिशा मे जाने की इच्छा हुई। बल्ला फेंक कर मुह ढाप लेने की स्वाभाविक प्रवृत्ति भी हुई। सिद्धातवादी सुधारको की तरह अपने तत्वज्ञान पर तुरत अमल करने का विचार भी मन मे आया। परतु साथियो के उपहास के भय से मैं ऐसा न कर सका और सीना तान गेंद का मुकाबला करने को खडा रहा। उस चाडालिनी ने आज भी मेरे साथ पहले दिन का सा सलूक किया और मेरा दूसरा दात भी अपने सहोदर की खोज मे चला गया। उस दिन से क्रिकेट खेलना मैंने बिलकुल छोड दिया है। ऐसा न करता तो आने वाले महीने भर मे मेरे बाकी के तीस दात भी क्रिकेट क्षेत्र पर धराशायी हो जाते। तब से इन सख्त गेंदो की मेरे मन मे ऐसी दहशत समा गयी है कि सूचीपत्रो मे क्रिकेट की गेंद के विज्ञापन को भी मैं दोनो हाथो से मुह ढापकर ही पढता हू।

रात को हमारे परिवार की स्त्रियो ने पलक पावडे बिछाकर समधियाने की स्त्रियो को रासक स्नान[1] के लिए निमत्रित किया। नहाते समय वधू पक्ष की किसी छोकरी ने खजोली की पत्तिया हमारे पक्ष की किसी पुरध्री को छुआ दी जिससे उसका खुजा-खुजा कर बुरा हाल हो गया। इस प्रकार की बदतमीजी का अजाम समधिन के सामने नालिश से होकर बडा बखेडा खडा हो सकता था। परन्तु इन प्रसगो पर हसी मजाक के रिवाज की सनातनता को ध्यान मे रखते हुए हमने बात को वही रफादफा कर दिया।

---

[1] महाराष्ट्र में विवाहोपरात होने वाली एक और रस्म जिसमें वर वधू एक दूसरे को नहलाते हैं। दोनो पक्षों की कमसिन लडकियां भी इसमें शरीक होती हैं। दिल बहलावकी दृष्टि से इस प्रथा की तुलना उत्तर भारत की 'चौथछठी' की रस्म के साथ की जा सकती है।—अनु

अत म सब सुहागिनो को चूडिया पहनाने की रस्म अदा हुई। इन चूडिया के नाम भी बडे मजेदार होते हैं। उवशी रभा मेनका आदि इद्र के अखाडे की समस्त अप्सराओ से लगा कर कनकतारा छैलछबोली चटक चादनी झाडफानूस, स्वणचपा, तारामडल, आकाशगगा, रानीकगन इत्यादि समस्त सजीव निर्जीव चीजा के नाम चूडिया को दिए गए थे। इससे यही पमाणित हाना है कि चराचर सृष्टि की प्राय सारी चीजें नारी की मुटठी मे होती हैं। इमम सृष्टि के नियम क विरुद्ध कुछ भी नही है यह बात हमारे ममज्ञ पाठक स्वानुभव स भी कबूल करेंगे।

10 श्रावणी

इससे पहले प्रकाशित हो चुकने वाले हमारे "होली" शीर्षक लेख में हमने एक दूसरे के शरीर पर गंदी चीजें फेंकने की हमारी सनातन धार्मिक प्रथा का विभिन्न पहलुओं से विचार किया था। प्रस्तुत निबंध में उन पदार्थों का भक्षण करने से क्या परिणाम होता है, इस पर विचार किया जाएगा।

होली की एक विशेषता यह है कि वह हिंदूमात्र—फिर वह ब्राह्मण हो या शूद्र—सभी का त्योहार है। उस रोज चाहे ब्राह्मण शूद्रों पर गोबर फेंकें चाहे शूद्र ब्राह्मणियों को अशोभन गालियां दें, भगवान के दरबार में दोनों की धार्मिकता एक ही श्रेणी की मानी जाएगी और दोनों को उसका एक सा श्रेय मिलेगा। परंतु श्रावण की पूर्णिमा को किसी शूद्र ने ब्राह्मणों के साथ बैठकर गोबर खाने का प्रयत्न किया, तो उसे घोर अनाचार माना जाएगा। शूद्रों को सिर्फ गोबर उछालने का अधिकार है खाने का नहीं। गोमल खाने का अधिकार केवल पवित्र ब्राह्मणों के लिए सुरक्षित रखा गया है। इस विशेषाधिकार के लिए हमारे ब्राह्मणेतर भाई हमारी ईर्ष्या नहीं करेंगे ऐसी आशा है। इस एकाधिकार के बदले में ब्राह्मणों ने उन्हें मद्यमांस खाने पीने का अधिकार दे रखा है, इसलिए मद्यपान का दोष हम पर नहीं लगना चाहिए। हमारे शूद्र बंधु जब चटखोर ले-लेकर मांस खाते हैं या नालियों में पड़े हुए ठर्रा पीते हैं तब ब्राह्मणों के मुंह से लार नहीं टपकती। तो फिर ब्राह्मणों को गोबर खाते या गोमूत्र पीते हुए देखकर उनके मुंह में पानी भर आना योग्य नहीं। इसके अलावा हम ब्राह्मणों ने इस विशेषाधिकार की व्याप्ति को अत्यंत सीमित रखा है। इतने पशुओं में से हम सिर्फ गाय के ही मलमूत्र का सेवन करते हैं। अन्य प्राणियों के विसर्जित द्रव्यों का उदरपूर्ति के लिए उपयोग करके खाद की कीमत बढ़ाने का या सूकरों को भूखा मारने का हमारा इरादा है

ऐसा अभियोग कोई हम पर नहीं लगा सकता। ब्राह्मणेतरों पर इस प्रकार का कोई बंधन नहीं। व एक गाय को छोड़कर किसी भी पशु पक्षी का मांस खा सकते हैं और विशुद्ध देसी ठर्रे से लगाकर विलायती शराब तक किसी भी प्रकार की मदिरा का पान कर सकते हैं। यह अधिकार ब्राह्मणों के सीमित अधिकार से कहीं अधिक व्यापक है। एक दृष्टि से देखा जाए, तो हमारे अधिकार का क्षेत्र उनके अधिकारों के अपवाद तक ही मर्यादित है।

जिस रोज हमने शूद्रों को हमारे साथ समानता के स्तर पर मिलने जुलने का अधिकार दिया है उस होली के त्योहार को भी श्रावणी का ही एक प्रकार माना जा सकता है। होली और श्रावणी दोनों त्योहार पूर्णिमा के दिन पड़ते हैं। परंतु श्रावणी कुछ भी कहिए सिर्फ मनुष्यों का ही त्योहार है। जबकि होली के दिन ब्रह्माजी के मुख-बाहु-जंघा चरण आदि से उत्पन्न चातुर्वर्ण्य के लोग एक-दूसरे पर गोबर-कीचड़ उछालते हैं अतः उसे ब्रह्माजी की श्रावणी कहना अनुचित नहीं होगा। गोमय-स्नान श्रावणी का अभिन्न अंग माना गया है। इस दृष्टि से देखने पर यह भी कहा जा सकता है कि होली श्रावणी से कहीं श्रेष्ठ है। ब्रह्माजी का एक दिन जिस प्रकार मनुष्यों के दिन से करोड़ों गुना बड़ा होता है, उसी प्रकार उनकी श्रावणी भी मानवीय श्रावणी से कहीं अधिक व्यापक होनी चाहिए। इस हालत में बड़े और श्रेष्ठ त्योहार में हुड़दंग मचाने का समानाधिकार प्राप्त होने पर भी, सिर्फ सुधारकों के भरमाव में आकर शूद्रों द्वारा ब्राह्मणों के छोटे और अधिकार की दृष्टि से मर्यादित त्योहार की ईर्ष्या की जाना और पंचगव्य सेवन में हिस्सा बटाने की माग की जाना केवल मत्सर और द्वेष की निशानी है।

हम गाय के सिवा अन्य किसी प्राणी के मलमूत्र का स्पर्श भी नहीं करते। गाय के मलमूत्र पर ही हमारी इतनी भक्ति क्यों है, इसके अनेक कारण हैं। गाय का हमारे धर्म में अनन्य महत्व है। किसी युग में आर्य संस्कृति की समूची आर्थिक इमारत गोधन की बुनियाद पर ही खड़ी की गई थी। अतीत के ऋषिमुनियों की उपजीविका का एकमात्र साधन होने के कारण गाय की महिमा वेदों में भी वर्णित है। किसी प्राचीन युग में महाराज पृथु के राज्यकाल में जब पृथ्वी पर भीषण दुर्भिक्ष पड़ा था तब भगवती वसुंधरा ने गाय का रूप धारण करके और गोधन की बहुतायत करके ही मनुष्यजाति की रक्षा की थी। इसके अलावा, आततायियों के अत्याचार के रूप में उस पर जब कभी कोई भयावह संकट आता है पृथ्वी

गाय का रूप धारण करके ही विष्णु आदि देवताओं के दरबार में फरियाद करने जाती है। युद्धादि विकट प्रसंगों पर मध्ययुग के ब्राह्मणों द्वारा युद्ध रण के मैदान में पीछे रह कर गायों को आगे किया जाने के अनेक उल्लेख इतिहास में मिलते हैं। अतएव गाय को पूरी हिंदू जाति की धात्री और हर हिंदू को धर्माधिकार दृष्टि से गापोषित माना जा सकता है। ब्रह्माजी के उत्तमांग में उत्पन्न ब्राह्मणों का भी मुख होने के कारण गाय कितनी पवित्र होगी इसका निर्णय हम पाठकों पर ही छोड़ते हैं। खेद है कि पावित्र्य की इस परंपरा को एक कदम और आगे बढ़ाकर गाय के मुख तक नहीं खींचा जा सकता क्योंकि उसे शास्त्रकारों ने अपवित्र माना है। परंतु इसकी चर्चा बाद में होगी।

समूची गाय ही जब इतनी पवित्र है तो यह मानी हुई बात है कि उसके प्रत्येक अंग को (मुंह को छोड़कर) भी पावन माना जाए और उनका संबंध अन्य उदात्त बातों के साथ जोड़ा जाए। गोकर्ण महादेव का तीर्थस्थान परम पवित्र है ही। हमारे शीर्षस्थान पर विराजमान चुटिया के घेरे के लिए गोखुर का ही नाप निश्चित किया गया है। ब्याह शादियों के लिए अन्य सब मुहूर्तों की अपेक्षा गोरज मुहूर्त या गोधूलि वेला को ही शुभ माना जाता है। गाय का मुख अपवित्र होने पर भी बड़े-बड़े शिवालयों में देवता के अभिषेक का जल गोमुख से ही छोड़ने की व्यवस्था की जाती है और स्वयं भगवती भागीरथी का उद्गम भी गंगोत्री स्थित गोमुख से ही हुआ है। भगवान की अनंत लीलाओं का चिंतन करते हुए उनका नाम स्मरण भी गोमुखी में माला डालकर ही किया जाता है। आरंभ में 'गो' उपसर्ग का प्रयोग केवल पवित्र वस्तुओं के संबंध में ही होता था। परंतु बाद में गवाक्ष, गोचर, गोरोचन, गोधूम, गोरस, गोपुर इत्यादि साधारण वस्तुओं के लिए और गोखरू, गोवैद्य (नीम हकीम) आदि दुखदायक और तिरस्कार व्यंजक शब्दों में भी उसका प्रयोग होने लगा। इस प्रकार वेदों में गाय, पुराणों में गाय, अर्थनीति में गाय और व्यवहार में गाय, चारों तरफ गाय ही गाय होकर हिंदू जाति का समूचा जीवन ही गोमय हो गया।

गोबर का हमारे रोजमर्रा के जीवन में कदम कदम पर उपयोग होता है। उसकी सहायता से गांवों के कारीगर खेल खिलौने और गुड़ियाएं बनाते हैं और वैद्य लोग व्रणस्फोट के लिए उसका प्रयोग करते हैं। ग्रामीण गृहिणियों का तो वह परम सहायक होता है। उसी से वे अपने घर-आंगन को लीपती हैं और उसी के

उपले थापकर उनका ईंधन के रूप में उपयोग करती हैं। किसान खेतों में उसका उपयोग खाद के रूप में करते हैं। इस प्रकार हमारे ग्रामीण जीवन की तो आधारशिला ही गोबर पर रखी हुई है।

परंतु गोबर और गोमूत्र की सबसे बड़ी उपयोगिता है उनका भक्षण प्राशन करने में। इन पवित्र पदार्थों को शरीर पर चुपड़ने या पेट में उतारने से बड़े से बड़ा पातक दूर हो जाता है। इस विधान को दो-तीन उदाहरणों द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। काँटे से काँटा निकलता है यह तो हमारा रोजमर्रा का अनुभव है। इसी प्रकार मिट्टी जैसी मैली चीज से साफ करने पर बरतन भाँडों का मैल दूर हो जाता है और वे चमक उठते हैं। ये दो बातें यदि सही हैं तो यह क्यों नहीं कहा जा सकता कि मलमूत्र के सेवन से शरीर की अशुद्धियाँ दूर होकर वह पवित्र हो उठेगा? या इससे एक कदम आगे बढ़कर यह मानने में क्या हर्ज है कि इन परिमार्जक पदार्थों के सेवन से नरकयातना भी टल सकती है। अशन या प्रतीकात्मक प्रायश्चित भुगत लेने पर समग्र प्रायश्चित ही नहीं अपितु समूचे पातक से ही छुटकारा मिल जाता है यह सिद्धांत तो हमारे शास्त्रों पुराणों में कदम-कदम पर बिखरा पड़ा है। आपद्धर्म हमारे आचारों की बुनियाद है और ब्राह्मणों को भोजन कराके या दक्षिणा देकर तो बड़े से बड़े पातक से छुटकारा मिल सकता है। थोड़ा बहुत कायाकष्ट भुगत लेने पर तो जन्म जन्मांतर के पाप धुल जाते हैं। इसी मान्यता के आधार पर हमारे यहाँ के फकीर-बैरागी शरीर के विभिन्न अंगों में तकुए घुसेड़ते हैं, शूलों की शय्या पर सोते हैं और पंचाग्नि सहते हैं। जालंधर नाथ के क्रोध को राजा गोपीचंद ने अपनी कास्यप्रतिमा पर उतार दिया था और ईसा मसीह ने तो पूरी मानव जाति के पाप को अपने हृदय के लहू से धो डाला था। खुद सूली पर चढ़कर उन्होंने समूची मनुष्यजाति को दंड और प्रायश्चित्त से सदा के लिए मुक्ति दिला दी। मृत्यु की झूठी अफवाह उड़ाकर प्रत्यक्ष मौत को झाँसा दिया जा सकता है और क्रियाकर्म का संकल्प करके आसन्न मरण रोगी को भी बचाया जा सकता है। गणेशचतुर्थी के दिन चंद्रदर्शन करने से लगने वाले पातक को तो महज लोगों के घर पर पत्थर फेंक कर और उनकी गालियाँ खाकर दूर किया जा सकता है। ये सारी बातें यदि सही हैं तो साल में एक बार श्रावणी के दिन कुछ देर के लिए सशरीर नरकवास भुगत लेने से मृत्यु के बाद के नरक निवास को निश्चित ही टाला जा सकता है।

गोवर और गोमूत्र के सेवन से नरकवास टल नही सकता ऐसा बहस के लिए मान लिया जाए तो भी उपयोगिता कम नही होती। यहा मनोविज्ञान हमारी सहायता करता है। यह तो मानी हुई बात है कि किसी भी बात की आदत पड जाने पर वह उतनी दु सह मालूम नही देती और शरीर उसका अभ्यस्त हो जाता है। मारवाडी लोग सखिया तक हजम कर जाते हैं। इस नियमानुसार गोमल और गोमूत्र के सेवन से नरकवास न भी टल सके तो कम से कम वह सुकर अवश्य हो जाएगा।

और सब पशुओ की अपेक्षा गाय का मलमूत्र सेवन करने से एक विशिष्ट लाभ होता है। हम तो सिर्फ श्रावणी के दिन इन पथ्य पदार्थों मे घृणा नही करते परंतु गाय के लिए तो इनका सेवन नित्य का क्रम है। प्राणीमात्र के, और विशेष तौर पर मनुष्य के पुरीष सेवन मे वह किसी प्रकार का विधि निषेध नही मानती। इसलिए गोबर मे प्राणीमात्र के मलमूत्र का थोडा थोडा अश अवश्य रहता होगा जिससे वह और भी अधिक कार्यक्षम हो उठता होगा।

गोवर और गोमूत्र की वैद्यकीय उपादेयता का तो पाखडी से पाखडी सुधारक भी खडन नही कर सकता। प्रत्येक प्राणी का उदर एक अनेक औषधियो का खजाना होता है। उसमे तैयार होने वाले द्रव्यो का विश्लेषण तो साक्षात् धन्वतरी भी नही कर सकते। अन्य प्राणियो के त्यक्त पदार्थों के गुणधर्मों के बारे मे तो हम अधिक जानकारी नही, परंतु गोबर और गोमूत्र के उपकारक परिणामो से हम परिचित हैं। उनकी गधमात्र से उबकाई आने लगती है। इसलिए उनमे वमन कराने की उत्तम क्षमता होनी चाहिए। वैद्यकशास्त्र की दृष्टि से यह बहुत उपयोगी गुणधर्म है। उनका यदा कदा सेवन करते रहने से हमारे हमेशा के भक्ष्य भोज्य पदार्थों पर हमारी रुचि बढेगी यह एक दूसरा फायदा है। हमारा यह भी विश्वास है कि बेहोश व्यक्ति को यदि वे सुघाये जाए तो वह क्षणार्ध मे सारी बेहोशी भूल कर कान-पूछ फटकार कर खडा हो जाएगा। इन सब उपचारो मे केवल एक नियम का पालन आवश्यक है। ये पदार्थ उनकी शुद्ध अवस्था मे उपलब्ध होने चाहिए। मतलब यह कि गोमाता को अर्श, मधुप्रमेह आदि बीमारिया न हो, तो ही उनका उपयोग प्रभावी सिद्ध हो सकता है।

हिंदू समाज की आजीविका बडे प्राचीन काल से गायो पर ही आधारित रही है। इसलिए शास्त्रकारो ने उसकी रक्षा की दृष्टि से अनेक नियमो की रचना

करनी पड़ी। गाय की उपयुक्तता के कारण उसकी रक्षा करना प्रत्येक का धर्म है—केवल इतना ही उपदेशपरक नियम बना देने मात्र से कोई उसका पालन शायद ही करता। इसलिए गोवध को महाभयानक पातक घोषित करने के साथ साथ शास्त्रकारों को गोमल गोमूत्र के सेवन की भी सिफारिश करनी पड़ी। ऐसा करके उन्होंने बड़ी दूरअंदेशी का परिचय दिया। पुराने जमाने में किसी मनुष्य का वध करने के बाद जल्लाद उसका सिर या हाथ अपने स्वामी के सामने प्रमाण के रूप में पेश करता था ताकि हत्या की यानिरजमा हो जाए। उसी प्रकार श्रावणी के दिन गोबर-गोमूत्र के सेवन का नियम बना देने से गोरक्षा का काम अपने आप बड़ा सरल हो गया। गाय की रक्षा और निगरानी करने पर ही इन वस्तुओं की रसद अक्षुण्ण रूप से उपलब्ध हो सकती है। इसलिए इन पदार्थों का सेवन करने वाले गाय की देखभाल अनिवार्य रूप से करेंगे ही।

हिंदू धर्म और अन्य धर्मों के बीच पंचगव्य सेवन की प्रथा एक प्रकार से मेंड़ का काम करती है। न अन्य धर्मों के लोग इसको स्वीकार करेंगे न हमारे धर्म में आने के लिए उनका रास्ता खुलेगा। इससे हमारा धर्म विशुद्ध रह सकेगा। यह लाभ भी उपेक्षणीय नहीं है।

इसके बाद के लाभ का विवेचन करने से पहले एक पुरानी कथा सुनना आवश्यक है। एक बार भगवान विष्णु और ब्रह्माजी में श्रेष्ठता को लेकर बड़ा विवाद खड़ा हुआ। ब्रह्मदेव कमल की नाल में से उत्पन्न हुए हैं तो विष्णु पाँव का अंगठा चूसते हुए वड़ के पत्ते पर विहार करते रहते हैं। इस प्रकार दोनों की उत्पत्ति का संबंध वनस्पति से तो आता है परंतु श्रेष्ठ कौन, यह फिर भी विवाद का विषय बना रहा। जब किसी प्रकार से इसका फैसला नहीं हुआ तो महादेवजी ने अपनी दाढ़ में से कालभग्न नामक दैत्य को उत्पन्न किया और इस पेचीदा मसले का हल उस पर सौंपा गया। उसने वादी प्रतिवादी दोनों को अपने शरीर का विस्तार नापने को कहा। ब्रह्मा ने गुरुआत की सिर की ओर जाने की और विष्णु ने पाँव की ओर। जो गंतव्य स्थान पर पहले पहुंच जाएगा वही श्रेष्ठ माना जाएगा यह शर्त तय हुई। ब्रह्माजी ने दैत्य के सिर तक पहुंचने के लिए प्रयत्न की पराकाष्ठा की, पर सफलता नहीं मिली। चहरे तक तो वे जसे-तैसे पहुंच गए। परंतु उन दिनों रेलगाड़ी, पानी के जहाज, वायुयान इत्यादि यातायात के साधन उपलब्ध न होने के कारण कान, मुखविवर आदि खाड़ियां, नाक, ठुड्डी इत्यादि पहाड़ियों और

दाढी मूछ के घने जगलो मे से माग सूझना मुश्किल हो गया। इतने म सौभाग्य से कालभैख के गालो पर की विस्तत चरागाहो मे उन्हे एक गाय चरती हुई दिखाई दी। उस समय तक गाय के मुह को असत्य भाषण या अन्य किसी प्रकार के घृण्य पदाथ की छूत नही लगी थी। इसलिए उसकी गवाही विश्वसनीय मानी जाएगी एसा विचार करके ब्रह्माजी ने उससे प्राथना की कि वह उनके शीप तक पहुच जाने की झूठी गवाही दे दे। इसके लिए गाय को उत्कोच क्या मिला यह तो नही मालूम पर उसने सीग हिला कर सम्मति प्रकट की। हलफदरोगी करन की गवाहो की आदत मे उस जमाने से लगाकर आज तक कोई विशेष फक पडा हो ऐसा मालूम नही देता। शीघ्र ही यह सिद्ध साधक की जोडी शिवजी के पास पहुची और गाय रटी हुई गवाही को शपथ लेकर दोहराने लगी। भोलेनाथ ता शायद इसे मान लेते पर उस मोटी बुद्धि वाले दैत्य से यह सहन नही हुआ। उसने क्रोधित होकर ब्रह्माजी का एक मुख काट डाला जिसके परिणामस्वरूप पचानन चतुरानन हो गये। उन्हे यह शाप भी दिया गया कि उनकी जाति के लोग (ब्राह्मण) सब गुणा से सपन्न होने पर भी दर दर भीख मागते फिरेंगे। पेशवाओ की ऐन समृद्धि के कालखड मे भी ब्राह्मणा ने दिल्लीश्वर यवनो के सामने दात निपोर कर हाथ फलाना नही छोडा था, उससे उक्त शाप की चरितायता सिद्ध होती है। गाय को यह शाप मिला कि उस दिन के बाद उसका मुह अपवित्र माना जाएगा और वह सदा प्राणियो के मलमूत्र म मुह मारती फिरेगी।

यह कथा काशीखड से ली गयी है। थोडे बहुत परिवतन के साथ यह अन्य प्रथो और कई पुराणा मे भी पायी जाती है। उदाहरणाथ, ये शाप क्रमश राम सीता और ने दिये थे ऐसा उल्लेख रामायण म मिलता है। शिवपुराण म ब्रह्माजी की यात्रा कालभैरव के सिर की ओर न मानी जाकर शिवलिंग की परिधि नापने के लिए मानी गई है। अन्य एक स्थान पर गाय को यह शाप किसी ऋषि की पणकुटी चबा डालने के अपराध म मिला ऐसा उल्लेख है। कही-कही उसका सबध भृगुमुनि के पग प्रहार वाली कथा के साथ भी जोडा गया है। इस प्रकार ब्योरे को लेकर मतभेद होने पर भी गाय को मिले हुए शाप के विषय मे एकवाक्यता होने के कारण उसकी प्रामाणिकता के सबध म किसी शका का नहीं रहता। कभी, कही किसी ने किसी न किसी कारण से गाय को शाप या जरूर जिसके परिणामा को वह अब तक भुगत रही है। सुधारकों का

इससे समाधान हो जाना चाहिए। गाय और ब्राह्मण की उस दिन से लगाकर जो जोडी जमी वह आज तक ज्यो की त्यो चली आ रही है। बल्कि हम तो यहा तक कहूगे कि गाय और बल के जोडे की अपेक्षा गोब्राह्मण की जोडी अधिक निकट, अधिक घनिष्ठ और अधिक समानता पर आधारित है।

पचगव्य जीभ को विशेष स्वादिष्ट न लगने पर भी हमारे पुराने मित्र बहूनाना हर श्रावणी को उनका बडे शौक से सेवन करते है। उनकी राय है कि पचगव्य का मिश्रण रंग-रूप मे बहुत कुछ चाय के जैसा दिखाई देता है। इसलिए धर्माभिमानी लोगो को रोज प्रात काल उसका सेवन करने की आदत डालनी चाहिए। आरभ मे कुछ बेस्वाद लगने पर भी अत मे उसकी रुचि मधुर ही मालूम देगी। पाडूतात्या ने कुछ दिनो तक उनकी राय पर अमल भी किया। परतु वे ठहरे महा चालाक आदमी। आचमनी मे पचगव्य भरकर वे दिखावा तो उसे पीने का करते है पर हाथ की सफाई से उसका अधिकाश हिस्सा बाहर गिरा देते हैं। मुह मे तो मुश्किल से एकाध बूद जाती होगी। श्रावणी के दिन भी उनकी नजर पचगव्य की अपेक्षा सत्तू के गोलो पर ही अधिक रहती है। हमारे इन अभिन्न मित्रो की देखादेखी हम भी कभी-कभी थोडी मात्रा मे पचगव्य का प्राशन कर लेते है। उसके बदाजयका होने के कारण नही बल्कि अन्य लोगो को वह प्रचुर मात्रा मे मिलता रहे ऐसी सदिच्छा से प्रेरित होकर ही हम उसकी मात्रा को बढाते नही हैं।

श्रावणी के समय आचमनी पचपात्रो की खनखनाहट और न्यास, तर्पण सव्यापसव्य, जनेऊ को सूर्यदर्शन करवाना इत्यादि क्रियाए ऐसी लयबद्ध पद्धति से होती हैं कि इन ब्राह्मणो को कवायद सिखाकर उनकी पलटनें तयार की जानी चाहिए। ऐसा विचार दर्शको के मन मे उठे बिना नही रहता। यज्ञोपवीत का एक उपयोग साप या बिच्छू काटने पर उस अग को कसकर बाधने के लिए भी होता है। वसे हम इसमे कोई मौलिकता का दावा नही करते। 'मृच्छकटिक' नाटक मे शर्विलक जनेऊ के अनेकविध उपयोगो का विस्तृत विवेचन कर चुका है। उनके अलावा कुए से पानी खीचने गले मे फासी लगाने, भूतो को उसकी गाठ दिखाकर भगाने इत्यादि भले-बुरे कामो के लिए भी उसका प्रयोग हो सकता है। हमे खुद एक बार इसका अनुभव हो चुका है। एक रोज रात को मैं दीपक के प्रकाश मे बैठा कुछ पढ रहा था। घूमकर देखा तो क्या दिखाई दिया कि दीवार

पर एक लंबी चौडी पिशाचाकृति भी हाथ में सितार लिए बैठी है। मेरे द्वारा की गयी हलचल का अनुकरण करके वह आकृति मानो मुझे चिढाने लगी। मैंने महावीर विक्रम बजरंगी का स्मरण करके जनेऊ की गांठ उसके सामने की। परंतु जनेऊ पर प्रकाश न पडने के कारण वह उसे दिखाई नहीं दी। अत मैंने दीपक की दीवार के पास ले जाकर पिशाच को गांठ दिखाने का प्रयत्न किया। और क्या चमत्कार ! दीपक के दीवार के पास आते ही वह आकृति तुरंत अदृश्य हो गई।

श्रावणी के मंत्रों का उच्चारण करते समय पुरोहितों अध्यापकों के साथ हमारी बडी मजेदार जुगलबंदी जमती है। हमारे द्वारा एक शब्द का उच्चारण पूरा होने से पहले ही पुरोहितजी दूसरा शब्द जोड देते हैं। इससे विभिन्न शब्दों के सिर और पूछ जुडकर बडी मजेदार खिचडी पकती है। हमारा अज्ञान कहीं जाहिर न हो जाए इस आशंका से हम शब्दों के पूर्वार्द्ध का मुंह ही मुंह में गुनगुना कर केवल उत्तरार्ध का स्पष्ट उच्चारण करते हैं। यह तो हुई उच्चारण की कथा। अब रही अर्थ की बात। सो इस मामले में हमारी और उपाध्यायजी की जानकारी करीब-करीब एक ही श्रेणी की होती है। मंत्रों का जितना अर्थ वे समझते हैं उतना ही हम समझते हैं। सुधारक लोग इस प्रकार अर्थ समझे बिना मंत्रों को रटते रहने पर टीका टिप्पणी कर सकते हैं। परंतु इसका हम सयुक्तिक उत्तर दे सकते हैं। एक तो प्रतिदिन यदि उच्च स्वर से मंत्रपाठ किया जाए तो उसकी लयबद्धता के कारण सुनने वाले को ऊब महसूस नहीं होती। अंग्रेजी में एक कहावत है कि बहुत से लोग महज जीवन की बोरियत से ऊबकर मर जाते हैं। मंत्रपठन के द्वारा इस संकट से हमारी अनायास ही रक्षा हो जाती है। दूसरे, मंत्रपाठ करने से जबडे मसूडे एवं होंठ और जीभ के स्नायु मजबूत होते हैं। तीसरी बात यह कि जिस प्रकार जम्हाई आने से स्वास्थ्य अच्छा रहता है ऐसी बहुत से डाक्टरों की राय है उसी प्रकार मुंह को बार-बार खोलने मूंदने से और जीभ का निरंतर उपयोग करते रहने से भी स्वास्थ्य को लाभ पहुंचता है यह आसानी से सिद्ध किया जा सकता है। चौथी बात यह कि वर्तमान युग में विज्ञान विषयक और अर्थशास्त्र विषयक अज्ञान के कारण हमारी जो दुर्दशा हुई है उसकी सातत्य से याद दिलाकर ये मंत्र हमारे मन में अभिमान का जन्म नहीं होने देते। भगवान के सामने हाथ जोडकर केवल 'मो सम कौन कुटिल खल कामी' आदि स्वीकृति दे देने मात्र से काम नहीं चलता। हम यदि अपने अज्ञान

को ईश्वर के समक्ष स्पष्ट और उजागर रूप से निवेदित करते रहें तो उसकी दया की संभावना कहीं अधिक रहती है। इसके अलावा और भी बहुत सी तर्कपूर्ण युक्तियां हम अपने वचन के समर्थन में दे सकते हैं। परंतु मंत्रपठन की उपयुक्तता इतनी असंदिग्ध और स्वयंसिद्ध है कि ऐसा करने की आवश्यकता मालूम नहीं देती। चर्वितचर्वण के लिए हमारे पास समय भी नहीं है। इसलिए आज के विवेचन को यहीं समाप्त किया जाता है।

11 समाचारपत्र-संपादक

कोई पंद्रह वर्ष पहले मैंने अपने शहर में एक मिठाई की दूकान खोली थी। इस व्यवसाय के पीछे केवल रुपया कमाने का ही नहीं बल्कि नौजवान पीढ़ी का ध्यान नौकरियों की ओर से हटा कर व्यापार-उद्योग की ओर खींचने का भी ध्येय था। मुनाफा कमाने का हेतु बिलकुल ही गौण रहा हो, सो बात नहीं। राष्ट्र अंततोगत्वा अनेक व्यक्तियों के समुदाय से ही बनता है और राष्ट्र की संपन्नता व्यक्ति की संपन्नता पर ही निर्भर करती है। इस दृष्टि से देखने पर राष्ट्रहित साध्य करने के लिए हर व्यक्ति को स्वहित की साधना करनी ही चाहिए। इस सिद्धांत का मेरे मन पर प्रबल प्रभाव होने के कारण मैंने इस धंधे में अधिक-से अधिक रुपया कमाने की कोशिश की। रुपया हाथ में होने पर देशहित अपने-आप सिद्ध हो जाता है।

दूकान शुरू करने के बाद आरंभ में तो ग्राहकों की संख्या बहुत कम रही। परंतु इतने परिश्रम और इतनी लगन से तैयार की हुई मिठाई बच जाने पर मुझे दुःख शायद ही कभी हुआ हो। एक तो वैसे ही मैं स्वभाव से अल्पसंतोषी हूं। फिर बचपन से ही मीठे पर मेरी अत्यधिक भक्ति रही है। इसलिए दिन भर की बिक्री के बाद बच जाने वाले पेड़े, बरफी गुलाबजामुन (ये शब्द लिखते समय भी मुंह में पानी भरा आ रहा है) आदि मेरी पसंद की मिठाइयां का स्वयं सेवन करके मैं उन्हें अनादर से बचा लेता था। बासी चीज किसी भी हालत में न बेचने का मेरा अटल नियम होने के कारण बचे हुए को उदरस्थ करना मैं अपना परम पवित्र कर्तव्य समझता था। बचा हुआ माल गले के नीचे उतारते समय उपरोक्त व्यावसायिक सिद्धांत बहुत सहायक सिद्ध होता था।

धीरे धीरे नियमित ग्राहकों की संख्या बढ़ती गयी और कुछ ही दिनों में

दूकान की बिक्री बहुत बढ गयी। मामला इस हद तक बढा कि मिठाई के दोनो को लपटने के लिए रद्दी कागज की कमी महसूस होने लगी। समाचारपत्र प्रकाशित करने का विचार पहले-पहल मेरे मन मे केवल इसी कारण से आया था। धीरे धीरे यह सकल्प पुख्ता होता गया। सोचा कि समाचारपत्र से विशेष आमदनी होने की तो सभावना नहीं, पर उसमे मिठाई की दूकान का विज्ञापन दिया जा सकेगा और बची हुई प्रतियों का उपयोग मिठाई के दोने लपेटने के लिए हो सकेगा। इस प्रकार एक काम से अनेक काम चलेंगे। मैंने शीघ्र ही विचार को कार्यरूप दे दिया।

कुछ सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर ऐसा मालूम देता है कि समाज मे बहुत से धधे जुडवा और एक-दूसरे के पूरक होते हैं। इन परस्पर पूरक धधो मे एक की बची हुई सामग्री दूसरे म उपयोगी होने के कारण वे एक ही व्यक्ति द्वारा किये जाए, तो बडी सुविधा रहती है। इस सिद्धात को आत्मसात् करना सरल हो इसलिए यहा कुछ उदाहरण दिए जाते हैं। ग्रथकार और पुस्तक विक्रेता यह दोनो व्यवसाय इसी श्रेणी के जुडवा धधे हैं। साहित्यकार को नये साहित्य की रचना से पहले अनेक ग्रथ पढने पडते हैं। किताबो की दूकान होने से उसे इसमे बडी सुविधा रहेगी। चाहे जब चाहे जितनी किताबें वह पढ सकेगा और अपनी बिना बिकी किताबो को सजा कर अपने पुस्तक भडार की शोभा भी बढा सकेगा। नाटककार और नाटक कपनी के सचालक के कार्यक्षेत्र भी इसी प्रकार जुडे हुए हैं। साफे और ताले बनाने वालो के धधो को भी युग्म-व्यवसाय कहा जा सकता है। रुपया रखने के सदूको के लिए ताले चाहिए और ताले बनाने का व्यवसाय करने के लिए रुपया चाहिए। यही अन्योन्याश्रित सबध ढाबे वालो और दवाखानो के सचालको के बीच पाया जाता है। ढाबो में भोजन करने वाले दवाखानो म आते जाते रहेंगे ही और इन मित्र के गावो से अस्पताल मे उपचार के लिए आने वाले लोग ढाबो का आश्रय भी लेंगे। यह तो एक कभी न टूटने वाली शृखला है। कई दिन रुग्णालय म रहकर ठीक हो जाने वाला रोगी जसे ही ढाबे मे भोजन करके अपने गाव जाने को निकलेगा कि उसे अतिसार या पेचिश ने घेरा ही समझिये। ढाबे और दवाखाने इनमे से एक के भी शिकजे मे आदमी एक बार आया कि दोनो का नियमित ग्राहक हुए बिना उसका छुटकारा नहीं है।

हलवाई की दूकान और समाचारपत्र का सपादन भी उपरोक्त उदाहरणो म

वर्णित, परस्पर पूरक श्रेणी के जुडवा घधे हैं। पत्र मे छापने योग्य साहित्य की कमी पडने पर मिठाई की दूकान का विज्ञापन छाप कर रिक्त स्थान की पूर्ति की जा सकती है और मिठाई के दोने लपेटने के लिए रद्दी कागज की कमी पडने पर बचे हुए अखबारो का उपयोग किया जा सकता है। इससे एक ओर मिठाई के शौकीनो को अमूल्य नैतिक उपदेश अनायास ही उपलब्ध होकर देशहित मे सहायता मिलेगी, तो दूसरी ओर मिठाई के सान्निध्य से पत्र के साहित्यिक माधुर्य मे भी अभिवद्धि होगी।

अपने पत्र का नाम भी हमने जुडवा धधो के सवथा अनुरूप रखा। यह तो सभी जानते हैं कि हलवाई शब्द की उत्पत्ति अरबी के हलवा शब्द से हुई है। अत बहुत सोच विचार के बाद हमने अपने उपदेश परक पत्र का नाम रखा 'नैतिक हलवा'। इससे आगे चलकर हमे बहुत लाभ हुआ। एक बार हमने अपनी दूकान के विशुद्ध देसी घी से बने हुए हलवे के बडे-बडे दोने अपने अखबार मे लपेट कर कई समालोचको को नमूने के तौर पर भेज दिये। इसका बिजली का-सा असर हुआ। यार लोगो ने हलवा डकारने के बाद अपना-अपना अभिप्राय लिख भेजा। अधिकाश लोगो की राय यही रही कि 'आपका हलवा अत्युत्तम है।' उनकी इस सिफारिश का लाक्षणिक अथ लगाकर मैं उनके पत्रो को अपने अखबार मे मौके की जगह छापने लगा। इससे पत्र का खूब प्रचार हुआ और ग्राहक सख्या बहुत बढ गई। अब आप ही अदाजा लगा सकते हैं कि हलवाई की दूकान से समाचार पत्र को कितना लाभ पहुचता है। उसके इन उपकारो का बदला मेरा पत्र प्रतिदिन हजारो जन्म लेकर भी नही चुका सकता। यहा एक बात का स्पष्टीकरण आवश्यक है। आलोचको की उपरोक्त राय को मैं अपने पत्र मे 'हमारे हलवे के सबध मे विद्वान समालोचको की राय' जसा सदिग्ध शीषक देकर छापता था। यह बेशकीमती राय हमारे 'हलवे' के दोनो रूपो पर चरितार्थ हो सकती थी। हमारी इस सावधानी से यही प्रमाणित होता है कि नतिक उपदेश परक पत्र-पत्रिकाओ का सपादन करने वाला को कितना सतक रहना पडता है और खुद भी नैतिक माग पर चलने की कितनी भारी जिम्मेदारी निबाहनी पडती है।

'नैतिक हलवा'—कहा तो यह सक्षिप्त और सारगर्भित नाम, और कहा आजकल के समाचारपत्रो के लबे-चौडे और अथहीन नाम। कई पत्र अपने शहर

या प्रदेश के नाम के साथ 'समाचार' जैसे व्यक्तित्वहीन शब्द की पूछ जोडकर साहित्यिक ससार म भ्रमण करना चाहते हैं। परतु अपने नगर या जिले की खबरें छापने के बजाए वे अक्सर वैयक्तिक निंदा और विघटनात्मक आलोचना के दलदल म ही फसे रहते हैं। कुछ पत्र अपने नगर के साथ वैभव या 'दपण' जसा भव्य श"द जोडकर अपना नामकरण करत है जबकि कुछ पाठका की प्रशसा की राह देखे बिना अपने मुह मिया मिट्ठू बनकर अपनी तुलना सूय, चद्र, सागर आदि भव्य तत्वा के साथ करते रहते हैं।

'पत्रकार महोदय —इस सम्मान सूचक सज्ञा के प्रति बचपन से ही मुझे बहुत आकषण था। परतु इस सबोधन के साथ-साथ कितनी जिम्मेदारी सिर पर आती है इसका मुझे उस समय ज्ञान नही था। जब अपने ऊपर यह दायित्व आ पडा तब उसका बोझ छाती पर रखी हुई शिला के जैसा महसूस होने लगा। पहली बार सपादकीय लिखने के लिए मैं मूछो पर ताव देते हुए और बडी लापरवाही स सिगार फूकते हुए बैठा। परतु एक वाक्य भी लिखना दूभर हो गया। बीच-बीच मे 'कागज खुरदरा है', 'कलम अच्छी नही है' 'स्याही फीकी है'—इत्यादि "नाच न जानू आगन टेढा' श्रेणी की शिकायतें करके नौकरा को खरीखोटी सुनाता रहा। इसका भी कोई परिणाम नही निकला। जितनी आसानी से गालिया मुह मे आती हैं, उतनी सरलता से गभीर या अथपूण शब्द नही आते। घटा भर हुआ पर 'जबसे दयालु अग्रेज सरकार का राज्य शुरू हुआ है तबसे " इस अधूरे घिसे पिटे और चापलूसी भरे वाक्याश को छोडकर एक श"द भी नही सूझा। ललाट पर पसीने की बूदें चमकने लगी, शरीर कापने लगा, मुह का पानी सूख गया, आखो म आसू भर आये और रोगटे खडे हो गए। काव्यग्रथा मे वर्णित आठो सात्विक भावो का एक साथ उद्रेक होने पर भी उपयुक्त शब्द नही सूझे सो नही सूझे और नाहक इस अव्यापारेषु व्यापार मे पडा ऐसी निराशा की भावना मन मे उठने लगी। परीक्षा के समय कोई प्रश्नपत्र कठिन होने पर परीक्षार्थी के मन म जो खलबली मचती है उसका अनुभव परीक्षा म बठने की जहमत उठाये बिना मुझे अनायास ही मिल गया।

परतु कठिनाई के सामने सिर झुका देना मेरा स्वभाव नही और कभी सकट आने पर उसम स छूटने का उपाय भी अपने-आप सूझ जाता है। शीघ्र ही अपने उच्च धरातल स उतर कर मैं पुस्तकालय म पहुचा और पुराने पत्रा की फाइलें

निकालकर पन्ने पलटने लगा। उनमें छपे भद्दे श्लेष, गंदे विचार और गाली-गलौज भरी भाषा को देखकर मेरा आत्मविश्वास लौट आया। ऐसा लगा कि इस प्रकार की कीचड़ उछाल तो मैं भी आसानी से कर सकता हूं। उनमें बार बार दोहराये जाने वाले शब्दों और अपशब्दों की मैंने फेहरिश्त बना ली और उनकी सहायता से दो चार कालम भर डालने का निश्चय किया। यह काम अपेक्षा से कहीं अधिक सरल सिद्ध हुआ। पहले अंक में मैंने सिर मुड़वाने की प्राचीन जाति प्रथा से होने वाले लाभों का वर्णन किया और सुधारकों की बिना पानी के हजामत बना डाली। इससे पत्र को बड़ी संख्या में ग्राहक मिल गये। पहले ही प्रयत्न में ग्राहकों की संख्या में वृद्धि और सुधारकों को दी हुई गालियों के बीच जन्य-जनक का संबंध देखकर मैंने आज तक वही परंपरा जारी रखी है। देशकाल का बिलकुल विचार किये बिना और संदर्भ या औचित्य की रत्तीमात्र भी परवाह किये बिना अब मैं सुधारकों की बहत्तर पीढ़ियों का उद्धार करता रहता हूं। हमारे पत्र के पाठक इस बात की नेमिसिन पुष्टि करेंगे। मुझे इसमें इस हद तक सफलता मिली है कि शीघ्र ही विष्णु सहस्रनाम के ढंग पर लिखा हुआ हमारा 'गाली पंचशती' नामक ग्रंथ प्रकाशित होने वाला है। होनहार संपादकों को उसका अध्ययन अवश्य करना चाहिए। इससे उन्हें तो अपशब्द-वाङ्मय में हमारी कितनी गति है इसका अनुभव हो जाएगा और दूसरे अपने लेखों में इन शब्दों को थोड़ी थोड़ी दूर पर डाल देने से विपुल द्रव्यलाभ की फसल उनके हाथ लगेगी। अमरकोश को संकलित कर आज तक शब्दों के असंख्य कोश विद्वानों ने रचे होंगे, परन्तु 'अपशब्द' कोश के क्षेत्र में हम अपनी होने का दावा करते हैं।

समाचारपत्रों के लेखों के कुछ निश्चित उद्गम-स्थान होते हैं यह बात भी थोड़े से अनुभव के बाद हमारी समझ में आ गयी। इन निमित्तों में से कुछ तो नित्य होते हैं और कुछ नैमित्तिक। राष्ट्रीय कांग्रेस, सनातनधर्म परिषद्, मुसलिम लीग, समाज सुधार परिषद् आदि संस्थाओं के वार्षिक अधिवेशन नित्य लेखों के प्रेरणास्रोत साबित होते हैं। इनमें से पहले तीन की प्रशंसा और चौथे की निंदा या खिल्ली के मसालों से महीनों तक अपने पत्र के स्तंभों को भरा जा सकता है। अब रहे नैमित्तिक स्रोत! कुछ राज्य क्रांतियां, चुनाव, प्रसिद्ध व्यक्तियों की मृत्यु, विधवा विवाह आदि विषय इस वर्ग में आते हैं। ईश्वर ने साम्राज्यवादी राष्ट्रों के मन में महत्त्वाकांक्षाओं के जो बीज बोये हैं वे हम पत्रकारों

के लिए बड़े उपजाऊ सिद्ध होते हैं। इसी प्रकार मनुष्यजाति के आदिकाल से चली आने वाली उसकी युद्ध-लालसा भी लेखकों की कलमों को व्यस्त रखने में बहुत सहायक होती है। अभी-अभी समाप्त होने वाले बोअर युद्ध ने लगातार तीन वर्षों तक हमारे पत्र के लिए गरमागरम समाचारों की रसद जुटाई थी। अफ्रीका में पहली गोली छूटते ही हमारे लेखों का तोपखाना शुरू हो गया था। वहां जितना खून बहा होगा, यहां उतनी स्याही बहने लगी। वहां होने वाले संगीनों के हमलों के साथ-साथ यहां हमारे शब्दबाण छूटने लगे। किलों में पड़ने वाली दरारों को युद्धक्षेत्र के सैनिक जिस तत्परता से पाटते होंगे उतनी ही रफ्तार से हम हमारे अखबार के खाली स्तंभों को भरने लगे। आखिर जब वहां संधि की बातें होने लगीं तब कहीं हमारा उत्साह भंग हुआ। लगातार तीन वर्ष तक चेंबरलेन को युद्धनीति सिखाने का उपक्रम करने के बाद सुधारकों को खरी-खोटी सुनाना बड़ा फीका फीका लगने लगा। परंतु भगवान के दरबार में देर है अंधेर नहीं। दक्षिण अफ्रीका में वैमनस्य की आग जैसे ही कुछ ठंडी पड़ी कि उत्तरी अफ्रीका में मुल्लाओं का नंगानाच शुरू हो गया और उसका शमन होते होते सुदूर पूर्व में रूस और जापान के बीच महायुद्ध छिड़ गया। इस लड़ाई ने तो पहले की सब कसर पूरी कर दी। हमारे शब्दवेधी बाण फिर चलने लगे और हम खाना फिर से हजम होने लगा।

इन्हीं दिनों कलकत्ते में राष्ट्रीय कांग्रेस का अधिवेशन होने वाला था। बंबई के एक प्रसिद्ध देशभक्त उसके अध्यक्ष निर्वाचित हुए थे। उनके सचिव के साथ मेरा घनिष्ठ परिचय था। उसके माध्यम से यदि अध्यक्षीय अभिभाषण की प्रतिलिपि पहले ही मिल जाए तो हमारे पत्र का विशेषांक प्रकाशित करके उसमें उसे छापा जा सकता था। साथ ही लोगों के मन पर यदि यह ठसा दिया जाए कि हमने पूरा भाषण तार से मंगवा कर छापा है, तो हमारे पत्र की प्रतिष्ठा बढ़ने की पूरी संभावना थी। मैंने तुरंत सचिव महोदय से संपर्क स्थापित किया और उन्होंने बड़े आनंद से भाषण की प्रतिलिपि मुझे दे दी। अधिवेशन वाले रोज दोपहर बाद मैंने उस भाषण का मुखपृष्ठ पर समावेश करके हमारे पत्र की हजारों प्रतियां छपवा डालीं। भाषण का मैंने कुशलता से संपादन भी किया था। हर दो-तीन वाक्यों के बाद 'तालियां', 'हंसी', 'श्रोताओं द्वारा प्रचंड हास्यनिनाद', 'गगनभेदी करतलध्वनि' आदि अनुमोदनपरक शब्द बिखेरना भी मैं नहीं भूला था। इसके बाद हमारे

विशेष संवाददाता द्वारा तार से प्राप्त' इत्यादि उपशीर्षक जोड़कर बड़ी धूमधाम से भाषण छाप डाला गया। शाम को हमारे मिष्टान्न भंडार में रोज से कहीं अधिक भीड़ जमी हुई देख कर मेरे आनंद का पारावार न रहा। सोचा कि अपक्षानुसार लोग मेरा अभिनंदन करने के लिए ही आये होंगे। मैंने अत्यंत व्यस्तता का दिखावा करते हुए आंखों पर ऐनक लगाया और इधर उधर देखते हुए हर आगंतुक की ओर कृपाकटाक्ष फेंकने लगा। परंतु लोगों को उचित मात्रा में आदरभाव व्यक्त न करते देख कर मुझे कुछ शंका हुई। इतने में हमारे एक अड्डेबाज सहयोगी ने बड़े तपाक से मुझसे पूछा, "कहिये पत्रकार महोदय, अध्यक्ष का पूरा अभिभाषण तार से मंगवाने में खर्च तो बहुत हुआ होगा ?"

निरपेक्ष देशसेवा में पैसा क्या प्राण भी खर्च हो जाए, तो कोई हर्ज नहीं।" मैंने यथासंभव लापरवाही का भाव चेहरे पर लाते हुए प्रत्येक शब्द का तौल संभालते हुए कुछ अधिकार के स्वर में उत्तर दिया।

बीच बीच में 'तालियां हास्यध्वनि' आदि टिप्पणियां जोड़ देने से तो पढ़ने वालों को मानो सामने बैठे हुए भाषण सुन रहे हों ऐसा आभास होता है।'

'किसी भी भाषण को यथासंभव शब्दशः छापने का और साथ में श्रोताओं की प्रतिक्रिया देते रहने का हम हमेशा ही प्रयत्न करते हैं।'

"आपका संवाददाता बड़ा जानकार और अनुभवी आदमी मालूम देता है।"

'हमारी मनुष्यों की परख सदा इसी प्रकार की होती है।"

"सत्यवचन महाराज। पर कभी कभी आपके इन चुनींदा लोगों को होने वाली घटनाओं से कहीं अधिक जानकारी रहती है।"

"क्या मतलब ?'

"यही कि कल जो भाषण हुआ ही नहीं उसका पूरा ब्योरा उसने भेजा है। इस दृष्टि से उसकी जानकारी सचमुच ही विलक्षण कोटि की होनी चाहिए।'

पहले तो उसकी बातों का अर्थ ही हमारी समझ में नहीं आया। आदमी परले सिरे का धूर्त था। स्पष्ट कुछ बोला नहीं। परंतु बाद में जब हमें मालूम हुआ कि उस रोज होने वाला राष्ट्रीय सभा का अधिवेशन दो दिन के लिए स्थगित कर दिया गया था, तब हमारी फजीहत का ओर-छोर न रहा। जिन तालियों और हास्यध्वनि को मैंने खुले हाथों पूरे भाषण में छिड़का था उनका सूद सहित आस्वादन मुझे करना पड़ा।

किसी घटना के होते ही उसका इतना ब्योरेवार और सिलसिलेवार वर्णन जो तुरंत अखबारों में छपता है उसका रहस्य यही होता है। संबंधित लेख घटना के होने से कई रोज पहले सावधानी से लिखा हुआ होता है। यह नियम प्रसिद्ध पुरुषों के मृत्यु-लेखों के बारे में तो सौ फीसदी सच होता है। जिस अकाल मृत्यु के संबंध में लेखक अपने लेख में शोक और आश्चर्य व्यक्त करता हुआ मरने वाले की याद में मरसिया पढ़ता है उसका लेखन, हो सकता है कि उसने कई महीने पहले भरे पेट पर हाथ फेरते हुए शराब के गहरे नशे में डूबकर किया हो। मृत महापुरुष के स्वास्थ्य के संबंध में साक्षात धन्वन्तरी को भी आशंका हो उससे पहले ही और वह अपने बालबच्चों के साथ आनंद से कालक्रमण कर रहा हो तब भी संपादक लोग उसकी मृत्यु के कारणों की मीमांसा करते रहते हैं, उसकी आत्मा को शांति प्रदान करने के लिए ईश्वर से प्रार्थना करते रहते हैं, उसके संबंधी जनों का गहरी समवेदना से आश्वासन करते रहते हैं और उसकी मृत्यु के कारण देश की जो कभी पूरी न हो सकने वाली क्षति हुई है उसके संबंध में खेद और चिंता व्यक्त करते रहते हैं।

यहां तक समाचारपत्रों को नित्य या नैमित्तिक स्रोतों से जो रसद मिलती रहती है उसका विवेचन हुआ। परंतु इन मसलों के चुक जाने पर उन्हें फाके पड़ने लगते हैं और उदर निर्वाह के लिए वे भूखे भेड़िया की तरह एक-दूसरे पर टूट पड़ते हैं। एक-दूसरे के विचारों और सिद्धांतों पर बड़ी बेरहमी से आक्रमण होने लगता है और अवाच्य गालियों की बाढ़ से उनके पन्ने हाशिये से हाशिये तक भर उठते हैं।

समाचारपत्रों में संपादकीय और फुटकर लेख लिखने में आने वाली अड़चनों और उन्हें दूर करने के उपायों का विवेचन ऊपर हो चुका है। इन लेखों को छापने के बाद जो जगह बच जाती है उसे अक्सर विज्ञापनों और सरकारी विज्ञप्तियों से भरा जाता है। विज्ञापन बहुधा दवाइयों के होते हैं। 'खाज कुठार', 'मरहम तिलिस्माती' या 'दद्रुगजकेसरी' जैसी दवाइयों के विज्ञापनों का इनमें महत्वपूर्ण स्थान होता है। इन रामबाण औषधियों से जख्म किस हद तक भरते हैं यह तो हम नहीं जानते पर पत्रकारों की जेबें निश्चित रूप से भरती हैं। इसी प्रकार विलियम साहब की लक्कड़ हजम-पत्थर हजम गोलियों से क्षुधा प्रदीप्त होती है या नहीं यह कहना तो मुश्किल है पर संपादक महोदय की क्षुधा का

निवारण करने की शक्ति उनमें अवश्य होती है।

हमारे पत्र में जिन औषधियों के विज्ञापन नियमित रूप से छपते थे उनमें से कुछ के रामबाण गुणों का तो हमें प्रत्यक्ष अनुभव हुआ। छापेखाने में काम करने वाले एक कारीगर को गठिया हो गया था। 'गठिया विनाश' नामक परम गुणकारी औषधि के मुद्रित टाइपों पर उंगलियां फेरने भर से वह अच्छा हो गया। इसी प्रकार हमारे कहार का लड़का बोलते समय हकलाता था। 'हकलाने पर रामबाण औषधि' का विज्ञापन उसकी आंखों के सामने रखते ही वह मेल गाड़ी की रफ्तार से शुद्ध भाषा बोलने लगा। श्वेत कुष्ठ पर जालिम मरहम' नामक संजीवनी का विज्ञापन पत्र में जहां छपता था वह जगह दिनों दिन कुछ स्याह पड़ने लगी। 'गलित कुष्ठ पर अक्सीर दवा' हमने एक रोगी को दी उसका प्रभाव तो कल्पना से परे पड़ा। रोग का जड़मूल से नाश होने के साथ साथ रोगी का भी नामोनिशान मिट गया। इधर दवा उसके पेट में गई कि उधर उसके प्राण निकल गये। पाठकों के मार्गदर्शन के लिए, ऐसी विलक्षण रोग निवारक शक्तियों वाली इन औषधियों की हम अपनी ओर से भी सिफारिश करते रहते थे, यह अलग से बताने की आवश्यकता नहीं।

हमारे पत्र के समाचारों को यथासंभव मनोरंजक बनाने की ओर आरंभ से ही मैंने बहुत अधिक ध्यान दिया था। इससे पाठक हमारी अन्य नीतियों की भी सराहना करते थे। लोकरंजन के लिए मुझे अकसर हर बात में अपनी तरफ से भी काफी नमक मिर्च लगाना पड़ता था। परंतु जनसेवा का व्रत लेने वालों को इन छोटे-छोटे त्यागों के लिए सदा एक पांव पर तैयार रहना चाहिए। हमारे पत्र की पुरानी फाईलें टटोलने पर निम्नोक्त प्रकार के समाचार पन्ने-पन्ने पर मिल सकेंगे —

भोले गांव के प्रसिद्ध हनुमान मंदिर में रामनवमी के दिन हनुमानजी को जोरों का पसीना आया। जानकारों के मतानुसार यह बहुत बड़ा अपशकुन होता है। इस चमत्कार के दर्शन के लिए हजारों की भीड़ जमा हो गई। हर दर्शनार्थी से एक-एक पैसा चढ़ावा लेकर ही उसे भीतर छोड़ा गया। इससे एक ही दिन में सौ रुपये से भी अधिक रकम जमा हो गई है। बजरंगबली के गाढ़े पसीने की इस कमाई का उपयोग अकाल निवारणार्थ करवाये जाने वाले ब्राह्मण भोजन में होने वाला है। आशा है सनातनधर्म द्वेष्टाओं की अब तो आंखें खुलेंगी।'

"दक्षिणी अमरीका के लवाडा प्रदेश में भूकंप के कारण जमीन में एक बहुत लंबी दरार पड़ गयी है। दरार में से शेषनाग का फण दिखाई देता है। नागराज के मस्तक की मणि का प्रकाश पूरी दरार में फैला हुआ है। इसके बाद भी हमारे पुराणों की कथाओं को कपोलकल्पित करने की हिमाकत कोई वज्रमूर्ख ही करेगा।"

इन समाचारों की प्रामाणिकता तो समझदार पाठकों के ध्यान में आ ही गई होगी। सारी करामात श्रद्धा और विश्वास की है। "जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत देखी तिन तैसी।" श्रीकृष्ण के मुखविवर में अर्जुन को जिस प्रकार ब्रह्मांड दर्शन हुआ था उसी प्रकार मैं भी हमारे पत्र के स्तंभों में पाठकों को विराट रूप दर्शन करवाता रहता था।

किसी महापुरुष की मृत्यु होते ही मैं बड़े आनंद में—नहीं, नहीं गलती हो गयी बड़े शोक में—उस रोज का अंक बंद रखता और दूसरे दिन से चरित्र-परक लेखों की झड़ी लगा देता। हमारी परम पूज्य महारानी साहिबा मलिका विक्टोरिया की मृत्यु के बाद तो हमने महीने भर तक पत्र को बंद रखने का निश्चय किया था। पाठकों के आग्रह के सामने हमारा यह संकल्प टिक न सका यह अलग बात है।

इस दरमियान एक मासिक पत्रिका शुरू करने का विचार भी मेरे मन में आया था। परंतु पत्रकारिता के इन दोनों प्रकारों में जमीन आसमान का अंतर होता है। मासिक पत्रिका फूलों की सुंदर बगिया के समान होती है जबकि दैनिक पत्र होता है गेहूं का खेत। बगिया देखने में बेशक अधिक सुंदर और आकर्षक होती है परंतु उदरनिर्वाह के लिए खेत ही बेहतर रहता है। मासिक पत्रिका की शानशौकत अधिक ऊंचे दरजे की होने पर भी आजीविका के साधन के रूप में दैनिक पत्र का स्थान श्रेष्ठ होता है। इसके अलावा मासिक पत्रिका का मुद्रण प्रकाशन बड़े खर्च की बात होती है। वह है रईसों की चोंचलेबाजी जबकि समाचार-पत्र है रोज की दाल रोटी। फिर एक अड़चन यह भी है कि मासिक पत्रिकाओं का प्रकाशन नियमित रूप से अनियमित होता है। किस्से कहानियों के राजा-महाराजा जिस प्रकार छप्पर पलंग छोड़कर कुछ देर से उठते हैं या सोनलोमा से झगड़ कर नसीब आजमाने के लिए निकल पड़ने वाले छोटे राजकुमार का भाग्य कुछ देर से ही चमकता है उसी प्रकार मासिक पत्रिकाओं

के प्रकाशन में विलंब होना अनिवार्य होता है। हर महीने की पहली तारीख को ग्राहकों के हाथ में पड़ना अभिजात पत्रिकाओं की शान के खिलाफ होता है। कुछ पत्रिकाएं तो गांगा य लोग जब दिवाली का उत्सव मनाते हैं तब कहीं बड़ी मुश्किल से होली मना पाती हैं। कुछ सूखा समाप्त होकर बहुतायत की तीन तीन फसलें बीत जाने पर भी अकाल निवारण की चिंता में डूबी रहती हैं और दुर्भिक्षकालीन राहत कार्यों की व्यवस्था किस प्रकार होनी चाहिए इसकी बेशकीमती राय सरकार को देती रहती हैं। इन सब बातों से सबक सीखकर पत्रिका प्रकाशित करने का विचार मैंने छोड़ ही दिया।

पत्रकारों का समाज में बड़ा मान मरतबा होता है, यह इस व्यवसाय का सबसे बड़ा लाभ है। चाहे जिस सभा में जाने की उन्हें पूर्ण स्वतंत्रता होती है। राष्ट्रीय कांग्रेस आदि महत्त्वपूर्ण संस्थाओं के अधिवेशनों में उनके लिए आरक्षित आसनों की व्यवस्था की जाती है। चाहे जिसको चाहे जब चाहे जैसा उपदेश देने का तो उन्हें जन्मजात अधिकार होता है। एक बार तो मैंने खुद चचा बिस्मार्क को राज्य शकट किस प्रकार चलाना चाहिए इसका अत्यंत सारगर्भित उपदेश दिया था। दूसरी बार वाइकाउंट मोर्ले साहब को ग्रंथ रचना और वाक्यविन्यास के संबंध में मौलिक सूचनाएं देकर उनके उत्साह को बढ़ाया था।

शहर में जब कभी कोई नाटकमंडली आती है तब हमारे कला विषयक ज्ञान में उफान पर उफान आने लगते हैं। कंपनी की ओर से हर पत्र के लिए दो-तीन निःशुल्क पास बंधे रहते हैं। पास न मिलने पर हम उनका जीना मुहाल कर सकते हैं। किसी भी ग्रंथकार की नई पुस्तक प्रकाशित हुई कि उसकी एक प्रति हमें मिलनी ही चाहिए। अन्यथा हम साक्षात वाचस्पति को भी अनपढ़ मूढ़ प्रमाणित कर सकते हैं और साधारण लेखकों की तो शब्दों के कोड़े मार मारकर चमड़ी तक उधेड़ सकते हैं। इन सब से भी बड़ा अधिकार यह मिलता है कि हम अपना उल्लेख उत्तम पुरुष सर्वनाम के एकवचन में न करते हुए सम्मानार्थ बहु-वचन में कर सकते हैं जैसा कि इस लेख में जगह जगह पर किया गया है।

यह सब होने पर भी अब तक हमारे पत्र की खपत उतनी समाधान कारक नहीं हो पाई है। लोकप्रियता के उपरोक्त सारे हथकंडे आजमा लेने पर भी एक कमी रह गयी है। वह यह कि अब तक कारागृह निवास हमारे हिस्से में नहीं आया। हमें ऐसी विश्वसनीय खबर मिली है कि संपादक की प्रत्येक जेलयात्रा के

साथ उसके पत्र की ग्राहक संख्या कम से कम पाँच हजार बढ़ जाती है। इधर कई लोकमान्य पुरुष कारागृह में हो आने के कारण कारानिवास का दोष भी कम हो गया है। जो कुछ भी हो हम इस दिशा में प्रयत्नशील हैं और शीघ्र ही इसकी उपादेयता का हमें अनुभव होगा ऐसी आशा है। पिछले कुछ महीनों में हमने अनेक बार समाज के कई प्रतिष्ठित पुरुषों की इज्जत को नमक मिर्च लगा-लगा कर छीछालेदर की। परंतु अब तक हमें सफलता नहीं मिली है। न तो किसी माई के लाल ने हम पर मानहानि का दावा किया और न हमारे हाथपावों की हथकड़ीबेड़ी से मंडित होने की लालसा पूरी हुई। अब इसके बाद एक ही उपाय बचा है। वह है चोरी या डकैती। इस मार्ग पर अग्रसर होते ही यश मिलने का हमें पूरा विश्वास है। तब तो हमारे दोनों हाथों में लड्डू रहेगा। डकैती यदि पच गयी, तो गहरा माल हाथ लगेगा और जीवन भर के लिए रुपया कमाने के प्रपंच से मुक्ति मिल जाएगी। यदि पकड़े गये, तो लंबी सजा होकर जेलयात्रा होगी जिससे पत्र के ग्राहकों की संख्या बढ़ जाएगी। एक तरफ धनसंपत्ति का कुआं है, तो दूसरी ओर सफलता की खाई। पांव किसी भी ओर फिसले, अपनी तो पाँचों घी में रहेंगी। फिलहाल तो मन इसी आनंदसागर में डुबकियां लगा रहा है। आगे की रामजी जानें।

12 बबई का दीपोत्सव

सन् 1903 के जनवरी महीने म सम्राट एडवड सप्तम क राज्यारोहण के उप लक्ष्य मे दिल्ली मे बडा भारी समारोह हा ना वाला था। कई दिन पहले ही हमको सूचना मिल गई थी। समारोह बहुत प्रेक्षणीय होगा इस विषय म तो काई शका ही नही थी। पर यह सारा तमाशा किसक लिए था? बेशक सिफ उनके लिए जो बेशुमार रुपया खच करने की कूवत रखत हा। हमारे जस सामान्य लोगा क लिए यह तमाशा नही था। अगर पागलपन के आवश म हमारी हैसियत का कोई आदमी दिल्ली गया भी होता ता सम्राट के राज्यारोहण क साथ साथ उसका स्वर्गारोहण भी लोगो को देखना पडता। जहा किसी भी कीमत पर तमाशा देखन पर उतारू अनगिनत तमाशबीना का मजमा इकट्ठा हुआ हा वहा सिवा धक्का के क्या पल्ले पडता है? और भीड स रौंदे जान म भी क्या देर लगती है? सम्राट के राज्यारोहण के साथ-साथ अपना स्वर्गारोहण भी निमटा लने की कोई ख्वाहिश मुझे नही थी। हमारे जैसे राज्यनिष्ठ और राजभक्त लोगा को यह शाभा नहीं देता। जिस भीड मे पूरी की पूरी रेलगाडिया लापता हो सकती थी, वहा गरीब बेचारे मुन्नामा को कौन पूछता?

सौभाग्य स दिल्ली क साथ साथ बबई म भी जश्न मनाया जाने का निणय हुआ। बबई हमारे शहर पूना स रेल द्वारा सौ सवा सौ मील स अधिक दूर नहीं है। फिर वहा क प्रसिद्ध वकील रायसाहब कृष्णाजीपन्त चक्रपाणि मेर बचपन क मित्र और सहपाठी थ। एक बार उनक यहा पहुच जान पर समारोह देखन म काई दिक्कत नहीं हागी और खच भी अधिक नहीं हागा ऐसा मुझे विश्वास था। पाच-सात रुपया क खच म ऐसा प्रेक्षणीय समारोह देखन का मौका चूक जाना मेरी गिनती पागला म ही हाती।

ो उनका मुझ पर निस्सीम प्रेम था। वह
ा रहता था और मेरा निरपवाद रूप स
ा पर पाम पाम जिठाया जाता था। इतने
प्रति भी हमारे मन म लगाव उप न हो
। अत रायसाहब के मेर प्रति अनुराग
ानशील पुरुषो म एक दूसर के प्रति सदा
मैं उनसे जैसा बुद्धिमान या धनवान ता
ान अद्वितीय था। वे जिस प्रकार अपना
ा थे, इसी प्रकार मैं भी अपन आखिरी
नही देता था। यह सामानीपन ही हम

ामान ही साथ लिया। कपडो म एक
ो दुपट्टा रखा। पगडवद के यहा म बडे
साथ लिया। रायसाहब जैसे प्रतिष्ठित
न ये दोनो चीजें नितात आवश्यक थी।
साथ ले लिया। सफर दूर का हो या
, म रखने का मेरा नियम था। मौका
मुकटा पहन कर गाडी मैं यह निखरा
ो थी।

पहले पहुच गया। अंग्रेजी ऐंठ स ऐन
ते हुए गाडी पकडने की अपक्षा काफी
अधिक पसद करता हू। इसस कुछ और
ती नहा।

अधिकाश सलानी तो दिल्ली दरबार
ा गाडी म भीड बिलकुल नही होगी।
ा की कल्पना को म खास अपन दिमाग
ोलिए मैंन किसी स उसका जिक्र भी
न गतव्य स्थान व रूप म और
न दूर की सूझ को लकर मैं इतना

12 बबई का दीपोत्सव

सन 1903 के जनवरी महीने मे सम्राट एडवड सप्तम के राज्यारोहण के उपलक्ष्य मे दिल्ली मे बडा भारी समारोह होने वाला था। कई दिन पहले ही इसकी सूचना मिल गई थी। समारोह बहुत प्रक्षणीय होगा इस विषय म तो कोई शका ही नही थी। पर यह सारा तमाशा किसके लिए था ? बेशक सिफ उनके लिए, जो बेशुमार रुपया खच करने की कूबत रखत हा। हमारे जस सामान्य लोगो क लिए यह तमाशा नही था। अगर पागलपन क आवेश म हमारी हैसियत का कोई आदमी दिल्ली गया भी होता तो सम्राट के राज्यारोहण क साथ साथ उसका स्वर्गारोहण भी लोगो को देखना पडता। जहा किसी भी कीमत पर तमाशा देखन पर उतारू अनगिनत तमाशबीनो का मजमा इकट्ठा हुआ हो वहा सिवा धक्को के क्या पल्ले पडता है ? और भीड स रौंद जाने म भी क्या देर लगती है ? सम्राट के राज्यारोहण के साथ-साथ अपना स्वर्गारोहण भी निमटा लेने की कोई ख्वाहिश मुझे नही थी। हमारे जस राज्यनिष्ठ और राजभक्त लोगो को यह शोभा नही देना। जिस भीड म पूरी की पूरी रेलगाडिया नापना हो सकती थी वहा गरीब बेचारे मुसाफा को कौन पूछता ?

सौभाग्य स दिल्ली क साथ साथ बबई म भी जश्न मनाया जाने का निणय हुआ। बबई हमारे शहर पूना स रेल द्वारा सौ सवा सौ मील स अधिक दूर नही है। फिर वहा क प्रसिद्ध वकील रावसाहब कृष्णाजीपन्त चक्रपाणि मेरे बचपन क मित्र और सहपाठी थ। एक बार उनक यहा पहुच जाने पर समारोह देखन म कोई दिक्कत नही आगी और खच भी अधिक नही होगा ऐसा मुझे विश्वास था। पास-पास रहता व घर म ऐसा प्रक्षणीय समारोह देखन का मौका चूक जाता तो मरी गिनती पागला म ही होती।

रायसाहब मेरे हमजोली होने के नाते उनका मुझ पर निस्सीम प्रेम था। बच पन म कक्षा मे उनका नबर हमशा पहला रहता था और मेरा निरपवाद रूप स आखिरी। इस कारण से हमे एक ही बेंच पर पास पास बिठाया जाता था। इतने निकट सपक म रहने वाली जड वस्तु के प्रति भी हमारे मन म लगाव उत्पन्न हो जाता है तो आदमी तो फिर आदमी है। अत रायसाहब के मेरे प्रति अनुराग मे अचरज की कोई बात नही थी। समानशील पुरुषो म एक दूसरे क प्रति सदा एक प्रकार का आकषण पाया जाता है। मैं उनक जसा बुद्धिमान या धनवान तो नही था, पर कुछ बातो मे उनके ही समान अद्वितीय था। व जिस प्रकार अपना पहला नबर और किसी को नही लेने देते थे, इसी प्रकार मैं भी अपने आखिरी नबर के आसपास किसी को फटकने भी नही देता था। यह लासानीपन ही हम दोनो के बीच का माध्यम्य था।

चलते समय मैंने नितात आवश्यक सामान ही साथ लिया। कपडा म एक रेशमी किनारे का मला-कुचैला नागपुरी दुपट्टा रखा। पगडबद के यहा म बडे करीने से बधवा कर मगवाया हुआ साफा साथ लिया। रायसाहब जसे प्रतिष्ठित और धनवान व्यक्ति के यहा जाने के लिए ये दोनो चीजें नितात आवश्यक थी। इसके अलावा कुछ नाश्ते का सामान भी साथ ले लिया। सफर दूर का हो या पास का कुछ चना चबैना और सत्तू साथ म रखने का मेरा नियम था। मौका मिलने पर स्टेशन पर नहा धो कर और मुकटा पहन कर गाडी मैं यह नियरा उपाहार कर लेने की मेरी पुरानी परिपाटी थी।

स्टेशन पर मैं गाडी आने से डेढ-दो घटे पहले पहुच गया। अग्रजी ऐंठ स ऐन वक्त पर स्टेशन पर पहुच कर भागत दौडते हुए गाडी पकडने की अपेक्षा काफी समय पहले आकर उसकी राह देखना मैं अधिक पसद करता हू। इससे कुछ देर रुकना जरूर पडता है, पर गाडी कभी चूकती नही।

मेरे मन म तब तक यही भावना थी कि अधिकाश सलानी तो दिल्ली दरबार देखने क लिए जाएगे इसलिए बबई की गाडी म भीड बिलकुल नहीं होगी। दिल्ली के बजाय बबई जाकर उत्सव देखने की कल्पना को म खास अपने दिमाग की पेटेन्टशुदा उपज मान रहा था और इसीलिए मैंने किसी स उसका जिक्र भी नहीं किया था। घर स निकलते समय मैंने अपने गतव्य स्थान क रूप म और ही किसी शहर का नाम बता दिया था। अपनी इस दूर की सूझ का असर मैं इतना

खुश था कि सिर पर साफे को तिरछी अन्दाज से बांध कर और दुपट्टे को कंधे पर डाल कर मैं जूते फटफटाता हुआ बड़ी शान से प्लेटफारम पर चहलकदमी कर रहा था। किसी के पूछने पर कि 'आप कहां जायेंगे' मैं अकड़कर अंग्रेजी में उत्तर देता था, "बॉम्बे"। परंतु गाड़ी का समय ज्यों ज्यों पास आता गया त्यों-त्यों स्टेशन पर तांगों के झुंड आने लगे और उनमें से मेरी अपेक्षा कई गुना शानदार लिबास में सजे हुए लोग उतरने लगे। शीघ्र ही पूरा स्टेशन लोगों की भीड़ और शोरगुल से भर गया। कुछ देर पहले मैं जो शेर की सी शान से प्लेटफारम पर घूम रहा था अब डरे हुए खरगोश की तरह एक कोने में दुबक कर बैठ गया। कुछ देर बाद गाड़ी आयी। गाड़ी अभी ठीक से रुकी भी नहीं थी कि उतरने और चढ़ने वाले यात्रियों की एकबारगी ऐसी धकापेल मची कि कुछ सूझना मुश्किल हो गया। मैंने कई डिब्बों में घुसने का प्रयत्न किया पर सब व्यर्थ। हर डिब्बे में लोग भेड़-बकरियों की तरह भरे हुए थे और तिल रखने को भी जगह नहीं थी। जहां भी घुसने का प्रयत्न करता कि भीतर बैठे हुए यात्री "अरे-अरे, कहां घुसे आ रहे हो यहां क्या हमारे सिर पर बैठोगे?"—इत्यादि शब्दों से स्वागत करते। उधर गाड़ी छूटने का समय हो रहा था। ऐसे में यदि किसी ने सिर पर तो क्या पावों में भी बैठने की जगह दी होती तो मैंने उसके पांव धो कर पिये होते। डिब्बे के भीतर घुसे हुए और घुसना चाहने वाले यात्रियों के दृष्टिकोण में मनुष्य स्वभाव के सनातन नियमानुसार सदा जमीन-आसमान का अंतर पाया जाता है। जो यात्री डिब्बे में घुसने से पहले वसुधैव कुटुम्बकम वृत्ति की उपादेयता पर व्याख्यान झाड़ता रहता है वही भीतर आते ही हाथ पांव पसार कर अधिक से अधिक जगह घेरने की कोशिश करता है और भी आना चाहने वालों को कानून सिखाने लगता है।

आखिर राम राम करके और तो सब मुसाफिरों को जगह मिल गयी पर मैं और एक बहुत मोटा मारवाड़ी सेठ ये दो यात्री बाहर रह गये। गार्ड ने हमारे साथ चल कर हर डिब्बे का मुआइना किया। एक डिब्बे में उसे एक आदमी के खड़े रहने भर की जगह दिखाई दी। यह स्थान हम दोनों में से किसे मिलेगा इस संबंध में शंका की गुंजाइश ही नहीं थी। मुझे आवश्यकता थी एक आदमी की जगह की जब कि मारवाड़ी सेठ की सुखी काया जगह घेरती तीन आदमियों की। अतः गार्ड ने मुझे किसी तरह भीतर ठूंस कर दरवाजा बंद कर दिया।

खडे रहने को ही सही, पर डिब्बे के भीतर जगह मिल जाने के कारण मैं बहुत खुश हुआ और उस स्थूलकाय राजस्थानी की ओर विजयमिश्रित उपहास से देखने लगा। वह बेचारा भीतर आने के लिए हर आदमी से हाथ जोड जोड कर चिरौरी कर रहा था। कुछ देर पहले ही मैं उसके साथ समदुखी था, यह भूल कर अब मैं भी उसकी खिल्ली उडाने लगा और अशिष्टता से हसने लगा। इस हृदयहीनता का मुझे तुरत प्रायश्चित्त करना पडा। हसी के आवेग में सिर पर का साफा नीचे गिर पडा और लोगो के पैरो तले रौंदा जा कर उसने एक अजीब सी लोथ की शक्ल धारण कर ली। अब औरो के हसने की बारी थी। मैंने बडी कठिनाई से साफे का उद्धार करके उसे सिर पर टिकाया। परतु पुनर्जन्म के बाद उसका रूपरग कुछ ऐसा भोडा हो गया था कि लोग देख देख कर हसने लगे। आखिर मैंने उसे सिर पर से उतार कर बगल में दबा लिया और मुह चुराये नगे सिर खडा रहा।

दो-तीन घटे तक इस तरह खडे रहने के बाद मुझे थकान महसूस होने लगी। क्षुधा नाश्ता करके दो घूट पानी पीने की भी इच्छा हुई। पर नाश्ते की तो बात ही दूर, यहा तो खडे रहना भी मुहाल था। नाश्ते की पिटारी नीचे से उठाने की या हाथ का कौर मुह तक जाने की कोई सभावना नही थी। अत जलपान का विचार स्थगित कर देना पडा। अगर यह सभव भी होता तो गाडी मे पीताबर पहन कर और छूतछात से बचा कर निखरा भोजन कर लेने की मेरी आज तक की परपरा को तोडना पडता। क्योकि भीड के कारण पीताबर पहनने की तो सुविधा नही थी और इर्दगिर्द के सब मुसाफिर मुसलमान, ईसाई या अस्पृश्य मालूम दे रहे थे। जनेऊ उनमे से किसी के गले में मिलने की सभावना नहीं थी और गायत्री का उच्चारण तो उन्होने सपने मे भी नहीं किया होगा। गाय के साथ उनकी जबान का जो सबध आया होगा वह हम ब्राह्मणो की अपेक्षा बहुत निराले किस्म का रहा होगा।

आखिर राम राम करके अग्निरथ से खीचे जाने वाले उस मनुष्यो के छत्ते ने हमे बबई पहुचा दिया। गाडी के थमते ही उतरने वाले यात्रियो का कुछ ऐसा शोरगुल मचा कि बबई के सुप्रसिद्ध मछली बाजार की याद आ गई। मैंने रायसाहब को पहले ही सूचना दे दी थी। अत उनका आदमी स्टेशन पर आया हुआ था। उसके साथ हमारी सवारी रायसाहब के बगले पर पहुची। वे फाटक

पर ही खड़े थे। मेरे विदूषकी मुँडासे के कारण पहले तो मुझे पहचानने में उन्हें कुछ दिक्कत हुई पर पास आने पर उन्होंने मुझे पहचान लिया। प्रणाम नमस्कार हो जाने के बाद दोनों तरफ से कुशलप्रश्न पूछे गये। दूसरे दिन रोशनी और तीसरे रोज आतिशबाजी होगी यह जान कर मेरे मन में प्रसन्न उत्सुकता जाग्रत हुई। दोपहर को भोजन के बाद दो-तीन घंटे आराम किया। उठ कर देखा तो पूरा बदन दर्द कर रहा था और पिंडलियों में वायटे आ रहे थे। यह रात कई घंटों तक एक पाँव पर खड़े रहने का परिणाम था। शाम को रायसाहब के साथ उनकी रबर के पहियों वाली दो घोड़ों की फिटन में घूमने गया। जाते समय सुबह रघुवर हो जाने वाला साफा घुमा कर उलटी तरफ से पहन रखा था। इससे मैं बंबई के किसी गुजराती सेठ जैसा दिखाई दे रहा था। मेरी इस विनोदवृत्ति की रायसाहब ने बहुत सराहना की। रास्ते भर उनको किये जाने वाले सलाम और नमस्कारों को स्वीकार करता हुआ मैं दियाबत्ती का समय होते होते बंगले पर लौट आया।

आखिर दीपोत्सव का चिरप्रतीक्षित दिन आया। उस रोज सुबह से ही बंगले में बड़ी हड़बड़ी मची हुई थी। घर के बालबच्चों और अन्य लोगों के लिए एक टामगाड़ी किराये पर तय की गई थी। मैं रायसाहब के साथ उनकी फिटन में जाने वाला था। किन किन इमारतों पर रोशनी होगी इस बात की लेकर घर के लोगों में चर्चा हो रही थी। बच्चे तो आनंद के अतिरेक से नाचने लगे थे। मैं स्वयं रायसाहब के साथ खुली बग्घी में जाने वाला था इसलिए मुझे औरों की अपेक्षा अधिक आनंद प्राप्त होगा इस विचार से मैं बहुत खुश था। परंतु मेरे इस सौभाग्य से घर के किसी भी आदमी को ईर्ष्या हो रही हो ऐसा दिखाई नहीं दिया। रायसाहब के घर के लोग भी उन्हीं की तरह उदारहृदय होंगे और इसी लिए उन्हें मुझसे ईर्ष्या नहीं हो रही होगी ऐसा विचार करके मैंने मन को मना लिया और इस परिवार की सन्तोषी वृत्ति की मन ही मन सराहना करता रहा।

शाम को रायसाहब ने मुझसे थोड़ा बहुत जलपान कर लेने के लिए बहुत आग्रह किया। परंतु लौट कर ही भोजन करने का मेरा निश्चय देख कर वे चुप हो गये। इसमें मेरी कितनी बड़ी भूल हुई थी इसका अनुभव तो बाद में हुआ। शाम को साढ़े सात बजे तक हम कपड़े पहन कर तैयार हो गये और ठीक आठ बजे घर की स्त्रियाँ, बच्चे, नौकर चाकर, सब फटराड टर्मिनस पर इकट्ठा हुए। आठ

बजकर पाच मिनट पर छूटने वाली हमारी आरक्षित ट्रामगाडी सामने ही पटरियो पर खडी थी। उस रोज सार्वजनिक ट्रामगाडिया चलने वाली नही थी। यह गाडी हमारे लिए आरक्षित है यह मालूम न होने के कारण बहुत से मुसलमान और पारसी लोग कडक्टर के मना करने पर भी भीतर घुस गये थे और वह इतमीनान से बठे थे। हमारे पहुचते ही उन्हे बडबडाते भुनभुनाते हुए ही सही, पर गाडी खाली करनी पडी। हमारी सब सवारियो के स्थानापन्न होते ही ट्राम चल दी। बच्चो ने आनद के आवेश म जोर से जयघोष किया। ट्राम जब तक दिखाई देती रही, रायसाहब बडी हसरतभरी नजर से टकटकी लगाये उसे देखते रहे। इसका कारण उस वक्त मेरी समझ म नही आया। सजी हुई विक्टोरिया गाडी पास ही खडी थी। ट्राम के आखो से ओझल होते ही हम उसम जा बैठे।

बबई नगरी ने उस रोज अपूर्व शोभा धारण की हुई थी। इस शहर की रोजमर्रा की तडक भडक ही जहा अन्य शहरो की दीवाली से भी अधिक शानदार होती है तो फिर आज की शोभा अवर्णनीय हो इसमे आश्चय की बात ही क्या थी। बडी-बडी हवेलियो ने सर्वांग पर दीपमालाए धारण की हुई थी। बिजली की रोशनी से पूरा राजमार्ग मध्याह्न के सूयप्रकाश से आखें चौंधिया देने वाली नदी की तरह चमक रहा था। खिडकियो मे पुष्पमालाए लटक रही थी। उनकी सुगध और भीतर से आने वाले मधुर आलापों से मनमानस उद्वेलित हो रहा था। रास्ते के दोनो ओर विभिन्न धर्मों और जातियो के लोग सुदर कपडे पहने हुए सभ्यता और व्यवस्थापूर्वक आ-जा रहे थे। बडे शहरो के निवासियो के मुख पर सदा एक प्रकार की सौम्यता और गभीरता दिखाई देती है। अक्सर वह चारो ओर फैले हुए विराट मानव-समुदाय के सपर्क और मनुष्य की बुद्धिमत्ता के परिणामस्वरूप चहुओर दिखाई देने वाले वैज्ञानिक आविष्कारो के समग्र का परिणाम होती है। अनुपम प्राकृतिक सौंदर्य वाले स्थानो के निवासियो की मुखमुद्रा पर भी इसी प्रकार की गरिमा के दशन होते हैं। भव्यता का साक्षात्कार फिर वह चाहे प्रकृति की शोभा के रूप म हो या विज्ञान के चमत्कार के रूप मे या कला के आनद के रूप मे, मनुष्य के मन को एक प्रकार के गौरव से अभिभूत कर देता है।

बबई के साधारण मुहल्लो म जब इतनी शोभा थी तब फोर्ट विभाग म तो न मालूम कितनी होगी। वहा तो सब इमारतो पर आकाशगगा झिलमिला रही

होगी। यह विचार मन में आते ही मेरी उत्सुकता और भी बढ़ गयी। परन्तु हमारी गाड़ी किले की ओर जाने के बजाय विरुद्ध दिशा में भायखाला की ओर जा रही थी। पहले तो मुझे लगा कि कोचवान शायद रास्ता भूल गया है। मैंने उसका ध्यान इस ओर खींचा, पर उसने सिवा मुस्कराने के कोई उत्तर नहीं दिया। मेरी समझ में कुछ नहीं आया। कुछ समय बाद हम बाटलीवाला अस्पताल के पास पहुंच गये। यहां भी गाड़ियों की कतार लगी हुई थी, परन्तु उनका रुख जिस ओर था, हम उसमें उलटी दिशा में जा रहे थे। यह क्या गड़बड़ी है, मेरी कुछ समझ में नहीं आया। आखिर जब जिज्ञासा पर काबू रखना मुश्किल हो गया तो मैंने रायसाहब से इसका स्पष्टीकरण पूछा। उन्होंने बताया कि गाड़ियों की सामने वाली कतार पटेल से लगाकर कुलाबा तक फैली हुई थी। पुलिस-कमिश्नर की आज्ञानुसार किले की ओर जाने वाली गाड़ियों को इस इकहरी कतार में शामिल होकर ही आगे बढ़ना होगा। बीच में से गाड़ी को वापस भी नहीं घुमाया जा सकता। हमारी गाड़ी लंकादहन के समय लंबी हो जाने वाली हनुमानजी की पूंछ जैसी इस कतार के आखिरी सिरे पर शामिल होने को जा रही थी।

मैंने घबराकर पूछा, "इसका मतलब तो यह हुआ कि इस समय हम जितने पीछे जा रहे हैं, कतार में शामिल होने पर उतना ही आगे जाना होगा?"

रायसाहब ने बड़ी संजीदगी से उत्तर दिया, 'हां, बिलकुल!" हमारी यह बातचीत समाप्त होते-होते गाड़ी कतार में शामिल होकर खड़ी हो गई। मुंह उसका अब भी उलटी दिशा में था। मेरे प्राणपखेरू फूल गये। अब मालूम हुआ कि शाम को घर का कोई भी प्राणी हमारे साथ बग्घी में आने को क्यों उत्सुक नहीं था।

देखते-देखते हमारी गाड़ी के पीछे भी सैकड़ों गाड़ियां आकर कतार में जुड़ गईं। रास्ते के दुतरफा खड़ी होकर चिउंटी की रफ्तार से आगे बढ़ने वाली गाड़ियां रेहट के उन्मुख और अधोमुख डोलों की तरह दिखाई दे रही थीं। गाड़ियों में बैठे हुए लोगों में विविधता का वैचित्र्य दिखाई दे रहा था। एक में रोबदार मराठाशाही पगड़ी पहने कोई महाराजा बैठे थे तो दूसरी में बाल-बच्चों से घिरा हुआ कोई स्थूलकाय भाटिया विराजमान था। तीसरी में शिवलिंग के आकार के फेंटे बांधे हुए पारसी लोग अपनी स्त्रियों के साथ गपशप कर रहे थे तो चौथी में पवपाल की आकृति की टोपियां धारण किये हुए सिंधी लोग ऊंघ रहे थे। पांचवीं

मे अपनी मेम के साथ बैठा हुआ कोई गोरा साहब स्थिति का बडी तटस्थता से अवलोकन कर रहा था तो छठी मे अमरीकन मिशन के पादरी अपनी दाढियो पर हाथ फेरते हुए हिंदुस्तानियो की अनुशासनहीनता पर विचार कर रहे थे। सातवी मे कोई मिस्रदेशीय रूपसी अपने चेहरे को नकाब के अवगुठन मे छिपाकर दूसरो के चेहरो का सूक्ष्मता से अवलोकन करती हुई अपने पति के साथ चुपचाप बैठी थी तो आठवी मे लबी चोटी, चपटी नाक और तिरछी आखो वाले चीनी लोग आजकल बबई मे चूहो और तिलचट्टो की रसद पहले की तरह बहुतायत से नही मिलती इस चिंता मे डूबे हुए, विपण्ण मुद्रा धारण करके बैठे थे। साराश यह कि हिंदू, मुसलमान बौद्ध, यहूदी, पारसी, ईसाई आदि धर्मों तथा अमख्य वर्णों के और अनेक भाषाए बोलने वाले स्त्री पुरुष और बच्चे एक ही निमित्त से इस कभी समाप्त न होने वाली कतार मे लगे हुए थे। यह सब देखकर मेरे मन पर उसका विलक्षण प्रभाव पडे बिना न रहा।

इस सारे तमाशे का बारीकी से अवलोकन करने मे घटा भर बीत गया। मन मे विचार आया कि ट्रामगाडी तो सडक के बीचो बीच टनटनाती हुई चलती है। इसलिए घर के बाकी लोग तो रोशनी देखकर शायद अब तक वापस भी लौट गये होंगे। हम अभी तक उस दिशा मे मुडे भी नही थे। गाडिया अब तक हिले-डुले बिना निश्चल खडी थी। परतु अब कतार धीरे धीरे आगे सरकने लगी। गाडियो के काले रंग और न टूटने वाली परपरा के कारण कतार किसी सैकडो पाव वाले विशालकाय कानखजूरे जैसी दिखाई दे रही थी। गाडियो का यह रैला अब शीघ्र ही फोर्ट मे पहुच जाएगा इस विचार से मुझे बहुत खुशी हुई। परतु मेरा यह हर्ष क्षणजीवी सिद्ध हुआ। दस पाच कदम चलकर यह पलटन फिर रुक गई और दस-पद्रह मिनट तक हिली भी नही। अब तो मेरे मन मे एक प्रकार की दहशत समा गई। कोई बारात होती तो इस तरह चिउटी की गतिसे आगे बढने मे कुछ आनद भी आता। परतु गाडियो की यह गति मुझे नितात अखरने वाली मालूम दे रही थी। किले के विभाग मे लाखो लोग दीपोत्सव की बहार लूट रहे होंगे, और हम यहा निर्जन अधेरे मे खडे हवा खा रहे थे। मेरे मन मे भयानक क्षोभ निर्माण हुआ और उस आवेश मे मैंने बग्घी फिटन, रकेला, छकडा, तागा इक्का टमटम आदि सब प्रकार के वाहनो और उनके चालको को जी भर कर कोसा। सिर्फ वर्तमान सम्राट की माताजी और हमारी परम प्रिय

स्वर्गीया महारानी साहिबा का नाम धारण करने वाली सवारी को बुराभला कहने की हमारी हिम्मत नही हुई। पुलिस के सिपाहियो को तो मन ही मन न मालूम कमी-कैसी गालिया दी। उन्होने यह सारा बाजाब्ता बन्दोवस्त सिर्फ मुझे निराश करने के लिए किया है ऐसी धारणा अकारण ही मन म उठने लगी। किंतु मन मे उठने वाले इन सारे विचारो से फायदा ही क्या था ? धूल फाकते हुए हमे अपनी जगह पर चुपचाप बैठा रहना पडा।

मेरा पूरा ध्यान घोडो के खुरो पर केंद्रित हो रहा था। वे दो कदम भी आगे बढते तो मुझे तनख्वाह मे तरक्की मिलने का सा आनद होता। ऐसी स्थिति म कतार जब घूमकर किले की ओर उन्मुख हुई तब मुझे कितनी खुशी हुई होगी इसका अदाजा आप लगा सकते हैं। चलो, रेहट के अधोमुख डोलो स हटकर अब हम उन्मुख डोलो म तो शामिल हुए। अब हमारी अवनति के बजाय उन्नति हो रही थी। उन्मुख डोलो से छलकते हुए पानी की तरह मेरे शरीर मे नवीन उत्साह का सचार हुआ। परतु वह अधिक देर टिका नही क्योकि दिशा बदल जाने पर भी गाडियो की गति म कोई विशेष फर्क नही पडा था। इस रफ्तार से तो दो रोज बाद होने वाले राज्यारोहण के मुहूर्त तक भी हम किले के आस-पास पहुचेंगे या नही इसमे शका थी। बीच मे एक गाडी न कतार तोडकर दायी ओर की गाडियो मे घुसने का प्रयत्न किया। इससे जो गडबडी फैली उस काबू म लाने मे पद्रह मिनट लग गये। मैंने मन ही मन उस गाडीवान की सात पीढियो का उद्धार किया। कोई कनिष्ठ कर्मचारी हमारी वरिष्ठता को धकिया कर ऊपर का स्थान प्राप्त कर ले तो हमारे मन मे जिस प्रकार का क्षोभ जागता है कुछ वसी ही झुझलाहट और अपमान की भावना मुझे इस मौके पर हुई। पर उपाय ही क्या था।

इस प्रकार मक्खिया मारते हुए न मालूम कितना अमूल्य समय बीत गया। शीघ्र ही घडियो ने मध्यरात्रि के बारह बजने की घोषणा की। अब पेट म क्षुधा भी खलबली मचाने लगी थी। रोशनी देखकर जल्दी ही लौट आयेंगे इस आशा से मैंने रायसाहब के आग्रह करने के बावजूद शाम को जलपान नही किया था। उन्होने थोडा-बहुत नाश्ता कर लिया था। परतु उनका मेदा था जड। जड बुद्धि के मनुष्यो को ज्ञान और जड मेदे के लोगो को अन्न जल्दी हजम नही होता। उन्हे तो अभी तक दोपहर के भोजन की सुगधित डकारें आ रही थी और वे बडी

बेफिक्री से आँखें मूंद ऊंघ रहे थे। मेरे आक्रोश की तुलना में उनकी यह अनासक्ति मुझे नितांत अप्रासंगिक मालूम दी। दूसरी ओर उनकी डकारें मेरी भूख को और भी भड़का रही थी। फोर्ट में दिखाई देने वाले प्रकाश के पुंज के बजाय मुझे पेट की आग का ही अधिक अनुभव हो रहा था। शीघ्र ही मेरा सिर घूमने लगा और आँखों के सामने अंधेरा छाने लगा। ओढ़ने का कुछ न होने के कारण ठंड लग रही थी सो अलग। अब हमारी गाड़ी ने भी तेज रफ्तार से दौड़ने की ठानी। इससे ठंड और भी चुभने लगी। शीघ्र ही रानी का बाग, भायखल्ला स्टेशन और जे० जे० अस्पताल पार करके हम जहां से कतार में शामिल हुए थे वहां आ पहुंचे। यह भी खूब रही। नौ दिन चले ढाई कोस! मेरे मुंह से एक सर्द आह निकल गई। अब फोर्ट में जाकर भी क्या फायदा था। फिर भी हम आगे बढ़ते रहे और क्रमशः पायधुनी, क्राफर्ड मारकेट और बोरीबंदर को पार कर गये। रास्ते भर अंधेरे में टिमटिमाने वाली कमेटी की लालटेनों के सिवा एक भी दीपक दिखाई दिया हो तो कसम ले लीजिये। चारों तरफ घुप अंधेरा फैला हुआ था। हमें उसके दर्शन करवाने के लिए हमारा घोड़ा अब दुगुने वेग से भाग रहा था। अब तक उसे जो आराम मिला था उसकी उस ईमानदार प्राणी ने सूद सहित भरपाई कर दी। यह व्यर्थ की दौड़धूप करने के बजाय हमने बीच में से ही गाड़ी को लौटा लेना पसंद किया होता। पर पुलिस के कठोर अनुशासन के कारण हम यह भी न कर सके और प्रवाह पतित की तरह मजबूरी से आगे बढ़ते रहे। शाम का ही चूकने वाले प्रचंड दीप महोत्सव के अवशेष रूप चारों तरफ फैले हुए घन अंधकार के दर्शन करते-करते हम कोई तीन बजे घर पहुंचे।

पूना वापस लौट आने पर मित्रों के सामने मैंने बंबई के दीपोत्सव का बड़ा सजीव वर्णन खूब नमक मिर्च लगा-लगाकर और बड़े विस्तार के साथ किया। परन्तु मैंने जब बड़े अभिमानपूर्वक यह कहा कि "इस दीपोत्सव की जोड़ का उत्सव मैंने पूरी जिंदगी में नहीं देखा" तब मेरे इस वाक्य में वाच्यार्थ के अलावा कोई गूढ़ व्यंग्यार्थ भी समाया हुआ है ऐसी शंका उन बेचारों के मन में स्वप्न में भी नहीं आई होगी।

भीतर की बात या तो रामजी जानते हैं, या मैं।

13 मेरे आलोचक

आज तक मेरे जो लेख प्रकाशित हो चुके हैं उन पर मेरे मित्रो और शत्रुओ ने अनेक प्रकार के अनुकूल प्रतिकूल मत व्यक्त किए हैं। आश्चय की बात यह है कि यह सारी प्रतिक्रियाए धम के ठेकदारो के द्वारा ही हुई हैं। मेरे मित्र धर्माभिमानी हो इसमे तो आश्चय की कोई बात नही। परतु मेरे विरोधक और निदक भी धर्माभिमानी हैं यह जानकर बहुतो को आश्चय होगा। आज तक मैंने बडी निष्ठा से अपने धम और आचार-व्यवहार की असमथनीय बातो को भी नये और अकाट्य प्रमाणो से मडित करके सुधारको के सामने पेश किया है। इसके लिए मुझे अकसर अनाप शनाप हुज्जत और ऊटपटाग तर्कों की सहायता लेनी पडी है। परतु धर्माभिमानियो ने मुझे इसके बदले मे क्या दिया? केवल कृतघ्नता। इस दुनिया का शायद यही दस्तूर है। सीजर का वध करने मे ब्रूटस और ईसा को सूली पर चढवाने मे जूडास निमित्त बना था। शहशाह नेपोलियन को भी उसके तथाकथित मित्रो की कृतघ्नता का शिकार होना पडा था। और तो और यार लोग स्वय भगवान शकराचाय को भी प्रच्छन्नबौद्ध कहने से नही चूके। फिर मैं भला किस खेत की मूली। वैसे इस एक बात म उपरोक्त महात्माओ के साथ अपनी समानता देखकर मुझे इस उद्वेग मे भी आनद प्राप्त हुआ है।

जिन अनेक वाग्वीरो ने मुझ पर गालियो की वर्षा की है उन सबको शायद यह गलतफहमी हो गई है कि मैं दरअसल प्रच्छन्न सुधारक हू और मेरा असली उद्देश्य सनातन धम और उसके आचारो की खिल्ली उडाना है। इस प्रवाद का खडन मेरे कतिपय लेखो का सुधारको पर जो प्रभाव पडा है, उससे आसानी से किया जा सकता है। 'हजामत की नतिक मीमासा' नामक मेरा निबध पढकर कई सुधारको ने अपने सिर पर के अग्रेजी केशकलाप की छुट्टी कर दी थी। यद्यपि

इसका कारण उन्होंने जूँ की अधिकता बताया था। परंतु मैं यह डंके की चोट कह सकता हूँ कि इस मत परिवर्तन के मूल में खोपड़ी के पृष्ठभाग पर नहीं बल्कि उसके भीतर मचने वाली खलबली का हाथ था। दूसरे एक सुधारक के मन को मेरे एक लेख में वर्णित यज्ञोपवीत माहात्म्य ने इतना अधिक प्रभावित किया कि उसने वर्षों तक रीठे का स्पर्श न होने वाले मैले कुचैले जनेऊ को धुलवाने के लिए धोबी के यहाँ भेज दिया। तीसरे एक आधुनिक मतवादी को मेरा गणेश माहात्म्य वाला लेख इतना पसंद आया कि उसने तुरंत बाजार में जाकर वक्रतुंड, एकदंत, लंबोदर आदि विशेषणों से युक्त गणेशमूर्ति खरीदी और अपने दीवानखाने के आले में उसकी बड़ी धूमधाम से प्रतिष्ठापना की। तब तक उसकी चित्तवृत्ति बड़ी उदास रहा करती थी। परंतु अब वह बड़े आनंद से जीवनयापन करने लगा है ऐसी विश्वसनीय खबर मुझे मिली है। धर्मपरिवर्तन के संबंध में लिखे गए मेरे लेख का भी ऐसा ही स्वस्थ प्रभाव पड़ा है। गवैयों को दी गई मेरी सूचनाओं पर तो कई गवैयों ने तुरंत अमल किया। एक ने तो किसी मदारी से एक सीखापढ़ा बंदर खरीद लिया। तब तक उस मर्कट को सब काम मनुष्यों की तरह करने की शिक्षा दी जाती थी। किंतु अब मनुष्यजाति का वह प्राचीन पूर्वज अपने एक वंशज को यथासंभव टेढ़ा मेढ़ा मुँह बनाने की तालीम देने लगा। आजकल तो मुँह टेढ़ा करने की कला में उस गायक ने इतना नैपुण्य प्राप्त कर लिया है कि उसे और उसके उस्ताद को आमने-सामने बैठा दिया जाए तो गुरु कौन है और शिष्य कौन, नर कौन है और वानर कौन यह पहचानने में कठिनाई होती है। हमें यह कहते हुए संतोष होता है कि तरह-तरह से मुँह बिगाड़कर गाने से आजकल उसे जो आय हो रही है वह उसकी पहले की मुखविक्षेपशून्य गायनकला द्वारा होने वाली आमदनी से कहीं ज्यादा है।

इस प्रकार जब सुधारकों को भी धर्ममार्ग में प्रवृत्त करने में मेरे लेख प्रेरणा सिद्ध हुए हैं, तो फिर धर्माभिमानी पाठकों के मन में पहले से ही पनपे हुए श्रद्धाभक्ति के बिरवे मेरे प्रोत्साहन से और भी अधिक प्रफुल्ल हो उठे हों, तो आश्चर्य की कोई बात नहीं। इन बिरवों को तो मेरे द्वारा डाली हुई गोमल-गोमूत्र की खाद बहुत अनुकूल रही है, ऐसा मालूम देता है।

इन लेखों को लिखते समय मुझे मेरे धर्मध्वजी मित्रों से पर्याप्त मात्रा में सहयोग मिलता रहा, यह स्वीकार करने में मुझे कोई संकोच नहीं है। एक मित्र

ने गोमल-गोमूत्र सेवन की बड़ी तकसंगत उपपत्ति लिखकर भेजी थी। उनका
कहना था सदगुणी लोगों को अक्सर अपनी इच्छा के विरुद्ध बड़े-बड़े विकट
कतव्य निभाने पड़ते हैं। जिसका होगला पंचगव्यप्राशन सब बड़ घृणा हो, उनके
लिए दुनिया म कोई भी काम कठिन या अप्रिय नहीं होगा यह एक प्रकार की
कृच्छ्रसाधना है। हमारे प्राचीन धमप्रवतकों ने मनुष्य की सहिष्णुता की कसौटी
करने के लिए ही यह प्रथा बनाई होगी।' हमारी पुरानी रूढ़ियों की कड़ाही के
तले म जमी हुई खुरचन को भी बुभुक्षित पाठकों के सामने रसीली मलाई के रूप
मे पेश करने की कला मुझे तो अब पूणत साध्य हो गई है। अत इन हथकंडों में
अपने एक मित्र की इतनी गति देखकर मुझे संतोष होना स्वाभाविक है।

दूसरे एक मित्र ने शिकायत की है कि 'विवाह-समारोह' पर लिखे गए निबंध
म मैंने वेश्या के हाथों मंगलसूत्र गुंथवाने की हमारी प्राचीन प्रथा का उल्लेख
क्यों नहीं किया। उनका कहना है कि, 'हमारे विवाह-समारंभों म दो प्रसंगों पर
वारांगनाओं को सम्मान देने की प्रथा युगों से चली आ रही है। एक तो नृत्य-
संगीत द्वारा निमंत्रितों का मनोरंजन करते समय और दूसरे नववधू का
मंगलसूत्र पिरोते समय। कोई कह सकता है कि ये रूपाजीवाएं एक ओर तो
दुलहिन का मंगलसूत्र पिरोकर वरवधू के विवाहित जीवन की दृढ़ग्रंथि बांधती
रहती हैं तो दूसरी ओर अपने स्वैर हावभाव और नेत्रकटाक्षों द्वारा विवाह के
बंधनों को अदृश्य रूप से शिथिल करती रहती हैं। स्थूल दृष्टि से देखने पर
इसमें विरोधाभास दिखाई दे सकता है। परंतु जरा गहराई से विचार करने पर
इन दोनों कार्यों के बीच विरोध के बजाय कार्यकारणभाव दिखाई देगा। मंगलसूत्र
गूंथने का काम अखंड सुहागिन ही कर सकती है। वारांगना से बढ़कर सदा-
सुहागिन भला कौन होगी? और मंडप में उपस्थित लोगों का मन नृत्यगीतादि
मे आकर्षित किए बिना उसका बहुपतित्व और सदा-सुहागिन-सा सुहाग कैसे
स्थापित हो सकता है? अतएव वारवनिता के ये दोनों काय एक-दूसरे के
विरोधी नहीं बल्कि पूरक हैं।' मित्र की इस टिप्पणी से हमें बेहद खुशी हुई।
उसने 'स्थूल दृष्टि से किसी बात का मम समझ में न आए तो सूक्ष्म दृष्टि का
उपयोग करना चाहिए''—हिंदू धम की इस बुनियादी और सवस्पर्शी
शास्त्राज्ञा पर अमल किया है। उसने हमें निरुत्तर कर दिया फिर भी उसकी
जागरूकता से हमें अभिमान का ही अनुभव हुआ है। शास्त्र का वचन है

"शिष्यादिच्छेत्पराजयम"। इसी मित्र ने जनवासे की विविध चीजें उडाने की बारातिया की पुरानी आदत का उल्लेख न करने के लिए भी हमें दोष दिया है।

भगवान श्रीकृष्ण के प्रति हमारा पक्षपात देखकर हमारे एक तीसरे मित्र को उनकी सहायता के लिए दौड पडने की प्रेरणा मिली है। चोर-जार शिरोमणि कह कहकर सुधारक लोग श्रीकृष्ण के चरित्र पर हमेशा छींटे उडाते रहते हैं। उनका यह रूप जितना भागवत में उजागर हुआ है उतना अन्य किसी ग्रंथ में नहीं। अत हमारे मित्र ने उनकी सफाई देते हुए श्रीमद्भागवत को ही प्रक्षिप्त ग्रंथ करार दिया है। और उसे प्रामाणिक मानने से इनकार किया है। माना कि इससे तो कृष्णद्वैपायन व्यास का ही पत्ता कट जाता है। परंतु अपने चरित्रनायक को दूध का धुला प्रमाणित होते देखकर भगवान व्यास को दुख में भी सुख का अनुभव होगा और अपने ग्रंथ पर लगाए जाने वाले इस लाछन को भी सहर्ष सह न कर लेंगे।

मैं सुधारक न होकर प्राचीन धर्माभिमानी ही हू और अपने इष्टमित्रों की सहायता से सदा सनातन धर्म के पक्ष में लिखता रहता हू यह अब तक के विवेचन से स्पष्ट हो गया होगा। मेरे प्रतिस्पर्धियों द्वारा लगाए गए इस अभियोग को कि मैं प्रच्छन्न सुधारक हू और धर्म की व्याजस्तुति के बहाने उसकी निंदा ही करता रहता हू, बहस के लिए सही मान लिया जाए तो भी मेरा बर्ताव निंदनीय सिद्ध नहीं होता। मैं यह प्रमाणित कर सकता हू कि इस प्रकार की आलोचना के पीछे मेरी धर्मभावना ही प्रेरक शक्ति के रूप में काम कर रही है। पाठक कुछ समय के लिए यही मान लें कि मैं सुधारक हू।

हमारा हिंदूधर्म प्राचीन समय में चाहे जिस स्थिति में रहा हो आजकल तो वह केवल आचार प्रधान हो गया है इस बात से कोई इनकार नहीं कर सकता। प्रात दिशामैदान जाने से लगा कर रात को बिस्तर पर लेटने तक के हमारे सारे छोटे मोटे आचरण धर्म के अंतर्गत माने जाते हैं। सूर्योदय के समय मुह किस दिशा में होना चाहिए, सोते समय टांग किस दिशा में होनी चाहिए, बिल्ली रास्ता काट जाए तो क्या अनिष्ट फलप्राप्ति होती है, छींक आनेसे या शरीर पर छिपकली गिरने से क्या अनर्थ होता है, लघुशंका से निवृत्त होते समय जनेऊ को कहा लपेटना चाहिए और तर्पण करते समय कहा, इत्यादि सारी सूक्ष्म बातों का समावेश धर्म के अंतर्गत ही आता है। दिन

भर के समस्त व्यापार-व्यवहार के साथ-साथ समूची स्थावर-जगम सृष्टि भी धम की श्रेणी मे आती है। गाय, बल, घोडा, हाथी बदर, कुत्ता, साप, चूहा इत्यादि प्राणिया और वहीखाता कलम-दवात शस्त्रास्त्र, दीपक आदि अचेतन वस्तुओ का भी हम पूजा योग्य मानते हैं। फक सिफ इतना है कि कलम-दवात, वहीखाता आदि चीजो को हम प्रत्यक्ष सामने रखकर पूजते हैं जब कि साप, हाथी, बाघ डरावने प्राणियो की पूजा उनकी प्रतिमा या चित्र के माध्यम से होती है। क्योकि सचमुच के साप को आख मूद कर नमस्कार करने पर सपदेवता प्रसन्न होकर आशीर्वाद देंगे या फुफकारते हुए झपट्टा मारेंगे इसका कोई भरोसा नही रहता। हमारी सस्कृति ने स्त्री और शूद्र को छोडकर प्राय सभी चराचर वस्तुओ को पूजा ग्रहण करने का अधिकारी माना है। देवताओ ने हमे उत्पन्न किया है या नही यह तो वे ही जानें पर हमने तेतीस करोड देवताओ का सजन अवश्य किया है। और अत मे तो देवताओ की इतनी भीड भाड होने पर भी, उनमे से किसी एक के प्रति उत्कट भक्तिभाव रखने के बजाय हम चाहे जिस दोराहे चौराहे देहरी चौखट पीर सैयद और भूत पिशाच को अपनी श्रद्धा अपण करते रहे हैं।

ये सारे आचार किसी सवमान्य तत्व या सिद्धात के सहारे चलते हो, यह बात भी नही। अधिकाश बातो मे तो रूढि ही हमारे आचारो की नियन्ता बन बैठी है। कोई प्रथा हमारे देश मे हजार वष पहले प्रचलित थी सिफ इतनी सी बात उसे सदा सवदा चलती रखने के लिए पर्याप्त मानी जाती है। वास्तव मे किसी भी समाज की रीतिनीति देशकाल और तत्कालीन परिस्थितियो के अनुरूप होनी चाहिए और किसी भी प्रथा का अतिपुरातनत्व उसके प्रति आदर के बजाय सशय की उत्पत्ति का कारण होना चाहिए। पर हम इसी बात को भूल बठे हैं। पुरानी आदत होने की दलील के बल पर जवान आदमी यदि घुटनो के बल चलने लगे या वृद्ध मनुष्य विषयवासना मे डूबा रहे तो इसे कहा तक उचित माना जाएगा ? इसी निकष पर समाज की अन्य रस्मो को भी कसना चाहिए। आजकल ता रूढि अपना एकछत्र शासन इतनी निरकुशता से चलाने लगी है कि होली के दिन समाज के प्रतिष्ठित लोगो को भी अपनी इच्छा के विरुद्ध गालीगलौज और हुडदग मे शरीक होना पडता है और श्रावणी के दिन अतर्बाह्य शुचिभूत लोगो को भी मुह बिगाड कर ही सही, पर गोमल-गोमूत्र का सेवन करना पडता है।

हमें तो डर लगने लगा है कि कुछ ही दिनों में हम कहीं अपनी वतमान राजकीय और आर्थिक स्थितियों को भी सनातन रूढि करार दे कर उन्हें गले से न लगा बैठें।

अभिमानी आखों के लिए उपहास से बढ कर कोई अजन नहीं। प्राचीनता और रूढि के अभिमानी लोगों की अक्सर यह आदत होती है कि उन पर मूखता का अभियोग लगने पर तो उन्हें गुस्सा आता है, पर उन्हें दुष्ट या नीच कहा जाए, तो उतना बुरा नहीं लगता। इतना ही नहीं दुष्ट या नीच कहलाने की क्षमता अपने आप में पाकर तो वे कुछ गौरव का ही अनुभव करते हैं। अपनी गलतियां और कमजोरियों को स्वीकार करने का मानसिक धय जिनमें नहीं है, अपनी हर बुरी भली रूढि को येनकेन प्रकारेण दूसरों के गले उतारने का जो प्रयत्न करते हैं, और देश की वतमान दुदशा को जो दवगति के मत्थे मढकर निश्चित हो जाना चाहते हैं उन पाखडी पोगापडितों की आखें खोलना और इस बहाने रूढि की अनिष्टता के प्रति पाठकों को जागरूक करना ही इन लेखों के पीछे हमारा प्रधान उद्देश्य रहा है।

हास्य विनोद की मीमासा करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि उपहास की तह में अकसर महान और हीन एवम भव्य और क्षुद्र के बीच का अतर स्पष्ट करने की भावना होती है। ऊपर वणन किए हुए, येनकेन प्रकारेण स्याह को सफेद प्रमाणित करने वाले लोगों का प्रयत्न इतना बेतुका होता है और उनके अभिमान का विषय होने वाली रूढियों एवम उनके समथन में प्रस्तुत तर्कों की सत्य से दूरी इतनी अधिक होती है कि उन्हें उपहासास्पद सिद्ध करने में विशेष कठिनाई नहीं होती।

विनोद प्रचुर और उपहासगभ भाषा शैली पश्चिम के देशों में बहुत अधिक प्रचलित है। वॉल्टेयर, मोलियर, रेंबेले पास्कल और सर्वांतीज़ से लगा कर स्टर्न, फील्डिंग, स्मॉलेट और मार्कट्वेन तक वहां के कुशल व्यग्यकारों का हमने इसीलिए गहन अध्ययन किया। इन लेखों में उनका अल्प अनुकरण करने का प्रयत्न किया गया है।

परतु किसी भी समस्या की ओर देखने की पौर्वात्य और पाश्चात्य दृष्टियों के बीच जो जमीन-आसमान का अतर पाया जाता है इसका भी हम एहसास था। फ्रास में व्यग्य विनोद को इतनी अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त है कि कोई अभियुक्त या

सजायाफ्ता अपराधी भी विनोद प्रचुर भाषण कर तो समाज उसके बडे से बडे अपराध को क्षमा कर देता है। इसके विपरीत हमारे यहा हास्यविनोद इतना हीन माना जाता है कि अत्यत शुद्ध भावना से प्रेरित होकर भी कोई लेखक या वक्ता यदि अपने विषय को हासपरिहास के मिश्रण से मनोरजक बनाने की कोशिश करे तो इसे तुरत एक साहित्यिक अपराध घोषित कर दिया जाता है और उस पर छिछोरा, बचकाना, वीभत्स अश्लील आदि विशेषणो की पुष्पवर्षा होने लगती है। रैबेले स्मॉलिट आदि लेखको ने तो अपने विनोद प्रधान प्रथा की बगिया मे कही कही मानवीय मलमूत्र की खाद भी बिखेरी है, फिर भी वहा के लोगो ने उसे नापसद नही किया। परतु हमारे यहा की लीला तो तीन लोक मे न्यारी है। उदास चेहरो पर मुस्कान की एक झलक लाने के लिए किसी ने पचगव्य-प्राशन की उपहासगभ चर्चा की नो उस पर पुरस्कार के रूप मे पचगव्य अर्थात् गोमल-गोमूत्र की बौछार हुई ही समझिए।

मनुष्य समाज मे जब कोई नई प्रथा रूढ होती है तो पहले वह विचारो तक ही सीमित रहती है, फिर भी धीरे धीरे अभिव्यक्ति पाती है और अत मे आचरण बन जाता है। परतु पचगव्य सेवन की प्रथा के सबध म ठीक उलटा चमत्कार हुआ है। हम उसके प्राशन को महापु य मानते हैं पर मुख से उसका उच्चारण करने को पाप समझते हैं। जा मुख गोबर खाने से भ्रष्ट नही होता वही गोबर खाने का उल्लेख करने से अपवित्र कैसे हो जाता है ?

हमने उपरोक्त सब बातो पर गहराई से विचार किया और पुराणमतवादी पाठको और आलोचको की गालीगलौज के झझट से बचने के लिए सुदामा' नामक मानसपुत्र उत्पन्न किया। हमारी कुछ कालविसगत रूढियो की उपयुक्तता सिद्ध करने के लिए कुछ भीरुधृष्ट लोग जिन बचकाने और हास्यास्पद तर्कों का प्रयोग करते हैं उन सबको हमने सुदामा के मुह मे जड दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि जालधरनाथ के शापवचन जिस प्रकार धातुमई प्रतिमा के पीछे खडे हुए गोपीचद को स्पश नही कर सके थे उसी प्रकार मूखतापूण, बचकाना आदि जिन विविध विशेषणो की वर्षा हमारे पुराणमतवादी बधुओ ने दौर्बल्यजनित क्रोध के आवेश मे दात पीस पीस कर हम पर की वे सब सुदामा की प्रतिमा से टकरा कर निष्प्रभ हो गये। इससे मेरा उत्साहभग होने की बात तो दरकिनार, मुझे इस बात से कुछ बल ही मिला कि मैंने जो स्वाग जानबूझकर धारण किया था

वह लोगो को सच्चा मालूम देने की हद तक असली और चमत्कारपूर्ण सिद्ध हुआ। किसी कलाकार द्वारा अभिनीत मृच्छकटिक नाटक के शकार की भूमिका को देख कर प्रेक्षको के मुख से अनायास ही 'दुष्ट', 'पापी', 'बेवकूफ' आदि धिक्कार सूचक उद्‌गार निकल पड़ें तो उस अभिनेता को विषाद होगा या आनद ? कुछ इसी प्रकार की बात मेरे साथ भी हुई।

पश्चिम के देशो मे जिस प्रकार नालियो के गदे पानी को रासायनिक प्रक्रिया द्वारा शुद्ध करके फिर से प्रयोग मे लाने की प्रथा है उसी प्रकार हमारे धर्माभिमानियो के मुख से निकली हुई अशोभन गालियो को मैंने इस 'सुदामा' रूपी छलनी मे स छानकर स्वीकार कर लिया है। यह सही है कि कभी-कभी कोई सचमुच ही सतोष व्यक्त करके प्रशसात्मक आलोचना करता है, तो मैं उसे सुदामा के हिस्से मे न जाने देकर खुद डकार जाता हू। इस प्रकार जूठा और बचा खुचा भोजन पुत्र के आगे सरका कर खुद पकवानो पर हाथ साफ करने वाले पिता को कोई चाहे तो स्वार्थी और हृदयहीन कह सकता है। पर इससे लज्जित होने का मुझे कोई कारण दिखाई नही देता। 'सुदामा', कुछ भी कहिये, मेरा देहज नही बल्कि मनसिज पुत्र है। उसे गालियां रूपी विष का भय या स्तुति रूपी अमृत की लालसा दोनो मे से एक भी होने की सभावना नही।

हास्य मिश्रित रस माना गया है। उदात्त और क्षुद्र ये दोनो परस्परविरोधी तत्व एकसाथ उसके उपादान होते हैं। इसमे क्षुद्र कल्पनाओ के अतगत बीभत्स और अश्लील कल्पनाओ का भी समावेश रहता है। इसी कारण पश्चिम के विनोदप्रधान साहित्य मे हम इन बातो का सम्मिश्रण यत्रतत्र मिलता है। इन कल्पनाओ की हीनता सिद्ध करने के लिए भी उन्हे अपने लेखो मे स्थान न दिया जाए तब तो उत्तम बात है। परतु जिन बातो पर हमें उपहासास्त्र छोडना है वे ही यदि बीभत्स या अश्लील हो तो इस नियम का पालन करना मुश्किल हो जाता है। जुगुप्साजनक प्रथाओ का केवल नामनिर्देश या उल्लेख करने के लिए भी जब अशोभन शब्दो का सहारा लेना पडता है तब उनका उपहास करते समय उनसे कैसे बचा जा सकता है ? ऐसे मौको पर आवश्यक अश्लील शब्दप्रयोगो का उत्तरदायित्व टीका करने वाले लेखको पर नही बल्कि टीका का विषय होने वाली रूढियो पर होना चाहिए। हमारे पुराणमताभिमानी मित्र गोमल और गोमूत्र का भरपेट सेवन करने के बाद डकार लेते लेते यदि यह कहने लगें कि

'देखो भाई इन पदार्थों का सेवन तो हम छोड़ने वाले नहीं। तुम्हें टीका टिप्पणी करनी हो तो अवश्य करो। पर टीका करते समय 'गोबर' शब्द मुह से निकाला तो खबरदार!' —तो इस सूचना पर अमल कैसे किया जा सकता है। कुछ यत्रों में पाई जाने वाली या सिर्फ एक ओर को खुलने वाले परदों (Valves) की सी कोई योजना तो प्रकृति ने मनुष्य के मुख में की नहीं है कि उसमें से गोबर भीतर तो प्रवेश कर सके पर शब्दरूप में बाहर न निकल सके। सेवन किये हुए पदार्थ की डकार को रोकना जिस प्रकार संभव नहीं और हितकर भी नहीं, उसी प्रकार उसकी अभिव्यक्ति या उल्लेख पर किसी प्रकार की पाबंदी लगाना भी उचित नहीं। सेवन करने वाले और उल्लेख करने वाले मुख यदि अलग अलग हों तब तो किसी भी हालत में अभिव्यक्ति का दमन करना उचित नहीं है।

मेरे एक निबंध का शीर्षक है 'हजामत की नैतिक मीमांसा'। उदात्त और हीन कल्पनाओं के बीच का विरोध ही उपहास की आत्मा है यह मान लिया जाए तो उपरोक्त शीर्षक में आपत्तिजनक कुछ भी नहीं है। परंतु हमारे कुछ पाठकों को उसमें और कुछ नहीं तो शब्दप्रयोग को लेकर ही बुराई दिखाई दी है। उनका प्रस्ताव है कि इतने क्षुद्र विषय पर निबंध यदि लिखना ही था तो उस पर कम से कम 'श्मश्रू की नैतिक मीमांसा' जैसा भारी भरकम शीर्षक देना चाहिए था। हमारे लेख के शीर्ष पर 'हजामत' के बजाय 'श्मश्रू' की स्थापना होने पर उपहास और व्यंग्य की दृष्टि से वह कितना औचित्यपूर्ण होगा, और गड़बड़ी लेख के शीर्षक में है या उसकी अकारण आलोचना करने वालों के दिमाग में इसका निर्णय मैं पाठकों पर ही छोड़ता हूं।

जनसाधारण में एक ऐसी प्रथा दिखाई देती है कि कोई उन्हें हंसी मजाक के दरमियान बोलचाल की प्राकृत भाषा में गालियां दे तो इसका वे बुरा नहीं मानते। परंतु देवताओं और सनातन धर्माभिमानियों की बात इससे ठीक उलटी मालूम देती है। उन्हें गालियां देने और खाने के लिए प्राकृत के बजाय संस्कृत भाषा ही अधिक पसंद आती है। किसी से कहो कि, 'तू गोबर में मुंह मारता है' तो वह बुरा मान जाएगा। परंतु उसी से यदि कहा जाय कि 'तू गोमय प्राशन करता है" तो वह खुश होगा। इसी प्रकार महादेवजी को यदि जानवरों और भूतप्रेतों का ठेकेदार कहा जाय तो वे तीसरा नेत्र खोल कर हम भस्म कर देने पर उतारू हो जाएंगे। परंतु पशुपति या भूतनाथ कहने पर उनके क्रोध का

तुरत शमन हो जाएगा। प्राकृत गालियो के जख्मो पर संस्कृत अपशब्द शायद मरहम का काम करते हैं।

हजामत संबंधी हमारे लेख के शीर्षक म परिवर्तन चाहने वाले इस अडियल टीकाकार को उसी लेख के संबंध मे एक और शिकायत भी रही है। एक बार हजामत करवाने के बाद दूसरी बार हजामत का दिन आने तक बालो की वृद्धि के साथ लोगो की मनोवृत्ति मे भी कैसा फर्क पड जाता है इसका कुछ अत्युक्तिपूर्ण वर्णन हमने किया था। प्रस्तुत आलोचक महोदय को कुछ ऐसा भ्रम हुआ है कि हमारा वह लेख हल्का फुल्का व्यग्यात्मक निबंध न होकर ऐतिहासिक या मनोवैज्ञानिक शोध प्रबंध है। इस दृष्टि से उन्हे उसम कई दोष और विसंगतिया मालूम दी हैं। हमारे कथन की अयथार्थता प्रमाणित करने के लिए उन्होंने कई प्रमाण भी दिये। हमने लिखा था कि हजामत करवाने से पहले सिर पर जो टोपी क्षितिज रेखा के समातर रहती है वही हजामत करवाते ही कुछ तिरछी हो जाती है। इस संबंध मे वे लिखते हैं कि उन्होने हजामत बनवाने के बाद सप्ताह भर तक टोपी को सिर पर जमाये रखा। पर टोपी पर उनके लबे-लबे दोनो कानो मे से एक का भी गुरुत्वाकर्षण प्रभाव नही पडा। इससे हमारी बात गलत प्रमाणित हो जाती है। हमे तो ऐसा लगता है कि लगातार आठ दिन तक टोपी के आच्छादन से उनका दिमाग भन्ना उठा होगा और उसी झल्लाहट मे उन्होने हमे यह पत्र लिख मारा है।

इसी प्रकार कुछ ठोक-पीट कर एक नियम हमने यह गढा था कि श्मश्रू की वृद्धि के साथ जबान पर संस्कृत के शब्द अधिक आने लगते हैं और बालो का उच्चाटन होते ही वृत्ति फिर प्राकृत की ओर झुक जाती है। हमारे टीकाकार ने एक सप्ताह तक इस उक्ति को भी परखा—पर सब व्यर्थ। संस्कृत भाषा ने उनके मुख में कुछ ऐसा पक्का अड्डा जमाया हुआ है कि वह हिलने को भी तयार नही हुई। यह अतिपरिचित पाहुनी आज जाएगी कल जाएगी इस आशा मे उस बेचारेने आठ रोज तक राह देखी। अत मे निराश होकर फिर हजामत बनवा ली और हमे खरीखोटी सुनाने के लिए मुह खोला तब कही चमत्कार हुआ। जिन ग्राम्य शब्दो की वे चातक की तरह राह देख-देख कर थक गये थे वे भक्त वत्सल शब्द सकट के समय नगे-पावो दौडे चले आये। इसके बाद तो घटा तक उनकी जिह्वा पर सरस्वती रुडमाला धारण करके ताडव करती रही और हमारे

कथनों का संपूर्ण उच्चाटन होने के बाद ही उन्हें शांति मिली। अपनी नाक कटवा कर उन्होंने हमारा अपशकुन बेशक किया, पर उन्हें यह मालूम नहीं पड़ा कि इस प्रकार अकथनीय शब्दों के बोझ के नीचे हमें दबा कर उन्होंने परोक्ष रूप से हमारे कथन की सत्यता ही प्रमाणित की है।

मैं अपने लेखों में हमारे देवताओं और आचारों की निंदा करता हूं, इतना ही नहीं आत्मनिंदा से होने वाले दुख में परनिंदाजनित सुख का एक छींटा भी नहीं पड़ने देता, ऐसा भी एक अभियोग मुझ पर लगाया गया है। मैं बड़े अभिमान के साथ स्वीकार करता हूं कि यह इल्जाम बिलकुल सही है। विषय के प्रतिपादन के मध्य स्वाभाविक रूप से उपस्थित होने पर तो पश्चिम की पोंगापंथी रूढ़ियों या यहां के पुराणों की ऊटपटांग कथाओं का विरोध करने से मैं कभी नहीं चूकता। परंतु संदर्भ को छोड़कर केवल टीका करने के इरादे से मैं उनकी टीका कभी नहीं करता। इसका एकमात्र कारण यह है कि अपनी कमजोरियों को देख कर मन में जितना मलाल होता है उतना दूसरों की कमियों को देखकर नहीं होता। और जहां कलेजे में कसक नहीं उठती वहां अभिव्यक्ति करने वाले उद्‌गार कैसे निकल सकते हैं?

हमारे धर्म और समाज में बेबुनियाद रूढ़ियों के साथ कई अच्छी प्रथाएं भी हैं। कृष्ण की तरह राम को भी हमने ईश्वर का अवतार माना है। इन भव्य प्रथाओं और उदात्त चरित्रों के प्रति मेरे मन में हमारे प्राचीनाभिमानी बंधुओं के जितनी ही श्रद्धा और अभिमान की भावना है। परंतु व्यंग्यप्रधान लेखों में उनका उल्लेख अप्रासंगिक और उनकी स्तुति अप्रस्तुत होना स्वाभाविक है। हमारे इतिहास के इन उदात्त और अभिमानास्पद तत्वों की खिल्ली उड़ाना तो दरकिनार, उनका अप्रतिष्ठात्मक उल्लेख भी मेरे हाथों कहीं न हो जाए इसकी मैं पूरी सावधानी रखता हूं। इस बात की गवाही तो मेरे आलोचक भी निस्संकोच भाव से देंगे।

अस्तु। पहले मैं प्राचीन धर्माभिमानी हूं इस दृष्टि से और बाद में प्रच्छन्न सुधारक हूं इस दृष्टि से भी मैं अपने आलोचकों को उत्तर दे चुका। प्रत्युत्तर की सुविधा के लिए मैंने दोनों दरवाजे खुले रखे हैं। परंतु इस दोहरे दृष्टिकोण के कारण पाठकों को कुछ उलझन हो सकती है। इस लिए अंततोगत्वा मैं प्राचीनता का पूजक सनातनधर्माभिमानी ही हूं यह स्थापित करने के लिए मैं एक अंतिम

और अकाट्य प्रमाण देता हू। कुछ दिना पहले किसी अंग्रेज साहब ने गणेशजी की प्रतिमा खरीद कर उसकी विडबनात्मक पूजा-अर्चा करना आरभ किया। परतु इसके लिए उन्हें शीघ्र ही मृत्यु रूप म प्रायश्चित भुगतना पडा। पाठको को याद होगा कि यह समाचार देश के सभी प्रमुख अखबारो मे छपा था। मैंने गणेशचतुर्थी पर जो लेख लिखा है उसे भी व पढ चुके होंगे। मेरे आलोचको के मतानुसार मैंने उसमे गणेशजी का विडबन किया होता, तो उपरोक्त गोरे साहब की तरह मैं भी कभी का प्राणो से हाथ धो बैठा होता। परतु ऐसा तो कुछ हुआ नही। इससे प्रमाणित होता है कि या तो मैंने वह लेख शुद्ध अत करण से और विघ्नहर्ता के प्रति भक्तिभाव से प्रेरित होकर लिखा था या फिर गणेशजी जागृत देवता न होकर पुराणकारो की कल्पना से उत्पन्न एक ढकोसला मात्र है जो अपने निदक का कुछ न बिगाड सके। मुझे पूरा विश्वास है कि इस प्रकार की दुविधा मे पडने पर हमारे धर्माभिमानी मित्र गणेशजी की नि सत्वता कबूल करने के बजाय मुझे उपरोक्त अभियोग से बरी कर देना ही उचित समझेंगे।

बारह लेख लिख कर कुछ दिनो के लिए विश्राम करने का मेरा इरादा था। पर सुदामा के बारह बज गए ऐसी गलतफहमी की गुजाइश न छोड़ने के लिए यह तेरहवा लेख भी लिखना पडा। इसके लिए अपने आलोचको को उत्तर देने से बढ़ कर उपयुक्त विषय और क्या हो सकता था? ऐसा न करने पर उनकी नाराजी भी तो झेलनी पडती। 'विविध ज्ञान विस्तार' के लिए बारह लेख लिखने का सकल्प ईश्वर कृपा से पूरा हुआ। इसके बाद पाठको से भेंट होने का योग न जाने कब आये। तब तक अपने इस अकिचन सुदामा को वे भूल नहीं जाएगे ऐसी अपेक्षा व्यक्त करके मैं आज्ञा चाहता हू।

14 बबई की प्रदर्शनी

बबई के दीपोत्सव के समय मुझे किस कदर गहरी निराशा हुई थी इसकी जानकारी पाठको को दी जा चुकी है। उस मनोभग का मुझे बबई से बदला लेना था। सन 1904 की बडे दिन की छुट्टिया मे मुझे इसका मौका मिला। राष्ट्रीय महासभा के अधिवेशन के उपलक्ष्य मे बबई मे विराट प्रदर्शनी होने वाली थी जिसका चित्ताकर्षक वर्णन कई दिनो से समाचारपत्रो मे आ रहा था। उन वर्णनो को पढ कर हर आदमी यह कहने लगा कि मनुष्य का जन्म मिला है, तो यह मौका चूकना नहीं चाहिए। इस मे से अनमोल मनुष्य जन्म प्राप्त करने वाला हिस्सा तो मैं पहले ही पूरा कर चुका था। रही प्रदर्शनी देखकर उसे सार्थक करने की बात। सो उसे देखने का योग जुटाने का मैंने निश्चय किया। इस बार मैंने अपने अभिन्न मित्र बहूनाना और पाडूतात्या को भी साथ ले जाने का निश्चय किया। इसके पीछे परोक्ष प्रयोजन यह था कि पिछली बार की तरह यदि इस बार भी निराशा ही पल्ले पडी, तो उसे बटाने वाले भी साथ होने पर उसकी तीव्रता कम हो जाएगी। साथ ही यदि प्रदर्शनी को ठीक से देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, तो आनद तिगुना हो जाएगा। यह तो सभी के अनुभव की बात है कि दुख के समय मित्रो की उपस्थिति उसे बाट देती है जब कि सुख के समय वही उस कई गुना बढा देती है।

बबई जाने का निश्चय पक्का होते ही हमने तयारी शुरू की। हम तीनो स्वदेशी वस्तुओ के प्रखर अभिमानी थे और तीनो ने यथासभव स्वदेशी कपडा पहनने की शपथ ली हुई थी। परतु इस 'यथासभव' शब्द की व्याख्या को लेकर हम तीनो मे मतभेद था। बहूनाना शपथ का शब्दश पालन करते थे। नागपुरी धोती और दुपट्टा, बबई की मिलो मे बने मोटे मारकीन का तनीदार अगरखा

ौर लोई की बडी, यही उनकी पोशाक रहती थी। बबई मे ठड बहुत पडती है हृ सुन कर इस बार उन्होने एक रूई की बगलबदी बनवा ली थी। पाटूतात्या द्ध शौकीन और जन्मजात धूत होने के कारण उनकी यथासभव व्याख्या काफी शिथिल थी। जनेऊ और पगडी स्वदेशी और बाकी कपडे विदेशी ऐसा समझौता ायद उन्होने मन ही मन कर रखा था। परतु उनकी आर्थिक स्थिति उनकी ौकीन मिजाजी के अनुकूल न होने के कारण वे हर साल नये कपडे नही सिलवा कते थे। इसलिए उनके कपडो म उनकी इच्छा के विरुद्ध लबे चौडे धरोख दिखाई देते थे। पहले बनवाये गले वाले और मोटे कोट अब रग उड कर भदरग दिखाई देने लगे थे और उनका कपडा झिरझिरा हो गया था। आरभ मे एडिया को छूने वाली पतलूनें तात्या के चरणो का सुखद स्पश छोड कर ऊपर का सिकुड गई थी और पतलून और जूता के बीच के बालिश्त भर के चिरस्थायी अतर म से उनकी मोटी और भद्दी पिंडलिया झाका करती थी। ऐसे पुरातन साजो-सरजाम से बबई की यात्रा के योग्य, कम छेदो वाले, वणत्याग न किये हुए और पहनने के बाद उनके उदर के घेरे पर से बिना फाडे उतर सकें ऐसे कपडे चुनना बडे परिश्रम का काम था। इसलिए उसमे पूरा एक घटा लग जाना कोई ताज्जुब की बात नही थी। इसके बाद तात्या ने उम्र मे उनसे बडी बडी और सावधानी से सभाल कर रखी हुई एक जीणजजर जेबी घडी निकाली। उसका डायल तडका हुआ था और घटे दिखाने वाली सुई टूट चुकी थी। अत कालगति नापन के काम मे उसका विशेष उपयोग होने की सभावना नही थी। अधिक से अधिक, घटा पूरा होने के बाद कितने मिनट बीते इसकी सूचना वह दे सकती थी। पर वह घटा कौन सा था, रात का था या दिन का, यह जानने का कोई माग नही था। इस प्रकार घडी की स्थिति कालमापन के लिए तो अनुकूल नही थी, परतु बीते हुए युगा की यादगार के रूप म उसका महत्व अवश्य अभूतपूव था। अपनी जजरता के बहाने वह अपनी उम्र की घोषणा नि सदिग्ध रूप मे करती थी। सुनहरी जजीर म लटका कर कोट की भीतर वाली जेब मे छोड देने पर वह काल के साथ-साथ अपने ज मस्थान का भी पता नही लगने देती थी।

मेरा अपना वस्त्र परिधान नाना और तात्या के कपडा की औसत का प्रतिनिधित्व करता था। अर्थात् मेरे कुछ कपडे स्वदेशी होते थे और कुछ विदेशी। स्वदेशी वस्त्र मैं अकसर विदेशी कपडो के भीतर पहना करता था। इसके पीछे दो

कारण थे। एक तो यह कि स्वदेशी कपडे पहनने का गरूर लागा की आशा म न खटके और दूसरा यह कि स्वदेश प्रेम से सवालन भरी हुई मेरी देह को स्वदेशी कपडा का स्पश होता रहे।

दीपोत्सव के समय से बवई के मेरे मित्र रायसाहब चक्रपाणि की ओर से मेरा मन टूट गया था। अत इस वार और कही ठहरने की व्यवस्था करने के लिए हमने पाइतात्या के एक मित्र को पत्र लिखा। उनका उत्तर आया कि, 'बवई में ठहरने योग्य केवल दो स्थान हैं। इनम स सुखनिवास तो आजकल दुखनिवास बना हुआ है और सरदारगह की एक एक कोठरी म बीस-बीस सरदार भरे हुए हैं। खानेपीने की सुविधा केवल वहा अच्छी है। सुबह शौच मुखमाजा आदि की सुविधा कर दने का आश्वासन ग्रट रोड के पास के एक ढाबे वाले ने दिया है और दिन मे उठने बैठन एव रात म सोने के लिए भायखल्ला म एक कोठरी मिल सकती है। परतु उसम पानी की कोई व्यवस्था नही है और झाडू बुहारी, दियाबत्ती आदि करने के लिए आसपास कोई नौकर मिलने की सभावना नही है। इस लिए कहार की व्यवस्था गिरगाव से करनी पडेगी और उसे दिन मे दो बार ट्राम से आने-जाने का किराया देना होगा।' स्पष्ट था कि इस स्थिति की यात्रा करके प्रदशनी देखने के लिए अधिक समय नही बचता। सुबह उठते ही कान पर जनेऊ लपेटे भायखल्ला से ट्राम मे ग्रट रोड के ढाबे म जाना पडेगा और प्रातर्विधि से निपट कर फिर भायखल्ला वापस आना पडेगा। एक आदमी को तो कहार की बाट देखते हुए दिन भर कोठरी म ही बैठना होगा। उसके बाद दस बजे के आसपास सबका बोरीबदर के पास सरदारगह तक जान के लिए कुलाबा की ट्राम पकडनी होगी और भोजन के बाद दो घडी आराम करने के बजाय भागते हुए फिर भायखल्ला आना पडेगा। शाम को कहार की राह देखते हुए कोठरी मे घुटना होगा और दियाबत्ती होते ही भोजन की व्यवस्था के लिए फिर वही दौड करनी होगी। इसके अलावा ट्राम बदलने के लिए पायधुनी या भिडीबजार जक्शन पर घटो राह भी देखनी पडेगी। दिन के चौबीस घटे यो सरदारगह, ढाबा और कहार के बीच बट जाने पर और किसी बात के लिए समय ही कहा बचेगा। सोना एक जगह तो स्नान दूसरी जगह, पेट का गढा भरना एक स्थान पर तो खाली करना दूसरे स्थान पर, ऐसी हालत मे प्रदशनी देखने योग्य मन की अवस्था ही कहा रहेगी ?

इन सब कारणो से अत मे हमे रायसाहब के यहा ही ठहरने का निश्चय करना पडा और मैंने उन्हें पत्र लिख दिया। मन म, एक क्षीण सी आशा अब भी बची हुई थी कि इस बार उनके यहा मेहमानो की भीड अधिक होने या इसी श्रेणी की अन्य किसी मजबूरी के कारण उनकी अस्वीकृति आएगी और मैं इस अप्रिय स्थिति से बच जाऊगा। पर रायसाहब ने इस आशा को भी सफल नही होने दिया। वापसी डाक से उन का पत्र आ गया जिसमे उन्होने बडे आग्रह से हमे निमन्त्रित किया। अब उपाय ही क्या था ? मैंने उतरे हुए चेहरे से यह समाचार मित्रो को सुनाया और हम यात्रा की तैयारी मे लगे।

इस बार रेल का सफर वैसे तो बिना किसी खास घटना के पूरा हो गया, पर भीड बेशुमार थी। हर डिब्बा छापेखानो म दिखाई देने वाले टाइप भरे चौखानो की तरह ठसाठस भरा हुआ था। हमारे डिब्बे की भीड मे पाडूतात्या के पेट का भी समावेश होने के कारण वह भेड-बकरियो के बाडे की याद दिला रहा था। हम जिस बेंच पर बैठे थे उस पर से किसी के भी उठ खडे होने की सभावना नही थी और अन्य बेंचों पर जो गडबडी फैली हुई थी उसमे हमे कोई दिलचस्पी नहीं थी। मुर्दार भीड की सामूहिक रूप से होने वाली जड और मद श्वासक्रिया के कारण पूरे डिब्बे के मुसाफिर बबई के बजाय परलोक के यात्री मालूम दे रहे थे और सहीसलामत बबई पहुच जाए तो गगा नहाये ऐसा भाव उनमे से प्रत्येक के मुख पर झलक रहा था। बीच-बीच मे गाडी एक ओर को कुछ झुक जाती थी। पाडूतात्या उसी ओर बठे हुए थे। उनके बोझ से वह कही उलट न जाए ऐसी आशका रह रहकर हमारे मन मे उठ रही थी। परतु तात्या अत्यत निर्विकार भाव से बैठे थे। अपनी बजह से औरो के प्राण सकट मे पड रहे हैं ऐसी कल्पना उन्ह स्वप्न में भी नहीं आई होगी। इतना ही नहीं, अपनी स्थितप्रज्ञता व्यक्त करने के लिए उन्होंने भीषण सुर मे गाना भी शुरू कर दिया था। एक यात्री के मन म गाड से इसकी शिकायत करने की बात भी आई। परतु जैसे ही उसने उठने का प्रयत्न किया, भीड के दबाव से वह वापस ठला गया और फिर तो हिला हिला कर मजबूत किये हुए खूटे की तरह वह अपनी जगह पर ही खडा रहा। उस बेंच पर के हम दस मनुष्य बबई पहुचते-पहुचते कही एक शरीर और दस सिर वाला रावण तो नहीं बन जाएगे ऐसी आशका हमारे मन मे उठने लगी। मार्ग मे कौन-कौन से स्टेशन आये यह भी मालूम नही हो सका क्योकि गदन को इधर-उधर

घुमाना संभव नहीं था। उधर पाडूतात्या की मधुर आवाज में इंजन की सीटियां डूबी जा रही थीं। आखिरकार कुछ देर बाद पाडूतात्या ने अपने आप गाना बंद कर दिया। परंतु अब गाने के स्थान पर उनके खर्राटे शुरू हो गये। उन सतरंग खर्राटों की आवाज गाने की सुरों की अपेक्षा अधिक मीठी या सुरीली न होने के कारण श्रोताओं को विशेष राहत न मिल सकी।

बंबई पहुंचने पर मालूम हुआ कि गाड़ी आठ घंटे लेट हो चुकी थी। इतनी देर होने से गार्ड को कदाचित आश्चर्य हुआ होगा। उस बेचारे को क्या मालूम कि उन आठ घंटों में से छह घंटों का श्रेय पाडूतात्या की पृथुल देह के हिस्से में जाता था। इंजन बेचारा उसे इससे जल्दी कैसे खींचता। हमारे डिब्बे के हर यात्री को यह बात मालूम थी। गाड़ी खड़ी रहने के बाद भी डिब्बे के बाकी लोग तो तुरंत उतर गए, पर हमारी बेंच के लोगों का हिलना-डुलना असंभव होने के कारण उतरने की समस्या बनी रही। इस संकट से सब का छुटकारा खुद तात्या ने ही किया। पहले उन्होंने अपना पेट फुलाकर कुछ अधिक जगह प्राप्त की। फिर एकाएक पेट का संकोच करके, अन्य मुसाफिरों के शरीर स्थिति स्थापकता के सिद्धांत का अनुसरण करें उससे पहले ही वे चपलता से उठ खड़े हुए। इस प्रकार उन्होंने सारे यात्रियों का प्राणांतिक यंत्रणा से छुटकारा किया और सबने चैन की सांस ली। गाड़ी से उतरने पर तात्या को छोड़ कर बाकी सब लोगों को अपने शरीर कम से कम दो दो अंगुल आकुंचन हो जाने का एहसास हुआ। इस कमी को तो दो चार महीनों तक पौष्टिक भोजन करके ही दूर किया जा सकता था। पर महत्व की बात यह थी कि हम हाथों पांवों से सही-सलामत बंबई पहुंच गये। इसके लिए हमने भगवान का मन पूर्वक आभार माना।

घर पहुंच कर हम प्रातःकर्म से निवृत्त हुए और रायसाहब के साथ भोजन किया। इसके बाद कुछ देर आराम करने के लिए हम लेटे ही थे कि रायसाहब का नाई चंपी करने के लिए आ पहुंचा। उस बेचारे को क्या मालूम कि कम से कम साल भर तक तो हमें चंपी की जरूरत पड़ने वाली नहीं थी। उसे किसी तरह समझा बुझाकर विदा किया। सो कर उठने के बाद दीवानखाने में पहुंचे तो वहां बंबई में होने वाले अनेक सभा-सम्मेलनों के बारे में चर्चा चल रही थी। हम भी जाकर बैठ गए और सुनने लगे।

राष्ट्रीय महासभा के अधिवेशन के सुमुहूर्त पर हर साल की तरह इस बार भी

समाज-सुधार परिषद् का आयोजन किया गया था। उसकी खिल्ली उडाने के लिए हम तीनो ने वहाँ उपस्थित रहने का निश्चय किया। स्त्रियो की परिषद का अधिवेशन अलग से होने वाला था। उसमे उपस्थित रहने की भी हमारी बहुत इच्छा थी। पूना मे हमने ऐसा सुना था कि इस परिषद मे पुरुषो के बैठने की व्यवस्था चिलमनो के पीछे की जाएगी और मूछो पर उस्तरा फेर कर और चुडी पहन कर आने वाले पुरुषो को उसमे प्रवेश दिया जाएगा। हमारी यह सब करने की तैयारी थी, पर बबई आने पर मालूम हुआ कि यह खबर गलत थी। हम इससे इतनी निराशा हुई कि हमने अपनी स्त्रियो को छोडकर पूरी स्त्री जाति को कोसा और अपना अपवाद छोड कर समस्त पतिवर्ग एवम सुधारको को धुलडी का त्योहार न होने पर भी जी भर कर गालियाँ दी।

इसी बीच पचाग सशोधन सभा का भी अधिवेशन होने वाला था। परतु बडे बडे त्योहार उपवास के दिन व्यतिपात और अशुभ तारो को छोडकर पचाग के एक भी अग के साथ हमारा घनिष्ठ परिचय न होने के कारण हमने उस ओर ध्यान नही दिया। हा, यह कहा जा सकता है कि उस सभा के लिए आवश्यक होने वाली शाति का अपनी उपस्थिति द्वारा भग न करके हमने एक प्रकार से उसके काम मे हाथ बटाया और उसकी सफलता मे परोक्ष योगदान दिया।

हमारा ऐसा ख्याल था कि पहले दिन तो लोगो की भीड अधिवेशन के मडप मे ही होगी प्रदर्शनी की ओर तो कोई झाकेगा भी नही। हमने सोचा था कि आरभ के दिन तो पूरी बबई महासभा के अध्यक्ष का सुनाई न पडने वाला भाषण सुनने मे और कान के पर्दे फाड डालने वाली तालियो की आवाज उन्हे सुनाने मे मशगूल रहेगी। इस विचार के आधार पर ही हम तीनो मित्रो ने आरभ के दिन चुपचाप प्रदर्शनी मे जाकर वहा के अनेकविध चमत्कारो को शाति से देखने की योजना बनाई थी। इसलिए उस दिन दोपहर बाद हम अधिवेशन के मडप की ओर न जाते हुए प्रदर्शनी की ओर चले। चलते समय रायसाहब ने मार्गदर्शन के लिए अपने नौकर को साथ भेजना चाहा। परतु रायसाहब के द्वारा विशेष तौर पर दिए जाने वाले किसी भी काम का मतलब क्या होता है, इसका अनुभव मुझे पहले एक बार हो चुका था। अत कोई बहाना बनाकर हमने उसे टाल दिया।

ठीक ढाई बजे हम ट्राम मे बैठ कर रवाना हुए। मैं तीन वर्ष पहले भी बबई आ चुका था। अत गलत मार्गदर्शन करने जितना वहा के रास्तो का ज्ञान और

की हुई गलतियों का अस्वीकार करके अपनी ही बात पर अड़े रहने का धैर्य मुझे प्राप्त हो चुका था। अत मित्रो को बबई दिखलाने की जिम्मेदारी विशेषज्ञ की हैसियत से मैंने अपने ऊपर ले ली। फोर्ट पहुचने तक रास्ते म जितने चौक और इमारतें आयी उन सबके सबध मे मैं मनगढंत बनाए गच्चे इतिहास की अदा मे सुनाता गया और मित्रो के अज्ञान को अपने अज्ञान के स्तर पर लाकर ही मैंने दम लिया। पायधुनी और नल बाजार की व्युत्पत्ति मैंने इस प्रकार बैठाई कि वैष्णवो के वल्लभ सप्रदाय की स्त्रिया पायधुनी पर रोज अपने गुरु के चरण धोने के लिए यहा एकत्रित होती हैं और उस चरणोदक को बडे-बडे नालो द्वारा नल बाजार ले जाकर वहा उसका नीलाम किया जाता है। यह सुनते ही पाडुतात्या के मन म वल्लभ सप्रदाय के गुसाइजी के प्रति तुरत ईर्ष्या उत्पन्न हुई। पायधुनी से अगले चौक मे बाटलीवाला अस्पताल है। उसके बारे मे मैंने यह गप भिडा दी कि ये पारसी सज्जन बोतल के निस्सीम उपासक थे। धीरे-धीरे उनके यहा खाली बोतलो की सख्या इतनी बढ गयी कि उन्हे बेचने से लाखो रुपये प्राप्त हुए। उसी द्रव्यराशि मे से यह अस्पताल बनवाया गया। क्रॉफड साहब के प्रति मेरे मन म न जाने क्या बडा द्वेषभाव था। अत उनके नाम से स्थापित मार्केट के सामने पहुचने पर मैंने यह बताया कि ये साहब यहां रिश्वत की पैठ लगाते थे और सबसे ऊची बोली लगाने वालो को विभिन्न चीजो के ठेके देते थे।

मेरे इस स्पष्टीकरण के समय ट्राम के चालक और कडक्टर मे हमारी ओर देख देख कर इशारेबाजी हो रही थी। अन्य कई यात्री भी मुह मे रूमाल ठूस कर हसी रोकने का प्रयत्न कर रहे थे। मैंने इसका अलग ही अर्थ लगाया। बडू नाना के फेंटे का सिरा पीठ पर लटक रहा था और भीतर से उनकी चुटिया झाक रही थी। लघुशका के लिए कान पर लपेटा हुआ जनेऊ ज्यो का त्यो मौजूद था। उधर पाडुतात्या बबई के अनेक घटाघरो की बडी-बडी घडियो की उपेक्षा करके अपनी समय न दिखाने वाली घडी को बार बार जेब म निकाल कर समय देखने का दिखावा कर रहे थे। पट उनका धोती की मर्यादा को लाघ कर फुट भर आगे झाक रहा था। अब आप ही बताइए, बबई के रसिक जन इस प्रकार की हरकतें करने वालो को निपट गवार समझ कर उन्हें देख देख कर हसेंगे नहीं तो क्या करेंगे।

प्रदर्शनी के दरवाजे पर पहुच कर मैं टिकट ले आया। द्वार पर लोहे का

चक्करदार फाटक लगाकर एक बार में एक आदमी छोडने की व्यवस्था की गई थी। औरतों सब आसानी से भीतर आ गये पर पाडूतात्या उस चक्रव्यूह के बीच में ही फंस गये। बात चिन्ता की थी, पर शीघ्र ही भीतर घुसने के लिए उत्सुक भीड़ का ऐसा रेला आया कि तात्या की उस चक्रयन्त्रणा से मुक्ति हो गई। भीतर जाकर देखा तो भीड़ का पार नहीं था। हमारे जैसे देशभक्त राष्ट्रीय सभा को उसके हाल पर छोडकर और वक्ताओं को चीखते छोड़कर प्रदर्शनी देखने के लिए आ गए थे।

प्रदर्शनी में हमने क्या-क्या चमत्कार देखे इसका वर्णन कहा तक किया जाय? चारों ओर पूरे देश की प्राकृतिक और मनुष्यनिर्मित उत्तमोत्तम वस्तुए करीने से सजा कर रखी हुई थी। क्षण भर के लिए तो ऐसा आभास हुआ मानो हम किसी काल्पनिक स्वर्णभूमि में गौरी गणेश के सामने की सजावट देख रहे हैं। उधर राष्ट्रीय सभा के अधिवेशन मंडप में जिस प्रकार हर प्रांत के सर्वश्रेष्ठ मनुष्य एकत्रित हुए थे उसी प्रकार इस विभाग में अत्यन्त सुंदर वस्तुए इकट्ठी की गई थी। एक तरफ भीतर पानी होने वाला पाषाण था तो दूसरी तरफ पारा गलाने का प्याला। एक ओर एक नन्हा मुन्ना चादी का हाथी था तो दूसरी तरफ लोहे की एक विशाल नाल। इस ओर राजघराने की स्त्रियों द्वारा की हुई कशीदाकारी थी तो उस ओर अनाथालय की बालिकाओं की कढाई बुनाई के नमूने। एक अलमारी में आबदार मानिकों का ढेर लगा हुआ था तो दूसरी तरफ मानिक जड़े हुए फव्वारों में से जलकण बरस रहे थे। एक तरफ रजवाडों में शोभा देने लायक कपड़े सजे हुए थे तो दूसरी तरफ कपडों का बना हुआ रजवाडा शोभायमान था। स्त्रियों के कलाविभाग में हूबहू स्त्रियों जैसी दिखाई देने वाली गुडियाए थी तो यूरोपीय विभाग में हूबहू गुडियों जैसी दिखाई देने वाली स्त्रिया। एक तरफ काच की अलमारी में डसते ही प्राण ले लेने वाला बालिश्त भर का साप था तो दूसरी ओर प्रेक्षकों का कुछ भी न बिगाड सकने वाला ढली हुई शक्कर का प्रचंड शेर। इस शेर को देखकर भय में जबान सूखने के बजाय मुह में पानी आने लगा। हम कहीं उसके पेट में न चले जाए इस भय के बजाय यह हमारे पेट में न आ जाए ऐसी इच्छा उत्पन्न हुई। नन्हे नाना जो अब तक काच की अलमारी में रखे हुए साप से भयभीत होकर, मौका पड़ने पर भागने की तैयारी के साथ सुरक्षित अंतर पर खड़े थे इस शेर की पीठ पर ममता से हाथ फेरने लगे और

पाडूतात्या ने शेर सचमुच ही पत्थर का बना हुआ है या नहीं यह आजमाने के लिए लोगों की नजरें बचा कर उसकी पूछ का सिरा तोड लिया और उस पर कर मन की तसल्ली की। वह दिलेर प्राणी इन मवाली की इन बेहूदा हरकतों को सहन करता हुआ गंभीरता से चुपचाप खडा रहा। पत्थर की बनी हुई कई सुंदर इमारतों के नमूने भी प्रदर्शनी में थे। उनकी नक्काशी बारीक की बारीकी से की गई थी। उन्हें बनाने वाले शिल्पियों ने भूख प्यास भुला कर बडी एकाग्रता से महीनों तक काम किया होगा। बीच में कभी पैर से चूहे के धक्के पर इमारत की एकाध मंजिल चाहे गये हो यह बात अलग है।

आज तक हमारा ऐसा पक्का विचार था कि स्त्रियों का एकमात्र कार्यक्षेत्र है चौका-चूल्हा और उनका एकमात्र हथियार है पलटा-करछुल। अतः जब पूना में हमने यह बात सुनी थी कि प्रदर्शनी में स्त्रियों के हस्तकौशल का विभाग भी होगा तब हमने जी भर कर खिल्ली उडाई थी। परंतु आज वास्तविकता को देख कर आँखें चौंधिया गईं और हमें विश्वास हो गया कि स्त्रियों के नाजुक हाथ केवल गहने पहनने के ही नहीं बल्कि अन्य बातों में भी पुरुषों के बलिष्ठ हाथों से बढकर हो सकते हैं। इस प्रत्यक्ष प्रमाण के बावजूद, स्त्रियों की योग्यता को सदा शंका की नजर से देखने और पुरुषों की तुलना में उन्हें हीन मानने का व्रत मैंने आज तक जारी रखा है। यह बुनियादी सिद्धांत की बात है जिसमें किसी प्रकार के समझौते की गुंजाइश नहीं। यहाँ हम आत्मपुरुषों का गौरव दाँव पर लगा हुआ है। विरोध की परवाह किये बिना कभी कभी तो अपना कहा अपने ही गले में आने का प्रसंग आने पर भी स्त्रियों के महत्व को स्वीकार न करने में ही पौरुष की शान है। अन्य किसी क्षेत्र में संभव न हो, तो कम से कम शारीरिक क्षेत्र में स्त्रियों पर अपना श्रेष्ठत्व स्थापित करने में ही पुरुषार्थ की पराकाष्ठा है, ऐसा मेरा निस्संदेह मत है।

हमारे ऊपर प्रदर्शनी का प्रभाव पड़ा उसी तरह प्रदर्शनी के ऊपर हमारा प्रभाव भी पडा। पाडूतात्या की लापरवाही की वजह से अनेक चीजें अस्त व्यस्त हो गई जिसके कारण हम चौकीदारों की बात सुननी पडी। परंतु तात्या पर इसका कोई विशेष प्रभाव नहीं पडा। शिष्टाचार की रत्ती भर भी परवाह किए बिना और बीच में आने वाले स्त्रियों बच्चों की ओर बिलकुल ध्यान न देते हुए वे अपनी लंबी नाक की सीध में बेधडक आगे बढे चले जा रहे थे। मार्ग में जितने पाँव उनके पग रौंदे

जूता क तले रौद दिये जात उनकी गालिया को फूल के ममान मान कर वे किसी विजयमस्त वीर की तरह आग बढे जा रहे थे और किसी महात्मा की तरह, एक बार स्वीकार किय हुए माग स बाल भर भी विचलित होन को तैयार नही थे। प्रदशनी मे वृद्ध अक्षा ने आखवालो की तरह काम कर दिखाया था जिसे देखकर प्रेक्षकगण खुश हो रहे थ। परतु हमारे तात्या ने आखा वाले होकर अधो की तरह बर्ताव किया फिर भी किसी ने उनकी सराहना का एक शब्द भी मुह से नही निकाला।

प्रदशनी मे मनोरजन के जो अनकविध माधन थे उनमे एक शीशमहल बहुत मजेदार था। उमम दपणो की ऐमी रचना की गई थी कि देखन वाले का प्रतिबिंब निदको की दृष्टि म दिखाई देने वाल उमके असली स्वरूप के जैसा ही भयावह दिखाई देता था। कोई मुदर स्त्री उन शीशो के सामने गलती से भी खडी हो जाती, तो लज्जा से चूर चूर हो जाती थी। हम जब उनके सामन जाकर खडे हुए तो क्या दिखाई दिया कि तीन कुरूप बौनी और भीमकाय आकृतिया तरह-तरह के टेढे मेढे मुह बनाकर हम चिढा रही हैं। उन्हे देखकर हम हसने लग तो वे आकृतिया भी विकट अट्टहास्य करने लगी। तब कही हम मालूम हुआ कि वे तो हमारे ही प्रतिबिंब थ।

इसके बाद हम जलक्रीडा के स्थान पर पहुचे। वहा एक ऊचे चबूतरे पर से तमाशबीनो स भरी हुई छोटी छोटी नावें पटरो पर रपटती हुई नीचे पानी म गिर रही थी। हम भी एक नाव म जा बैठे। वडूनाना की तो डर के मारे घिग्घी बध गई और वे जल्दी जल्दी मुझे बतलाने लग कि इस भयानक मनोविनोद म उनकी मृत्यु हो जाए तो उनकी सपत्ति आदि की क्या व्यवस्था की जाए। दूसरी ओर पाडूतात्या न नाव छूटने म दो चार मिनट की देर है यह देख कर उतनी देर आख बद करके एक झपकी ले ली। पाठक अब समझ गए होगे कि हमारे इन दो अभिन्न मित्रो के स्वभाव म परस्पर कितना विरोध था।

प्रदशनी म एक स्थान पर लाखो रुपये के कीमती जवाहरात सजा कर रखे हुए थे। उन्हे देख कर मन मे लालसा तो बहुत जगी, पर यह सब माया के प्रलोभन हैं और ससार के सारे भोग अततोगत्वा नाशवान हैं ऐसे उदात्त वेदाती विचारो के सहारे हमने उन्हे खरीदने से इकार कर दिया।

शाम के सात बजे प्रदशनी के विभिन्न विभाग देखने का और अपना प्रदशन

लोगों के सामने करने का काम समाप्त हुआ। लगातार घूम घूम कर हमारे पांव थक गये थे और भूख भी जोर से लग रही थी। इसलिए हमने उपाहारगृह में आकर जलपान करने की सोची। वहां पहुंचने पर मालूम हुआ कि प्रदर्शनी के इस अन्नपूर्णागृह में पूरी सब्जी पकौड़े मिठाइयां, रबड़ी, चाय, कॉफी, आइसक्रीम और शीतपेय आदि सब चीजें उपलब्ध हैं। परन्तु बहुनाना और मैं परम आचार विचार से चलने वाले और छुआछूत एवम् कच्चे, पक्के का भेद मानने वाले सनातनी व्यक्ति थे। हमारे लिए इन चीजों का कोई उपयोग नहीं था। इसलिए हमने सिर्फ औंटा हुआ दूध पीने का निश्चय किया। इसके विपरीत पाहूतात्या इन विधिनिषेधों के पार जा चुके थे। उन्होंने इन सारी चीजों पर ध्यान की योजना बनाई। भीतर जाकर देखा तो खाने की व्यवस्था पटड़ों के बजाय कुर्सी-टेबलों पर थी। पाहूतात्या ने बड़े आनंद से और हम दोनों ने कुछ नाराजी से कुर्सियों पर आसन जमाया। जन्मजात संस्कारों को एक ही दिन में यों आसानी से तोड़ देने में हमारी आत्मा कुलबुला रही थी। शीघ्र ही हमारे सामने औंटे हुए दूध के गिलास और तात्या के सामने पूरियों की तश्तरी आ गई। जब तक परिचारक सब्जियां लाने गया उतनी देर में तात्या ने पूरियों की प्लेट साफ कर दी। वह बेचारा बड़े अचरज में पड़ गया। फिर वह सोच कर कि वह शायद गलती से पूरियां परोसे बगैर खाली तश्तरी रख गया था, प्लेट लेकर फिर पूरियां लाने गया। परन्तु वापस आकर देखता है तो वह प्लेट भी साफ क्योंकि तब तक तात्या ने सब्जियां, चटनी, अचार आदि सब चीजें उदरस्थ कर ली थीं। इस प्रकार तात्या ने उस परोसने वाले से पांच-सात चक्कर लगवाए, पर पूरियों और सब्जियों का पेट के बाहर संयोग नहीं होने दिया। बीच में एक वेटर किसी और ग्राहक के लिए पूरियों की गड्डी लिए जा रहा था। वह अपने लिए ही है ऐसा मान कर तात्या ने उसे भी जबरदस्ती अपने सामने रखवा लिया और परोसने वाले की बदतमीजी भरी शिकायतों की ओर ध्यान न देते हुए बड़े मनोयोग से उसे और उसके साथ अपने गुस्से को भी उदरस्थ कर गए। अन्नब्रह्म की ऐसी एकांतिक उपासना करने वाले महाभाग हमारे देखने में कम ही आए हैं। इसका परिणाम आखिर यह निकला कि वेटरों को तात्या से कहना पड़ा कि पूरियां खत्म हो गई। परन्तु तात्या जिनका नाम ! बड़े वीतराग भाव से उन्होंने उत्तर दिया, "कोई बात नहीं। मुझे इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। पूरी नहीं तो आइसक्रीम

या और जो कुछ भी तैयार हो, ले आओ।" वेटर अब तक तात्या की जठराग्नि से इतना प्रभावित हो चुका था कि उसने एक साथ चार प्याले आइसक्रीम और शीतपेय के दो गिलास लाकर उनके सामने रख दिए। उसकी पीठ फिरने से पहले ही तात्या ने फिर उदरयज्ञ आरभ किया और दोनो गिलासो का पेय गटागट पीकर खाली गिलास उसे थमा दिए। इसके बाद उन्होने चार गिलास कोल्ड ड्रिंक और लाने का आदेश दिया और मोर्चा आइसक्रीम की ओर घुमाया। वेटर बेचारा आश्चर्य से उनके मुह की ओर ताकता रहा। इतने मे उसे बुद्धि सूझी कि आइसक्रीम के चार प्याले समाप्त होने से पहले ही उसे बाकी चीजें लानी हैं। इसलिए वह हडबडी मे घूम कर चला गया।

तात्या के इस भ्रष्टाचार को अब तक हम बेचनी से देख रहे थे। अब हमारा मित्रप्रेम जागृत हुआ। कुछ भी कहिए तात्या हमारे बचपन के साथी और अभिन्न मित्र थे। मरने के बाद यमदूत उन्हे तपा कर लाल किए हुए तवे पर लिटायें या धधकती हुई अग्नि मे फेंकें यह भला हम कसे सहन कर सकते थे। हमने उनके आचरण का दोष दिखाते हुए उन्हें बरजने की कोशिश की। कुछ समय तक तो हमारे दिखाए हुए यमयातना के भय को कानो से सुनने की भी उन्हे फुरसत नही मिली। सामने रखी हुई सारी वस्तुओ को शातिपूवक उदरस्थ करने के बाद ही उन्होंने हमारी ओर रुख किया। फिर बडे इतमीनान से बोले, 'अरे मूर्खो भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमो न विद्यते। जिस अग्निकुड का तुम मुझे डर दिखा रहे हो वह मेरे पेट के खड्डे से बडा नही हो सकता। और जिस नरकाग्नि के स्मरण मात्र से तुम थरथर काप रहे हो, वह मेरी जठराग्नि के पासग की भी बराबरी नही कर सकती।"

तात्या के बकासुरी उदर की ओर गौर से देखने पर उनके कहने का मम हमारी समझ मे आया। परतु अब हम दूसरी ही उलझन मे पड गए। हमारा यह लगोटिया यार अकेला ही नरकाग्नि म जलेगा इस बात को लेकर हमे बडा दुख होने लगा। इतने मे वेटर ने कोल्डड्रिंक चार गिलास लाकर टेबल पर रख दिये। उनके भीतर के उस रगबिरगे शीतोदक को देख कर हमारे मन की बेचैनी और भी बढ गई। मैंने बड्नाना से कहा, 'नाना, तात्या के ललाट का नरकवास तो, हम कुछ भी करें, टाले नही टलता। सवाल सिर्फ इतना है कि उन्हे अकेले ही पतन को ओर जाने दिया जाए, या मित्र होने के नाते उनका साथ निभाना

हमारा भी फर्ज है ? कुम्भीपाक नरक के अग्निकुंड में उन्हें अकेले ही जलना पड़ा तो हमारी मस्ती किस काम की ?"

मेरे यह कहते ही बड़ा चमत्कार हुआ। वड्डूनाना के मन में भी शायद बहुत देर से यही विचार घुट रहा था। अत हम दोनों पर उसकी प्रतिक्रिया मानो एक साथ हुई और हम एक साथ कह उठे 'नहीं नहीं, तात्या को अकेले नरक में जाते हुए हम नहीं देख सकते। वेटर, हमारे लिए भी दो-दो प्याले आइसक्रीम और दो दो गिलास शरबत ले आओ।"

यह सुनते ही पाडूनात्या ने ऐसा विकट अट्टहास किया कि इर्दगिर्द की टेबलों के लोग मुड़ मुड़ कर हम घूरने लगे। तात्या केवल हस कर ही नहीं रुक गये, बल्कि अपनी भीषण आवाज में बोले, 'वाह वाह ! तुम्हारा सनातन धर्माभिमान भी मेरे स्वदेशाभिमान की तरह काफी लचीला मालूम देता है। चलो बड़ी खुशी की बात है। अब जब यहा तक आगे बढ़े हो तो एक कदम और बढ़ो। जरा बिस्कुट इत्यादि भी तो चख कर देखो। तुम अगर मगवाना चाहो, तो मैं साथ देने को तयार हू।

अब इस पटू आदमी से भला क्या कहा जाए ! उनकी इधर जीभ चल रही थी और उधर हमारी शर्म से गर्दन झुकी जा रही थी। केवल मित्र की कल्याण कामना से प्रेरित होकर अपने पारलौकिक कल्याण को खतरे में डालने वाले हम जैसे मित्रों पर चटोरेपन का अभियोग लगाया जाए तो हम शर्माने के सिवा और क्या कर सकते है ?

खैर, भर पेट भोजन करने के बाद हम बड़े दरवाजे के सामने वाले फव्वारे के पास जा पहुंचे और एक बेंच पर बैठ गए। फव्वारे के चारों तरफ बेंच डली हुई थी। पर भीड़ के मुकाबले में उनकी सख्या इतनी कम थी कि अधिकाश लोग यदि उपाहारगृह में बैठ उदरपूर्ति करने में न जुटे होते, तो बैठने की जगह मिलना मुश्किल था। यहा से चारों तरफ का दृश्य बड़ा सुदर दिखाई दे रहा था। चारों तरफ बिजली के लट्टुओं की आतिशबाजी हो रही थी। इन्द्रधनुष का आभास उत्पन्न करने के लिए फव्वारे की फुहारों पर लाल पीले हरे नीले, नारगी और जमनी रंग का प्रकाश फेंका जा रहा था। पानी के हजारों शीतल तुषारकण हमारे थके हुए अगों को बड़ा सुख पहुंचा रहे थे। चहुओर सुदशन स्त्री पुरुष तरह-तरह की वेशभूषा और नखदीपक आभूषण धारण किये चहलकदमी कर रहे थे।

उनके कपड़ों से आने वाली इत्र की खुशबू चारों ओर फैल रही थी। पास ही बजने वाले बैंड के बाजों का मधुर स्वर कानों को अनुपम आनंद दे रहा था। इन सब अनुभवों के साथ अभी अभी सेवन किये हुए अमृततुल्य पकवानों ने अब तक जीभ पर रेंगने वाले मधुर स्वाद को जोड़ दिया जाए, तो बिना अतिशयोक्ति के यह कहा जा सकता है कि हमारी पांचों ज्ञानेंद्रियां एकसाथ स्वर्ग सुख का अनुभव कर रही थीं। रूप रसगंध स्वर का ऐसा सर्वस्पर्शी सुखानुभव सद्गुणी मनुष्य को स्वर्ग में निश्चित रूप से मिलेगा ऐसा विश्वास दिलाया जा सके तो इस संसार में पाप या कलुष ढूंढने पर भी दिखाई नहीं पड़ेगा।

रात को नौ बजे हम बी बी सी आई की लोकल गाड़ी से पहले दर्जे में सफर करके घर पहुंचे। रेल से आने का कारण यह हुआ कि दोपहर से ही हमारे मन में ट्रामगाड़ी के संचालकों के खिलाफ प्रतिकूल भावना उत्पन्न हो गई थी। पहले दरजे में यात्रा करने का कारण भी यह था कि चर्चगेट से ग्रांट रोड तक का प्रथम वर्ग का टिकट बहुत कम पैसों में मिल जाता है। इतने कम पैसे खर्च करके हमारी जन्मपत्री में बहुत बड़ी ठोकर लग सकती थी और अन्य प्रकार से भी हमारा फायदा हो सकता था। अब हम छाती पर हाथ रखकर शपथपूर्वक कह सकते थे कि हम कभी कभी पहले दर्जे में भी यात्रा करते हैं। झूठ बोलने से मुझे कितनी अधिक चिढ़ है इसका अनुभव तो पाठकों को पहले भी अनेक बार हो चुका होगा।

15 अखिल भारतीय चोर सम्मेलन

आज का युग सभा-सम्मेलनों और परिषद-परिसंवादो का है। यो राष्ट्रीय, सामाजिक और धार्मिक सभा परिषदें तो बहुत पहले से होती रही हैं। परंतु अब तो विशिष्ट जातियों और व्यावसायिकों के सम्मेलन भी बडी संख्या म होने लगे हैं। यह क्या है साहित्यकारों की परिषद् है। यह क्या है, नाट्य व्यवसाइयो का सम्मेलन है। यहा क्या हो रहा है मुसलमानो की मजलिस है, और वहा क्या हो रहा है, अस्पृश्यो की सभा! इनके अलावा मिल मजदूर, डाक-तार विभाग के कर्मचारी और श्रमिक यूनियनो की हडतालें तो आये दिन होती ही रहती हैं। यह सब मनुष्य की समूहवृत्ति की ही परिचायक हैं। फर्क सिर्फ इतना है कि सभा सम्मेलनो का झुकाव प्रवृत्ति की ओर होता है जबकि हडतालों का रुख निवृत्ति की ओर अधिक रहता है।

इन आदोलनो म आजकल इतना उफान आने का कारण क्या है? इससे क्या यह माना जाए कि हम लोगो के मन मे दिनोदिन एकता की भावना प्रबल हो रही है? या फिर यह कहा जाए कि हम लोगो की वृत्ति मूलत उत्सवप्रिय होने के कारण (और सभा सम्मेलन उत्सव का ही एक प्रकार होने के कारण) हम बराबर उनकी ओर आकर्षित हो रहे हैं? या फिर यह कारण हो सकता है कि हम म से तीर्थयात्रा के इच्छुक लोगो की पर्यटन इच्छा इस बहाने पूरी हो जाने के कारण उनकी भीड लगी रहती है। या फिर निठल्ले और निरुद्यमी लोगो को अपना अमूल्य (अर्थात जिसका कौडी भर भी मूल्य नही है) समय बिताने के लिए ये कुभमेले उत्कृष्ट स्थान सिद्ध होते हैं और इसी कारण मौसम-बेमौसम उनका रेला इस ओर मुडता रहता है? इन सम्मेलनो स फायदा क्या होता है इस पर विचार करने पर रेलगाडियो को होने वाले बेहद मुनाफे के अलावा और कोई लाभ दिखाई नही देता। दूर दूर से आने वाले सभासदो की दृष्टि से विचार

किया जाए, तो ये सारे सम्मेलन देश और काल की सीमाओ को नष्ट करके लोगो की भीड एकत्रित करने वाले मजमो के सिवा और कुछ सिद्ध नही होते।

सभा-सम्मेलनो के इस छुतहे रोग का उद्भव समाज के शीर्षस्थान से होकर नीचे की ओर किस हद तक फैल गया है इसका अनुभव हमे अभी हाल मे ही हुआ। पिछले महीने के आरभ से ही हमारे शहर म नित्य नये नये चेहरे दिखाई देने लगे थे। इन चेहरो मे एक समानता थी। सबका वर्ण पक्का काला था और बाल सबके घने और कडे। गाल की हड्डिया सबकी उभरी हुई, गरदन सबकी नदारद और दृष्टि चचल। आरभ मे तो हमे इन डरावने आगतुको के बारे म कुछ भी मालूम न हो सका और न उनके आगमन का रहस्य ही समझ मे आया। परतु उनके आते ही शहर मे चोरिया की सख्या एकाएक बहुत बढ गई। इससे हम लोग इस निष्कर्ष पर पहुचे कि इन तमाम महानुभावो का ध्यान दूसरो की समृद्धि पर था और नगरनिवासियो को अपनी सपत्ति के बारे म अधिक दक्षता सिखाने के महत उद्देश्य से इनका यहा आगमन हुआ है। उनके देशबधु ज्यो-ज्यो अधिक सपन्न होगे त्यो-त्यो इन उदारचेताओ का अधिक आनद होगा। 'या निशा सर्व भूताना तस्या जागर्ति सयमी' इस भगवद्वचन के अनुसार अन्य लोग जब मोहनिद्रा मे सोते रहते हैं तब ये सयमी खुद जागते रहकर और अपार कष्ट सहन करके दूसरो की सचित धन विषयक चिंता को सदा के लिए दूर करते हैं। इस एकमात्र उद्देश्य से प्रेरित होकर ही उन्होने यह उदात्त व्यवसाय अगीकृत किया है। उनके उद्देश्यो के सबध म खातिरजमा होते ही हमने पुलिस को सूचना दी। हेतु यह था कि इन योगियो के निवास भोजनादि की व्यवस्था सरकारी अतिथिशालाओ मे हो जाए और उन्हे नि शुल्क एकातवास का सुख उपलब्ध हो सके। परतु पुलिस ने अपने नियमानुसार उन्हें छोडकर नगरवासियो को ही तग करना शुरू किया जिसके कारण हमे यह मोह छोड देना पडा।

सोहबत का असर बहुत प्रबल होता है। जब तक इन महात्माओ की सख्या मर्यादित थी तब तक तो शहर की नैतिकता सही-सलामत रही। परतु शीघ्र ही यह सख्या ऐसी रफ्तार से बढने लगी कि हम मेजबान हैं और वे मेहमान यह भेद ही नष्ट हो गया। कुछ दिनो मे तो हमारी सख्या अल्पमत मे पहुच गई। इसके अलावा, आरभ म जहा ये चोरिया सिर्फ नागरिको के घरो मे होती थी वहा अब ये चोर आपस मे एक-दूसरे के यहा भी चोरिया करने लगे। चोरो के बहुमत के

सान्निध्य मे रहते रहते अब हमे अपने साहूपन की लाज आने लगी। लोगो ने कई दिन तक तो नैतिकता को सभाल रखने की जी जान स कोशिश की। परतु मूर्खो के मजमे मे जिस प्रकार बुद्धिमानो को भी अत म मूख बनना पडता है उसी प्रकार चोरो के समाज म साहो की कीमत धीरे धीरे कम होने लगी और लोगो का झुकाव क्रमश चौयकम की ओर होने लगा। मैं भी इसका अपवाद नही था।

मेरी आरभिक चोरिया अल्पस्वल्प ही थी। उदाहरणाथ पहल पहल तो मैंने चौयकम का साहित्यिक क्षेत्र तक ही सीमित रखा। फिर धीरे धीरे अपनी ही सपत्ति की हेराफेरी करने लगा। अलमारियो का रुपया बेमालूम सदूको म छिपा देता और सदूको के गहने अलमारियो म। यह काम करते समय मुझे कोई देख तो नही रहा इस भय म चारो तरफ सशक दृष्टि म देखता भी रहता। शीघ्र ही वहुनानो के घर से उनके फटे हुए जूते चुरा लाने तक मेरी तरक्की हुई। इस दरमियान उन्ह भी मेरी तरह चोरी की आदत पड चुकी थी और बाद म मालूम पडा कि जो जूते मैं उनके घर स चुराकर लाया था व दरअसल मेरे ही थे जिन्ह कुछ रोज पहले चोरी के नये-नये उत्साह म वे हमारे यहा स उडा ले गए थे।

इस प्रकार शहर म सभी की प्रवत्ति चौयकम की ओर हो जाने के कारण चोरियो से किसी का विशेष नुकसान नही हुआ। किसी ने किसी की पगडी चुराई तो दूसरे ने पहले का आपका साफा पार किया समझिये। इस प्रकार आदान-प्रदान का सतुलन हो जाने के कारण किसी का भी विशेष नफा नुकसान न होते हुए प्रत्येक को हस्तलाघव के आनद का अनुभव होने लगा।

परतु ये सारे चोर हमारे ही शहर म जहा जमाये क्यो पडे हुए हैं इसका कोई खुलासा न हो सका। हमारा कस्बा छोटा और पिछडा हुआ होने के कारण वे चाहे जितने समय तक यहा धरना दें उन्ह अधिक माल मिलने की सभावना नहीं थी। इस हालत मे उनकी प्रदीर्घ उपस्थिति का कारण या तो यह हो सकता था कि इन लोगो ने हम लोगो को नितात बेवकूफ समझकर यहा अड्डा जमाया है या फिर हमे धूत शिरोमणि मानकर अपने सान्निध्य के योग्य माना है। इन दोनो म से एक भी पर्याय हमारे स्वाभिमान का पोषक नही था। आखिर शहर के एक परम धूत सुनार ने उनके पेट म धठकर किसी तरह अन्दरूनी बात का पता लगाया। मालूम हुआ कि शीघ्र ही नगर म अखिल भारतीय चोर सम्मेलन का अधिवेशन होने वाला है और उसी के उपलक्ष्य म भारत भर के चोर उचक्के

ठग, गिरहकट, डाकू, लफगे आदि शातिप्रिय कलाकारो के प्रतिनिधि यहा एकत्र हुए हैं।

इस सम्मेलन का सम्मान हमारे ही शहर को मिलने का कारण यह था कि यह नगरी भारत के कटिभाग को मेखला की तरह व्याप्त करने वाले विध्य पवत के समीप बसी हुई है। उसकी यह भौगोलिक स्थिति देशभर के प्रतिनिधियो को एकत्रित होने के लिए और आवश्यकता पडने पर इद गिद के पहाडो मे फरार हो जाने के लिए अत्यत अनुकूल थी। हमारे शहर को किसी भी दृष्टि से कोई महत्व नही मिलता इस बात का हम सदैव बडा खेद रहता आया है। अत इस बार तस्करा का ही क्या न हो, पर कोई अखिल भारतीय सम्मेलन हमारे नगर मे हो रहा है इस बात ने हम बहुत सुख पहुचाया और हमने अन्य बडे शहरा से ईर्ष्या करना छोड दिया।

स्वागत-समिति के अध्यक्ष पद पर हमारे इलाके के मशहूर डकैत सभू पासी का निर्वाचन हुआ था। यह नियुक्ति गलत हुई थी ऐसा कहने की किसी की हिम्मत न होगी। सभू को तब तक चार बार कैद बामशक्कत की सजा हो चुकी थी और अब तक वह सब मिलाकर अपने जीवन के बीस वप कारागृह मे बिता चुका था। अत इस सम्मेलन के आजीवन सदस्य होने की योग्यता उसमे निश्चित रूप से थी। इसी प्रकार अध्यक्ष पद को बेचू भील सुशोभित करने वाला था। चोरा की पूरी बिरादरी उसका उचित स्वागत करने की बडी तत्परता से तैयारी कर रही थी।

सम्मेलन के सबध मे प्रतिदिन नई-नई बातें सुनाई देने लगी। आज बबई की सुनहरी टोली का नायक आया है तो कल दिल्ली के शोहदों का सरदार आने वाला है। सुबह पूना के विश्वविख्यात उचक्का का नेता आया है तो शाम को बनारस के ख्यातनाम ठगा का प्रतिनिधि मडल आने वाला है। इस प्रकार की सकडा सुरस खबरें रोज सुनने मे आती थी। अधिवेशन के मडप और प्रतिनिधियो के निवासस्थान की तैयारी जोरा से चल रही थी। दो एक बार तो मडप के काय की प्रगति का प्रमाण हम घर बैठे मिल गया। उदाहरणाथ एक रोज बडूनाना और मेरे दोनो कसाफे एक साथ गायब हो गए। हमने तुरत अदाज लगाया कि उनकी योजना मडप की छत के चदोवे मे हुई होगी। शाम को जाकर देखने पर हमारा अनुमान बिलकुल सही प्रमाणित हुआ। चदोवे के एक परदे पर बडूनाना

के साफे पर पड़े हुए पान के दाग और दूसरे पर मेरे साफे पर जगह-जगह बीड़ी से जलकर पड़ जाने वाले छेद स्पष्ट दिखाई दे रहे थे। दूसरी बार हमारे दुपट्टे गायब हो गए। हमने तर्क भिड़ाया कि जरूर मंडप के चहुंओर चक्कर लग रही होगी। यह भी सही निकला। पर इस बार तो यारों ने बहूरानी की चुटिया ही पार कर दी। पहले तो हमारी समझ में नहीं आया कि शकीलरों को इसकी भला क्या जरूरत पड़ गई। दूसरे दिन हम मंडप देखने के लिए गए तब इस रहस्य का उद्घाटन हुआ। प्रवेश द्वार के पास शोभा के लिए विभिन्न जानवरों की मिट्टी की प्रतिमाएं बनायी हुई थीं। उनमें से एक बकरे की दाढ़ी के रूप में नाना की चुटिया शोभायमान हो रही थी। हम लोगों ने पाहुनों के आदरातिथ्य में शक्श नखशिखान सहयोग दिया था इसका यह प्रत्यक्ष प्रमाण था।

आखिर सम्मेलन का दिन आ पहुंचा। अध्यक्ष महोदय उसी रोज सुबह आने वाले थे। उनकी अगवानी के लिए पूरी बिरादरी स्टेशन पर गई। उनका जुलूस जिस बैलगाड़ी में बिठाकर निकाला गया उसमें बैलों की जगह स्वयंसेवक जुते। इन लोगों ने गाड़ी खींचते खींचते तोबड़े में मुंह डालकर सानी खाने में भी कसर नहीं छोड़ी। जुलूस बहुत शानदार रहा। सिर्फ उस गड़बड़ी में अध्यक्ष महोदय की घड़ी और अंगूठी चोरी हो गई। परंतु ये वस्तुएं उनकी या उनके पूर्वजों की उपार्जित संपत्ति न होने के कारण उन्हें इससे विशेष दुख नहीं हुआ। और फिर यह बात भी थी कि उसी रात को मेरी घड़ी और बहूरानी की अंगूठी चोरी चली जाने से अध्यक्ष महोदय के नुकसान की भरपायी हो गई होगी।

अब तक सभी चौर्यकर्म में निपुण हो जाने के कारण सम्मेलन की प्रवेश पत्रिका मिलने में हमें कोई कठिनाई नहीं हुई। स्वागत-समिति के अध्यक्ष का भाषण अपनी सारगर्भिता के कारण स्मरण रहेगा। सम्मेलन की आवश्यकता प्रतिपादित करते हुए उन्होंने कहा था

'हमारे व्यवसाय को समाज की ओर से जितना प्रोत्साहन मिलना चाहिए उतना नहीं मिलता। यह बड़े शर्म की बात है। [धिक्कार! धिक्कार की आवाजें।] अर्थशास्त्र का एक सर्वमान्य सिद्धांत है कि देश की उन्नति के लिए देशांतर्गत संपत्ति का हस्तांतरित होते रहना परम आवश्यक है। हमारे व्यवसाय के अभाव में यह सिद्धांत पुस्तकों में ही रह जाता। संपत्ति के स्थानांतरण के लिए चोरी से अधिक अनुकूल कौन-सा व्यवसाय हो सकता है? [कोई नहीं कोई

नहीं] कृपण मनुष्य कौड़ी-कौड़ी करके जमा किया हुआ धन जमीन में गाड़ देता है। साहूकार लोग आसामियों को ठग कर जो रुपया कमाते हैं उसे तिजोरियों में बंद कर देते हैं। स्त्रियों की जोड़ी हुई रकम गहनों के रूप में अटक जाती है। इस प्रकार देश की कितनी पूंजी निष्क्रिय पड़ी रहती है। सज्जनो, इस रुंधे द्रव्य के प्रवाह को मुक्त करके उसे सारे देश में अविरोध संचरित करने का श्रेय हमारे ही धंधे को है। [प्रचंड हर्षध्वनि।] इसके अलावा हमारे व्यवसाय के कारण कारीगरों को नये-नये उपकरण बनाने का प्रोत्साहन मिलता है। ताले तिजोरियां बनाने का धंधा पूर्णतः हमारे व्यवसाय पर आधारित है। अर्थशास्त्र की दृष्टि से यह भी एक बहुत बड़ा राष्ट्रीय लाभ है।

"सज्जनो, प्राचीन काल में हमारे धंधे ने बड़े अच्छे दिन देखे हैं। भगवान श्रीकृष्ण बचपन में गोरस चुराया करते थे। विश्वामित्र जैसे राजर्षि को वसिष्ठ की कामधेनु चुराने में कोई हिचक नहीं हुई। दुर्योधन जैसे चक्रवर्ती सम्राट और उनके वयोवृद्ध सेनापति पितामह भीष्म को विराट की गायें हांक ले जाने में तिलमात्र भी संकोच नहीं हुआ। प्राचीन युग के राजाओं को अर्थशास्त्र के इस व्यापक तत्व की जानकारी होने के कारण वे स्वयं उस पर यथाशक्ति अमल करते थे और समय-समय पर प्रजाजनों को लूटने का अभियान करते रहते थे। परंतु आधुनिक और पुरोगामी कहलाने वाले आज के राज्यकर्ता हमारे कलामय व्यवसाय के लिए कठोर दंड का विधान करते हैं। ठगबाजी जैसी प्राचीन कला का तो उन्होंने जड़मूल से नाश कर दिया है। यह सब देखकर किस सहृदय मनुष्य का अंतःकरण द्रवित नहीं होगा? [धिक्कार!] सौएक साल पहले तक हमारे देश के राज्यकर्ता ठगबाजी जैसे खाटी स्वदेशी उद्योग को प्रश्रय दिया करते थे। पिंडारियों की तो पूरी सेनाओं का वे पोषण करते थे। उस युग में पाश्चात्य देशों में भी चौर्यकला की बड़ी तरक्की हुई थी। परंतु अब वहां भी जमाना बदल गया है।

"इस हालत में संतोष सिर्फ इस बात का है कि आजकल चोरी की सहोदरा बहन घूसखोरी का देशभर में बोलबाला है। परंतु इन दोनों सगी बहनों में एक बहुत बड़ा अंतर है। रिश्वतखोरी संपत्ति के मालिक की अनुमति से होती है जबकि चोरी उसकी इच्छा के विरुद्ध। हमारा धंधा इस दृष्टि से अधिक उदात्त है। उसमें संपत्ति के स्वामी को पश्चात्ताप करने की नौबत कभी नहीं आती। मसल मशहूर

है कि ठगे सो ठग पर ठगाव सो ठाकुर। चोरी पकड़ी भी जाए, तो उसका दायित्व सिर्फ चोर पर रहता है। घूस की तरह वह अपने स्वामी को नहीं धर दबोचती। वैसे अपने कृत्य की जिम्मेदारी संपत्ति के मालिक पर टालने वाले कुछ सूक्ष्म कलाकार हमारे पेशे में भी पाये जाते हैं। सुनार, दरजी, प्रवक्ता आदि इसी श्रेणी के कलाकार हैं। इन सब पेशेवरों ने पराया माल बेमालूम अपना कर लेने का व्रत अल्प रूप में ही सही पर अखंड रूप से जारी रखा है। इसलिए उन्हें भी हमारी बिरादरी का सम्माननीय सदस्य मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। इस सम्मेलन में हम इस आशय का प्रस्ताव भी रखने वाले हैं।

'चोरी से सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि वह कल्पनाशक्ति का पोषण करती है। इसके अलावा इस व्यवसाय में हमें बहुत से विधि निषेधों का पालन करना पड़ता है। आपको यह सब बताना सूरज को दीपक दिखाने के समान है। इसलिए अधिक विस्तार न करते हुए कल्पनाशक्ति के विकास के दो एक उदाहरण देना ही पर्याप्त होगा। यह बात पहले कही जा चुकी है कि चोर न होते तो तिजोरियाँ और तालों का आविष्कार न हुआ होता। हमारी तो यह स्पष्ट राय है कि यत्रकला का पहला आविष्कार ताला ही है। रेलगाड़ी, तारयंत्र इत्यादि सारी आधुनिक वस्तुओं का उद्गम ताले से ही हुआ है। इस प्रकार यंत्रों का जनक है ताला और ताले के जनक हैं हम। इस हालत में रेलगाड़ियों को सीटी बजाते हुए दुनिया भर में संचार करने की स्वतंत्रता हो और हम दर्रे घाटियों में क्यों घूमना-फिरना पड़े यह भला कहाँ का न्याय है? मित्रो मेरी आपसे यही प्रार्थना है कि इन अगणित संकटों के बावजूद हमें अपने धर्ममेरु को न डिगाते हुए अपने व्रत पर अटल रहना चाहिए।

'अब अध्यक्ष महोदय के संबंध में दो शब्द बोलने की मैं इजाजत चाहता हूँ। आपके सामने उनका महिमास्तोत्र गाने का मेरा उद्देश्य भी नहीं है। कारण कि मैं यदि उनके गुणों का वर्णन करने लगूँ तो उस लेख के लिए आवश्यक कागज और स्याही जुटाने के लिए मुझे जीवन भर इन्हीं दो चीजों की चोरी करते रहना पड़ेगा। [प्रचंड करतलध्वनि] उनके संबंध में केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि मृच्छकटिक नाटक का शर्विलक इनके खानदान का आद्यपूर्वज था। उसने स्त्रीलंपटता के कारण जिस व्यवसाय को अंगीकृत किया था उसे उसके आज के वंशज नितांत निस्पृहता से आगे बढ़ा रहे हैं। अध्यक्ष महाराज ने अपने

जीवन की एक भी रात चौयकर्म किये बिना बेकार नहीं गवाई। उनके इस अक्षुण्ण व्रत में आज के सम्मेलन के कारण भी कोई विघ्न नहीं पड़ेगा। कारण कि आज रात को भी यहा के निवासियो को अपना हस्तलाघव दिखाने का उन्होंने निर्णय किया है। [उनके इस निश्चय का अनुभव और लोगो की अपेक्षा मुझे और बहनोइयों को ही अधिक हुआ, यह अलग से बताने की आवश्यकता नहीं]। उनके कुल में जितने भी पुरुष उत्पन्न हुए सबने अपने कर्तव्यपालन में प्राणों की आहुति चढ़ा दी। उनमे का प्रत्येक पुरुषोत्तम अंत में किसी न किसी हत्या या डकैती में शरीक होकर फासी के तख्ते पर चढ़ा। फासी लगने की प्रथा उनके वश में पीढ़ी दर पीढ़ी चलती आने का परिणाम यह हुआ है कि इनके कुल में जन्म लेने वाले हर लड़के के गले के इर्द गिर्द फासी के रस्से के निशान स्पष्ट दिखाई देते हैं। अन्य बातो में भी उसके पाव पालने में ही दिखाई देने लग जाते हैं। खुद अध्यक्ष महोदय का ही उदाहरण ले लीजिये। बचपन में इनकी मा जब इन्हें दूध पिलाने बैठती थी तब ये उसके गले की हमेल में से एकाध रुपया बेमालूम पार कर देते थे। [प्रचड हर्षध्वनि।] उसके बाद धीरे धीरे शोहदा, गिरहकट, उचक्का, चोर, डकैत आदि पदवियां प्राप्त करते हुए और हथफेरी के विभिन्न सोपानो को पार करते हुए अब वे व्यवसाय के सर्वोच्च सोपान पर पहुच गये हैं। अभी कुछ रोज पहले ही उन पर डकैती का मुकदमा चला था जिसमें कालेपानी की सजा होने की आशका थी। हम सब तो घबरा गये थे कि वे कही हमे छोड़कर चले न जाए। परतु भगवान ने हमारी प्रार्थना सुन ली और शहर के सब से धूर्त वकील के प्रयत्नो से सिर पर आया हुआ सकट टल गया। यहा यह बता देना मैं आवश्यक समझता हू कि इससे खुश हो कर अध्यक्ष महाशय ने वकील साहब को जो पचास हजार रुपये बतौर शुकराने के दिये थे, वह रकम उन्ही के घर में सेंध लगाकर प्राप्त की गई थी। इसी को कहते हैं कि मियां की जूती और मियां का सर। चौयकर्म मे ऐसी अद्वितीय निपुणता संपादित करने वाले मनुष्योत्तम को आप अध्यक्षपद के लिए सर्वानुमत से चुनेंगे ऐसी आशा है।'

इस भाषण के बाद तालियों की जो प्रचड ध्वनि हुई उसमे हमारे हाथ व्यस्त रहने के कारण कुछ दक्ष सभासदो ने उतनी ही देर मे हमारी जेबें साफ कर दीं। इसके बाद अध्यक्ष का औपचारिक चुनाव हुआ और उनका आवेशपूर्ण भाषण हुआ। अंत में कुछ प्रस्ताव परिषद् के सामने रखे गये जो सर्वानुमत से पारित

हुए। उनमें से कुछ महत्वपूर्ण प्रस्ताव यहां दिए जाते हैं —

1 प्रतिवर्ष सम्मेलन के अवसर पर चोरी के लिए आवश्यक औजारों और अन्य उपकरणों की एक प्रदर्शनी का आयोजन किया जाए।

2. प्लेग की महामारी के कारण लोग घर-बार छोड़कर शहर के बाहर झोंपड़ियों में जाकर रहते हैं। इससे हमारे पेशे के वर्ग को सुविधा रहती है। सभा इससे संतोष व्यक्त करती है और प्लेग का कारण होने वाले तमाम तत्वों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करती है।

3 मकान मालिकों की ओर से हथियारों का प्रयोग होने के कारण व्यवसाय बंधुओं के जख्मी होने का खतरा रहता है इसलिए सभा हथियार बंदी का कानून बना देने वाली माईबाप सरकार का हार्दिक अभिनंदन करती है।

4 सदस्य जब किसी गांव में डाका डालने के लिए जाते हैं तो गांव के लोग इकट्ठे होकर उन पर पत्थरों की वर्षा करते हैं और अन्य प्रकार से उनके काम में बाधा डालते हैं। सभा उनके इस नीच बर्ताव का धिक्कारपूर्वक निषेध करती है।

5 अंधेरी रातों में म्युनिसिपल कमेटी सड़कों पर रोशनी की व्यवस्था करती है। इसमें दुराचारियों को अपने संकेतस्थलों पर पहुंचने में सहायता मिलती है और समाज में अनाचार फैलता है। इसी प्रकार किसी गुफा में से रेलगाड़ी गुजरती है तब डिब्बों की बत्तियां जला दी जाती हैं। इसमें आग लगने की संभावना रहती है। अतः परिषद इन प्रसंगों पर बत्तियां न जलाने की विनती कमेटी और रेलवे कंपनी से करती है।

6 सुधारित पंचांग में स्थूल और सूक्ष्म गणना के आधार पर प्रतिमास दो भिन्न भिन्न अमावस्याएं निश्चित की जाती हैं। सभा इस व्यवस्था के प्रति संतोष व्यक्त करती है और कृष्णपक्ष की तरह शुक्लपक्ष में भी दो-एक अमावस्याओं की योजना करने की आग्रहभरी विनती ज्योतिष सम्मेलन से करती है।

7 स्वदेशी आंदोलन का समर्थन करने के लिए सभा प्रस्ताव रखती है कि चौर्यकर्म में उपयोग होने वाले रस्से रस्सियां, मोमिया, फावड़ा कुदाल, रेती इत्यादि औजार स्वदेशी ही होने चाहिए। विदेशी माल का ही नहीं बल्कि विदेशियों का भी बहिष्कार होना चाहिए। चोरियां सिर्फ इस देश के निवासियों के घरों में ही की जाएं और गोरों को इस विशेषाधिकार से वंचित रखा जाए।

इसी प्रकार जिन वस्तुओं की चोरी की जाए वे भी विशुद्ध स्वदेशी होनी चाहिए। विदेशी वस्तुओं को हाथ लगाना भी यह सभा त्याज्य समझती है।

8 शराब, भांग आदि का नशा करके चोरी करने पर अक्सर सफलता नहीं मिलती। इसलिए यह सभा मद्यपान का जोरदार निषेध करती है।

9 चोर और ग्रंथकार इन दोनों का हेतु अर्थचौर्य ही होता है। इस समानता के आधार पर इन दोनों बिरादरियों में बंधुभाव बढ़ाने के उद्देश्य से दोनों की परिषदों का एक सम्मिलित अधिवेशन आयोजित करने की आग्रहभरी विनती यह परिषद साहित्य सम्मेलन के कर्णधारों से करती है।

10 बड़े शहरों में पुलिस के सिपाहियों की संख्या कम करना मितव्ययता की दृष्टि से और नोटों का प्रचलन बंद करना आर्थिक दृष्टि से परमावश्यक है। अतः परिषद् सरकार से इन दोनों कटौतियों को तुरंत अमल में लाने की दरख्वास्त करती है। साथ ही यह सुझाव रखती है कि नोट छापना यदि आवश्यक ही हो, तो कम से कम उन पर नंबर न छापे जाएं।

11 इस सम्मेलन के सदस्य होना चाहने वालों को कम से कम दस चोरियों का अनुभव होना चाहिए। इसके लिए आवेदनपत्र के साथ दस गृहस्वामियों के सिफारिशी पत्र नत्थी करना आवश्यक है। कार्यकारिणी सभा के सदस्य बनने के लिए उपरोक्त योग्यता के अलावा सरकारी खजानों या बैंकों पर डाका डालने का कम से कम एक बार का अनुभव होना चाहिए। इसी प्रकार सम्मेलन का अध्यक्ष होने के लिए यह नितांत आवश्यक है कि उन महापुरुष द्वारा कम से कम एक बार फांसी या कालेपानी की सजा के योग्य अपराध किया गया हो।

ये और इसी प्रकार के कुछ अन्य प्रस्ताव पारित होने के बाद अध्यक्ष का आभार माना गया और सम्मेलन समाप्त हुआ। सम्मेलन का काम कुल मिला कर चार रोज तक चला। इस दरमियान शहर में इतनी चोरियां हुई कि हम यह चाहने लगे कि अगले वर्ष के अधिवेशन का सम्मान हमारे नगर से जितनी दूर के स्थान को मिले उतना ही अच्छा हो। मेहमान प्रतिनिधिगण वापस जाने लगे तब हम उन्हें शहर की सीमा तक विदा करने के लिए गए। प्रत्येक प्रतिनिधि अपने हाथों में, बगल में, जेब में, या अंटी में कुछ न कुछ छिपाये हुए था। कइयों ने जब जाते समय हमारा प्रेम से आलिंगन किया तब उनकी गांठ में से चुराया हुआ माल गिर

पडा। इसम उनका गला भर आया। अब यह कहना मुश्किल है कि यह हमारे विरह के कारण हुआ या बेटो म आया हुआ मान अंतिम घडी म छिन जाने के कारण हुआ।

महमाना को विदा करके लौटते समय हमारा मन बहुत उदास था। सांत्वना सिर्फ एक बात की थी कि उनका चिरवियोग सहन करने पर भी अब हम वित्त का वियोग सहन नही करना पडेगा। इस विचार से व्याकुल मन को दिलासा देते हुए हम भारी अंतःकरण और हल्की जेब लेकर घर लौट आए।

16 याचक

जो लोग दूसरों की किसी भी प्रकार से सेवा किए बिना मुफ्त में ही उनसे द्रव्य या अन्य किसी वस्तु की याचना करते हैं उन सबका समावेश यहा याचक शब्द के अतर्गत किया गया है। अपने देश में दिनोंदिन दारिद्र्य के साथ-साथ याचकों की संख्या भी बढ़ती जा रही है। ऐसा एक भी दिन नहीं जाता जिस रोज दो चार याचक हमारी इच्छा के विरुद्ध आकर हमारा दिमाग न चाटते हों। आजकल अच्छा वेतन देने पर भी रसोइए, पनिहारे आदि मिलना मुश्किल हो गया है। पहले इस प्रकार के नौकर आसानी से मिल जाते थे, इतना ही नही वे गुणी और ईमानदार भी हुआ करते थे। आजकल ये सब कहा गायब हो गए? इस प्रश्न का केवल एक ही उत्तर है कि उन कर्तव्यनिष्ठ सेवकों ने आजकल मुफ्तखोरी की कमर कस ली है और उनका मधुकरवृत्ति वाले याचकों में रूपांतर हो गया है। ठीक भी है। जब चार घरों के चक्कर काटकर यजमानों से आदर सत्कार और भरपेट भोजन के उपरांत रोज रुपए-दो रुपए मिल जाते हों, तो दस रुपए माहवार पर मालिक की गालियां खाकर बड़े परिश्रम की नौकरी कौन करेगा? इस हालत में गुण और ईमानदारी की कीमत घटकर आलस और लिहोडेपन का भाव बढ़ जाए यह स्वाभाविक है। कोई चरित्रसपन्न, विनयशील, विद्वान और अल्पसतोषी याचक हमारे यहा आए और हम जो कुछ दें उससे सतुष्ट होकर आशीर्वाद देता हुआ चला जाए तो उसके पल्ले क्या पड़ेगा? अक्सर हम उसे कम से कम दक्षिणा देकर टरका देने का प्रयत्न करेंगे। परतु कोई लिहाडा, लालची और निलज्ज ब्राह्मण आकर मुह फैलाने लगे तो उस बला को टालने के लिए ही सही, पर हमें उसे तृप्त करना ही पड़ता है। अपात्र को दिए गए इस प्रकार के जबरदस्ती के दान से पुण्य होने के बजाय हम आलस्य व्यसन आदि दुर्गुणों को प्रोत्साहन देने के पाप के ही सहभागी हैं।

कोई निर्धन मनुष्य ईमानदारी से व्यवसाय करने के इरादे से अपना माल कंधे पर लादे घर घर जाकर बेचने लगे तो परिश्रम के अनुपात में उसे बहुत कम आमदनी होगी। इसके अलावा ग्राहकों के नाज नखरे सहन करने पड़ेंगे सो अलग। परंतु कंधे का बोझ फेंककर वह यदि माथे पर तिलक, गले में जनेऊ और हाथों में पंचपात्र आचमनी धारण कर ले तो यजमान उसकी अगवानी करके उसे आदरपूर्वक उच्चासन पर बिठाएंगे और इच्छा व्यक्त करते ही छप्पन व्यंजनों का भोजन करवाकर ऊपर से दक्षिणा भी देंगे। यह आलम जब तक चल रहा है तब तक मेहनत मजदूरी का विकास और आलस्य का नाश कैसे हो सकता है? सच पूछा जाए तो याचक और याचकवृत्ति के जनक यजमान और उनकी अंधश्रद्धा ही है।

इन मुफ्तखोरों के अलावा ज्योतिषी कथावाचक गवैये जादूगर गारुडी इत्यादि याचक भी समय-समय पर रुपयों की मांग करते रहते हैं। परंतु इन लोगों को मिलने वाले धन के बदले में उन्हें कुछ न कुछ करामात दिखानी पड़ती है, कुछ न कुछ परिश्रम करना पड़ता है, और अपने व्यवसाय की कुछ न कुछ पूर्व तैयारी करनी पड़ती है। इसके अलावा उनका सत्कार करने के बदले में देने वाले को कुछ न कुछ ज्ञान या मनोरंजन की प्राप्ति अवश्य होती है। परंतु गलत उच्चारण और अशुद्ध पाठ वाले दो चार वेदमंत्रों के बल पर जो याचक घर घर से दक्षिणा वसूल करते हुए घूमते रहते हैं उन्हें तिलक छापे के अलावा किसी पूंजी की और अर्थहीन शब्दाडंबर से यजमान को मजबूर कर देने वाली वाचाल जिह्वा के अलावा और किसी शारीरिक या मानसिक योग्यता की आवश्यकता नहीं पड़ती। उनकी सच्ची पूंजी और असली योग्यता दूसरों की श्रद्धा और आस्था ही होती है। उनके भाग्य से समाज में इन चीजों का निर्माण ब्रह्माजी ने पहले ही से प्रचुर मात्रा में कर रखा है।

दक्षिणा मिलने से पहले याचकों को यजमान के सामने दांत निपोरते हुए जो निरर्थक बकवास करनी पड़ती है वह अक्सर दाता और उसके दानवीर मन की स्तुति से भरी रहती है। यह चापलूसी अत्यंत हीन कोटि की होती है पर उसे सुनकर अधिकतर यजमान अपने आपको कर्ण का अवतार समझने लगते हैं। उन (नर) कर्णों की समझ में यह सीधी सी बात नहीं आती कि जिस याचक ने कभी उनकी शकल भी नहीं देखी और जिसको [illegible] उनका गुण गान के बजाय

उनके दिये हुए रुपयों पर अंकित सम्राट की मुखछवि देखने में ही अधिक रहती है, उसे उनके महत् प्रयास से छिपाकर रखे हुए दानवीर गुण की जानकारी आखिर हुई कैसे ? दाता की प्रशंसा याचकों के व्यावसायिक हथकंडे के सिवा और कुछ नहीं होती और यजमान की दानवीरता इस स्तुति का कारण न होकर उसका परिणाम ही होता है।

एक बार काशी का एक पंडा हमारे यहां आया और कहने लगा कि 'आपका नाम और कीर्ति सुनकर इतनी दूर से आया हूं।' काशी में रहते हुए उसे मेरी सुकीर्ति सुनाई दी और उसे सुनकर वह इतनी दूर से चलकर आया है यह जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता महसूस हुई और अपने गौरव का अनुभव रोमांच उत्पन्न करके मन में गुदगुदी करने लगा। मैंने मन ही मन अपनी पीठ ठोकी और उसे उसकी लंबी यात्रा के अनुरूप दक्षिणा देने ही वाला था कि पास बैठे हुए पाडूतात्या उससे मेरा नाम पूछ बैठे। सुनते ही वह सिटपिटा गया। नाम जानता तो बताता। आखिर उसे निराश होकर हाथ हिलाते हुए जाना पड़ा। जाते समय मुझे और तात्या को भद्दी भद्दी गालियां सुनाता गया। दक्षिणा के लिए न सही, गाली देने के लिए ही मेरे और मेरे पूर्वजों के नाम की जानकारी होती तो बड़ी सुविधा रहती ऐसा भाव उसके चेहरे पर स्पष्ट झलक रहा था।

कुछ याचक किसी धर्मकार्य या धार्मिक संस्था के नाम पर रुपया वसूल करते हैं। 'अमुक शहर में धर्मशाला बनवानी है', 'अमुक मंदिर पर सोने का कलश चढ़वाना है', 'अमुक शिवालय का जीर्णोद्धार करना है', 'फलां संत की समाधि बनवानी है' आदि बहाने बड़े उपयोगी सिद्ध होते हैं। इस प्रकार चंदा जमा कर लेने के बाद शायद उन्हें इस अंग्रेजी कहावत की याद आती है कि 'दानधर्म का आरंभ घर से ही होता है।' अतः उगाहे हुए रुपये वे निस्संकोच भाव से अपना घर बसाने में खर्च करते हैं और अपने बीवी-बच्चों के अन्नवस्त्र की व्यवस्था को ही धर्मादाय राशि का सर्वश्रेष्ठ उपयोग मान लेते हैं। धर्म या ईश्वर के नाम पर मांगने से मनुष्य को किसी चीज की कमी नहीं रहती इस सत्य का अनुभव इन लोगों के जितना और किसी को नहीं होता।

इस प्रकार के अनुभवों के कारण याचकों को दान देने पर मेरी बिलकुल श्रद्धा नहीं रही। इस मामले में पाडूतात्या मुझसे एक कदम आगे हैं पर वे अपने मुंह से कभी दो टूक इनकार नहीं करते। 'आज तो सूतक है', 'आज दिन अच्छा

नही है' इत्यादि बहाना से उनका काम चल जाता है। उधर बडूनाना का आच रण पहले इसके बिलकुल विपरीत हुआ करता था। वे बेचारे सबका लिहाज करते थे और किसी भी अभ्यागत को कभी खाली हाथ नही लौटाते थे। उनके घर मे किसी न किसी साधु बैरागी गवैये कथावाचक या पढे पुरोहित का डेरा सदैव पडा रहता था। शीघ्र ही उनकी दानवीरता की कीर्ति इतनी फैली कि तीन-तीन चार चार याचक एक साथ उनके यहा अड्डा जमाने लगे। नाना के परिवार का विस्तार वैसे ही बहुत लवा चौडा है। उसमे इन आगतुको की भीड जुडने के कारण रसोई पानी और अन्य बातो से गृहिणी को बडा कष्ट होने लगा। पर चारा ही क्या था ? बेचारी ने सब चुपचाप सहन किया। समय बीतते याचको की सख्या बढते बढते नाना के कुटुबीजनो की सख्या से भी बढ गई। साहित्य, विद्वत्ता, सगीतविद्या आदि गुण सर्वे गुणा काचनमाश्रयन्ते' वाली उक्ति को कुछ अलग अर्थ मे चरितार्थ करते हुए उनके घर म माना पाव तोड कर आ बसे। शीघ्र ही उन्हे अपने ही घर म रहने म सकोच होने लगा। स्नान भोजनादि के लिए घर आकर बाकी समय वे मित्रो के यहा बिताने लगे। घर पर यह आलम रहा कि मेहमानो के लिए एक जून म एक पसेरी चावल खपने लगा। गृहस्वामी की उपस्थिति का झझट दूर होते ही अभ्यागत लोग आपस म एक-दूसरे को आग्रह कर करके ठूसपेट खिलाने लगे। माले मुफ्त दिले बेरहम। इसके अलावा, ये अनाहूत अतिथि बडे नाजुकमिजाज सिद्ध हुए। बासी भोजन, मोटे चावल, या जरा भी बासवाला घी उन्हे पसद नही आता था। उनमे अनेक पथो के अनुयायी होने के कारण रोज किसी न किसी को कोई न कोई व्रत-उपवास लगा रहता था। अब क्या था घर म प्रतिदिन साधारण निरान्न और फलाहार यो तीन प्रकार का भोजन बनने लगा। रोजमर्रा के खाने की अपेक्षा इस फलाहार पर अधिक खर्च होना स्वाभाविक था। निरान्न उपवास करने वालो को तो दूसरे दिन जुलाब की आवश्यकता पडने लगी। यह सारी लूटखसोट नाना ने खुली आखो से सहन की। फिर इतना खर्च होकर घर मे सुख-समाधान का वातावरण रहता हो सो बात भी नही। तीन तीन चार चार गवये या पढे एकसाथ उपस्थित होने के कारण वे एक दूसरे से द्वेष करके एक दूसरे को नीचा दिखाने का प्रयत्न करने लगे। कहावत मशहूर है कि 'भिक्षुको भिक्षुक दृष्ट्वा श्वानवत् गुर्गुरायते"। कभी-कभी ऐसा भी होता कि उनकी आपसी गुर्राहट को देखकर नाना का मन खट्टा हो

जाता और किसी को भी अपेक्षित प्राप्ति हुए बिना, सब को उन्हें मन ही मन गालियां देते हुए खाली हाथ लौट जाना पड़ता। परंतु उनके खाली किये हुए स्थानों को भरने के लिए, रणमैदान में जूझने वाले राजपूत योद्धाओं की तरह, एक की जगह तीन याचक सदा तैयार रहते।

एक बार तो ऐसा हुआ कि नाना के यहां चार पंडे तीन पुरोहित दो शास्त्री, दो गवये, दो कथावाचक, दो ज्योतिषी, एक अष्टावधानी और एक बहुरूपिया यों कोई बीसेक याचकों का जमघट जुड़ गया। इन लोगों ने अपनी अनियमितता, झगड़ालूपन बेहूदगी और पटूपन से घर भर का नाकों दम कर दिया। चंदे चिट्ठे के लिए रातदिन नाना का दिमाग चाटा जाता था सो अलग। इसी कारण उन दिनों उनका मित्र समुदाय उनसे कतराने लगा था। पाहुना को इससे कोई लेन-देन नहीं था। अष्टावधानी महाराज को एक साथ आठ-आठ बातों का ध्यान न रहे यह बात तो समझ में आती थी, पर औरों का भी यही हाल था। शिष्टाचार के नाते कहे हुए नाना के शब्दों का अभिधार्थ में अनुसरण करके वे उनके घर को अपना ही घर मानने लगे। गवयों की तानों पुरोहितों के पाठों शास्त्रियों के वाद-विवाद और पंडों की गाली गलौज में नाना को कान दिये कोई बात सुनाई नहीं देती थी और कुछ दिनों में तो नौबत यहां तक आयी कि बालबच्चों से तीन तीन चार चार दिन भेंट होना दुर्लभ होने लगा।

नाना के संकोची स्वभाव के कारण उनके घर को सराय बनता देखकर हम मित्रों से रहा नहीं गया। हम इस आपत्ति में से उन्हें मुक्त करने की युक्तियां सोचने लगे। जो घर में दखल जमा चुके थे, उनका विचार तो बाद में भी हो सकता था पर नवागतुकों को रोकना तुरंत लाजिमी था। इसके लिए ड्योढ़ी में एक विकराल और कटखना कुत्ता बांधने का निश्चय किया गया। पर इसमें दिक्कत यह हुई कि कुत्ता अपने और पराये के भेद से सर्वथा अनभिज्ञ था। वह आगंतुकों की अपेक्षा घर के लोगों को ही अधिक तंग करने लगा। दूसरी कठिनाई यह थी कि कुत्ते की वजह से जिस प्रकार बाहर के याचक घर में आने बंद हुए उसी प्रकार भीतर वालों के बाहर जाने पर भी रोक लग गई। जो आगंतुक दो-चार दिन के लिए आए थे उन्होंने कुत्ते की नाकेबंदी उठने तक घर में ही डेरा जमाने का निश्चय किया। उन लोगों की दिनरात की कांय-कांय में कुत्ते का भौंकना जुड़ा सो अलग। इसका एक अनपेक्षित परिणाम यह भी निकला कि

गवैयों और कथावाचकों की पहले कर्कश मालूम देने वाली आवाज अब कुत्तों के भौंकने की तुलना में कुछ मधुर लगने लगी और आखिर तो गुड़ नाना उनके ताल अलापों में दाद देने लगे।

अपनी युक्ति का यों विपरीत परिणाम होता देखकर हमने कुत्तों को हटवा लिया और शत्रुदल पर बाहर के बजाय भीतर से आक्रमण करने का निश्चय किया। इसके लिए पाहुनों को पान देकर पहले तो हमने पांच-सात बिच्छू पकड़वाकर मंगवाए। फिर रात को सोने से पहले उन्हें कमरे में ऐसी चालाकी से बिखेर दिया कि उनके डंक का प्रसाद सब मेहमानों को मिल जाए। पहले बिच्छू की नियुक्ति ऐसे स्थान पर की गई कि ज्योतिषी महाराज को वृश्चिक राशि का स्थान ढूंढने का परिश्रम न करना पड़े और वृश्चिक सीधे उनके राशिस्थान में पहुंच जाएं। दूसरे की योजना इस ढंग से हुई कि गवैये महाराज को वृश्चिकदंश की लहरें आकर उनके कंठ में से शास्त्रों का आज तक किसी ने न सुना हुआ आलाप निकलने लगे। आगंतुकों में से एक पुरोहित महोदय ने एक रोज आधाशीशी से व्याकुल नाना को मनोनिग्रह के द्वारा पीड़ा को वश में रखने का बहुमूल्य उपदेश दिया था। अतः तीसरे बिच्छू को उनके तकिये के नीचे स्थानापन्न किया गया। हमें देखना था कि पुरोहितजी महाराज वृश्चिकदंश की वेदना का योगबल या आध्यात्मिक शक्ति द्वारा मुकाबला किस प्रकार करते हैं। इस प्रकार बिच्छुओं की मोर्चे के स्थानों पर व्यूहरचना करके उनकी करामात की मेहमानों पर होने वाली प्रतिक्रिया का निरीक्षण करने के लिए हम तीनों ने भी एक कोने में बिस्तर जमा लिए।

बत्तियां बुझकर अंधेरा होते ही बिच्छुओं ने अपना काम शुरू कर दिया। परन्तु यहां भी हमारा भाग्य आड़ा आया। कोनों में छिपने की अपनी जन्मजात आदत के कारण कहो या अपरिचित पाहुनों की अपेक्षा अपने ही नगर के लोगों की तरफदारी करने के इरादे से कहो सारे बिच्छुओं ने डंक पैने कर करके हम पर ही आक्रमण किया। शीघ्र ही हमारी ऐसी हालत हो उठी कि जीवनभर नहीं भूलेंगे। हम तीनों वेदना से चीखने लगे पर पराया माल खाकर सुखनिद्रा में लीन पाहुनों पर इसका कोई असर नहीं हुआ। एक-दूसरे से स्पर्धा करने वाले उनके खर्राटों के आरोह-अवरोह को भेदकर उनकी नींद तोड़ने में हमारी चीखों को काफी समय लगा। एक बार जगार हो जाने पर उन्होंने चीखने चिल्लाने

और धमाचौकड़ी का जो आलम मचाया उसे देखकर तो ऐसा लगने लगा कि इससे तो वे साये हुए ही अच्छे थे। पुरोहित महोदय नाना को मनोबल द्वारा वेदनानिग्रह करने का उपदेश फिर एक बार देने लगे। ज्योतिषीजी कुंडलिया बना-बना कर उस समय गृहस्वामी को वञ्चितदशहोने का अनिवाय योग था यह सिद्ध करने लगे। कथावाचक महोदय 'जा समय के बीच मे नारदजी महाराज मत्युलोक मे आत भये' आदि प्रस्तावना से आरम करके किसी पौराणिक वृश्चिक-दशलीला का वणन किसी जनमेजय नामक राजा को सुनाने लगे और बाकी के लोग चिड़िया चुग जाने के बाद खेत की रखवाली करने वाले अक्लमदा की तरह सजीदगी से उपदेश दे दे कर गड़बड़ी और कोलाहल मे महत्वपूण योगदान देने लगे।

इस प्रकार हमारी दूसरी युक्ति भी नाकामयाब हो जाने पर इन मुफ्तखोरो से पिंड छुड़ाने के लिए हमने एक नायाब तरकीब की योजना की। एक रोज हमने नाना के किसी निकट के सबधी की मृत्यु हो जाने की झूठी अफवाह फला दी। बात बिलकुल बेसिरपैर की थी क्याकि नाना का ऐसा कोई सबधी था ही नही और होता भी तो नाना को उसके अस्तित्व और मृत्यु का ज्ञान एक साथ होने के कारण उन्हे उसकी मृत्यु से विशेष शोक होने का कोई कारण नही था। परतु इस समाचार स नाना और उनके परिवार को अशौच का जो नाटक करना पडेगा उससे इन पेटुओ का उच्चाटन हो जाएगा ऐसा हमे प्रबल विश्वास था। कुछ देर तक तो हम इस आशा के मनोराज्य मे यथेच्छ विचरण करते रहे और नाना के अतिथिशून्य गृह के बडे मनोरम स्वप्न देखने लगे। परतु मनोरथो की उडान हमेशा सत्य से विपरीत दिशा मे ही होती है इसका हमे तुरत अनुभव हुआ। बहू नाना पर पडने वाले इस अकल्पित सकट को देख कर कूच कर जाने के बजाए पाहुनो ने इस आपत्काल मे जिजमान को अकेला न छोडने का निश्चय किया।

शीघ्र ही उन बारह बटोहियो ने नाना के घर की पूरी व्यवस्था अपने हाथो में ले ली। इस समय तक पाहुनो की घुसपैठ रसोईघर और कोठार मे नहीं हुई थी। परतु अब नाना की पत्नी भी कृत्रिम सूतक म शामिल होने के कारण उन्हें सारे दरवाजे खुले मिल गये और चौके-चूल्हे पर भी उनका अधिकार हो गया। अब क्या पूछना था। कोठार की प्रत्येक अलमारी डिब्बे, गड्ए बोरे और इमतबान मे क्या क्या रखा हुआ है इसकी उन्होंने बारीकी से तलाशी ली

और उनका बोझ हलका करने पर कमर कसी। कुछ तो नाना के दुख को हलका करने के हेतु से और कुछ अपना हाथ जग नाथ वाली उक्ति को चरितार्थ करने के लिए उन्होंने रोज पकवानों की ज्योनार शुरू की। नाना के तो हाथ के तोते उड़ गए। पर कर क्या सकते थे ? इतने वल्लभाचार्यों द्वारा इतनी मेहनत से तैयार किए हुए व्यंजनों में से एक भी आसानी से उनके गले के नीचे नहीं उतरता था। भोजन के प्रति उनकी ऐसी अरुचि देखकर पाहुनों की सहानुभूति और भी जागृत हुई और नाना को खुश करने के इरादे से उन्होंने भंडार में घी, गुड़, शक्कर, सूजी मैदा काजू किशमिश पिस्ता-बादाम लौंग इलायची और केसर आदि वस्तुओं का बहुलोपयोग शुरू किया। किम्बहुना, सारा साल भर का सामग्री दस दिन में चाट कर साफ कर दी। दस दिनों तक बेचारे नाना को यह भारी लूट-खसोट खुली आंखों से देखनी पड़ी। कई बार तो इस अपरिमित हानि को देख कर उनकी आंखें डबडबा आती थीं। ऐसा समय मिश्री-बादाम या काजू-किशमिश से तोबड़ा भरते हुए पुरोहितजी या शास्त्रीजी उनको सांत्वना देते, 'जिजमान इस तरह शोक करने से कैसे काम चलेगा ? दुनिया आनी-जानी है और शरीरमात्र नाशवान हैं। फिर तुम्हारी इस अकाल हानि में तुम्ह अकेले को ही दुख हुआ हो, यह बात भी नहीं। इसमें हम सब तुम्हारे साथ हैं। पिछले सप्ताह भर से हम भी रोटी अच्छी नहीं लगती।' फिर रोटी पर से उनकी वासना किस हद तक उठ गई है यह सिद्ध करने के लिए वे फिर मुट्ठी भर मिश्री-बादाम का फंका लगाते और पेट पर हाथ फेरते हुए नये जोश से नाना को ब्रह्मज्ञान का उपदेश देने लगते।

दस दिन का छमसूतक पूरा हो जाने और नाना का शोक कालक्रम से कुछ कम हो जाने के बाद ही इन महाभागों ने अपनी सुविधानुसार एक एक करके प्रयाण किया। उनसे पिंड छुड़ाने के लिए नाना ने उन्हें मुंहमांगी दक्षिणा बिना हीलोहुज्जत के दे दी। उनके जाते ही उन्होंने नगरनिवासियों की एक सभा आयोजित करके याचकों की आचारसंहिता निश्चित करने के लिए कुछ प्रस्ताव पारित करवा लिये। तब से हमारे नगर में इस बला का पक्का बंदोबस्त हो गया है। हर गृहस्वामी ने इन नियमों की छपी हुई तालिका अपने दीवानखाने में टंगवा ली है। जो याचक इन नियमों के विरुद्ध बर्ताव करता है उसके खिलाफ नियमानुसार कड़ी कारवाई की जाती है। इसमें शहर के समस्त नागरिकों का

सहयोग होने के कारण नियमो का पालन बडी आसानी से हो जाता है। पाठको और अन्य शहरो के निवासियो के मार्गदर्शन के लिए वे प्रस्ताव यहा दोहराये जाते हैं —

1 कोई भी नागरिक यथासभव अपने यहा याचको को ठहरने न दे। यदि निवास की व्यवस्था करना अनिवार्य हो, तो रहने के लिए चार आने भोजन के लिए आठ आने और स्नानादि की व्यवस्था करने वाले नौकरो के लिए चार आने या एक रुपया रोज का शुल्क याचक की दैनिक प्राप्ति में से काट लिया जाए। इस आशय का लिखित अनुबध याचक से पहले ही करवा लेना चाहिए।

2 याचक द्वारा किसी का सिफारिशी पत्र लाया जाने पर, या उसके द्वारा जिद्द करने का प्रयत्न होने पर उसे एक कौडी भी न दी जाए। "मैं अमुक के यहा ठहरा हू' या 'फला ने मुझे इतनी दक्षिणा दी है" यह कहना परोक्ष सिफारिश या दबाव डालने का प्रयत्न माना जाए।

3 यजमान राजीखुशी से दे उतनी रकम से ही याचक को सतोष मानना चाहिए। जरा भी चींचपड करने पर या मुह फैलाने पर दी हुई दक्षिणा भी वापस ले ली जाए।

4 कोई भी याचक यजमान का पाच मिनट से अधिक समय न ले। इससे अधिक समय लेने पर प्रति पाच मिनट के लिए एक आना के हिसाब से जुरमाना काट लिया जाए।

5 एक बार में एक से अधिक याचक एक साथ पहुचने पर दूसरे को पहले से आधी और तीसरे को चौथाई दक्षिणा दी जाए। याचको की सख्या तीन से अधिक होने पर बाकी के याचको को हाथ हिलाते हुए लौटा दिया जाए।

6 एक ही याचक एक ही यजमान के यहा साल भर में एक से अधिक बार आएगा तो उसे कुछ नही मिलेगा। इतना ही नही, पुनरागमन प्रमाणित हो जाने पर उसे नगर के अन्य लोगो से प्राप्त दक्षिणा भी लौटानी पडेगी।

7 किसी याचक के धरना देकर प्राणत्याग करने पर उसकी अतिम क्रिया का खर्च चदा उगाह कर किया जाए। किसी भी हालत म अत्येष्टि का खर्च जिसके द्वार पर धरना दिया गया हो उसके ऊपर न पडने दिया जाए। मृतक की कोई समाधि आदि न बनवायी जाए बल्कि उसकी चिता के इर्दगिर्द खडे होकर उसको

धिक्कार देने के लिए नागरिकों को सदा तत्पर रहना चाहिए। मृतक के परिवार के सदस्यों की किसी प्रकार से सहायता न की जाए।

हम विश्वास दिलाते हैं कि इन प्रस्तावों पर अमल करने से गृहस्वामियों की रक्षा और याचकों का नियमन हो सकेगा।

17 बुढ़ापे के फायदे

इस विचित्र संसार का कुछ ऐसा नियम है कि प्रथम दर्शन में त्याज्य लगने वाली प्रत्येक वस्तु में कुछ विचार करके देखने पर कुछ न कुछ उपयोगी अंश अवश्य दिखाई देता है। जहर जैसी कड़वी औषधियों से असाध्य रोगों का उपचार होता है। अत्यंत गंदी चीजों से उत्तम खाद तैयार होती है। लाखों रुपयों की संपत्ति नष्ट करके सैकड़ों की जान लेने वाली आग के द्वारा दूषित वातावरण शुद्ध होता है। और तो और, उन्माद पागलपन या मृत्यु जैसी भयावह मानी जाने वाली आपत्तियां भी सांसारिक दुखों से छुटकारा दिला देने का कल्याणकारी काम करती हैं।

इसके विपरीत, बाह्य दृष्टि से मोहक दिखाई देने वाली वस्तुओं में ऐसी कोई नहीं मिलेगी जिसमें कोई त्रुटि न हो या जिसके साथ कोई अनिष्ट जुड़ा हुआ न हो। शारीरिक सौंदर्य देखने वालों के मन में विकार उत्पन्न करता है। कीर्तिमान पुरुषों के मन को स्वप्न में भी शांति नहीं मिलती। श्रीमान मनुष्यों को संपत्तिरक्षा की चिंता रात दिन सताती रहती है और शक्तिमान् लोगों के हाथों तरह-तरह के दुराचार और अन्याय होने की संभावना रहती है।

प्रकृति ने सुखदुख और भलेबुरे का बंटवारा ऐसी निष्पक्ष दृष्टि से किया है कि किसी को शिकायत करने का विशेष कारण नहीं। भीषण दारिद्र्य की छाया में जीने वाले मनुष्य को माना कि दोपहर के भोजन का भी निश्चय नहीं रहता पर साथ ही उसे बदहजमी होने की भी कोई संभावना नहीं। लंगड़े को दौड़ने की स्पर्धा में पिछड़ जाने का भय नहीं होता। अंधा यदि सुरूपदर्शन के आनंद से वंचित रह जाता है तो भयावह कुरूपता के दर्शन से भी उसकी रक्षा हो जाती है। बहरा यदि सुस्वर आलापों को नहीं सुन सकता तो बेसुरी तानारीरी से भी उसे नजात

मिल जाती है। निर्धन मनुष्य को सुख नहीं मिलता तो धनवानों को नींद नहीं आती। दरिद्रों को रोटी नसीब नहीं होती तो श्रीमानों की खाई हुई रोटी हजम नहीं होती। सब मिलाकर इस समदुखवितरण के चलते चैन की नींद शायद किसी को नसीब नहीं होती।

ऐसा होने पर भी समाज में सदा सौंदर्य, यौवन, सामर्थ्य आदि स्थितियों की ही प्रशंसा होती है और कुरूपता, बुढ़ापा, दौर्बल्य आदि स्थितियों की उपेक्षा या अवहेलना। इनका वर्णन करने के लिए न तो किसी भाट चारण को जोश आता है न किसी कवि की लेखनी कुलबुलाती है। इसका कारण शायद यही हो सकता है कि कविजन अक्सर कुरूप, वृद्ध और असहाय होते हैं। प्राप्त वस्तु से अप्राप्त वस्तु का मोह कहीं प्रबल होता है। इसलिए मसिजीवियों का झुकाव अपने अभावात्मक गुणों की महत्ता का वर्णन करने की अपेक्षा दूसरों के भावात्मक गुणों की स्तुति करने की ओर ही अधिक रहता है। इसे उनकी प्राकृतिक विनयशीलता के सिवा और क्या कहा जा सकता है?

हमारे परिचित एक डेढ़ सौ वर्ष की आयु वाले भिक्षुक ब्राह्मण की अभी हाल ही में मृत्यु हो गई। उनका जन्म नानासाहब पेशवा के जमाने में हुआ था। यमराज को इतने दिन भुलावे में रखने वाले इस अकिंचन विप्र ने एक क्षेत्र में बेशक अद्वितीय योग्यता हासिल की थी। उस क्षेत्र को बुढ़ापा कहा जाता है। इस भूतल पर ऐसी मूर्तिमान और संपूर्ण जरठता के दर्शन और कहीं होना मुश्किल था। उन्हें अपना समकालीन मानने का भाग्य और किसी को नसीब नहीं हुआ। फिर भी वह सदा असंतुष्ट रहता था। पूछने पर मालूम हुआ कि उसके इस अद्वितीय और प्रतिक्षण बढ़ते रहने वाले गुण की किसी के द्वारा प्रशंसा न होना ही उसकी खिन्नता का एकमात्र कारण था। उसे इस बात से सख्त शिकायत थी कि विश्वासराव, माधवराव आदि अल्पायु वाले पुरुषों के नाम अजर-अमर हो गए जब कि उसके जैसे दीर्घजीवी पुरुष का नाम अमर तो क्या लोगों की जबान पर भी न चढ़ सका। इस मानसिक सदमे में उसकी कमर सदा के लिए झुक गई थी, चेहरा फीका पड़ गया था और पूरी देह पर झुर्रियाँ पड़ गई थीं। आखिर इसी चिंता में उसका अंत हो गया। बुढ़ापे को श्रद्धांजलि समर्पित करने वाला यह लेख उसकी कलपती हुई आत्मा को शांति प्रदान करने के लिए ही लिखा जा रहा है। इसका प्रकाशन उसकी बरसी के रोज हो ऐसी व्यवस्था भी की गई है।

बुढाप का पहला बडा फायदा यह है कि दात माजने के झझट से हमेशा के लिए छुट्टी मिल जाती है और उपले की राख या दतमजन का खच बच जाता है। दात वाले लोग राख के लिए सैकडा उपलो को अग्नये स्वाहा करने रहते ह या मजन की सैकडा डिब्बिया साफ करते रहते हैं। बूढे लोग दयाभाव से उपला को हाथ भी नही लगात। उपले उनके इस ऋण को कुछ ही दिना म चुका देते है। दूसरा फायदा यह होता है कि बुढापे म दाढ दुखने की सभावना बिलकुल नही रहती और दातो से खून भी नही बहता। इससे दवा दारू का काफी खच बच जाता है। ठोकर लगकर गिरने से दात टूटने का भय नहीं रहता और प्रबल से प्रबल शत्रु भी दात तोड देने की धमकी नही दे सकता। कमर झुक जाने के कारण कम उचाई वाले दरवाजो से गुजरते समय सिर टकराने का अदशा नही रहता और जमीन पर गिरी हुई चीज उठाने के लिए अलग से झुकने की आवश्यकता नही पडती। गुस्सा आने पर माथे पर अतिरिक्त बल नही पडने और असहमति व्यक्त करने के लिए गदन हिलाने की कोशिश नही करनी पडती। सिर गजा हो जाने की वजह से हजामत क खच और झझट से सदा के लिए मुक्ति मिल जाती है। जोडा म दद होने के कारण बूढे लोग अक्सर घर स बाहर नही निकलते। इसस उनके गाडी या तागे के नीचे कुचल जान का डर नही रहता और रात को नीद न आने के कारण घर मे चोरी हान का खतरा नही रहता। शरीर म विशेष खून न होने के कारण खटमल दूर रहते ह और बाहर को निकल आने वाली ठोडी और गाल की हड्डिया से घबरा कर मच्छर भी तग नही करते।

एक बार एक काने आदमी ने किसी दो आखा वाले से कहा था कि 'तू तो मेरी एक ही आख देख सकता है जबकि मुझे तेरी दोना आखें दिखाई दती हैं।" इस न्याय के अनुसार कोई वृद्ध भी किसी युवक से कह सकता है कि 'बच्चा! तुझे तो सिफ गलितम तुण्डम पलितम मुण्डम् वाली यह हड्डियो की ठठरी ही दिखाई देती है जबकि मुझे तेरा सुदृढ और मासल शरीर, सुदर तेजस्वी चेहरा, और काले घुघराले बाल भी दिखाई देते हैं। अब तू ही बता तू अधिक सुखी है या मैं ?"

आखा म अधापा कानो मे बहरापन और बुद्धि पर विस्मृति का कोहरा छा जाने के बाद तो बूढा को बहुत अधिक लाभ होता है। गलितगात्र वद्ध आदमी निधन हो तो उसके लेनहार और धनवान हो तो उसके निधन रिश्तेदार यदि उस रास्ते म मिल जाए, तो वह उन्हे पहचानगा या उनकी मागें उस सुनाई देंगी,

इसका कोई भरोसा नहीं रहता। हां कोई कजदार या धनी सबधी रास्ते म मिल जाए तो यह नियम लागू नहीं होता। जवान स्त्रिया या चेहरा देखत समय या उनकी बाते सुनत समय ता बूढे अपनी पाचो ज्ञानेद्रियो को जानबूझकर शिथिल कर देत हैं ताकि अपना मुह उनक मुह क अधिक स अधिक पास ले आया जा सके। ऐसे प्रसगो पर तो कभी कभी उनकी स्मरणशक्ति भी साफ धोखा दे जाती है। लडके के लिए वधू देखन को जाने वाल जरठ बाप अपन आगमन का हेतु भूलकर खुद ही लडकी को मनाव करन लग गए है। वद्धावस्था म विस्मरण की गिरफ्त वाकई बडी जबरदस्त होती है।

बुढापे म स्मृति के शथिल्य क कारण अगले रोज पढी हुई बातें अक्सर दूसरे दिन तक याद नही रहती। इसम यह लाभ होता है कि एक ही पुस्तक को बार बार पढन पर भी हर बार नया आनद प्राप्त होता है। इससे नई-नई पुस्तकें खरीदने के खच और तरददुद दोनो स बचाव हो जाता है। एक वद्ध को हमने साल भर तक एक ही लतीफा एक से शब्दो म रोज दोहराते हुए सुना है। नित्य दोहराने की वजह स वह उन्ह जबानी याद हो गया था। फिर भी, बात पुरानी है और कई बार कही जा चुकी है, यह उनके कभी ध्यान मे नही आया। कई बूढे सालो तक अपनी एक ही उम्र बताते पाये जाते है। इसका कारण भी यही है कि बीते हुए काल की उन्ह विस्मृति हो जाती है। इन महाभागो को जिस प्रकार काल का विस्मरण हो जाता है उसी प्रकार काल भी कभी कभी उन्हें बिलकुल भूल जाता है।

वद्धावस्था के कारण मनुष्य की नतिकता पर पडने वाला प्रभाव भी विचारणीय है। वद्धावस्था म किसी को धनजोबन का घमड हुआ हो या हाथ की छडी का किसी वद्ध ने किसी को मारने के लिए उपयोग किया हो ऐसी बात कभी सुनाई नही देती। वद्ध कभी किसी को दातो से काटत हुए या परस्त्री का घूरत हुए पकडे नही जात। अपने सौंदय या सामथ्य का अभिमान भी उन्हें शायद ही कभी होता हो। जवान लडकिया उन्हे 'बाबा' या 'दादा' कहकर पुकारती हैं तब व बडी नम्रता से स्वीकार करत हैं कि व इन सम्मानसूचक सबोधनो के योग्य नही। बची हुई जिंदगी देशसेवा या अन्य किसी शुभ काय मे बिताने का सकल्प करने म उन्ह विशेष कठिनाई नही पडती और अक्सर वे उस पुण्य भी कर डालते हैं। हमारे परिचित एक अस्सी वष के जरठ न आमरण देशसेवा का व्रत लिया

था जिसे उन्होंने मृत्यु के दिन तक यानी लगातार दो महीने तक निभाया था। ऐसी कठोर प्रतिज्ञा बर्दाश्त कर बैठने वाले महापुरुषों को कालेपानी या फांसी की सजा नगण्य मालूम दे यह स्वाभाविक है।

पैतालीस की उम्र पार कर चुकने वाले मुजरिमों को चाहे मारने की सजा कानूनन नहीं दी जा सकती। इसका कारण भी उनकी मृत्यु विषयक लापरवाही ही होनी चाहिए। एक लाला को बड़ी सजा देकर सरकार को भी क्या मिलेगा? उम्र के ढलते दिनों में किसी बुजुर्ग की कृश देह पर बेंत के वार किए जाने पर वह कहीं ढेर न हो जाए तो इससे उनके हाथों यह अपराध फिर से न होने देने का कानूनी उद्देश्य तो सिद्ध हो जाएगा। पर उसे देखकर दूसरे सबक सीखें और उस अपराध से परावृत्त हों, कानून का यह दूसरा प्रमुख उद्देश्य शायद कभी पूरा नहीं होगा। कारण कि इस हालत में एक तो उनकी मृत्यु का दायित्व उसके अपराध की जघन्यता या उसे मिलने वाले दंड की कठोरता के हिस्से में जाने के बजाय उसकी बढ़ी हुई उम्र के मत्थे मढ़ा जाएगा और दूसरे यह कि चोरी चकोरी जैसे साधारण अपराध के लिए भी किसी को मृत्युदंड मिलता देखकर अपराधियों की वृत्ति छोटे मोटे अपराध करने के बजाय ऐसी कठोर सजा योग्य हत्या, सशस्त्र डकैती आदि वजनदार अपराध करने की ओर ही अधिक रहेगी।

कम उम्र के आदमी के मरने पर उत्तराधिकारियों को उसकी अंगूठी या कान की मुरकियों के सिवा अन्य कोई मूल्यवान् वस्तु प्राप्त होने की अधिक संभावना नहीं रहती। परंतु उम्रदराज लोग इस मामले में अधिक समझदार होते हैं। वे अपने वारिसों के लिए नकली दांतों की बत्तीसी ऐनक, कान में लगाने का भोंपू छड़ियां खड़ाऊं आदि अनेक बहुमूल्य चीजें छोड़ जाते हैं। वारिस चाहे तो उनकी खिजाब की शीशी पर भी कब्जा कर सकते हैं। इसके विरोध में चूं भी नहीं करेंगे।

परंतु बुढ़ापे में होने वाला सबसे बड़ा लाभ तो यह है कि जवान लड़कियां बूढ़ों से बड़ा बेतकल्लुफ और निष्कपट व्यवहार करती हैं। कुंदकली सी जो दंतपंक्ति युवकों को कभी छठे छमाहे ही दिखाई पड़ती है, वह बूढ़ों के दर्शन मात्र से होठों का आवरण हटा कर बिजली की तरह दमक जाती है। मनुष्य की आयु के दोनों छोरों, बाल्य और वार्धक्य, में तुतलाना, दंतहीनता दुर्बलता, परवशता चटोरापन

18 चित्रगुप्त का जमाखर्च

हम स्वप्न में जिन बातों का अनुभव करते हैं वे जागतावस्था में अनुभव की हुई बातों से नितांत भिन्न होती है। एक ओर घर-बार न होने के कारण सड़क के किनारे पड़ा हुआ और केवल थकान के कारण निद्राधीन हो जाने वाला भिखारी स्वप्न में मन ही मन छककर छप्पन प्रकार के व्यंजनों का स्वाद चखता है और दूसरी ओर वास्तविक दुनिया का लखपती सपने में फटी हुई कमरी ओढ़कर दर दर भीख मांगता फिरता है। घर में बच्चों की फौज रखने वाला कुटुंबवत्सल गृहस्थ स्वप्न में शरीर पर भभूत रमाये गंगा किनारे किसी पर्णकुटी में ध्यानस्थ हो कर बैठता है तो आजन्म ब्रह्मचारी स्वप्न में वैवाहिक सुख का अनुभव करता है। जागतावस्था में कभी नियमित अध्ययन न करने वाला विद्यार्थी स्वप्न में परीक्षक बन कर परीक्षार्थियों को उत्तीर्ण करता है तो विद्यार्थी अवस्था से गुजर कर चालीस पचास वर्ष तक संसार शकट हांकने वाले प्रौढ़ परीक्षक को अधूरी तैयारी के कारण परीक्षा में अनुत्तीर्ण होने के भयानक स्वप्न दिखते हैं। स्वप्नसृष्टि के ये सारे चमत्कार उनका अनुभव होते समय इतने सटीक मालूम देते हैं कि उस समय यदि हमें कोई जगा दे तो स्वप्न की इष्टानिष्टता के अनुसार हम इष्ट वस्तु छिन जाने का रोष या अनिष्ट आपत्ति में से मुक्ति पाने का आनंद अनुभव करते हैं। कभी कभी तो नाटक में होने वाले अंतर्नाटक की तरह स्वप्न में अंतःस्वप्न देखने का अनुभव भी होता है।

पिछली गणेशचतुर्थी के दिन दोपहर को भरपेट मोदक का भोजन और तांबूलभक्षण करने के बाद मुझे रोज की आदत के अनुसार दो घड़ी लेटने की इच्छा हुई। दोपहर को सोने जैसे निवृत्तिपरक व्यापार को बाह्य उपकरणों की विशेष आवश्यकता नहीं पड़ती। सिर के नीचे तकिया, बिछाने को चटाई और

गणेशजी महाराज ने अपना विशाल गंडस्थल हिलाकर 'तथास्तु" कहा और मुझे अपने चारा हाथो से उठाकर मूपक पर आसीन किया। बिल्ली द्वारा रास्ता काटा जाने का या अन्य कोई अपशकुन न होने के कारण परलोक की उस दिव्य राह म कोई विघ्न नही आया और गणेशवाहन अविराम गति से आगे बढता रहा।

माग मे अनेक पगडडिया परलोक के उस राजमाग से मिल रही थी। उन पर से चल कर अनेक जीवात्मा मुख्य माग के प्रवाह म शामिल हो रहे थे। उन आत्माओ की देह अगुष्ठमात्र की थी और वेपभूपा जाति-देशानुसार भिन्न भिन्न प्रकार की थी। उस भीड का देख कर दशहरे के दिन सोना लूटने के लिए जाने वाले जनसमूह का आभास हो रहा था। वास्तव म देखा जाए तो यह मृत्युलोक का सीमोल्लघन ही था।

प्रत्येक नगर मे दो चार मनुष्य रोज मरते ही रहते हैं फिर भी मृतक का अतिम सस्कार कितने ठाठ से किया जाता है! मरने वाला यदि हिंदू हो, तो अरथी, मटका अबीर-गुलाल, धूप चदन शख ध्वनि इत्यादि और मुसलमान हो तो ताबूत, पुष्पमालाए इत्र-लोहवान, मधुर सगीत आदि अनेकविधि उपकरणा से मृतदेह को सजाया जाता है और अतयात्रा की शोभा बढाई जाती है। परतु परलोक के पथ पर अमीर गरीब मालिक-नौकर वृद्ध युवा, गृहस्थ सन्यासी आदि सारे भेद लुप्त हो जाते हैं। अत सभी मृतो के जीवात्मा साद लिवास मे कधे से कधा भिडाये आगे बढ रहे थे। कुछ के अत करण प्रियजनो या धनसपत्ति मे उलझे रह जाने के कारण वे सतष्ण दृष्टि स पीछे मुड मुड कर देख रहे थे। उनम से एक अपनी प्रियतमा से मिलने के लिए दूरदश से समुद्रयात्रा कर के आते समय रास्ते म जहाज उलट जाने के कारण डूब कर मर गया था। अत उसके चेहरे पर उसकी अतृप्त वासना साफ झलक रही थी। दूसरा एक जलत हुए मकान मे से अपने छोटे बालक को बचाते समय आग मे कूद कर जीवन खो बैठा था। उसके चेहरे पर इस बात का सतोप स्पष्ट झलक रहा था कि बच्चा सही-सलामत बच गया। आत्महत्या करने वाले जीव क्षणभर के लिए भी इधर उधर न देखते हुए नाक की सीध म चले जा रहे थे। उनके लिए यही स्वाभाविक था। जीवन के सारे बधनो को वे बडी निममता से तोड चुके थे। किसी शोकाकुल पत्नी ने पति की मृत्यु के बाद तुरत प्राण त्याग दिय थे। वह जोडा हाथ मे हाथ डाले बडे आनद से झूमता हुआ जा रहा था। उनके चेहरो को देख कर किसी ने भी यही

कहा जाता कि स्वर्ग नहीं, यह मरणान्तर काल नहीं बल्कि नये जीवन का शुभारम्भ है।

प्रत्येक पथिक की पीठ पर एक एक गठरी बंधी हुई थी। इन गठरियों में उनके जीवन भर के पाप पुण्य का संचय था। सबकी गठरियां प्राय: एक से आकार की दिखाई दे रही थीं। इससे यही सिद्ध होता है कि मनुष्य के पाप पुण्य का जोड़ बाकी हो जाने पर संचित अवशिष्ट शायद एक सा ही बचता है। परन्तु तब तक उस गठरी का पृथक्करण न हो पाने के कारण उसमें पुण्य का अंश कितना, और पाप का कितना यह बताना मुश्किल था। अधिकांश लोग यही मान कर चल रहे थे कि उनकी गठरी में पुण्य का अंश ही अधिक है। यद्यपि इतना पुण्य जीवन में रच रखा और उसे कमाया इसका आश्चर्य भी बहुतेरों के मुख पर झलक रहा था। लोग अपनी कल्पनाओं में स्वर्ग की मौज लेते हुए आगे बढ़ रहे थे।

स्वप्न में कभी कभी असम्भव ज्ञान भी सत्य प्रतीत होता है। इसका भी मुझे अनुभव हुआ। मजमे में दो जोड़ा माताओं के चेहरे हूबहू बड़ी नानी और परनानी के जैसे दिखाई दे रहे थे। उनकी मन्द मृदु मुस्कान भी ज्यों की त्यों सलामत थी। यह देख कर मुझे बड़ा सन्तोष हुआ। बड़ी नानी कह रही थीं 'लो ना तुम्हारी और मेरी गठरियां दिखाई तो एक-सी दे रही हैं। इससे ऐसा लगता है कि हम दोनों की नियुक्ति शायद एक ही जगह होगी। चलो अच्छा हुआ कि हम आज तक एकनिष्ठ से धर्म के सनातन मार्ग पर चलते रहे। नास्तिक लोग चाहे तो इस अंधश्रद्धा कह सकते हैं। पर जो श्रद्धा स्वर्ग तक पहुंचाती है वह अंधी कैसे हो सकती है? हम लोगों ने कितनी श्रद्धा से प्रातः सायं सन्ध्या की है, एकादशी का व्रत किया है और महादेवजी पर न मालूम कितने लोटे पानी का अभिषेक किया है। होली के दिनों में अशोभन गालियां बकने में भी हम कभी नहीं चूके। पंचगव्य के तो आज तक न मालूम कितने घड़े हमारे पेट में उतर चुके होंगे। पूरे श्राद्धपक्ष में तर्पणादि कर के हमने पितरों को सन्तुष्ट रखा है। देवताओं को देवदासियां समर्पित करने की प्रथा का हमने सदा समर्थन किया है। अत्यन्त शुद्ध आचरण वाले भंगी-चमार का स्पर्श होने पर तो सदा स्नान किया है और स्नान के बाद सूत के धागे का भी स्पर्श हो जाने पर कभी फिर से बिना नहाये भोजन नहीं किया। विधवा स्त्रियों का मुंडन करवा कर उन से धर्माचरण करवाने में तो हम सदा अग्रणी रहे हैं। ऐसा लगता है कि हमारी गठरियों का कम से कम आधा

पुण्यभार उन विधवाओं के केशकलाप से ही बना है।"

तात्या ने उत्तर दिया, "नाना, तुमसे कोई परदा नहीं है। यह सही है कि मैंने भी जीवन में ये सारी बातें की, किन्तु तुम्हारे जैसा भक्तिभाव मन नहीं। बाह्य रूप से बेशक मैंने भी सदा धर्म का आचरण किया है। खुद विधाता भी उसे देख कर धोखा खा गया होगा। पर वह आडंबर के सिवा कुछ नहीं था। फिर भी संचित कर्म का फल मुझे स्वर्ग में मिलेगा ही। स्वर्ग का अमृत अपनी रबड़ी मलाई से कम से कम हजार गुना मधुर तो होगा ही और वहां की अप्सराओं का संगीत भी अपनी बड़ाबाई के गान से अधिक मधुर होगा। परंतु नाना! वहां प्याज की पकौड़ियां और लहसुन की चटनी मिलेगी या नहीं? वरना मीठा खा खा कर मुंह का जायका बिगड़ जाएगा। एक बार अमृत और अप्सराओं का नृत्य संगीत न हुआ, तो भी मेरा काम चल जाएगा। पर करारी पकौड़ियां और चटपटी चटनी न मिली, तो वह स्वर्ग किस काम का?"

इस प्रकार की बातें करते हुए दोनों मित्र चित्रगुप्त के कार्यालय तक जा पहुंचे। इस दफ्तर की दीवारें पत्थर के बजाय पाषाणहृदयी मनुष्यों के कलेजों की बनी हुई थीं जिन्हें परिश्रमी मनुष्यों के उद्योग के खून से जोड़ा गया था। दफ्तर की दाहिनी ओर स्वर्ग एवम बायीं ओर नरक के प्रदेश दृष्टिगोचर हो रहे थे। स्वर्ग की शोभा अत्यंत रमणीय दिखाई दे रही थी। वहां उज्ज्वल और शीतल प्रकाश में एक से एक सुंदर उच्चासनों की पंक्ति दिखाई दे रही थी। उन पर लाखों पुण्यात्मा विराजमान थे। पूरा वातावरण सुस्वर संगीत और मधुर सुवास से भरा हुआ था।

मुझे आश्चर्य सागर में डुबकियां लगाते देख कर गणेशजी महाराज बोले, "वत्स, जिन जीवात्माओं का पुण्य संचय उनके पाप की मात्रा से अधिक होता है उन्हीं को यहां स्थान मिलता है। जो जीवात्मा अपने कर्तव्य क्षेत्र के बाहर जा कर और खुद हानि सहन करके भी दूसरों का कल्याण करते हैं वे पुण्य का संपादन करते हैं और जो कर्तव्यमार्ग से चूक कर बदले की भावना या अन्य किसी हीन भावना-वश होकर दूसरों का अमंगल करते हैं वे पाप के भागी होते हैं। जो केवल न्यूनतम कर्तव्य का पालन करते हैं या जिनके परोपकार की जड़ में यश या संपत्ति की लालसा या अन्य कोई स्वार्थ भावना रहती है या जो केवल अन्याय का प्रतिकार करने के निमित्त दूसरों की हानि करते हैं वे पुण्य या पाप दोनों में से एक का भी

संचय नहीं करते। न्यूनतम कर्तव्य के पालन मात्र से पुण्य संचय नहीं होता, फिर सही रास्ते पर चलने से समाधान मिलता है।

सौंदर्य का उत्कर्ष करने के लिए रात दिन मेहनत करने वाले चित्रकार, संगीतकार, मूर्तिकार, शिल्पी एवं कवि, सत्य के उत्कर्ष के लिए परिश्रम करने वाले आलोचक, प्रचारक, शास्त्रज्ञ एवं दार्शनिक और नीतिप्रसार के लिए अपना संपूर्ण जीवन समर्पित करने वाले धर्मप्रचारक, उपदेशक आदि मनुष्य भी उद्दिष्ट प्राप्ति के लिए किए जाने वाले निरपेक्ष और निरापद प्रयत्नों के बल पर पुण्य का संचय करते हैं। जो इन लोगों का नाश करना चाहते हैं या जो इन प्रयत्नों के मार्ग में बाधाएं खड़ी करते हैं वे निस्संशय पाप के भागी होते हैं।

कभी कभी कोई काम करते समय मनुष्य यह समझ लेता है कि उसका यह कर्म केवल दूसरों के सुख के लिए या किसी उदात्त ध्येय की प्राप्ति के लिए हो रहा है। अक्सर यह भ्रम के सिवा कुछ नहीं होता और उसके ये कर्म प्रायः स्वहित के लिए ही होते हैं। इस श्रेणी में आने वाले, कुछ स्वार्थ और कुछ परमार्थ से प्रेरित कर्म करने के बावजूद अपनी परहित की मात्रा के अनुपात में अधिक पुण्य अर्जित करते हैं। मनुष्य के हाथों पाप की अपेक्षा पुण्यकर्म थोड़ा भी अधिक हुआ हो, तो उसका स्वर्ग के आसन पर अधिकार हो जाता है। पुण्य की अधिकता नाममात्र की ही हो तो आसन बहुत नीचा मिलता है। पर ज्यों ज्यों पुण्य का अनुपात बढ़ता जाता है त्यों त्यों आसन भी ऊंचा होता जाता है। जीवन भर सत्कार्य करते रहने पर भी जिनके हाथों कभी अनजाने में या मजबूरी से पापाचरण हो जाता है उनके पाप पुण्य का जमा खर्च होकर जो पुण्यराशि बाकी बचती है उसके बल पर उन्हें स्वर्ग में उच्च आसन मिलता है। मृत्युलोक में अत्यंत हीन अवस्था में होने वाला प्राणी भी अपने सुकृत के बल पर उच्च आसन का अधिकारी हो सकता है।

हे भक्त शिरोमणि बुद्ध जैसे धर्म संस्थापक, तुकाराम जैसे धर्म सुधारक संत, आर्यभट्ट जैसे ज्योतिषी, पाणिनी जैसे वैय्याकरण, कालिदास जैसे कवि, तानसेन जैसे गवैये और संसार को आश्चर्यमुग्ध कर देने वाले अजंता इल्लोरा के अज्ञात और अनाम चित्रकार शिल्पकार —तात्पर्य यह कि जिस किसी ने भी निरपेक्ष भाव से लोगों का कल्याण किया है या किसी उदात्त तत्व का विकास किया है वे सब तुझे यहां विराजमान दिखाई देंगे। यहां तुझे जाति भेद या धर्म भेद के

दर्शन नहीं होंगे। बुद्ध ईसा मसीह से तुकाराम ल्यूथर से, कालिदास शेक्सपियर से और शिवाजी वाशिंगटन से प्रेमालाप करते हुए दिखाई देंगे। स्वदेशरक्षा के लिए परस्पर विरोधी पक्षों की ओर से लड़ने वाले और एक दूसरे के हाथों मारे जाने वाले योद्धा यहां पर तुझे देशभक्ति की गाथा एक स्वर से एक साथ गाते हुए दिखाई देंगे। जिन महात्माओं ने गुलामी की प्रथा बंद करवाने के लिए प्राणों की बाजी लगा दी थी उन्हें यहां अत्यंत उच्च स्थान मिला हुआ दिखाई देगा। कुछ अत्युच्च आसनों को खाली देख कर तुझे आश्चर्य हो रहा होगा। दर असल इन स्थानों के अधिकारी स्वर्ग प्राप्ति होने के बाद भी, उसे ठुकरा कर जब तक पृथ्वी तल पर एक भी प्राणी दुखी दरिद्र रहता है तब तक वहीं रहने की अनुमति लेकर वापस चले गये हैं। वहां वे पृथ्वी के दुखों का भार हल्का करने का अविराम प्रयत्न कर रहे हैं। ये पुण्यात्मा यहां आने पर दीर्घ काल तक स्वर्गसुखों का उपभोग करके मानव जाति के उद्धार के लिए फिर पृथ्वी पर जन्म ले लेते हैं और अपना अवतार कार्य समाप्त हो जाने पर फिर यहां आकर निवास करते हैं। उनका यह क्रम अनेक युगों तक चलता रहेगा। दूसरी ओर नरक-निवासी जीवात्मा भी बार बार जन्म लेकर अपने चरित्र को उत्तरोत्तर शुद्ध करने का प्रयत्न करते रहते हैं। संचित पुण्य के अनुपात में उन्हें उत्तरोत्तर कम कष्ट का स्थान मिलता है और अंत में उनका स्वर्ग में प्रवेश हो जाता है। इस प्रकार अपने पापों का उद्धार करके जब पूरी जीवसृष्टि स्वर्ग में प्रवेश पा जाएगी तब इन उच्च आसन के उपरोक्त अधिकारी संतोषपूर्वक अपना अपना स्थान ग्रहण करेंगे और फिर पूरे ब्रह्मांड में दुख नाम की चीज कहीं दिखाई भी नहीं देगी।"

गणेशजी महाराज ने अपने वर्णन के अंत में जो नरक का उल्लेख किया उससे मेरे मन में उस प्रदेश को देखने की भी प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई। चित्रगुप्त के कार्यालय की बाईं ओर ही वह अंधकारमय भयानक प्रदेश फैला हुआ था। भीतर से दुखविह्वल प्राणियों के आर्तनाद सुनाई दे रहे थे। चारों ओर घना अंधेरा छाया होने पर भी जीवात्माओं के यातना के कारण भीषण और दयनीय लगने वाले चेहरे साफ दिखाई दे रहे थे। वह दृश्य असह्य हो उठने पर मैं चटपट चित्रगुप्त के न्यायासन के पास वापस आ गया। उनके जमाखर्च के बहीखाते के कागज सज्जनों के धवल कृत्यों से बने हुए थे जिन्हें पुण्यजनों की प्रेमरज्जु से एकत्र कर बांधा गया था। उनकी दवात की स्याही दुर्जनों के कृष्णकृत्यों के

निचोड से तैयार की गयी थी। उनके तराजू की डडी पापपुण्य की परवाह न करने वाले दृढनिश्चयी मनुष्यो के भेजे की बनी हुई थी और वह पल्ला म रख जाने वाले बाटो की अधिक परवाह न करते हुए निश्चल और निष्पक्ष भाव से अपना काय किए जा रही थी। तराजू के बाट का निर्माण चचल मनुष्यो के स्वभाव से हुआ था। अभी अभी आए हुए अनेक जीवात्मा चित्रगुप्त के समक्ष अपने पापपुण्यो का विवरण देकर उनके निणयानुसार स्वग या नरक की ओर जा रहे थे। किसी जगली प्रदेश के राजा की अपने गुलामो पर अमानुष अत्याचार करने के कारण तुरत नरक म रवानगी हुई। किसी धर्मोपदेशक की मुक्तीतीप्रकार के बदले भ्रष्टाचार फैलाने के अपराध म उसके पीछे पीछे जाना पडा। उसके बाद प्रजा म त्राहि-त्राहि मचा देने वाले एक डाकू झूठे दस्तावेज बना कर और जमा खच मे घपला करके असामियो को लूटने वाले एक महाजन, उसकी सहायता करने वाले एक अरजीनवीस असहाय स्त्रियो के पतिव्रत्य को भ्रष्ट करके उनके जीवन की धज्जिया उडाने वाले एक कामाध नराधम अपने वैद्यकीय ज्ञान का दुरुपयोग करने वाले एक नीमहकीम रिश्वत ले-लेकर मोटे होने वाले एक न्यायाधीश मुवक्किलो से रिश्वत दिलाने और उसमे का आधा हिस्सा बीच म ही हडप जाने वाले एक वकील, झूठे मुकदमे दायर करके और मुलजिमो को यातना देकर उनसे जुम का इकबाल करवा लेने वाले एक दरोगा और ग्राहको की आखो म धूल झोककर करोडपति बन जाने वाले एक व्यापारी की भी उसी दिशा मे रवानगी हुई।

इसके बाद बहुनाना और पाहुतात्या की जोडी सामने आयी। पहले नाना का न्याय हुआ। इसम अधिक समय नही लगा। उनकी गठरी खोल कर देखने पर बहुत बडी शुभ्रवर्णी पुण्यराशि और छोटी सी कृष्णवर्णी पापराशियो के दो स्पष्ट ढेर दिखाई दिए। उनके पापो की अपेक्षा पुण्य की मात्रा बहुत अधिक देखकर मुझ बहुत आनद हुआ। फिर दोनो ढेरो मे से एक एक वस्तु उठाकर उस पर विचार किया गया। दयाभाव से प्रेरित होकर एक अतिशूद्र का मरयु से किया हुआ उद्धार पढरपुर के अनाथाश्रम को दिया हुआ दान आदि यश की भावना म की हुई बातो की गणना पुण्यकार्यो मे होगी ऐसी उन्ह स्वप्न म भी आशा नही थी। इन सत्कार्यों के पीछे नाना की कुछ न कुछ स्वाथभावना अवश्य थी। परतु उनके हृदय की निश्छलता के कारण उन सब की गणना पुण्यकर्मों म हुई। इसके विपरीत

बहुत सी ऐसी बातें जिन्हें वे पुण्य मानकर चल रहे थे और जिनके सहारे वे इनदिनो बडे रगीन स्वप्न देखने लगे थे पुण्य राशि मे नही पाई गईं, बल्कि उनम कुछ पाप के ढेर मे दिखाई दी। इस एक अपवाद को छोड कर बाकी भी प्राय सभी बातो मे फैसला नाना के पक्ष मे ही हुआ। उदाहरणाथ एक बार स्नान के बाद सूत पर पाव पड जाने पर भी उन्होने बिना फिर से नहाये भोजन कर लिया था। एक बार एकादशी के दिन चिकनी सुपारी खा ली थी। एक बार लघुशका के समय धोती की लाग नही खोली थी। परतु ये सारे महापातक चित्रगुप्त की असावधानी से कहो या और किसी कारण से कहो, उनके खाते की पापतालिका मे दज नही हुए थे। सब मिलाकर उनका केस बडा सीधा-सादा रहा और उन्हे लबे समय के लिए स्वग का अधिकारी घोषित कर दिया गया।

इस प्रकार बडूनाना का स्वगप्रवेश पर अधिकार स्थापित हो जाने पर भी वे अपने अभिन्न मित्र पाडूतात्या के साथ ही जाने की आशा से उनका फसला होने की राह देखते हुए वही खडे रहे। परतु तात्या की गठरिया के सचय को देखकर हम दोनो को बडी निराशा हुई। उनके कर्मो का पाप के बहुत बडे काले ढेर और उसकी तुलना मे अत्यत छोटी दिखाई देने वाली पुण्यराशि मे पथक्करण हुआ। पुण्य का कुछ अश शायद गठरिया म ही चिपका रह गया हो इस आशा से उन्होने चादर को कई बार झटका, परतु एक कण भी नही निकला। अत मे चित्रगुप्त ने कहा, पामर जीवात्मा, तेरे जीवन का अधिकाश समय मौज उडाने मे ही बीता है। दूसरो के सुख दुख की ओर ध्यान देने की तुझे कभी फुसत ही नही मिली। और तो और कतव्यपालन मे भी तूने कदम-कदम पर प्रमाद किया है, तो फिर कतव्य से आगे बढकर परोपकार या पुण्यसचय करने वाले अन्य सत्कृत्य तेरे हाथो होने की सभावना ही नही थी।'

तात्या ने घबरा कर कहा, 'ऐसा कैसे हो सकता है, महाराज? आप शायद मेरे खाते मे कुछ पुण्य को जमा करना भूल गए हैं। उदाहरणाथ मैंने सत्यनारायण के प्रसाद और गणेशजी के मोदक की कभी अवहेलना नही की।'

"इसका कारण तेरा चटोरापन था। उनका जिक्र करते हुए भी तेरे मुह मे पानी भरा आ रहा है। उनकी गिनती सत्कर्मों मे नहीं हो सकती।"

"कुछ रोज पहले मैंने कोटि लिगाचन और शतचडी यज्ञ करके ब्राह्मण भोजन करवाया था। सतपण तो मैं जीवन मे अनेक बार कर चुका हू। क्या वह सब

भी बेकार गया ?" तात्या ने बहस जारी रखी।

इस प्रकार की हुज्जत का जवाब देते हुए ही चित्रगुप्त के बाल सफेद हुए थे। अत टस से मस न होते हुए उन्होंने दृढता से कहा, "बिलकुल ! यह सारा खटकरम तूने अपनी और अपने जैसे अन्य कई मुस्टंडों की कुछ दिनों के लिए खाने पीने की सुविधा करने के हेतु से किया था। अन्न के उन ढेरों में से किसी अनाथ या दरिद्र की झोली में कभी एक मुट्ठी भी डाली थी क्या ?"

"गोरक्षा समिति के मंत्री के नाते मैंने गायों की सेवा में अमूल्य योगदान दिया। क्या वह भी निरर्थक गया ?" तात्या अब चिड़चिड़ा उठे थे।

"हां वत्स ! चंदे की रकम हजम करके तुम लोगों ने सांड की तरह अपने शरीरों को पुष्ट किया। इससे एक अर्थ में गोरक्षा हुई ऐसा कहा जा सकता है। पर इससे तुम्हारी देह का कोई कष्ट नहीं हुआ। तेरे मन में यदि मूक प्राणियों के प्रति इतनी ही दया थी, तो दुर्गा अष्टमी के पर्व में तूने बकरे का बलिदान क्यों दिया ? और प्रतिवर्ष दशहरे के दिन भैंसा काटने का समर्थन तू क्या करता रहा ?"

"परंतु महाराज, ये तो शास्त्रविहित आज्ञाएं हैं। विधियों का पालन करने से मेरे हाथों अनर्थ कैसे हुआ ?" तात्या की इस दलील में काफी वजन था पर चित्रगुप्त पर उसका कोई असर नहीं हुआ।

"इन हत्याओं से तेरे हाथों पाप नहीं हुआ, यह सही है। परंतु यश और द्रव्य की आशा से की गई गोरक्षा के द्वारा तेरे हाथों पुण्य का काम नहीं हुआ, यह भी उतना ही सही है।"

"हे राम ! तब तो फिर महाराज, मैंने उस चिद्घनानंद स्वामी का मंदिर बनवाने के लिए चंदा उगाहने में जो सहायता की थी, वह भी व्यर्थ ही गई होगी ?" तात्या ने अब वक्रोक्ति की शरण ली।

"वह कष्ट तूने एकत्रित चंदे में से चौथाई रकम दलाली के रूप में मिलने के लालच से किया था। इसके अलावा स्वामीजी की एक शिष्या के प्रति तेरी *विकारदृष्टि भी थी, यह तू शायद भूल गया होगा, पर मैं नहीं भूला हूं।"* साफगोई में चित्रगुप्त भी कम नहीं थे।

"अच्छा ! तो फिर मेरा वेदपठन और मंत्रोच्चारण ?" डूबते हुए तात्या अब तिनके का सहारा लेने लगे।

"वह कोरा अर्थशून्य शब्दाडंबर था।'

"और पंचगव्य प्राशन ? महाराज ! कृपा करके देखिए कि उसम की कुछ बूंद भी मेरे खाते मे जमा हैं या नहीं ? यहा खडे खडे भी मुझे अपने खाते में जमा की ओर कुछ गंदगी दिखाई दे रही है। वह शायद गोबर गोमूत्र ही है।"

'नहीं ! भय के कारण तुझे दृष्टिभ्रम हो गया है, वत्स ! तेरे पंचगव्य प्राशन की गणना न पुण्य में हुई है, न पाप में। वह कोरा ढोंग था।

"महाराज ! गयावीता, होली के दिन मैं मचाया हुआ हुड़दंग तो मेरे खाते में जमा होगा ही।"

'उस पशुवृत्ति से हमें कोई सरोकार नहीं।"

"अरर ! तो फिर मैंने व्यर्थ ही इतनी उछल कूद की। क्या नसीबा है हमारा कि पंचगव्य की एकाध बूंद या हुड़दंग की एकाध गाली भी हमारे भाग्य में नहीं।'

यह समापण पूरा होते ही चित्रगुप्त के दूत लात्या को गरदनिया दे कर धकियाते हुए नरक लोक में ले गए। यह देख कर मेरे मन का उद्वेग असह्य हो उठा। मैंने गणेशजी से पूछा कि हे बुद्धिदाता ! हे विघ्नहर्ता ! पाप या पुण्य करने की बुद्धि मनुष्य को जब आप ही की ओर से मिलती है, तो उसके भले-बुरे कृत्यों के लिए उसे उत्तरदायी क्या माना जाता है ? और उसके छोटे मोटे प्रमादों की ऐसी कठोर सजा उसे क्यों दी जाती है ?"

सुधारकों के मुंह में शोभा देने वाले मेरे इस तर्क को सुनते ही गणेशजी ने क्रोधित होकर अपनी सूंड से मुझे एक जोरदार रहपट लगाया। इससे मेरी नींद खुल गई और देखता हूं तो कैसा चमत्कार ! बहूनाना पीठ पर चपत लगा लगा कर मुझे जगा रहे थे और पाडूतात्या पास खडे हुए अपनी कर्कश आवाज मे कह रहे थे 'आज कुंभकर्ण की नींद से सोये हो क्या ? ऐसा पेटूपन भी भला किस काम का ? इतना ठूसपेट खाया ही क्यों ? आज सायंसध्या या स्तोत्रपाठ वगैरह कुछ करना है या नहीं ? मरने के बाद चित्रगुप्त के सामने किस मुंह से खडे रहोगे ? उठो अब, आलसी कहीं के !"

19 लेखनकला के विभिन्न सोपान

'पूत के पाँव पालने में ही दिखाई दे जाते हैं'—यह कहावत शब्दशः न सही, पर तात्पर्यार्थ से बिलकुल सच्ची मालूम देती है। बच्चों की शैशवकालीन आदतों में उनके भविष्य के आयुष्यक्रम के सूक्ष्म बीज छिपे रहते हैं इसमें कोई संदेह नहीं। शिवाजी महाराज का युद्धप्रेम और अन्याय के प्रति रोष बचपन में ही उजागर हो गया था, यह तो सभी जानते हैं। इस नियम को मानकर चलें तो यह कहने में भी बिलकुल अतिरंजना नहीं होगी कि शंकराचार्य, ज्ञानेश्वर, गेटे, पोप और मकॉले आदि प्रसिद्ध अल्पायु ग्रंथकारों ने ग्रंथरचना की शुरुआत अक्षरज्ञान के साथ साथ ही की होगी।

महान ग्रंथकारों की भविष्य की रचनाओं के विषय में किसी को यदि पहले से ही जानकारी हो जाए तो उसका वर्णन बड़ा रसमय, मनोरंजक और बोधप्रद हो सकता है। नवयुवक लेखक जब ग्रंथरचना का श्रीगणेश करता है तब लेखनकला विषयक उसकी धारणाएं काफी हद तक अस्पष्ट और गलत होती हैं। उसकी राय में ग्रंथ का विस्तार और पृष्ठसंख्या ही लेखनपटुत्व का एकमात्र लक्षण होता है। वाक्यों की योग्यता को वह उनकी अर्थ व्यंजकता के हिसाब से नहीं बल्कि उनकी लंबाई से नापता है। वाक्यरचना व्याकरण की दृष्टि से चाहे अशुद्ध ही हो पर जब तक ग्रंथ का वजन अधिक है तब तक युवा लेखकों का मन उसकी गुरुत्वाकर्षण शक्ति से आकर्षित होता रहता है और यही उसकी दृष्टि में श्रेष्ठता का एकमेव मानदंड होता है। शेक्सपियर ने तीस से भी अधिक नाटक लिखे थे और स्कॉट ने उतने ही उपन्यास। इस संख्यातत्व से उसे जितना आश्चर्य होता है उतना उन कृतियों की श्रेष्ठता और रचनासौंदर्य से नहीं। भगवान ने लंबी उम्र दी, तो अपने भेजे की टकसाल में से भी उतने ही ग्रंथ टनाटन टपकाने का संकल्प वह मन ही

मन करता रहता है। उस समय उसकी कल्पना मे यह बात नही आती कि ग्रथ मे भी शरीर की तरह आत्मा का अस्तित्व होना आवश्यक है। ग्रथरचयिताओ की बाल्यावस्था के इस कालखड मे ग्रथ की श्रेष्ठता की परख केवल बाह्येंद्रियो द्वारा होने के कारण उसे लेखनकला का दृष्टिकाल कहा जा सकता है। इस काल मे ग्रथ की लबाई मोटाई और वजन के साथ-साथ उसकी छपाई, जिल्दसाजी और मूल्य की ओर भी नवलेखको का मन आकर्षित होता है। साथ ही समय का अवयव भी बहुत प्रबल रहता है और आशुरचना को बहुत बडा गुण माना जाता है। हमने चार दिन मे अमुक ग्रथ लिख डाला'—आदि बातो से इस कालखड मे बडा गर्व महसूस होता है और उसे अपने आप मे बहुत बडी उपलब्धि माना जाता है। अपना पेट फुलाकर बैल के जितना बना लेने का प्रयत्न करने वाले मेढक की तरह उदीयमान लेखक को भी अपने इस चमत्कार को निसशय और दृष्ट रूप में स्थापित करने के लिए ग्रथ को शीघ्रातिशीघ्र छपवा डालने की जल्दी मचती है।

अल्हड उम्र के लेखको को इस प्रकार की बचकानी हरकतें शायद शोभा दे जाए, पर प्रौढ़ावस्था प्राप्त कर चुकने वाले स्वीकृत और स्थापित लेखको द्वारा इस प्रकार के प्रयत्न होने पर वे हास्यास्पद लगते हैं। इन दिनो मासिक पत्रिकाओ के सपादक लेखको को उनकी रचना की पक्तियो या शब्दो की सख्या के हिसाब से पारिश्रमिक देने लगे हैं। इससे बडे-बडे ख्यातनाम लेखको की रचनाओ मे भी चर्वितचर्वण, सिद्धसाधन, पुनरुक्ति और नि सत्वता जैसे दोषो की बाढ आ गई है और अथगाभीर्य के दर्शन भूसे के ढेर में से यदाकदा हाथ लग जाने वाले अन्नकणो की तरह उत्तरोत्तर दुर्लभ होते जा रहे हैं। एक बार एक सपादक ने इस प्रकार लबाई चौडाई के हिसाब से पारिश्रमिक देने से पहले उन लेखो को हथौडे से ठोक-पीटकर यथासभव ठोस बना लेने का उपक्रम शुरू किया। कहने की आवश्यकता नहीं कि इससे उनमे फिर पहले की तरह कसाव गठाव और अर्थगाभीर्य आ गया। यह प्रयोग अन्य सपादको द्वारा भी किया जाना चाहिए।

इस कालखड मे अध्ययन और अवलोकन द्वारा प्राप्त ज्ञान की पूजी अत्यत सीमित होने पर भी सिखाऊ लेखको को उसकी विपुलता का प्रदर्शन करने की बडी हौंस होती है। हाल ही में प्राप्त किये हुए सस्कृत या अग्रेजी के ज्ञान की शेखी बघारने के लिए वह किसी अधूरे समझे हुए सस्कृत श्लोक का अप्रासगिक

उद्धरण दिया या किसी अंग्रेजी कहावत के अनुवाद को अपने लेख के बीच में जड़ दिया। इस कालखण्ड के वर्णन तो वोग्यिन की सीमा लांघ जाने वाले होते हैं। किसी बाग का वर्णन करना हुआ तो इस अनन्त समस्त वृक्ष, लता, पौध आदि की पूरी सूची दी जाएगी और भोजनप्रसंग के वर्णन में व्यंजनों के ज्ञापन में भी अधिक प्रकारों का उल्लेख होगा। नायिका का नखशिख वर्णन करते समय सुभाषित के भाण्डागार की सारी उपमाओं और चन्द्रमुखी, मृगनयनी, गजगामिनी आदि सखियों को तो इन उपमाओं का अतिरेक के रसियों को भी शरमा देने वाली बना जाएगी। इस काल में ज्ञान के अभाव की पूर्ति अक्सर स्फूर्ति से कर दी जाती है। अपनी अनुभूति और प्रतिभा के बल पर जो कवि या रचना सामने आते हैं पर ज्ञान और चिन्तन की प्रक्रिया भी [illegible]। चिन्ता नष्ट हो जाती है। विद्या और कविता को जिस प्रकार से सम्बद्ध कर रखा है उसी प्रकार ज्ञान के साथ उनकी [illegible] की दुश्मनी भी जन्मजात होती है। कर्ता अधिकरण समान होने से ज्ञान शीघ्र ही नवागन्तुक और कविता के बीच गहरी दोस्ती जम जाती है। इधर ज्ञान के क्षेत्र में पराजित होकर कविता किसी अन्य किसी आश्रय की तलाश में रहती है तो उधर जो और कुछ नहीं लिख पाता वह कम से कम कविता तो लिख ही सकता है इस विचार से प्रेरित होकर सब लोग कविता पर पिल पड़ते हैं। इस प्रक्रिया में वे अपने आप पर या अपनी रचना पर ज्ञान की छाया भी नहीं पड़ने देते, यह अलग से बताने की जरूरत नहीं।

इस कालखण्ड में समग्रता की भी अधिक गुंजाइश नहीं रहती। समग्रता विवेकपूर्ण चुनाव का ही दूसरा नाम है। बहुत से थोथे में से सार सार की बात ग्रहण कर लेना मानसिकता का अनिवार्य लक्षण है। परन्तु जहाँ बुनियादी ज्ञान का ही अभाव हो वहाँ चुनाव का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता। इसलिए इस दौरान लेखकों की रचनाएँ भले बुरे तमाम शब्दों और विचारों को अपने भानमती के पिटारे में सजाए रखती हैं। इस अवस्था में रसादि मनोविकारों का आविष्कार करते समय जितना ध्यान उनकी उत्कटता की ओर दिया जाता है उतना उनकी स्वाभाविकता, प्रासंगिकता और प्रमाणबद्धता की ओर नहीं दिया जाता। रसाविर्भाव के समय पात्र अक्सर क्षुल्लक कारणों को लेकर बड़ी उछलकूद मचाते हैं। चिउंटी मारने के लिए तोप चलाई जाती है और टके की चोरी के लिए फांसी की सजा सुनाई जाती है।

इस दौरान में लेखकों को दूसरों की अपेक्षा अपना ही महत्व अधिक दिखाई देता है। मेरे जैसे कमसिन लेखक ने इतना प्रचंड ग्रंथ लिख डाला! इस एक चमत्कार के सामने उस जीवन के अन्य सारे तथ्य तुच्छ मालूम देते हैं। ये [illegible]मान लेखक अपने साहित्य में सीधे वसीले अपनी आत्मकथा के आरपार प्रसंगों को भी उपयुक्त अतिरंजना के साथ जोड़ते रहते हैं और समाज के कल्याण की भावना से प्रेरित होकर अपने उल्लास अनुभवों को पाठकों के गले मढ़ते रहते हैं। इसी प्रकार 'हमारी राय में इसका यह अर्थ होता है' अथवा 'हर समझदार आदमी यह कबूल करेगा कि' इत्यादि अहंकारदर्शक शब्दों का प्रयोग करने में भी उन्हें कोई संकोच नहीं होता। थोड़ी बहुत शंकाओं की गुंजाइश होने पर इन्हीं शब्दों में थोड़ा सा हेरफेर करके यही बात 'हमारी अल्प बुद्धि के अनुसार'—आदि शब्दों में आरंभ करके कही जा सकती है। इस हालत में इन्हें आत्मगौरव के साथ-साथ नम्रता और शालीनता का श्रेय भी मिल जाता है। प्राचीन कवि या नाटककार सूत्रधार के मुख में अपनी मनमानी प्रशंसा रखवा देते थे। कवि द्वारा निर्मित सूत्रधार अपने जन्मदाता का पितृऋण इस प्रकार की गौरवगाथा से चुका देता। इसमें उन्हें आपत्ति की कोई बात नजर नहीं आती थी।

बाल्यावस्था के इस आरंभिक रोमांस के बाद के समय को शुद्धता का काल कहा जा सकता है। इस दौरान में लेखक वाक्यों को व्याकरण की दृष्टि से अधिकाधिक शुद्ध और काव्यशास्त्र की दृष्टि से अधिकाधिक सुन्दर बनाने का प्रयत्न करता है। पद्य में मात्रादोष या यतिभंग नहीं होने देता। इस काल में व्याकरण, छंदशास्त्र और कोश यही उसके मार्गदर्शक होते हैं।

यहां पहुंचकर लेखक अपने आपको साहित्यकार कहलाना पसंद करता है और पराये मतों का ढोल पीटने में उसे लाज आने लगती है। पहले दूसरों के नाम की आड़ में चाहे जो कपोल कल्पित विचार जड़ देने में जिस प्रकार उसे संकोच नहीं होता था उसी प्रकार अब अपने नाम से दूसरों के विचारों को खपा देने में उसे रत्ती भर झिझक नहीं होती। कुछ ग्रंथकार तो इस सोपान तक पहुंचते पहुंचते अरस्तू-शेक्सपियर या कालिदास भवभूति के विचारों पर भी बड़ी ढिठाई से अपना नाम चस्पां कर देते हैं। यह चोरी पकड़ी जाने पर 'दो भिन्नकालीन लेखकों को एक सी कल्पना सूझने में अनहोनी कुछ भी नहीं है'—आदि तर्कों द्वारा अपनी कल्पना शक्ति का प्रतिपादन करने के लिए वे सदा तत्पर रहते हैं। पूर्वकालीन साहित्य

मनीषियो ने ही उसके ग्रथो मे से विचारो की चोरी की है यह दावा करने की धृष्टता वे नही करते इसे उनका सौजन्य ही कहना होगा। इसके बाद इन ग्रथकारो के ज्ञान और विचारशक्ति का क्रमश विकास होकर वे यदा कदा स्वतत्र विचार भी प्रकट करने लगते हैं। परतु अब भी मार्मिकता और तारतम्य का उतना विकास न हो पाने के कारण विश्वमान्य विचारको के मतो के साथ अपनी अपरिपक्व राय को कधे से कधा मिलाकर खडी करने की हिमाकत उनके हाथों अक्सर होती रहती है।

इस दौरान लेखको के मन मे विवेचनाशक्ति के प्रति जो नया-नया सम्मान उत्पन्न होता है उसका आविर्भाव अक्सर दो रूपो मे होता है। एक आलोचनात्मक लेखो द्वारा परमत का खडन करके, दूसरे स्वतत्र कृतियो द्वारा अपने मत की स्थापना करके। इस कालखड मे भी मानसिक परिपक्वता मौलिक रचना के लिए पर्याप्त न होने के कारण अधिकाश लेखक पहले मार्ग का ही अनुसरण करते हैं। कल्पकता और विवेकबुद्धि का अन्य लेखको मे नितात अभाव है यह सिद्ध करके वह अपने इन अभावो पर या तो पर्दा डाल देते हैं या उनका समर्थन हुआ मानते हैं। इसके अलावा आलोचको को अपने लिए उत्तम पुरुष सर्वनाम के बहुवचन का प्रयोग करने की छूट होने के कारण और दूसरो को भरपूर उपदेश देने का अधिकार होने के कारण अधिकाश लेखको को यही मार्ग अधिक आकर्षक लगता है। कुछ ग्रथकार स्वतत्र लेखन मे सफलता न मिलने के कारण इस मार्ग को स्वीकार करते हैं और पूर्वाश्रम मे आलोचको द्वारा उन पर जो उपहास और अपशब्दो की वर्षा हुई थी उसका अर्क निचोड कर उसे सूद समेत अपने प्रतिस्पर्धियो पर छिडक देते हैं। अपनी विध्वसक और कटु आलोचनाओ को अपने असली नाम से न छपवाने की सावधानी भी वे बरतते हैं जिससे उनके नाम के लत्ते खीचे जाने की सभावना नही रहती। इन उदीयमान आलोचको में जो अधिक धूर्त होते हैं वे निदाग्नि की वर्षा के बीच-बीच में एकाध शीतल स्तुतिकण का भी छिडकाव कर देते हैं। इससे निंदा को यथार्थता की प्रतिष्ठा प्राप्त हो जाती है और आलोचक को निष्पक्ष होने का श्रेय मिल जाता है।

जो हौसले वाले ग्रथकार इस राजमार्ग को छोड कर स्वतत्र ग्रथ रचना के कठिन मार्ग का अवलबन करते हैं उनका ध्येय भी आरभ मे तो बुभुक्षित पाठकों

के सामने चटपटी उपमाओ, रुमानी कल्पनाओ और विवादास्पद विचारो की पत्तल परोसना ही होता है। ये सब बातें प्रासंगिक हैं या नही या उनमे सत्य का अंश कितना है आदि बातो की उन्हें इस समय विशेष परवाह नही रहती। उन्हे किसी असंभाव्य या परस्पर विरोधी अर्थों की व्यंजक बनाने पर तो उनके आनंद की सीमा नही रहती।

इस काल की दूसरी विशेषता यह होती है कि लेखक की अब तक की *आत्मकेंद्रित अहम्मन्यता के कारण अंतर्मुखी होने वाली उसकी वृत्ति अब धीरे-*धीरे बहिर्मुख होने लगती है और उसमे पाठकों को खुश करने का भाव झलकने लगता है। ग्रंथकार और रसिक पाठक का अब तक का स्वामी-सेवक का रिश्ता अब उलटा हो जाता है। इन दिनो उसकी काव्यालंकारशास्त्र मे भी गति हो जाती है। आरंभ मे जो दारोमदार शब्दालंकार पर रहता था वह अब अर्थालंकारो पर आ पडता है और लेखन मे अनेक नये शब्दप्रयोग होने लगते हैं। संक्षेप मे कहे तो अब सुंदर अर्थ को सुंदर भाषा मे व्यक्त करने के लिए उसका मन छटपटाने लगता है और इसी को वह अपने कर्तव्य की परमावधि मान लेता है।

जिन लेखको को लेखनकला के बल पर पाठको का मनोरंजन करना नही आता वे लोग और जो उसमे प्रकार से ऐसा कर सकते हैं वे भी कभी-कभी इस जनरंजन-कार्य को विषय के निरूपण द्वारा न करते हुए पाठको के अहम को पोषित करके करते हैं। पाठक जिस वर्ग या जाति के हो उसकी प्रशंसा करके, उस वर्ग के विचारो और निहित स्वार्थों का समर्थन करके, एवम उनके लिए 'सुधी', 'सुज्ञ' आदि विशेषणो का प्रयोग करने से यह साध्य आसानी से प्राप्त हो जाता है। *पाठको को लेख मे अपने ही मतो का प्रतिबिंब दिखाई देने लगता है* जो क्रमश उनकी प्रसन्नता का मूल कारण बन बैठता है। 'अन्य देशो की तुलना मे अपना देश श्रेष्ठ है', 'वर्तमान की अपेक्षा हमारा अतीत कहीं अधिक गौरवमय था' आदि सुहाने मतो का प्रतिपादन उनको कुंठाओ और पूर्वग्रहो को धक्का पहुचाए *बिना उनकी आत्मगौरव विषयक उच्च धारणाओ का पोषण करता है।* पाठक लेखको की तारीफ करके इस ऋण को चुका देते हैं। इससे "अहो रूपम् अहो ध्वनि" का एक दुष्टचक्र अवश्य उत्पन्न हो जाता है, पर लेखक और पाठक दोनो खुश रहते हैं और किसी को किसी से शिकायत की गुंजाइश नही रहती।

इसके बाद के सर्जनात्मक अंतिम स्तर को स याकवण काल कहा जा सकता है। इस दौरान में ग्रंथकार की ओर से भाषा या विचारों में लालित्य और माधुर्य की उपेक्षा होती हो सो बात नहीं परंतु अब उसकी नजर सौन्दर्य के साथ सत्य पर भी उतना ही महत्त्व देने लगती है। सत्य एवं सौन्दर्यमय आविष्करण और सत्य की सत्यनिष्ठ निष्पत्ति उसके प्रधान लक्षण हो उठते हैं और इन दोनों के सम्मिलित प्रयोग में उसकी कृतियों को चिरस्थायित्व प्राप्त होता है। इसी कसौटी पर खरे उतरने के कारण ही कालिदास, शेक्सपियर, गेटे, मोलियर, सर्वान्टीज और टैगोर सरीखे विभिन्न देशीय साहित्य मनीषी वाङ्मयोपासना के सर्वोच्च सोपान पर विराजमान रहे हैं। परिपक्वता प्राप्त करने को उत्सुक किसी भी लेखक का ध्येय स्वभावतः हो जाता है कि इन्हें गुरुस्थान पर मान कर उनके आदर्शों का यथासंभव अनुसरण करे।

प्रत्येक प्रसिद्ध ग्रंथकार के लेखन कौशल के विकास में उपरोक्त अवस्थाओं के दर्शन होते हैं। प्रथम अवस्था में ग्रंथकार की दृष्टि सत्य या सौन्दर्य, दोनों में से एक की भी ओर न होकर केवल विस्तार की ओर रहती है और वह अपनी इस तृष्णा में ही मगन रहता है। दूसरी अवस्था में गद्य साधन के रूप में साहित्य का उपयोग न होकर केवल मनोरंजन प्रधान उद्देश्य हो जाता है। सत्य से वियुक्त रहने के कारण साहित्यकार की स्वस्थ दृष्टि अब भी पनप नहीं पाती। तीसरी अवस्था में पहुँच कर रही चित्तवृत्ति सौन्दर्य के साथ सत्य की ओर भी मुड़ती है। सत्यम् ब्रूयात् प्रियम् ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम् वाली उक्ति नीतिशास्त्र की अपेक्षा साहित्यशास्त्र में ही अधिक चरितार्थ होती है। इन तीन अवस्थाओं को लेखनकला का शैशव, तारुण्य और परिणतावस्था कहा जा सकता है या तामस, राजस और सात्विक आदि उपाधियाँ क्रम से भी उन्हें दी जा सकती हैं। प्रत्येक प्रसिद्ध लेखक को अपनी सामर्थ्यानुसार कम या अधिक समय तक इन तीनों अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है। किसी को परिणतावस्था बहुत शीघ्र प्राप्त हो जाती है जबकि कुछ आखिर तक पूर्वावस्थाओं में ही भटकते रहते हैं। कुछ ग्रंथकार भाषा के संबंध में प्रथमावस्था में पर विचारों के क्षेत्र में परिणतावस्था में पाए जाते हैं जबकि कुछ के संबंध में यह क्रम उलटा दिखाई देता है। यह भेद व्यक्ति विशेष की नैसर्गिक शक्तियों में अंतर होने के कारण दिखाई देता है।

इन तीनो कालखडो के बाद की भी एक अवस्था है। परतु उस लेखक के देहावमान काल के अतिरिक्त कुछ नहीं कहा जा सकता। उस काल का सबध इस लेख स नही बल्कि विधाता के लेख के साथ होने के कारण यहा उसकी चर्चा करने का प्रयोजन नहीं। एक बार परिणतावस्था प्राप्त कर लेने के बाद ग्रथकार के शरीर पर काल की सत्ता भले ही चल जाए उसके यश पर नहीं चल सकती। यह सिद्धान्त आज तक अबाधित रूप स चला आ रहा है।

20 हमारे घरेलू खेल

केवल दिलबहलाव की खातिर या किसी नमित्तिक कारण से की जाने वाली छोटी मोटी बातें भी कभी-कभी करने वाले के सिर पर सवार होकर उसके भावी चरित्र की नियामक बन बैठती हैं यह अनुभवसिद्ध बात है। औषधि के बहाने से किया गया मद्यपान कालांतर मे व्यसन बन जाता है, महज मजाक के तौर पर की जाने वाली किसी की नकल जीवन भर की खसलत बन बैठती है, केवल मन बहलाव के लिए किए हुए अंगविक्षेप लकड़ियों तक पीछा नहीं छोड़ते और क्षणिक मनोरंजन के तौर पर देखे हुए नाटक की अभिनेत्री प्रेक्षक की अर्धांगिनी बनकर जीवन भर के लिए उस पर अधिकार जमा बैठती है। दिलबहलाव के लिए खेले जाने वाले खेलों में भी अकसर यही खतरा रहता है। आरंभ मे अवकाश के समय खेले जाने वाले खेल समय बीतते खिलाड़ी की गर्दन दबाचकर उस पर एकछत्र शासन स्थापित कर लेते हैं। शीघ्र ही खिलाड़ी खुद खेल बन जाता है और जीवन के महत्वपूर्ण कर्तव्यों को बिसार कर अपना सारा समय उन्हीं की गुलामी मे बिताने लगता है। इस प्रकार खेलों की धुन म डूबे हुए लोग कैसे बड़े योग्य और कार्यक्षम होते हुए भी, व्यसन के कारण अकर्मण्य और निठल्ले साबित होते हैं। ड्योढ़ी पर सचमुच के हाथी घोड़े बांधने की क्षमता रखने वाले वीर पुरुष शतरंज के नशे मे डूब कर लकड़ी की चतुरंग सेना नचाने म ही कृतार्थता अनुभव करने लगते हैं और सचमुच के राजा रानियों को उंगली के इशारे पर नचा सकने की योग्यता रखने वाले धुरंधर ताश के बेगम बादशाहों की जोड़ियां लगाने में ही जीवन की सार्थकता मान बैठते हैं।

मेरा क्रिकेट खेलने का उत्साह कुछ ही दिनों म ठंडा क्यों पड़ गया, इसका वर्णन पहले किया जा चुका है। उसके कुछ समय बाद मुझे अपना हस्तकौशल

टेनिस के क्षेत्र में आजमाने की इच्छा हुई और मैं नियमित रूप से टेनिस कोट जाने लगा। अनुभवी लोगों का कहना है कि किसी भी कला में पारंगत होना हो, तो उस क्षेत्र के विख्यात लोगों से संबंध रखना चाहिए और खेल हमेशा अपने सवाये के साथ खेलना चाहिए। इस सिद्धांत का अनुयायी होने के कारण मैंने केवल कुशल खिलाड़ियों के साथ खेलने की परिपाटी रखी। परंतु यह प्रथा दो एक महीने तक चलती रहने पर भी मेरे खेल में प्रगति का कोई लक्षण दिखाई नहीं दिया। इसके बहुत से कारण थे। पहले तो यह कि प्रतिस्पर्धी द्वारा पीटी हुई गेंद मेरी ओर इतनी तेजी से आती थी कि वह अक्सर मुझे क्षेत्र के बाहर जाने के बाद दिखाई देती। इक्का दुक्का गेंद कभी पहले दिखाई दे जाती तो उसकी रफ्तार देखकर मुझे उस हाथ लगाने की हिम्मत नहीं होती थी। पूर्वानुभव का स्मरण ताजा था और गेंद को पीटने की धुन में कहीं उसके द्वारा मेरी ही कपाल-क्रिया न हो जाए यह [illegible] मन में बुरी तरह समा गयी थी। यह माना कि टेनिस की गेंद क्रिकेट की गेंद की तुलना में बहुत नम होती है। पर मेरी देह की मुलायमियत को देखते हुए वह वज्र से कम कठोर नहीं थी। मनुष्य जन्म कोई बार-बार तो मिलता नहीं, और शरीर बनाने की धुन में उसे गवा बैठने की मेरी कतई मरजी नहीं थी। इसलिए सामने से आने वाली गेंद से मैं विशेष छेड़छाड़ करने की कोशिश नहीं करता था। कोई गेंद यदि हाथ धोकर ही पीछे पड़ जाती, तो मैं उसके रास्ते से हटकर उसे सभ्यतापूर्वक आगे बढ़ जाने देता। गेंद रास्ते से हट जाने का भी मौका न दे, तब तो मजबूरी में उसका रैकिट से मुकाबला करना ही पड़ता था। ऐसे प्रसंगों पर भी स्थिति अक्सर यह होती थी कि मैं कहीं तो रैकिट कहीं, तो गेंद कहीं। गेंद का निशाना मेरे निशाने से कहीं अधिक अचूक होता था। गेंद ने मेरी दिशा में मेल गाड़ी की रफ्तार से आकर शरीर का कोई न कोई अंग कुछ दिनों के लिए निकम्मा न कर दिया हो, ऐसा शायद ही कोई दिन बीतता हो। रैकिट के बजाय शरीर से खेलने का नियम होता तो मुझे विश्वास है कि एक भी गेंद मेरे चंगुल से (या मेरी देहयष्टि गेंद के चंगुल से) न छूटी होती। पर ऐसा कोई नियम न होने के कारण खेलते समय श्रमपरिहारार्थ शरीर की चंपी भी होती रहती थी। गेंद मेरे शरीर पर प्रहार करती तब देखने वाले निर्लज्जता से खिखियाने लगते थे। इससे मेरी खिसियाहट और भी भड़क उठती थी।

आखिर लोगों को मुफ्त में तमाशा दिखाने के बजाय मैंने अपनी जोड़ के खिलाड़ियों के साथ खेलने का निश्चय किया। जिसके चेहरे पर से मक्खी भी नहीं उड़ती थी ऐसे एक निरुपद्रवी खिलाड़ी को चुनकर मैंने जीवन के क्रीडापर्व में नया अध्याय शुरू किया। अब तो पासा पलट गया। प्रतिस्पर्धी को गेंद मेरी ओर बड़े इतमीनान से आने लगी और उसे पीटने का पैंतरा जमाने के लिए मुझे पर्याप्त समय मिलने लगा। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि अब प्रत्येक गेंद से रैकिट का स्पर्श होने लगा था। यह देखकर मेरे आनन्द की सीमा न रही। अब यह बात अलग है कि मेरा चोटाई हुई हर गेंद प्रतिस्पर्धी के क्षेत्र में ही गिरे इसकी कोई गारंटी नहीं थी। कभी वह बीच की जाली में ही अटक जाती तो कभी तेजी से चक्कर घिन्नी खा कर मेरे पाले के इर्द-गिर्द ही मँडराती रहती। कभी वह रेस के घोड़े की तरह विरोधी के क्षेत्र की सीमाएँ पार करके दूर जा गिरती तो कभी ऊपर आकाश में विहार करके मेरी चाँद पर आ टपकती। सौ में से पचास बार वह नेट के बाजुओं से समांतर रेखा में प्रयाण करने के बजाय टेढ़ी-तिरछी दिशाओं में दौड़ती। मैं भी सोचता कि जगदीश्वर की कृपा से जब हमारे संचार के लिए इस विशाल धरती की दसों दिशाएँ खुली हैं तो उस बेचारी गेंद पर ही अपने आपको क्षेत्र की सीमाओं में मर्यादित रखने की बंदिश क्यों लगायी जाए! कभी-कभी तो उसकी यात्रा की दिशा क्षेत्र से नब्बे अंश का कोण बनाकर होती। ऐसे समय मेरे मन में विचार आता कि किसी यांत्रिक चमत्कार द्वारा पूरे क्षेत्र को गेंद की दिशा में घुमाया जा सके तो कितना अच्छा हो! पर विज्ञान की कितनी ही प्रगति क्यों न हो जाए, वह हमारे मन की कल्पनाओं के साथ थोड़े ही दौड़ लगा सकता है। परिणामस्वरूप गेंद के स्वैर संचार को वीतराग वृत्ति से देखते रहने के अलावा कोई चारा नहीं था। मन में एक ही बात का संतोष था कि चलो, पहले जहाँ गेंद और रैकिट की मुलाकात दिनों तक नहीं होती थी, वहाँ अब दिन में कई बार होने लगी है।

हमारी स्वाभिमानी गेंद ने खेल के क्षेत्र की सीमाओं के बीच जहाँ सौम्यता का बर्ताव रखा था वहाँ इर्दगिर्द के इलाके में उसने कहर मचा रखा था। मेरे द्वारा पीटी हुई एक गेंद ने किसी प्रेक्षक की पगड़ी उछाल दी थी तो दूसरी ने किसी की ऐनक फोड़ दी, और तीसरी तो ऊपर उछल कर, आश्चर्य से मुँह बाए तमाशा देखने वाले किसी प्रेक्षक के मुँह में ऐसी फिट बैठ गयी कि उसे शल्यक्रिया

द्वारा बाहर निकलवाना पड़ा। किसी प्रेक्षक ने मुंह में एक दांत सलामत होने के बहाने नकली बत्तीसी नहीं बनवायी थी। हमारी एक गेंद ने उसके एकाकी दांत को स्थानभ्रष्ट करके उसे इस उलझन से मुक्ति दिला दी। इस प्रकार किसी की बत्तीसी किसी की कनपटी किसी की पगड़ी तो किसी की पसली को स्थान भ्रष्ट करते हुए गेंद स्वरसंचार करने लगी। शीघ्र ही हमारे टेनिस कोर्ट के इर्द गिर्द मील भर के दायरे में लोगों का फड़कना भी मुश्किल हो गया। माताएं शरारती बच्चों को हमारी गेंद का डर दिखाने लगीं और पानी न पीने वाले घोड़ों के सवार अपने अड़ियल चौपायों से "पानी में क्या तुझे टेनिस की गेंद दिखाई दे रही है, जो तुझे खा जाएगी?"—जैसे इतिहासप्रसिद्ध प्रश्न पूछने लगे।

इस प्रकार हमारे मेल की वजह से इर्दगिर्द की पचकोशी के निवासियों को तो पर्याप्त व्यायाम मिलने लगा, पर हम उससे विशेष लाभ नहीं हुआ। खेलते समय न तो कभी हाथ पांव की विशेष हरकत हुई, न कभी पसीने की एक बूंद गिरी। शीघ्र ही मैं इस नतीजे पर पहुंचा कि खेलने की अपेक्षा प्रेक्षक बनकर बेंच पर बैठने से ही अधिक व्यायाम मिलता है। कुशल खिलाड़ी द्वारा लगाए गए हर फटके के साथ प्रेक्षकों को गर्दन भी दाएं बाएं घुमानी पड़ती है। इसमें ग्रीवा का एक एक मनका चुस्त हो जाता है। मैंने तुरंत इस पर अमल किया और टेनिस खेलने के बजाय अच्छे खिलाड़ियों का खेल देखना शुरू किया। शीघ्र ही मेरी इमतबानतुमा गर्दन सुराहीदार हो उठी और तीन ठुड्डियों में से दो गायब होकर एक ही बची। इस परिवर्तन को देखकर एक मित्र ने टिप्पणी की "क्या बात है भाई! पहले तो तुम शतरंज के हाथी जैसे दिखाई देते थे, अब ऊंट जैसे कैसे हो गए?"

बस, उनका यह फिकरा ही हमारे पतन का कारण बन गया। किसी क्षुद्र बात को लेकर किसी व्यक्ति या प्रजा के भविष्य की पूरी दिशा बदल गयी हो इसके अनेक उदाहरण इतिहास में मिलते हैं। कहते हैं कि मिस्र की एक रानी की नाक आवश्यकता से अधिक सीधी होने के कारण भूमध्य सागर के इर्दगिर्द के प्रदेश का समूचा इतिहास बदल गया था। कुछ इसी प्रकार का परिवर्तन हमारे जीवन में इस ऊंटघोड़े के जुमले ने कर दिया। शतरंज का खेल आखिर है किस चिड़िया का नाम यह जानने की इच्छा तभी से मेरे मन में जगी। मैं तुरंत बाजार गया और डेढ़ दो रुपये में हाथी घोड़े, ऊंट प्यादे और राजा वजीर की सेना मय उनके

रणक्षेत्र के खरीद लाया। इस सेना के पड़ाव में तंबू खेमे या रसद-पानी का कोई खर्च था ही नहीं। अत मैंने नियमित रूप से बड़नाना के साथ खेलना शुरू कर दिया। खेल समाप्त होने पर हाथी की सूंड वजीर की कमर से लपेट कर और ऊंट की गरदन राजा के गले में डाल कर उन्हें बिसात में ही लपेट कर रखा जा सकता था। इस पर भी किसी मोहरे ने शिकायत की हो, ऐसा कभी नहीं हुआ। एक बार तो भोजन की पंगत में अगरबत्तियां जलाने के लिए अगरदान कम पड़ जाने पर मैंने मोहरों के सिर पर एक-एक छेद बना दिया और उसमें अगरबत्तियां खोंस दीं। फिर भी किसी मुहरे को कोई आपत्ति नहीं हुई। इतना ही नहीं, हाथी ने अपनी सूंड या ऊंट ने अपनी गरदन लंबी करके भोजन की सामग्री पार करने का भी कोई प्रयत्न नहीं किया। खेल के दौरान काले और सफेद मुहरे एक-दूसरे को जानी दुश्मन मानकर बर्ताव करते हैं। परंतु खेल समाप्त होने के बाद वे एक-दूसरे के साथ इतने मिलजुल कर रहते हैं कि उनकी शांतिप्रियता से महाभारत के योद्धा भी सबक सीख सकते थे।

हाथी सीधा चलता है और ऊंट टेढ़ा। एक चाल में वे कितने भी घर चल सकते हैं जबकि घोड़ा सिर्फ ढाई घर चलता है। विभिन्न मुहरों की चाल के ये नियम आरंभ में तो मुझे व्याकरण या ग्रहगति के नियमों से भी अधिक जटिल मालूम देते थे, परंतु कुछ दिन के परिचय के बाद वे याद हो गए। बाद में तो यहां तक नौबत आई कि सचमुच का ऊंट यदि कहीं सीधा चलता हुआ दिखाई देता तो उसके इस स्वधर्मत्याग के प्रति मुझे बड़ा क्रोध आता था और हाडमास का हाथी कहीं गलती से भी टेढ़ा चलता हुआ दिखाई देता तो उसके इस वाममार्गी बर्ताव का मैं जोरदार निषेध करता। एक बार किसी गली में से जाते समय मुझे सामने से एक ऊंट आता हुआ दिखाई दिया। मैंने सोचा कि यह तो अपने स्वभावधर्म के अनुसार टेढ़ा ही जाएगा। इसलिए मैं रास्ते में हटा नहीं। मेरी इस गफलत के लिए मुझे देहांत प्रायश्चित मिलते मिलते बचा। किसी तरह जान बचाकर एक ओर हुआ तो पीछे से एक हाथी आता हुआ दिखाई दिया। अब जान की खैर नहीं यह सोचकर मैं पास की एक गली में घुस गया। इससे हाथी के चंगुल से तो बच गया परंतु सच्चा बचाव तो ऊंट की लात से हुआ क्योंकि हटते समय उसकी टांग मेरे ऊपर पड़ने ही वाली ही थी। गर्दन डेढ़ मंजिल की ऊंचाई पर होने के कारण ऊंट को यह सब कुछ मालूम भी नहीं पड़ा।

ऊट हाथियो को उगली के इशारे पर नचाने वाले एक मुझ जैसे खिलाडी पर उन्ही की राक्षसी टागो के नीचे कुचले जाने का प्रसग आए, इसे गर्दिश के चक्कर के सिवा और क्या कहा जा सकता है ? चलो ! ईश्वरेच्छा बलीयसी।

शीघ्र ही खेल का हम पर इस हद तक खब्त सवार हो गया कि रोजमर्रा के काम करते समय भी उसकी याद सताने लगी और शतरज के मोहरे सामने न होने पर बडा अजीब-अजीब सा लगने लगा। भोजन के समय तो इस कमी को मैंने मोहरो का उपयोग अगरदान के रूप मे कर के पूरा कर लिया था। अब दफ्तर जाते समय भी कागजो पर पेपरवेट रखने के बहाने दो चार हाथी जेब म डाल कर ले जाने लगा। इतना ही नही, सोते समय भी हाथी की सूड या ऊट की गरदन पर सिर टिकाये बिना मुझे नीद ही नही आती थी। इसम आश्चय की कोई बात नही है। यह तो अपना-अपना लगाव है। 'इड्रोक्लिीज और शेर' की कहानी जिन्होने पढी होगी उनकी समझ मे मेरी बात तुरत आ जाएगी। एक दिन तो दुघटना होते होते बची। उस रोज काफी रात बीते एक चूहा मेरे एक ऊट और दो हाथियो का घसीट कर बिल मे लिए जा रहा था। वह तो अच्छा हुआ कि मेरी नजर पड गई। मैंने वही से लेटे-लेटे ही उस पर घोडा फेंक कर मारा। वरना वह पाजी मेरे बचे हुए ऊट हाथियो को भी खीच कर ले जाता। उस दिन से ऊट या हाथी का तकिया बना कर सोने की आदत मुझे छोड देनी पडी।

धीरे धीरे शतरज ने खेल न हम पर इस हद तक कब्जा जमा लिया कि हम खाने पीने की भी सुधबुध न रही। शाम के खाने को रात के बारह बारह, दो-दो बजने लग। कभी-कभी तो अगले रोज का शाम का खाना दूसरे दिन सुबह नौ-दस बजे तक खाया जाता। ऐसे मौको पर मैं पत्नी को सुनाता, 'देर से खाना खाने की तुम रोज शिकायत करती हो न ? अब आज जरा घडी देख लो। अभी दस भी नही बजे।' इस प्रकार सुबह दस बजे का भोजन शाम को आठ बजे और शाम के आठ बजे का खाना दूसरे दिन सुबह दस बजे होने लगा। श्रीमतीजी ने भी इसस सतोप मानकर शिकायत करना छोड दिया।

खेल मे एक बार मग्न हो जाने पर इद गिद की दुनिया तो डूबी हुई ही समझिये। एक बार खेलते समय मैंने सुघनी की चुटकी को कतरी हुई सुपारी समझकर मुह मे डाल लिया और सुपारी के बुरादे को नास समझकर नाक मे चढा लिया। दूसरी बार मैंने ऊट को बीडी समझकर होठो पर जमाया और दियासलाई

स उसकी लबी गरदन को सुलगाकर घटो तक कश खीचता रहा। पाडूतात्या ने एक बार सुपारी समझकर पूरा हाथी मुह म डाल लिया और वह दातो स चबाया नही गया तो सरौते स उसकी बारीक बुरनी करके फाक गए। परतु इन सबस ऊचे प्रकार का करिश्मा तो बहूनाना ने कर दिखाया। एक बार हम दोना खल रहे थे। पीने के पानी का गिलास पास ही रखा था। उन्हे कोई जरूरी पत्र लिखना था इसलिए दवात भी पास म ही रखी हुई थी। सारा ध्यान खेल म ही लगा होने के कारण चिट्ठी उन्होने पानी के गिलास म कलम डुबो डुबोकर लिखी और झट स लिफाफा बद करके डाक म छुडवा दी। इसके बाद प्यास लगी तो दवात को मुह से लगाकर पानी के स्थान पर गटागट स्याही पी गए। इसका उन के शरीर पर ऐसा विलक्षण परिणाम हुआ कि कुछ ही दिनो म उनके सफेद बाल काले हो गए और शरीर से पसीना भी काला निकलने लगा। सुबह सफेद कुरता पहनकर दफ्तर जाते तो शाम को लौटते वक्त कुरता काले आलपाका सा दिखाई देने लगता।

हमारे व्यसन को इस प्रकार मर्यादा से बाहर बढा हुआ देखकर हमारे सबधियो को बडी चिता हुई। सर्वानुमत से ऐसा निश्चय हुआ कि इस व्यसन को छुडवाने के लिए हमे कोई दूसरी आदत लगायी जाए। उन दिनो कुछ ऐसी धारणा प्रचलित थी कि एक व्यसन से छुटकारा पाने के लिए कोई दूसरी आदत डालना अनिवार्य है। पाडूतात्या के सबध मे इस नियम की सचाई भी एक बार प्रमाणित हो चुकी थी। उन्हे किसी जमाने म बीडी पीने का बेहद शौक था। परतु गाजा पीने की आदत डाली जाने के बाद बीडी का व्यसन बिलकुल छूट गया था। अत मित्रो ने चौसर का शौक लगाने का निश्चय किया। आरभ म तो पासो के दाव मे पौ बारह और नौ दो ग्यारह छह तीन दो और पाच्चार नो आदि सख्याशास्त्र के जटिल नियमा का बोलबाला देखकर शतरज का शौक दूर होना तो दरकिनार हाथी दात के काली बूदो वाले सफेद पासा को देख-दखकर हम शतरज की याद और भी अधिक सताने लगी। परतु इस पर उपाय के रूप मे पासो के स्थान पर कौडियो की योजना की गई और हमारी गाडी धडल्ले स चौपड के राजमाग पर चल निकली।

शीघ्र ही गोटिया बिसात पारा भरी हुई कौडिया, आदि सामग्री एकत्र करके हमे चौपड की विधिवत् दीक्षा दी गई।। चौपड के खेल मे जब तक दस या

पच्चीस का दाव न पड़े, तब तक के सारे दाव गणेशजी को नवद्य के रूप म अर्पित करने की प्रथा है। सकट के समय स्वग के देवता भक्त की रक्षा क लिए दौड़े आते हैं इस बात का जितना परिचय चौसर क खेल स मिलता ह उतना शायद अन्यत्र नहीं। आज तक विविध देशा क खिलाड़िया द्वारा देवता का अर्पण किए हुए इन आरभिक दावो का जोड लगाया जाए तो सख्या बेशक करोडा म पहुच जाएगी। इन भक्ता म सभी स्वाथपरायण होत हैं और आरभ क मजबूरन देने पड़ने वाले दावो के अतिरिक्त देवता को कुछ नही देते यह मानने का कोई कारण नहीं। मुझे जब जब लगातार तीन बार दस या पचीस का दाव पडता तब मैं बड़े भक्तिभाव स इनम स एक दाव देवता को समर्पित करने का प्रस्ताव रखता। पर कलियुग के लोग इतने नास्तिक हो गये हैं कि अन्य खिलाड़ी मुझे ऐसा करने न देते। और असूया से तीनो दावो को जला हुआ या खारिज घोषित कर देते।

अन्य खेलो की तरह चौसर म भी मेरे हाथ को यश कम ही मिला। मेरा दाव लगता ही न हो, सो बात नही। बात सिर्फ इतनी थी कि जब जिस दाव की जरूरत होती, तब वह कभी नही पडता था। गोटा को बिसात पर बिठाने के लिए और उनकी प्रगति साधने के लिए आरभ म पचीस छत्तीस आदि भारी दावो की जरूरत पडती ह। उस समय मेरे दो या तीन पडते। इसके बाद हमारी गोटें जब पक जाती और उन्ह घर म जाने के लिए दो चार ही की जरूरत होती, या विपक्षिया की पकी हुई गोटो को मारने क लिए दो या तीन की आवश्यकता होती तब मेरे हाथो दस या पचीस की आतिशबाजी शुरू हो जाती। सताप की बात सिर्फ इतनी थी कि इतनी मेहनत स खड़ी हुई बुजिया टूट न पडे इसलिए बीच-बीच मे कभी कभी छह या बारह का सहारा मिल जाता था।

मनचाहा दाव पडने के लिए मैंने तरह तरह के टोने-टोटके भी आजमाये। दस की आवश्यकता होने पर सडक पर जाकर हाथो म मिट्टी मल आता। पचीस का दाव चाहिए तब मुट्ठी म कौडिया को जमाकर धीरे स छोडता। दो या तीन की आवश्यकता होने पर उन्ह दोनो हाथो स खनखनाकर दूर तक फेंकता। तीन या चार की जरूरत पडने पर कौडिया फेंकते समय हथली को उनके नीचे स धीरे स सरका लेता। परतु ये सारी तरकीबें अकसर नाकामयाब रहती। मन म साधा हुआ दाव कभी पडता न हो, सो बात भी नही। घर गिनने म मुझसे भूल हुई हो तब अदबदाकर वाछित दाव पडता। परतु शीघ्र ही आवश्यकता स एक कम

या एक अधिक प्रमाणित होकर मेरे ऊपर आई हुई खुशी से पागल होने की आपत्ति टल जाती।

दाव लाने में मेरी ऐसी स्वतंत्र वृत्ति देखकर अन्य खिलाड़ी मुझे अपना साथी बनाने में पहले प्रच्छन्न रूप से और बाद में खुल्लमखुल्ला कतराने लगे। होमर का जन्मस्थान होने का गौरव प्राप्त करने के लिए यूनान के शहरों में जिस प्रकार आपस में युद्ध होते रहते थे उसी प्रकार मुझे अपना साथी बनाना टालने के लिए हमारी मित्रमंडली में वादविवाद होने लगे। एक बार तो इस बात को लेकर इतना जोरदार झगड़ा हुआ कि हमारा पक्ष अपनी पकी हुई गोटियाँ और विरोधी पक्ष अपनी मोयी हुई गोटियाँ एक दूसरे पर फेंकने लगा। विपक्षियों की एक गोट बावली होकर मार्ग में मिलने वाली हर गोट का संहार करती हुई भूत की तरह ड पारा संचार कर रही थी। उसे हाथ में लेने वाले खिलाड़ी के मन पर तो तुरंत पिशाच सवार हो गया। उसे शांत करने के काम में दो या तीन के स्वल्प नैवेद्य के कारण रूठे हुए गणेशजी भी कोई सहायता करने को तैयार नहीं हुए। मेरे कारण होने वाले इस अनर्थ को देखकर मैंने जीवन में फिर कभी कौड़ियों को हाथ भी न लगाने की प्रतिज्ञा की। खेल के अलावा अन्य किसी काम के लिए कौड़ियाँ हाथ में लेनी पड़ें तो इस प्रतिज्ञा का भंग नहीं होगा, यह यहीं पर स्पष्ट कर देना आवश्यक है।

इसके बाद हमने ताश खेलना शुरू करके राजा रानियों की जोड़ियाँ जमाने में मन लगाया। शीघ्र ही मालूम दिया कि जितना वैविध्य ताश के खेलों में है उतना अन्य किसी खेल में उसके उपकरणों की विविधता के बावजूद भी नहीं। कभी कभी पत्तों का गत्ता खुरदुरा और रूक्ष होने पर भी वे एक दूसरे के सहवास से दूर होना नहीं चाहते जबकि कभी-कभी अत्यंत स्निग्ध और चिकने होने पर भी ये एक-दूसरे के साथ रहना नहीं चाहते और बर्फ पर फिसलने वाले आदमी की तरह हाथ लगाते ही फिसलने लगते हैं। कुछ की पीठ पर की नक्काशी सादी और सफाईदार होती है जबकि कुछ का पृष्ठभाग कोड़ों से पिटी हुई पीठ पर उभरने वाले निशानों की तरह बेतरतीब और ऊबड़ खाबड़ होता है। कुछ ताशों की किनारी सुनहरी होती है तो कुछ की सादी सफेद। कुछ की पीठ पर की चित्रकारी इतनी सुन्दर होती है कि उन्हें चलना आवश्यक होने पर भी उन्हें फेंकने का जी नहीं चाहता जबकि कुछ के चित्र इतने बदसूरत होते हैं कि उन्हें हाथ में

रखना अच्छा नहीं लगता और खेल की दृष्टि से हानिप्रद होने पर भी उन्हें फेंक दिया जाता है। तस्वीर वाले पत्तों में स्त्री पुरुषों के मुंह तो दो दो होते हैं पर पावों का पता नहीं लगता। इन बिना पावों के दुमुंहे पत्तों को देखकर पहले तो मुझे डर लगता था। उनकी वेशभूषा भी बहुत विचित्र होती। कुछ का पहनावा महाराष्ट्री तो कुछ का मद्रासी। कुछ मलयाली जैसे तो बाकी मुसलमान या साहबों की जाति के दिखाई देते हैं। पुराणमताभिमानी बड़ेनाना तो इन विधर्मी लोगों के चित्रों को डरते डरते ही हाथ में लेते थे और खेल समाप्त होने पर अभ्यंग स्नान करते थे। इस हालत में किसी विधर्मी बेगम का हिंदू राजा द्वारा अपहरण या हिंदू रानी का परधर्मीय बादशाह द्वारा उड़ाया जाना तो उन्हें अकबर के जमाने में होने वाले अंतर्जातीय विवाहों के जैसा निंदनीय लगता था। नाना के इन सिद्धांतों में विपक्षियों को बहुत फायदा होता था क्योंकि ऐसा भ्रष्टाचार होता देखने की अपेक्षा वे बाजी हार जाना अधिक पसंद करते थे और असवर्ण राजा रानी की जोड़ी हाथ में आने पर उनमें से एक को वे आवश्यकता न होने पर भी फेंक देते थे।

इस अनेकविध बाह्य वैचित्र्य के साथ ताश के खेलों का वैविध्य जुड़ने पर तो मन उलझन से भर उठता है। कुछ खेलों में ताश की चार जोड़ियां आवश्यक होती हैं जबकि कुछ में एक से ही काम चल जाता है और कई खेल तो बीस-पचीस पत्तों की सहायता से भी खेले जा सकते हैं। कुछ खेलों में पूरी गड्डी पहले से बंट जाती है जबकि कुछ में आधी गड्डी बांटकर बाकी को बीच में रख दिया जाता है और हर दांव में एक एक ताश उठाया जाता है। कुछ खेलों में दायें से बायें और कुछ में बायीं ओर से दाहिनी तरफ ताश बंटते हैं। यह सब बातें ध्यान में रखने के लिए काफी अभ्यास की जरूरत पड़ती है। कभी कभी मेरे मन में विचार आता कि चलो, बायें हाथ से या पावों से ताश बांटने का कोई खेल नहीं है, यही गनीमत है। पर कुछ और कहा नहीं जा सकता। कुछ खेलों में शायद यह प्रथा भी शुरू हो जाए। पत्तों के मूल्य या उच्च-नीच भाव में भी अंतर होता है। नहले का स्थान अक्सर दहले के नीचे होता है। पर कुछ खेलों में वह इक्के या दुक्के पर बाकी सब पत्तों से श्रेष्ठ माना जाता है। बड़े बड़े मुछंदर बादशाह उसे कोर्निश करते हैं और पर्दानशीन बेगम उसे मुजरा करती हैं। कुछ खेलों में तुरुप बोलकर किसी एक रंग का महत्व बढ़ा दिया जाता है जबकि यहीं चातुर्वर्ण्य को एक

समान माना जाता है। कुछ खेलों में राजा रानी जैसे भारी पत्ते आना श्रेयस्कर होता है जबकि कुछ में दुक्की तिक्की जैसे नगण्य दलितों का होना इष्ट माना जाता है। कुछ खेलों में अधिक वजन के पत्तों द्वारा कम कीमत के पत्तों को जीता जा सकता है जबकि कुछ में अलग-अलग मूल्य के पत्ते जमा कर गुणसंख्या बढ़ाने को महत्व दिया जाता है। कुछ खेलों में हाथ में पत्तों की संख्या कम होना श्रेयस्कर होता है तो कुछ में अधिक-से अधिक होने पर विजयप्राप्ति होती है। कुछ खेल पत्तों को सामने खुले रखकर खेले जाते हैं तो कुछ में हाथ के पत्तों को अधिक से अधिक गुप्त रखने का महत्व है। कुछ खेलों में एक बार में एक ही ताश चला या उठाया जाता है जबकि कुछ में कई पत्ते एक साथ उठाए या फेंके जा सकते हैं। कुछ खेलों में खिलाड़ियों की जोड़ियाँ बनती हैं जबकि कुछ में हर खिलाड़ी एकाकी होता है। कुछ में सब खिलाड़ी आखिर तक बने रहते हैं जबकि कुछ में वे एक एक करके कटते जाते हैं और आखिरी बचने वाले की जीत या हार होती है। एक हाथ चल देने पर कुछ खेलों में बचे हुए पत्ते भी उच्छिष्टवत् निर्माल्य हो जाते हैं जबकि कुछ में फेंके हुए पत्ते भी घूरे पर पड़े हुए रत्न की तरह कीमती होते हैं। कई खेलों में एक दाव का दूसरे दाव से कोई संबंध नहीं होता जबकि कुछ में एक दाव का नफा-नुकसान पूर्वसंचित पाप पुण्य की तरह बाद के दावों में जुड़ता घटता रहता है।

ताश के खेलों के प्रकार तो अक्षरशः अनगिनत हैं। कोटपीस और छक्की, गुलामचोर और लद्दू, ब्रिज और बिज़िक—कहाँ तक गिनाया जाय। कोटपीस में एक गधाकोट भी होता है। आरंभ में मेरा खयाल था कि इसमें हारने वालों पर गधे का चमड़ा चढ़ाया जाता होगा। बाद में मालूम हुआ कि उन्हें सिर्फ गधे की पदवी मिलती है। मैंने कई बार हारने वालों के कानों का बड़ी बारीकी से निरीक्षण किया। पर दाव पूरा हो जाने पर भी किसी के कान बढ़े हुए मालूम नहीं दिए। हाँ, दाव पूरा होने पर सबके सामुदायिक अट्टहास में अलबत्ता बहुत से गधों के एक साथ रेंकने का आभास हुआ। तब कहीं मुझे मालूम हुआ कि गधाकोट के सच्चे अर्थ का संबंध गधों की चमड़ी या पदवी के साथ न होकर उनके समुदाय के साथ है।

हारने का जन्मजात वरदान मिला होने का कलंक धो डालने की नीयत से इस खेल में विजय प्राप्त करने की मैंने जी जान से कोशिश की। भारी

पत्ते पहचानना सरल हो इसलिए मैंने उनकी पीठ पर तरह-तरह के निशान बनाए और खेल मे मेरे साझीदार होने वाले पाडूतात्या को उन्हे रटा दिया। परन्तु तात्या की मदबुद्धि के कारण हमे इसमे अधिक लाभ नही हुआ। शास्त्राज्ञा के अनुसार राजा खेती की उपज के छठे भाग का अधिकारी होता है। अत मैंने बडी चतुराई से चारो बादशाहो की पीठ पर छह का अक बनाया। रानी उसकी अर्धांगिनी होने के कारण उसकी पीठ पर तीन का अक लिखा गया। पर उलटा-सीधा हो जाने पर इन 3 और 6 के अको मे बडी गडबडी होने लगी। परिणाम यह निकला कि मेरे हाथ म रानी होने पर भी तात्या राजा के भरोसे हलका पत्ता चलत और उस पर मेरी रानी पडते ही विपक्षी खिलाडी राजा डालकर उसका अपहरण कर लेता। दहले की पीठ पर मैंने ऊपर से नीचे तक और इक्के के पीछे नीचे से ऊपर तक एक लकीर खीच दी थी। परतु ऊपर-नीचे का यह मौलिक भेद भी जडबुद्धि तात्या की समझ म नही आया। पत्ता चलन मे वे हिमालय जसी गलतिया करन लगे। ऊपर से यह तक अलग कि लकीर चाहे ऊपर से नीचे खीची जाए चाहे नीचे से ऊपर, दिखाई एक सी ही देती है। हार कर यह निशान बनान की तरकीब भी हम छोड देनी पडी और अब सारा दारामदार चेहरे के हावभाव और मुखमुद्राओ द्वारा इशारे करने पर ही रखा।

यह तरकीब आरभ म तो बडी आसान लगी और कामयाब रही। जीभ बाहर निकाली तो लाल पान, सिर खुजलाने के लिए बालो पर हाथ फेरा तो हुक्म, आख मारी की तो चिडी और चुटकी बजाई तो इट। मूछो पर ताव दिया तो राजा और नाक की बायी ओर उगली लगायी तो रानी, आदि बुनियादी सकेत हमने निश्चित कर लिए। परतु इनसे भी विशेष लाभ नही हुआ। तात्या के बाल सफेद हो चुके थे, अत उनके द्वारा बालो पर हाथ फेरा जाने पर भी उसम मुझे काले पान का बोध होने मे कठिनाई होने लगी। एक बार मेरा भागीदार एकाक्ष था। इस बेचारे को हमारी यह साकेतिक भाषा मालूम नही थी। फिर भी मैं उसके मुह की ओर देखकर लगातार चिडी के पत्ते चलता रहा। पाडतात्या एक बार बालाजी की यात्रा म केश विसजन करके लौटे। उसके बाद दो महीने तक खूटिया चुभने के कारण उन्होने मूछो पर ताव देने का नाम भी नही लिया और उनके हाथ म चारो बादशाह होने पर भी मुझे उसकी सूचना मिलनी बद हो गई। इस हालत म अच्छे पत्ते होने पर भी हम हारने लगे।

ससार के व्यवहार म क्या और खेल मे क्या, बेईमानी पर कमर कस लेने स यश की आशा कम ही रहती है।

ताश खेलना शुरू करने से पहले मुझे जिन लोगो का व्यसन था, वे तो सब एक एक करके छूट गए, पर यह शौक कभी भी मन से उतर सकेगा इसकी आज तक कोई भी सभावना दिखाई नही देती। ताश पीसने की तो कुछ ऐसी आदत पड गयी है कि खाली बठे हुए हाथ ताश की गड्डी फेंटने का अभ्यास करते रहते हैं। एक बार तो मैं नीद मे चिल्ला उठा था कि 'यह देखो गुलामचोर' !' मेरे इन उदगारो को सुनकर चोरी करने के लिए आया हुआ चोर रुपयो की थली वही डालकर भाग गया। ताश के खेल स मुझे जीवनभर मे कोई लाभ हुआ हो, इसका यह एकमेव उदाहरण है। एक बार मैंने नीद से एलान किया कि 'रानी के साथ हमारी जोडी रही।' यह सुनकर दूसरे दिन अर्धांगिनी मायके जाने पर उतारू हो गई थी।

इन सब कारणों स अब तो डर लगने लगा है कि इस जिंदगी मे तो ताश का शौक छूटता नही और मरते दम तक पत्ते हाथ मे रहेंगे। शायद जीवनरूपी तमाशे का अतिम अक भी ताश खेलते खेलते ही समाप्त हो। स्वगसुख की कल्पना म अमृतपान, अप्सराओ का नत्य-सगीत, पारिजात की मोहक सुगध आदि परपरागत बाते ही प्रधान होती हैं। परतु मुझे तो अब एसा लगने लगा है कि स्वग म यदि ताश का खेल न हुआ तो शीघ्र ही वहा से मन ऊब जाएगा। इसक विपरीत, ताश के पत्ते और अट्ठाराह खेलने वाले खिलाडी मिल गए तो अन्य सुखो की कभी याद भी नही आएगी। पाडूतात्या के मतानुसार प्याज की पकौडियो और लहसुन की चटनी क बिना स्वग सुख फीका रहेगा। इसक विरुद्ध किसी को भला क्या शिकायत हो सकती है। पर मैं ताश के खेल को ही प्राधान्य दूगा। यह तो अपने-अपने ख्याल और अपनी-अपनी पसद की बात है।

सुख की स्वस्थ कल्पना हाने वाले हर सामाजिक मनुष्य म ताश का शौक पाया जाता है। इसलिए यह आशका करने का कोई कारण ही नही है कि स्वग म ताश का शौक प्रचलित न हो। अब यह अलग बात है कि गधाकोट को वहा ऐरावत काट कहते हो, रानियो के लिए रभा उवशी मेनका, तिलोत्तमा जसे अप्सराओ के नाम हो और राजाओ की गणना चित्ररथ अश्वपाल आदि गधर्वों मे होती हो। हो सकता कि ब्रिज को वहा सेतु कहलाते हो और दुक्की को

21 यांत्रिक चमत्कार

विचारशील मनुष्य यदि संसार के व्यवहार की ओर दृष्टिपात करे, तो उसे दिखाई देगा कि प्रतिपल प्रतिदिन, बल्कि प्रतिक्षण प्रकृति और विज्ञान के बीच एक विराट युद्ध चल रहा है जिसमें विज्ञान प्रकृति के एक एक क्षेत्र को धीमी पर निश्चित गति से पादाक्रांत करता जा रहा है। ऊसर जमीन को अनेक प्रकार की रासायनिक खादों द्वारा उपजाऊ बनाया जा रहा है और वर्षा न होने वाले क्षेत्रों में बादलों पर रासायनिक द्रव्यों के फव्वारे मारकर कृत्रिम वृष्टि की जा रही है। और तो और, कल्पनाप्रवण वनस्पति-वैज्ञानिकों ने विविध प्रकार के बीजसंकर और कलम के प्रयोगों द्वारा अनेकविध नये और रंगबिरंगे फूलों और फलों को भी जन्म दिया है।

प्राकृतिक जगत में होने वाले इन परिवर्तनों का प्रतिबिंब मनुष्य सृष्टि में भी दिखाई देने लगा है। कुरूप स्त्रियों की बदसूरती को छिपाने के लिए और सुंदर स्त्रियों के लावण्य को निखारने के लिए आज नाना प्रकार के सौंदर्य प्रसाधन उपलब्ध हैं। प्रकृति द्वारा किसी को वृद्ध करार दिया जाने पर भी कलफ और नकली दांतों की बत्तीसी की सहायता से तारुण्य का भ्रम उत्पन्न किया जा सकता है। सूर्यास्त के अस्त हो जाने पर भी उनके तेज से स्पर्धा करने वाली गैस या बिजली की बत्तियां रात भर जलाई जा सकती हैं। हजारों मन माल को पीठ पर लादे रेलगाड़ियां वायु वेग से संचार करती रहती हैं और हजारों मनुष्यों को अपनी सुखद गोद में बिठा कर मोटरगाड़ियां पटरियों की सहायता के बिना उतने ही वेग से देश के कोने कोने में घूमती रहती हैं। एक तरफ तारयंत्र की सहायता से पृथ्वी के एक सिरे के समाचार पलक झपकते दूसरे छोर तक पहुंच जाते हैं तो दूसरी ओर बेतार के यंत्र द्वारा उससे भी कम समय में दुनिया

भर के सदृश घर बैठ प्राप्त हो सकते हैं। इन साधनों द्वारा मनुष्य की आवाज जहां दूर दूर तक पहुंचती है, वहां ध्वनियंत्र की सहायता से उसे चिरकाल के लिए मुद्रित भी किया जा सकता है। फोटोग्राफी और सिनेमा की फिल्मों द्वारा मनुष्य के स्वरूप और ध्वनि को भी ज्यों का त्यों अंकित किया जा सकता है और उसे दूर-दूर के प्रदेशों में दिखाने वाले यंत्रों का भी शीघ्र ही आविष्कार होने वाला है। यंत्रों की सहायता से एक ओर जहां लाखों योजन दूर के ग्रह नक्षत्रों का निकटता से निरीक्षण किया जा सकता है वहां दूसरी ओर वस्तु के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अणु परमाणुओं को अलग अलग देखा जा सकता है। यंत्रों ने मनुष्य के लिए समुद्र के उदर में या सतह पर जलचरों की तरह विचरना और हवा में पक्षियों की तरह उड़ना भी सुगम कर दिया है। तात्पर्य यह कि अब तक केवल परमेश्वर के लिए प्रयुक्त *मूकं करोति वाचालं पंगुं लंघयते गिरिम्* आदि सामर्थ्यपरक प्रशस्तियों का प्रयोग यान्त्रिक चमत्कारों के संदर्भ में भी किया जा सकता है। फर्क सिर्फ इतना है कि परमेश्वर अपने चमत्कारों का उपयोग केवल मनुष्य के कल्याण के लिए करता है जबकि इन यान्त्रिक शक्तियों का उपयोग मनुष्यजाति की भलाई या हानि दोनों क्षेत्रों में किया जाने लगा है। क्षण भर में सैकड़ों के प्राण ले लेने वाली बंदूकें और अपनी एक जम्हाई के साथ हजारों के शरीरों को छिन्न विच्छिन्न कर देने वाली तोपें भी मनुष्य की वैज्ञानिक बुद्धि का ही परिणाम हैं और इस नाते वे पानी के जहाजों और रेलगाड़ियों की सगी बहनें सिद्ध होती हैं। एक वर्ग की बहनें मनुष्य को इस धरती के एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में पहुंचाती हैं तो उनकी दूसरे वर्ग की सहोदराएं उसे इस दुनिया से दूसरी दुनिया में पहुंचाने में सहायक होती हैं। उनका यह आपसी भेद लक्ष्मी और अलक्ष्मी इन सगी बहनों के बीच के अंतर से मिलता जुलता है।

सजीव प्राणियों की अपेक्षा यंत्रों में सिर्फ सामर्थ्य ही अधिक हो यह बात नहीं। एक बार उनके अवयवों और रचना सिद्धांतों का सूक्ष्म ज्ञान हो जाने पर उनका अचूक और सक्षम रूप से लगातार उपयोग किया जा सकता है। इसके विपरीत मनुष्य या अन्य सजीव प्राणियों से काम लेना हो तो वह बहुत अधिक हद तक उनकी इच्छा-अनिच्छा और पसंद-नापसंद पर निर्भर करता है। साथ ही ईमानदारी का तत्व भी उपेक्षणीय नहीं। मालगाड़ी में गल्ले के हजारों बोरे भरे जाते हैं, पर रेल के डिब्बे द्वारा उनमें से एक के भी हजम किए जाने की कोई

मिसाल नहीं मिलती। पर नौकर को भेजकर बाजार से दर्जन भर आम मंगवाए जाएं तो दो-तीन गायब हुए बिना नहीं रहेंगे। ग्रामोफोन को एक बार चाभी घुमाकर शुरू कर दिया जाए, तो गाना या भाषण पूरा होने से पहले वह शायद ही रुकेगा। पर किसी गवैये को गाने के लिए कहें तो घंटा भर पहले उसके तानपूरे का और बाद में उसके गले का स्वर के साथ मेल हो नहीं उठेगा। इसी प्रकार बोलने वाली मशीन की सुई हटा देते ही वह तुरन्त शान्त हो जाएगी, परन्तु श्रीमतीजी यदि एक बार बोलना शुरू कर दें तो उन्हें चुप कर सकने वाली करामात की ईजाद प्रकृति ने अभी तक नहीं की। किसी महत्वपूर्ण अभिनेता-अभिनेत्री के रूठ बैठने पर नाटक स्थगित करने के प्रसंग तो आये दिन होते रहते हैं। कभी यह रुकावट उनकी अनिच्छा के कारण खड़ी होती है तो कभी बाल की खाल निकालने की उनकी बेजा हरकतों के कारण। इसी प्रकार बोलने के लिए खड़ा होने वाला वक्ता अक्सर यह भूल जाता है कि श्रोताओं के समय और सहनशक्ति की भी कोई सीमा होती है और उसके बाद अन्य लोगों के भाषण भी होने वाले हैं। इन सब प्रसंगों पर मशीन की श्रेष्ठता का अनुभव बड़ी उत्कटता से होता है।

अड़ियलपन के क्षेत्र में जब मनुष्यों की यह हालत है तो जानवरों की तो बात ही मत पूछिये। एक बार मुझे पास के किसी शहर में जाना था। मोटर या अन्य कोई सवारी रखने की तो मेरी हैसियत नहीं है और रेल वहां जाती नहीं थी। एक आदमी के लिए पूरी बैलगाड़ी जुतवाने में भी कोई तुक नहीं थी। अतः मैंने एक घोड़ा किराये पर मंगवा लिया और उस पर बैठकर प्रयाण किया। मैं शहसवार होने का दावा नहीं करता, पर घुड़सवारी में बिलकुल ही अनाड़ी हूं, ऐसी बात भी नहीं। घोड़ा सीधा हो, मंद गति से नाक की सीध में चलता रहे और सड़क ऊबड़-खाबड़ न हो तो कोई शर्त बद कर यह नहीं कह सकता कि मैं नीचे गिर जाऊंगा। लेकिन उस रोज जो जानवर मेरे भाग्य में बदा था वह तो तीन लोक से न्यारा था। कुछ दूर तक तो उसने ऐसी सधी हुई चाल रखी कि मुझे विश्वास हो गया कि ऊंघते हुए बैठा रहा तो भी गन्तव्य स्थान पर पहुंच जाऊंगा। इस विचार से शरीर में कुछ स्फूर्ति आई और उसी आवेश में घोड़े को यह दिखाने के लिए कि उसका सवार बिलकुल ही नौसिखिया नहीं है, मैंने हाथ में की छड़ी उसकी पीठ से छुआ भर दी। बस अब तो कहर हो गया। छड़ी घुमाते ही उस

पाजी जानवर ने जो छलाग लगाई उससे वैसे तो मैं धराशायी हो गया होता, पर सौभाग्य से उसकी लगाम मेरे हाथ में आ गई और उसे पकड़कर मैंने जैसे-तैसे आसन जमाये रखा। पर अब उस भाड़े के टट्टू पर मुझे बिलकुल विश्वास न रहा। कब वह मुझे गिराकर मेरे ऊपर सवार हो जाएगा इसका कोई भरोसा नहीं था। मैंने दो-एक बार इधर उधर ताका कि मेरी इस फजीहत को कोई देख तो नहीं रहा, और इसकी खातिरजमा होते ही घोड़े को काबू में लाने के दाव पेंच सोचने लगा। छड़ी का दोबारा प्रयोग करके उसकी सहनशीलता की परीक्षा करने का इरादा तो बिलकुल नहीं था क्योंकि इसके परिणाम को एक बार भुगत चुका था।

अब उस दुष्ट ने मेरी शहसवारी की कसौटी करने के बजाय उलटे पावों एक-एक डग पीछे हटना शुरू कर दिया था। उसके इस पलायनवाद को देखकर मेरा उत्साह दुगुना हो उठा, पर केवल उत्साह से संसार में किसी का कुछ बनना बिगड़ता नहीं। मेरे निश्चय मात्र से उसकी यह अवगति थोड़े ही रुकने वाली थी। आखिर उस पर अपनी धाक जमाने का प्रयत्न करने के बजाय मैंने बनिया मूछ नीची के सिद्धांतानुसार खुद ही झुक जाने का निश्चय किया। मानसिक रूप में न झुकना तो शारीरिक स्तर पर धराशायी होने का खतरा प्रबल था। अतः इस संकट से बचने के लिए मैंने देवताओं को भी प्रिय लगने वाले उपाय का अवलंबन किया। घोड़े को उच्चैःश्रवा श्यामकर्ण, पंचकल्याण आदि संस्कृत और चेतक मोती, शेरू आदि प्राकृत नामाभिधानों से संबोधित करके खुश करने की कोशिश की। परंतु इनमें से एक भी मधुर शब्द उसके लंबे कानों में प्रवेश नहीं कर सका। बड़ी समस्या खड़ी हो गई कि अब क्या किया जाए। इस प्रकार उलटी गति से घर वापस पहुंच जाने में भी कोई तुक नहीं थी। फिर इस बात का भी क्या भरोसा था कि वह बेमुरव्वत और अड़ियल जानवर वहां पहुंचकर रुक ही जाएगा। उसकी मर्जी हुई तो वह दो चार गांव पीछे जाकर रुकेगा या लहर आई तो मेरा जुलूस निकालता हुआ पृथ्वी प्रदक्षिणा पर रवाना हो जाएगा। अब मुझे सचमुच ही डर लगने लगा। इस प्रकार की उलटी यात्रा खतरा से खाली नहीं होती। हमारे कस्बे के चौराहे पर जो बड़ा कुआं है, न तो उसे देख पाने की दिव्यदृष्टि उस अड़ियल प्राणी की पूंछ में थी न उससे कतरा कर निकल जाने की बुद्धि उसकी उलटी खोपड़ी में। कुआं रास्ते में आ रहा है या नहीं इसकी मैं

पीछे देखकर खातिरजमा भी नहीं कर सकता था क्योंकि गर्दन मोड़कर देखते ही घोड़े पर से पकड़ ढीली हो जाती और इस हालत में मेरे स्थानभ्रष्ट हो जाने की संभावना ही नहीं, पूरा निश्चय था। आखिर उलटे पांव घर वापस पहुंचने की अपेक्षा उसी गति से इच्छित स्थान पर पहुंचना अधिक श्रेयस्कर मानकर मैंने बड़ी चालाकी से घोड़े का मुंह घर की दिशा में मोड़ दिया। उस मन्दबुद्धि की समझ में मेरी यह युक्ति नहीं आई और उसने अड़ियलपन से पीछे हटना जारी रखा। राम राम करके कई घंटा में मैं गंतव्य स्थान पर पहुंचा। उस दिन से किसी सजीव पशु के चंगुल में प्राणों को फंसाने के बजाय सड़क कूटने के स्टीम रोलर में यात्रा करना मैं बेहतर मानने लगा हूं। वाहन पर इंजन भी पीछे की ओर उलटा चल सकता है यह माना, पर कम से कम उसका नियंत्रण तो अपने हाथों में रहता है।

पंच महाभूतों का नियंत्रण करने में केवल पंचेंद्रियों द्वारा होने वाले काम ही यंत्रों की सहायता से हो सकते हैं ऐसी बात भी नहीं। कुछ यंत्र तो बुद्धिजन्य काम भी कर सकते हैं। जोड़ और हिसाब लगाने वाली मशीनें बड़ी दूकानों में सबने देखी होंगी। सही बट्टे के चक्कर में पड़कर हिसाब की गलती मनुष्य कर सकता है ये मशीनें नहीं।

कुछ दिनों बाद कविता लिखने की भी मशीन मिलने लग जाए तो बड़ी बहार हो। एक बक्से में एक तरफ से कोश के सारे शब्द डाल दिए जाएं और फिर शृंगार करुणादि विभिन्न रसों पर सुई रख कर इच्छानुसार हैंडिल घुमाते ही टपाटप कविता टपकने लगे। उसमें सिर्फ एक बात का ध्यान रखना पड़ेगा। मशीन में शब्दरूपी कच्चा माल भरते समय कमल और चंद्र, प्रणय और विरह पुष्प और लता, चातक और चकोर, अमृत और अधरामृत आदि संस्कृत की ललित-मधुर पदावली एवम् दिल और दुनिया, जुल्म और जमाना, मय और मुहब्बत, शमा और परवाना आदि अरबी फारसी के दिलकश शब्दों की रसद कुछ अधिक मात्रा में डालनी पड़ेगी। एक और सावधानी बरतनी होगी। व्यवहार के साधारण शब्दों का कविता के संदर्भ में लोकप्रचलित अर्थ नहीं होता बल्कि जो आशय कवि को अभिप्रेत हो वही होता है। इसका स्पष्टीकरण करने वाली टिप्पणियां तैयार कविता में स्थान-स्थान पर जोड़नी पड़ेंगी। इतनी योजना कर देने के बाद फिर कविता की ओर देखने की भी जरूरत नहीं पड़ती। आलोचक अपनी-अपनी

क्षमतानुसार अथ उसमें से निकालते रहेंगे और सर फोड़ते रहेंगे।

मस्तिष्क में उठने वाले विचार एक बार मन्त्र द्वारा कागज पर व्यक्त हो जाए तो उनकी हजारों प्रतियां छाप देने वाले यन्त्र आज भी विद्यमान हैं। इस हालत में यन्त्रकला के लिए यह बड़ी लज्जास्पद बात है कि यन्त्र का पट्टा मनुष्य के सिर में लपेट कर इंजिन घुमाते ही उसके उस समय के विचारों और मनोविकारों के अनुरूप शब्द कागज पर छाप देने वाली मशीन की ईजाद अबतक नहीं हुई। इसी प्रकार मनुष्य की आवाज को सैकड़ों गुना बढ़ा देने वाले लाउड-स्पीकरों का अस्तित्व वर्षों से होने पर भी उसके मन में उठने वाले विचारों को शब्द रूप देकर उन्हें हजारों लोगों को सीधे सुना देने वाला कोई भोंपू अब तक तैयार नहीं हुआ। पर यह भी यन्त्रकला के लिए चुनौती वाली बात नहीं है।

यन्त्रों ने हमारी बड़ी-बड़ी अड़चनें दूर कर दी हैं। इसमें कोई संदेह नहीं परन्तु छोटी मोटी असुविधाओं की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया है। यन्त्रों का मुख्य काम होता है कठोर परिश्रम से मनुष्य को बचाना। अब तक दूर की यात्रा और भारी वजन की भारी चीजें ढोने के क्षेत्र में श्रम का परिहार हो चुका है। परन्तु भोजन के बाद टहलना, छोटे बच्चों को गोद में उठाना आदि छोटी मोटी बातों में पड़ने वाले श्रम की ओर किसी का ध्यान नहीं गया और न उनसे बचने के लिए किसी यन्त्र का आविष्कार हुआ। दूर की यात्रा तो सामान्य मनुष्य वर्ष में एकाध बार ही करता है। परन्तु भोजनोपरांत टहलने की आवश्यकता दिन में दो बार पड़ती है। इसी प्रकार टनों वजन ढोने का प्रसंग साधारण मनुष्य के जीवन में शायद ही कभी आता हो, जबकि बच्चे को गोद में उठाने का काम दिन में कई बार करना पड़ता है। ये बातें दिखती तो हैं छोटी और क्षुद्र, पर उनमें खर्च होने वाली शक्ति का जोड़ लगाया जाए तो वे भयावह हो उठती हैं। उदाहरण के तौर पर रोज सुबह उठकर करनी पड़ने वाली दांत मांजने की कवायद को ही ले लीजिए। दांत साफ करने की मशीन के अभाव में न मालूम कितनों के दांत सड़ रहे होंगे। होठों को खुला रखकर दांतों पर मंजन लगा हुआ ब्रश फेरने का यन्त्र उपलब्ध होते ही सड़े हुए दांत दंतकथा का विषय हो जाएंगे। इसी प्रकार जम्हाई आते समय मुंह को हथेली से ढांपना, डकार लेते समय मुंह को एक तरफ फेरना और छींकते समय नाक के मालमसाले का सामने बैठे हुए लोगों पर अभिषेक न करते हुए नाक और मुंह को रूमाल से ढक लेना आदि

कई छोटी मोटी क्रियाएं ऐसी हैं जिनपर अमल न करने से मनुष्य पर व्यवहार मूढ़ता या बदतहज़ीबी का आरोप लग सकता है। इन सब कामों में सुबह से शाम तक मनुष्य की बहुत शक्ति नष्ट होती है। अब जरा सोचिए कि इनमें की प्रत्येक क्रिया के लिए यदि उपयुक्त यंत्र का आविष्कार हो जाए, तो हमें कितना आराम रहेगा और औरों की कितनी परेशानी बच जाएगी।

इसी प्रकार हमारे धार्मिक अनुष्ठानों में सन्ध्यापसव्य, वश्वदेव आदि विशुद्ध यांत्रिक स्वरूप की जो विधियां हैं उन्हें तो यंत्रों की सहायता से करना ही उचित रहेगा। मंत्रोच्चारण का ढोंग सच्चा मालूम देने के लिए यह आवश्यक है कि होठों की हलचल होती रहे। बगल में एक यंत्र दबा कर उसके तार होठों से जोड़ देने पर यह काम आसानी से हो सकता है। शादी ज्योनारों में प्रत्येक निमंत्रित की पत्तल के सामने खड़े होकर रोनी सूरत पर कृत्रिम मुस्कान लाकर उनसे अधिक खाने का आग्रह मेजमान को करना ही पड़ता है। बिना कहे ही ठूंसपेट भकोसने वाले बकासुरों से अधिक खाने का आग्रह करना विशुद्ध यांत्रिक रस्म के सिवा और क्या है? इसलिए ऐसे प्रसंगों पर चेहरे पर नकली मुस्कराहट लाकर तकल्लुफ़ के शब्द दोहराने वाला यंत्र बहुत सहायक सिद्ध हो सकता है। इसी प्रकार हम जब कभी कार्यवश किसी दूसरे शहर में जाते हैं, तो वहां के परिचित संबंधी रास्ते में मिलने पर दांत निपोरते हुए बड़ी आस्था से पूछते हैं कि "कहां ठहरे हो?" यह सहज एवं औपचारिक प्रश्न होता है जिसका प्रधान हेतु आप जहां ठहरे हो, उस पूरे मुहल्ले को टालने का होता है। आप प्रतिप्रश्न करते हैं "घर पर कब मिलोगे?" इसके उत्तर में वे आपको नितांत असुविधाजनक होने वाला कोई अनिश्चित समय बता देते हैं। इसके पीछे यह योजना होती है कि उस समय वे निश्चित रूप से कहीं घूमने निकल जाएंगे और घर पर नहीं मिलेंगे। इन प्रश्नोत्तरों के समय उनके चेहरे पर आपको निमंत्रित करने की नकली आतुरता और आपको टाल देने के असली संतोष के जो भाव उभरते हैं उन्हें व्यक्त करने के लिए भी उपरोक्त यांत्रिक उपकरण बड़ा प्रभावी सिद्ध हो सकता है। हमारे यहां गमी के मौकों पर किराये पर रोने वाली और छाती पीटने वाली स्त्रियां बुलाई जाती हैं। उनके बिसूरने और मातम मनाने के नाटक में भी यह यंत्र अमूल्य सहायता पहुंचा सकता है।

परन्तु इन सबसे अधिक आवश्यकता है पहनने चलने के यंत्र की। घड़ा, मशीन

की रकाबों में पांव रख दीजिए और वे अपने आप आगे पीछे होने लगें। दायें-बायें मोड़ने की कल इस यंत्र में लगाना परमावश्यक है। वरना वह अपने सवार को प्राणों की परवाह किए बिना बेधड़क किसी कूए खाई की दिशा में चलता चला जाएगा। इसी प्रकार उसके ब्रेक या उसे बंद करने की कला भी अवगत होनी चाहिए। अन्यथा एक बार घर से निकलने पर पूरी पृथ्वी प्रदक्षिणा के बाद ही वापस घर पहुंचा जा सकेगा। घर बैठे व्यायाम करने की अनेक मशीनें तो आज भी उपलब्ध हैं। परंतु उनमें से एक भी घर के घर में एक जगह पड़े खड़े या लेटे-लेटे चलने के लिए उपयोगी नहीं होती।

व्यायाम के लिए साफ और खुली हवा अनिवार्य मानी जाती है। इसका आयोजन तो और भी आसानी से हो सकता है। भीतर की ओर खुलने वाले अंतर्मुख परदे (Valves) लगी हुई दो नलियां स्वच्छ और खुली हवा के प्रदेश से लगाकर घर में छोड़नी चाहिए और बहिर्मुख परदे वाली दो नलियां घर से लगाकर बाहर के गंदे और पतन भरे भागों में छोड़ देना चाहिए। सांस लेते समय पहली नलियों को और छोड़ते समय दूसरी नाडी को नाक के छेदों के सामने रख लिया कि छुट्टी। इसमें आरंभ में कुछ अभ्यास की आवश्यकता पड़ेगी और नलियां प्राणायाम की तरह नियमित अंतर से बदलनी पड़ेगी। सांस खींचते और छोड़ते समय नलियों का निरंतर बदलते रहना भी नितांत आवश्यक होगा। अन्यथा साफ और ताजी हवा के बदले गंदी और घुटी हुई हवा पल्ले पड़ेगी। इन बुनियादी मशीनों का आविष्कार हो जाने के बाद उन्नति के नियमानुसार कुछ ऐसे यंत्र भी बनाए जा सकते हैं जिनके माध्यम से व्यायाम एक व्यक्ति करे तो अन्नपचन दूसरे का हो, ताजी हवा का सेवन कोई करे, तो उससे रक्तशुद्धि किसी दूसरे की हो। इन यंत्रों के उपलब्ध हो जाने पर मनुष्य की स्वार्थबुद्धि का लोप होकर मानवजाति का बड़ा कल्याण हो सकता है। अफसोस सिर्फ इस बात का है कि हमारे जीवनकाल में इस प्रकार के प्रगतिशील यंत्रों को ईजाद होना असंभव ही मालूम देता है।

इन सब छोटे मोटे यंत्रों के अलावा एक और यंत्र जिसका आविष्कार होना आज-कल परमावश्यक हो गया है वह है रसोई बनाने की मशीन। आजकल रसोइयों के दिमाग सातवें आसमान पर चढ़ गये हैं। दस-दस बारह बारह रुपये तनख्वाह देने पर भी रसोइये मिलते नहीं हैं और उनके चोचले और नखरे अलग से सहन करने

पडते हैं उनकी शर्तों के सामने तो सिविल-सर्विस की नियमावलि भी कुछ नहीं। पानी नहीं भरेंगे थालियां नहीं लगाएंगे परोसेंगे नहीं चौका नहीं धोएंगे, चाय नहीं बनाएंगे, (पर दोनों समय पियेंगे जरूर), बुधवार और शनिवार को रात को नाटक देखने जाएंगे इसलिए उन दिनों शाम का खाना छह बजने से पहले समाप्त हो जाना चाहिए पिछली रात के जागरण की थकान उतारने के लिए गुरुवार और रविवार को दोपहर की नागा रहेगी नाई, धोबी आदि का खर्च आपको देना होगा घी कम खर्च करने की कोई खटखट नहीं सुनेंगे इत्यादि प्राथमिक शर्तों पर छुटकारा हो जाए तो अपने आपको भाग्यवान समझना चाहिए क्योंकि हर साल इन शर्तों में नये-नये प्रस्ताव जुड़ते जा रहे हैं। बारह रुपये वेतन लेकर दिन भर लाट लगाने वाले इन सीनाजोरों ने अब तक मालिक से पांव दबवाने की शर्त नहीं रखी यही बड़े भाग्य की बात है। ये सारी शर्तें, मुंहमांगी तनख्वाह और ऊपर का सारा खर्च कबूल कर लेने से ही गृहस्वामी का छुटकारा हो जाता हो, सो बात भी नहीं। यहां से तो मालिक की दुर्दशा का आरम्भ मात्र होता है। वल्लभाचार्यजी के झक्की स्वभाव का अनुभव तो इसके बाद ही होता है। किसी दिन चावल कंजी की तरह लिबलिबे हो जाएंगे तो किसी दिन कंकड़ियों की तरह कटकटे रह जाएंगे। भात कभी कच्चा रह जाएगा तो कभी नीचे से भगोना जल जाएगा। सब्जी दोपहर को नमक के मारे जहर हो गई होगी तो शाम को बिलकुल अलोनी रह जाएगी। फुलके कभी कच्चे रहकर पचिश उत्पन्न करेंगे तो कभी जलकर कोयला हो जाएंगे। कोयले के ये कण दातों में अटके रहकर कुल्ला करते समय दांतों की सफाई में सहायक हों इससे अधिक उनका कोई उपयोग नहीं। कभी चाय नमकीन हो जाएगी तो दाल मीठी होगी और कभी सब्जी में केशर पड़ी होगी तो खीर में हींग। इस प्रकार पाक साहित्य के अनेकविध वैचित्र्य के साथ वल्लभाचार्य महाराज की कल्पनाओं का मेल होकर जो देवदुर्लभ पदार्थ तैयार होंगे उनमें छौंक के तौर पर मकड़ी के जाले मक्खियां तिलचट्टे और यदाकदा छिपकलियों का भी प्रयोग हो सकता है। इन सबके साथ रसोइया महाराज के मुंह से टपकने वाली तमाखूमिश्रित लार का योग होकर जिस अलौकिक रसायन की निष्पत्ति होगी वह स्वानुभव के बिना समझ में आने वाली बात नहीं।

यह तो हुई भोजन के पदार्थों की बात। रसोइया महाराज जो मुक्तानामक

रेशमी गमछा लपेटते हैं वह भी उनकी अब तक की परिपाटी को शोभा देने वाला होता है। उसने कई गर्मियों का पसीना और कई बरसातों का कीचड़ पचाया हुआ होता है। रूमाल के अभाव में घी तेल और मिर्च मसाले के हाथ भी उसी से पोंछे जाते हैं। रसोइयाजी को जुकाम हो रहा हो तो नाक भी उसी में सिनकने का समस्त वल्लभकुल का रिवाज होने के कारण और पान चूना-तमाखू के साथ उसका घनिष्ठ संबंध होने के कारण उसमें शारीरिक द्रव्यों की अनेकविध गंधों के साथ तेली तमोली की दुकानों की समस्त गंधों का जो दुग्धशर्करा योग होता है उसका जोड़ अन्यत्र नहीं मिल सकता। अपनी नरकयात्रा टालने के हेतु से रसोइयाजी द्वारा धारण किया जाने वाला यह पीतांबर नामक मटमैला मलिनांबर दूसरों को जीतेजी नरकवास का अनुभव करा देता है। यह वस्त्रविशेष प्रायः बहुत झिरझिरा और छोटा होता है यह गृहस्वामी के लिए बड़ी हितकर बात है। वह कहीं लंबाचौड़ा होता तो उसे धारण करने वाले के हाथ का भोजन करने वाले हर आदमी को हैजा हुए बिना न रहता।

उपरोक्त गुणविशेष गमछे को कमर से लपेट कर उपयुक्त पदार्थों का परोसने के लिए वल्लभाचार्यजी महाराज की सवारी गाजे से लाल हुई आँखें तरेरते हुए सामने आती है तब कहीं गृहस्वामी को इतना वेतन कबूल करने के बाद प्राप्त होने वाली सेवा का साक्षात्कार होता है। रही-सही कसर वे परोसते समय पूरी कर देते हैं। भोजन परोसने को वे गृहस्वामी की कई पीढ़ियों पर किया जाने वाला एहसान समझाते हैं। कोई चीज दोबारा मांगी जाए, तो दाल की कटोरी में अचार और खीर के कटोरे में चटनी परोसी जाएगी। शक्कर मांगिए तो नमक का आग्रह होगा और रबड़ी मांगने पर करेले की सब्जी का गुणगान किया जाएगा। कभी-कभी मिष्ठान्न व्यंजन परोसना वे आखिर तक भूल जाते हैं तो कभी रसेदार सब्जी परोसते समय चौकड़ा उनके हाथ से फिसल जाता है। इस स्थिति में भोजन की सामग्री का आस्वाद खाने वाले की जीभ को छोड़कर बाकी सारे अंगों को ही नहीं बल्कि धोती-कुरते का भी मिल जाता है। कभी कभी परोसते समय पैर फिसल जाने के कारण पाकशास्त्रीजी की बड़े जतन से कमाई हुई काया किसी भाग्यवान मेहमान की गोद में विराजमान हो सकती है। अब आप समझ गये होंगे कि इन सारी परेशानियों से बचने के लिए रसोई बनाने और परोसने के यंत्र की इजाद कितनी आवश्यक हो उठी है। वैज्ञानिक बुद्धि

वाले कल्पनाप्रवण नौजवानो के मार्गदर्शन के लिए उसके संभाव्य कार्यक्षेत्र की रूपरेखा यहा सक्षेप म दी जाती है —

सबसे पहले तो परचूनिया पसारी, तेली कुजडे आदि की दूकानो से लगाकर रसोईघर तक विभिन्न प्रकार की नलिया लगवानी चाहिए। इस व्यवस्था म व्यापारी लोग माल उधार देने के लिए तैयार नही होगे। अत बहिर्मुख परदे वाली एक छोटी नलीका गृहस्वामी के कोट की जेब से लगाकर व्यापारियो की दूकानो तक लगनी चाहिए। बटन दबाते ही एक ओर दूकानो से कच्ची सामग्री पटापट नलिया म ढलने लगेगी और दूसरी ओर आपकी जेब का रुपया व्यापारियो के गल्ले म पडता रहेगा। नलियो की रचना इस प्रकार हो कि इन लबी सुरगो स यात्रा करके घर पहुचने तक सारी सामग्री रसोई के लिए उपयुक्त स्वरूप प्राप्त कर ले। उदाहरणार्थ चावलो की छडाई और गेहू की पिसाई नलिया मे ही हो जानी चाहिए। दाल चावल के ककड भी वही बिन जाने चाहिए। सब्जिया छिलकर और कटकर तैयार हो जानी चाहिए। इसी प्रकार मसाले भी वही पिस जाए और उनका योग्य अनुपात मे मिश्रण भी नलिया म ही हो जाए। यह सारी सामग्री रसोईघर मे पहुचते ही पपो की सहायता स विभिन्न बरतनो म जा गिरे ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए। इसके बाद आवश्यकतानुसार विभिन्न पदार्थों का मथना मसलना, तलना, छौकना भूनना आदि प्रक्रियाए आरभ हो। परतु य सारे उपस्कार मनुष्य की सहायता के बिना हो सके ऐसी व्यवस्था होना अत्यत आवश्यक है। तात्पर्य यह कि बटन दबाते ही जेब का भार कुछ हलका होकर सपूर्ण रसोइ परोसे हुए थाल के रूप म तैयार हो जानी चाहिए। अन्यथा इस सारे खटाटोप का कोइ मतलब नही रहेगा। यत्र की नलिया खाने वाले के मुह तक पहुचाई जा सकें तब तो बडी बहार हो। परोसने का सारा झझट ही बच जाए। बिस्तर पर पडे पडे तैयार व्यजन मुह म पडने लगें और खाने वाले के लिए पेट पर स धोती की पकड ढीली करने के अलावा और कोई काम ही न बचे। यह आखिरी सुविधा अभी कुछ समय के लिए उपलब्ध न भी हो, तो फिलहाल उसके बिना भी काम चल सकता है।

इस अत्यत उपयुक्त पर जटिल यत्र के विभिन्न अगों की ओर भी अधिक ब्योरेवार जानकारी पाठको को दी जा सकती थी। परतु एक तो हमारे विज्ञान ने अभी उतनी प्रगति नही की है इस कारण से और दूसरे मुझे एक मित्र से मिलने

जाने की जल्दी है इसलिए इस निबंध को अब शीघ्र ही समाप्त करना होगा।

अब तक के विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस प्रकार के यंत्रों से लोगों की वैयक्तिक स्तर पर कितनी सुविधा हो सकती है। सामुदायिक क्षेत्र में उपयोग किया जाने पर इन यंत्रों से और भी अधिक लाभ हो सकता है। कुछ संभावनाओं पर गौर कीजिए —

विभिन्न धर्मों के प्रार्थनास्थानों में परमेश्वर की प्रार्थना आँखें मूँदकर ही की जाती है। इन प्रसंगों पर आँखें बंद करने के लिए और मुँदी आँखों से नींद आ जाने पर उन्हें खोलने के लिए एक बिजली का यंत्र व्यासपीठ पर रखकर उसके तार सारे भाविक भक्तों की बगल में जोड़ दिए जाएँ तो आँखें मूँदने खोलने की और हाथ जोड़ने की कवायद सुचारु रूप से होती रहेगी। कुछ परम श्रद्धालु भक्तों की आँख लग जाने पर उनके खर्राटे द्वारा दूसरों की एकाग्रता का भंग भी नहीं होगा। तिब्बत में जिस प्रकार के प्रार्थनाचक्र पाए जाते हैं उसी प्रकार के रामनाम के और बंद मंत्र के चक्रों का अपने यहाँ भी प्रचार होना आवश्यक है। हर मंदिर में ऐसे चक्र स्थापित हो जाएँ तो उनको घुमाते ही भक्तों को सैकड़ों बार के स्मरण कीर्तन का पुण्य एक साथ मिल जाया करेगा। अठारह आरियों वाला एक चक्र बनवाकर उसकी प्रत्येक नोक पर गीता का एक एक अध्याय लटका दिया जाए, तो चक्र को एक एक फेरा घुमाने ही समूची गीता के परायण का पुण्य मिल जाएगा। यही व्यवस्था रामायण और श्रीमद भागवत के संबंध में भी हो सकती है। कथाकारों के मुख से भगवान का नाम या ईश्वर वंदना वाचक शब्द निकलते ही श्रोताओं द्वारा हाथ जोड़े जाकर उन्हें मस्तक से लगाने की प्रथा है। यह क्रिया भी यंत्रों द्वारा हो सकती है। कल्पना कीजिए, स्त्रियों के द्वारा यह सामूहिक वंदना होने पर उनकी चूड़ियों की खनकार कितनी श्रुतिमधुर होगी। इसी प्रकार श्रावणी के समय की जाने वाली भोजन, न्यास सव्यापसव्य पंचपात्र-आचमनी की खनखनाहट आदि यांत्रिक कवायद तो यंत्रों की सहायता से ही होनी चाहिए।

नाटक देखते समय उत्कट नाट्यपूर्ण प्रसंगों पर कलाकारों को प्रोत्साहन देने के लिए प्रेक्षक गण हथेली पर हथेली धरे तालियाँ बजाने के लिए सदा तत्पर रहते हैं। परंतु कभी कभी उनकी रसिक बुद्धि कुंठित होने के कारण व उचित समय पर तालियाँ बजाना भूल जाते हैं तो कभी नाटक की ओर पर्याप्त ध्यान न

होने के कारण वे बेमौके तालियां बजाने लगते हैं। इससे नाटक में रंग जमने के बजाय रसभंग होने की ही संभावना रहती है। प्रेक्षकों की हथेलियों पर बिजली के तार जोड़ कर उनका नियंत्रक यंत्र किसी रसिक दर्शक के हाथ में दे दिया जाए तो यह दिक्कत दूर हो सकती है और जिस प्रकार परदे के पीछे वाले सूत्रधार के मार्गदर्शन में नट नटियों का काम सुव्यवस्थित रूप से चलता है उसी प्रकार परदे के आगे वाले सूत्रधार के नियंत्रण में प्रेक्षकों का कर्तव्य भी बिना परेशानी के पूरा होता रहेगा। इससे आगे की परिवर्धित योजना यह भी हो सकती है कि हथेलियों की तरह यंत्र के तार प्रेक्षकों के होठों से भी जोड़ दिए जाएं (यह होठों पर तार अटकाने की क्रिया बिल्ली के गले में घंटी बांधने की समस्या की तरह मुश्किल हो सकती है। स्त्री प्रेक्षकों के संदर्भ में यह रसमय उपक्रम और भी कठिन हो सकता है परंतु किसी भी नये वैज्ञानिक आविष्कार के आरंभ काल में ऐसी छोटी मोटी अड़चनें आती ही हैं)। इस योजना से फायदा यह होगा कि प्रशंसात्मक 'वंस मोर' (Once more) और निंदात्मक 'नो मोर' (No more) के नारों की चाभी भी किसी सुधी रसिक के हाथ में सौंपी जा सकेगी। आजकल इस मामले में बड़ी गड़बड़ी चल रही है। किसी गीत के सुंदर ढंग से गाए जाने पर प्रेक्षकों की ओर से उसे फिर से गवाने की फरमाइश होती है। परंतु कुछ घमंडी कलाकार इस विनती की अपेक्षा करके चुप रह जाते हैं। इसके विपरीत कुछ मोटी चमड़ी वाले कलाकार प्रेक्षकों की ओर से प्रोत्साहन न मिलने पर भी एक ही गीत को घोट घोटकर दो-दो तीन-तीन बार सुनाते रहते हैं। इन दोनों आपत्तियों से बचने के लिए कलाकारों के होठों के खुलने-बंद होने का नियंत्रण भी जानकार रसिकों के हाथ में होना आवश्यक है।

अंत में इस प्रकार के यंत्रों की उपयुक्तता के एक और क्षेत्र पर भी लगे हाथों विचार कर लिया जाए। बड़े-बड़े सभा-सम्मेलनों में किसी प्रस्ताव के अनुकूल या प्रतिकूल मत प्रदर्शित करने के लिए हाथ ऊपर उठाने की प्रथा होती है। हाथ कब उठाना है और कब नहीं इसका निर्णय अधिकांश सभासद पहले से ही कर चुके होते हैं। परंतु कुछ सदस्यों का इस विवादास्पद विषय के साथ दुआसलाम का भी संबंध नहीं होता और लोकतांत्रिक प्रणाली किस चिड़िया का नाम है इसकी भी उन्हें जानकारी नहीं होती। फलतः जब हाथ उठाना चाहिए तब उनका हाथ पक्षाघात के मरीज के अंग की तरह निश्चेष्ट हो जाता है और जब नहीं उठना चाहिए तब

सरकस के जमूरे की तरह उछल उछलकर बार बार ऊपर उठता रहता है और मतों की गणना हो जाने के बाद भी नीचे नहीं होता। इस श्रेणी के बुद्धिमान सभासदों के हाथों को समयानुसार ऊपर-नीचे करने की व्यवस्था यंत्रों की सहायता से ही सके, तो सबको बड़ी सुविधा रहेगी।

सारांश यह कि हम अनेक बार बहुत-सी बातें बड़े परिश्रम से या बड़ी अनिच्छा से करनी पड़ती हैं। उन्हें करने के यंत्रों की ईजाद हो जाने पर हमारे दुखों का क्षय और सुखों की वृद्धि होगी। समाज में ा अव्यवस्था और अनुशासनहीनता का नाश होकर हर काम उचित समय पर होता रहेगा और इस विराट विश्व की घड़ी को सुचारु रूप से चलाने में उस जगन्नियंता जगदीश्वर की यथाशक्ति सहायता करने का श्रेय भी हम प्राप्त हो सकेगा।

कोई देश हमारे अपने देश से जितना ही दूर होता है उतनी ही उसके विषय में हमारी कल्पनाएं अस्पष्ट होती हैं। अधिकांश देशों का हमारा ज्ञान भूगोल की पुस्तकों में दी हुई अधूरी जानकारी और नक्शों पर आधारित होता है। इसी कारण से उन देशों के बीच के अंतर का हम सही-सही अंदाज नहीं लगता। भूगोल की पुस्तकों में छपे हुए नक्शे तो अत्यंत भ्रामक होते हैं। इंग्लैंड और अमरीका के बीच किसी भी मानचित्र में बालिश्त भर से अधिक दूरी नहीं होती। इसलिए इंग्लैंड जाने वाले मित्रों के जरिये लोग अमरीका में रहने वाले संबंधियों को संदेशा भेजने की बात सोचा करते हैं। चीन और जापान तो नक्शे में एक-दूसरे के इतने करीब मालूम पड़ते हैं कि एक देश के किनारे पर एक पांव रखा जाए, तो दूसरा पांव दूसरे देश के किनारे पर रखना संभव है। इसके अलावा विदेशों के संबंध में हमारी जानकारी कुछ मोटी-मोटी लोकप्रचलित बातों पर आधारित रहती है। हम उन्हीं बातों को बहुत अधिक महत्व दे बैठते हैं और उस देश के पूरे जीवन का समीकरण अपनी कल्पना के साथ बैठा लेते हैं। काश्मीर के संबंध में हमारी जानकारी अक्सर इतनी ही होती है कि वहां दोशाले बहुत अच्छे मिलते हैं। बस हम सोचने लगते हैं कि वहां के सभी लोग आठों पहर शाल ओढ़कर ही घूमते होंगे। उन दोशालों का रंग भी नक्शे में काश्मीर का जो रंग होता है उससे मिलता-जुलता होना चाहिए यह कल्पना भी पिंड नहीं छोड़ती। फ्रांस के बोर्डो और ओपोर्टो शहर अपनी बेहतरीन शराब के लिए मशहूर हैं। इस आधार पर हम तुरंत इस निश्चय पर पहुंच जाते हैं कि वहां के सभी लोग बच्चों-बूढ़ों और स्त्रियों का भी अपवाद छोड़े बिना रातदिन शराब के नशे में धुत रहते होंगे, लड़खड़ाते हुए चलते होंगे, और बात-बात में दंगा फसाद कर बैठते होंगे।

क्रिश्चियनिया का सहारा लेकर हमारी कल्पना जार्जिया प्रदेश में से सारी बदसूरत स्त्रियों को निर्वासित कर देती है और अफ्रीका में किसी के होंठ पतले हो ही नहीं सकते इस बात को पत्थर की लकीर मान कर चलती है।

विदेशियों के साथ पहली बार जब हमारा परिचय होता है तब उन सबके चेहरे हमें एक से मालूम होते हैं। ये लोग एक दूसरे को पहचानते कैसे होंगे इसका हमें अचरज होने लगता है और हम सोचने लगते हैं कि ये लोग एक दूसरे के संबंधियों या संपत्ति पर बड़े निस्संकोच भाव से हक जमा लेते होंगे। माता को अपने बच्चों को ढूंढने में और पति को अपनी पत्नी को पहचानने में बड़ी कठिनाई होती होगी। अलीबाबा और चालीस चोर की कहानी में सारे पड़ोसियों के घर पर एक-सा निशान बना होने के कारण चोर जिस प्रकार अलीबाबा का घर पहचान नहीं सके थे उसी प्रकार इन लोगों की स्त्रियों को भी शाम को पुरुष समुदाय के घर लौटने पर अपना पिता कौन, पुत्र कौन और पति कौन, यह पहचानने में बड़ी कठिनाई होती होगी। सारे साहब लोग एक से गोरे होते हैं यही बात नहीं बल्कि उनका नाक नक्श और चेहरा मोहरा भी एक सा होता है। समस्त चीनी लोग एक से पीले और एक सी तिरछी आंखों वाले दिखाई देते हैं और तमाम नीग्रो लोग एक से काले होते हैं। इतना ही नहीं उनके होंठ एक से मोटे और बाल समान रूप से ऐंठे हुए होते हैं। भगवान श्रीकृष्ण अपनी सोलह हजार रानियों के महलों में एक ही समय एक साथ प्रकट होते थे इस पौराणिक कथा के मूल में एक जैसे दिखाई देने वाले इन विदेशियों का कुछ प्रभाव अवश्य होना चाहिए। गोरे काले और पीले विदेशियों की आधी से अधिक शक्ति एक दूसरे को पहचानने में ही खर्च हो जाती होगी, यह विचार हमारे मन में उनके प्रति बड़ी हमदर्दी उत्पन्न करता है।

परकीयों के बाह्य रूपरंग को लेकर हमें जिस प्रकार की उलझन होती है कुछ वैसी ही उनकी भाषा के संबंध में भी होती है। संस्कृत न जानने वालों को ऐसा लगता है कि गीर्वाण भाषा केवल सामासिक पदसमूहों से भरी हुई है जबकि अंग्रेजी में अपरिचित मनुष्य को गौरांग महाप्रभुओं की देवभाषा केवल संयुक्ताक्षरों से बनी हुई मालूम देती है। विदेशियों के साथ हमारा संपर्क ज्यों ज्यों घनिष्ठ होता जाता है त्यों-त्यों उनके चेहरे के सूक्ष्म भेद हमारी समझ में आने लगते हैं और हम उन्हें अलग-अलग पहचानने लगते हैं। उसी प्रकार कोई भी नई भाषा

ज्यों ज्यों अधिकाधिक हमारे कानों मे पडती जाती है त्यों-त्यों हम यह समझने लगते हैं कि उसके सारे शब्द एक समान नहीं बल्कि एक-दूसरे से भिन्न और भिन्नार्थ भी हैं। इसके बाद का सोपान है कि दो या अधिक समानार्थी शब्दों में से किसका प्रयोग कहा करना चाहिए और एक ही शब्द के एकाधिक अर्थ होने पर किस परिस्थिति में कौन सा अर्थ ग्राह्य मानना चाहिए यह हम मार्मिकता से समझने लगते हैं। शब्दों के ज्ञान के साथ साथ हमें उस देश के लोगों और उनके रस्मोरिवाज की जानकारी भी होती रहती है और अंत में हम उस अवस्था पर पहुच जाते हैं जहां प्रत्येक शब्द किसी ऐतिहासिक सत्य का उदघाटन करता है और उसका औपपत्तिक विश्लेषण किए बिना हम चैन नहीं पडता।

मैं बचपन में भाषा में इतिहास ढूढने के बजाय इतिहास में भाषा ढूढा करता था। गणित और अन्य विषयों की तरह इतिहास में भी मैं कुछ कमजोर ही था। इसलिए ऐतिहासिक स्थानों और नामों की उनकी वंशावलियों की एव महत्वपूर्ण घटनाओं के सन संवतों की मैंने कितनी खिचडी पकाई होगी इसका कोई हिसाब ही नहीं। दूसरे उस उम्र में गालियां कुछ इस कदर जबान चढी हुई थी कि अन्य कोई बात ठीक तौर से मुह से निकलती ही नहीं थी। निजामअली के बदले हजामअली बाजीराव के बदले पाजीराव और मदनिका के स्थान पर यवनिका जैसी गलतियां तो कदम कदम पर होती रहती थी। शाहजी महाराज को एक बार मैंने छत्रपति शिवाजी के बजाय बादशाह अकबर के पितृपद पर आसीन कर दिया था और चौसा का युद्ध उनके हाथों लडवा कर उनकी विजयिनी शमशेर द्वारा शहंशाह सिकंदर के छक्के छुडवा दिये थे। टीपू सुलतान को मैंने उसकी इच्छा के विरुद्ध चाम्बीजी की गोद में दत्तक बिठा दिया था और अंत मे पूना के शनिवार वाडे से चाणक्य के हाथों उसकी हत्या करवा दी थी। बीजापुर के बहमनी राज्य की स्थापना ब्राह्मणों द्वारा हुई थी ऐसा सिद्ध करके पूना के पेशवाओं को उन्हीं ब्राह्मणों की संतान साबित किया था।

ऐतिहासिक महत्व के सन-संवतों के सबंध में तो मेरा क्यास कभी सही नहीं निकला। अंत में मैंने सन याद रखने की कोशिश ही छोड दी और मैं इस महत्वपूर्ण शिक्षाशास्त्रीय निष्कर्ष पर पहुचा कि आज तक की सारी लडाइयां यदि दस-दस साल के अंतर से हुई होतीं तो विद्यार्थियों का नब्बे प्रतिशत परिश्रम बच जाता। इसी प्रकार इतिहास प्रसिद्ध पुरुषों ने यदि शताब्दी के आरंभ के वर्ष

मे जन्म लेकर अंतिम वर्ष मे मर जाने की परिपाटी चलाई होती तो वे खुद भी शत जीवी होते और बाद के युगो मे उनकी जीवनगाथा पढ़ने वाले अनेक विद्यार्थियो की अकाल मृत्यु टालने का श्रेय भी उन्हे मिलता। यदि इस प्रकार की इच्छामृत्यु मुश्किल हो तो विद्यार्थियो की परेशानी कम करने के लिए कम से कम हर राष्ट्र को दस-दस वर्ष के बाद अपने तमाम प्रसिद्ध पुरुषो को सूली पर चढ़ा देना चाहिए। इस हालत मे उनकी मृत्युतिथि को याद रखना उतना कठिन नही होगा। आजकल जीवन के हर क्षेत्र मे जब दशमलव पद्धति अपनाई जा रही है तो इस एक बात मे ही अपवाद क्यो ? दशमान पद्धति के कट्टर पुरस्कर्ता फ्रांस देश को इस मामले मे भी अगुआ होना चाहिए। समूचे इतिहास मे शताब्दी मे अंतिम वर्ष मे मरने की दूरदर्शिता सिर्फ नाना फड़नवीस ने ही दिखाई थी। उनकी कूटनीतिज्ञता जितनी इस एक समझदारी मे दिखाई देती है, उतनी और किसी कपट कारस्तानी मे नही।

ऐतिहासिक नामो मे मैं जो घपला करता था उसका मुख्य कारण यह था कि उन नामो से मिलते-जुलते शब्द बोलचाल की भाषा मे भी पाए जाते हैं। इस बात से प्रेरणा लेकर मैंने भाषा का उपयोग नामो की खिचड़ी पकाने के लिए न करते हुए उन्हे याद रखने के लिए करने का निश्चय किया। यह तरकीब बहुत कामयाब रही। मेरे कुछ निष्कर्षों का मुलाहजा हो — पानीपत के मैदान मे अनेक लड़ाइयां हो चुकी हैं। उनमे पानी की तरह बहने वाले खून के कारण ही उस स्थान का नाम पानीपत पड़ा होगा। 1857 के स्वातंत्र्य संग्राम के सेनापति तात्या टोपे ने टोपीवाले साहबो से युद्ध किया था, इसलिए उसका 'टोपे' नाम सार्थक है। इसी वजन पर मैं प्रत्येक ऐतिहासिक नाम का संबंध कभी स्वाभाविक रूप मे तो कभी थोड़ी बहुत खींचातानी करके किसी न किसी कथा के साथ जोड़ने लगा और इस सूत्र के सहारे उन्हे स्मृति की माला मे गूथने की कोशिश करने लगा। उसमे मुझे काफी हद तक सफलता मिली।

परंतु ज्यो ज्यो मैं बड़ा होता गया त्यो-त्यो स्मरणशक्ति के बजाय विचारशक्ति की आवश्यकता अधिकाधिक पड़ने लगी और मैं प्रत्येक बात का कारण ढूंढ़ने लगा। हमारे तीज-त्योहारो की चित्रविचित्र प्रथाओ मे कितना गूढ़ार्थ भरा हुआ है, वैदिक मंत्रो के उच्चारण मे कौन से लाभ होते हैं, पौराणिक कथाओ का उद्‌गम कहा से हुआ, हमारे रस्मोरिवाज इतनी सहस्राब्दियो तक अक्षुण्ण रूप से

फिर मेरा इसकी जड़ में कौन सी प्राणशक्ति काम कर रही है आदि बातों की मैं जाँच पड़ताल करने लगा। इन वादग्रस्त विषयों में समाधानपूर्ण निष्कर्ष निकाल लिए जाने पर मैंने अपना मोर्चा भाषा के इतिहास की तरफ मोड़ा। बाजार से एक कोश खरीद लाया और उसमें प्रत्येक शब्द की व्युत्पत्ति ढूँढ़ने लगा। श्रीमतीजी यदि 'खाना परोस दिया है' आदि घोषणाओं से मेरी एकाग्रता भंग करतीं तो मैं नाराज होने के बजाय उनके वाक्य के प्रत्येक शब्द की पूर्वपीठिका तलाश करने में मशगूल हो जाता। एक बार अपने पुत्र के लिए लड़की देखने के लिए जाना पड़ा। वहाँ भी सम्बन्धियों के कुलगोत्र की पूछताछ करने के बजाय उनके नामों के कुलगोत्र की गवेषणा में डूबा रहा।

भाषाविज्ञान के इस अध्ययन से मुझे जिन दुर्लभ सत्यों की उपलब्धि हुई वे अन्य भाषाविदों को कहाँ तक मान्य होंगे यह तो मैं नहीं कह सकता क्योंकि विद्वानों से अधिक झगड़ालू प्राणी इस भूतल पर ढूँढ़े नहीं मिलेगा। फिर भी जिज्ञासु पाठकों के लाभार्थ उनमें से कुछ प्रमुख निष्कर्ष यहाँ दिए जाते हैं —

1 प्राणियों की उत्पत्ति वनस्पति सृष्टि से हुई है इसका हमारे पूर्वजों को ज्ञान होना चाहिए। यह बात 'अश्वत्थ' शब्द की व्युत्पत्ति से सिद्ध होती है। इस शब्द का अंतिम संयुक्ताक्षर निकाल देने पर 'अश्व' बचता है जो प्राणीविशेष का बोधक है। इस 'अश्व' शब्द के पीछे भी गूढ़ इतिहास छिपा हुआ है। पहले शायद भूतल पर पालतू पशुओं में गाय भैंसों के अलावा सिर्फ दो ही प्राणी विद्यमान थे—कुत्ता और घोड़ा। कुत्ते के लिए संस्कृत शब्द है 'श्व'। इससे दूसरे पशु का नामकरण करने की बात सरल हो गई। जो 'श्व' नहीं है वह 'अश्व'। इन शब्दों से यह भी प्रमाणित होता है कि मनुष्यजाति का वह आदिकाल मृगया प्रधान रहा होगा। मृगया में ये दोनों प्राणी अत्यंत सहायक होते होंगे। उस युग में इनका निर्माण करके प्रकृति ने मनुष्य पर बड़ी कृपा की।

2 मनुष्य की उत्पत्ति बंदरों से हुई है यह सिद्धांत कोई उन्नीसवीं शताब्दी की ईजाद नहीं है। प्राचीन काल में लोगों को इसकी जानकारी अवश्य थी। बंदर के लिए 'वानर' शब्द का प्रयोग इसका अकाट्य प्रमाण है। उसका आद्याक्षर निकाल देने पर 'नर' शेष बचता है। 'वा' उपसर्ग संशय का बोधक है। आदिम मनुष्य का कद बंदर की तरह छोटा रहा होगा जिसके कारण बंदर को देखकर मनुष्य का भ्रम होता होगा। इसका एक और प्रमाण जनेऊ और वल्कल इन

गो शब्दो की व्युत्पत्ति से मिलता है । 'जनेऊ' का अभिताथ है जानु तक पहुचने वाला। (जानु=घुटना)। और कुतल (बाल) का शब्दाथ होता है जमीन को छून वाले। (कु=पृथ्वी)। जिसका जनऊ घुटने तक पहुचता हो और जिसके बाल धरती को छून हो उसका कद बहुत छोटा होना चाहिए।

3 हमारी देवभाषा के प्राचीन बोलन वाले इग्लड जस किसी अस्थिर जलवायु वाले प्रदेश क निवासी होने चाहिए। यह बात 'सुख' और 'दुख' इन शब्दो की व्युत्पत्ति स स्पष्ट हो जाती है। (ख=आकाश) आकाश क निरभ्र (सु+ख) होने पर उन्ह आनद होना स्वाभाविक था। इसी प्रकार अभ्राच्छादित गगन (दु+ख) को देखकर उनका विचलित होना भी समझ म आता है।

4 शरीर क अवयव वाचक शब्द और उनम मा्जित पदा द्वारा तत्कालीन सामाजिक स्थिति का अन्दाज लगाया जा सकता है। उदाहरणाथ उस जमान मे पगडी या तो पावा पर बाधी जाती होगी या फिर बधी हुई पगडी का योग्य आकार देने के लिए उसे पावा तल रोदने का रिवाज रहा होगा। (पग+पाव)। इसी प्रकार अगूठी का अनामिका के बजाय अगूठे म पहनने की प्रथा होगी। कम स कम इस शब्द के रूप स तो यही स्थापित होता है

5 शब्दो का इतिहास कभी कभी प्राचीन युग के व्यवसायो पर भी प्रकाश डालता है। उदाहणाथ पय' शब्द का ही ले लीजिए। अत्यत प्राचीन काल स इस शब्द क दो अथ प्रचलित रहे हैं दूध और पानी। इन दोनो क बीच क अभेद को देख कर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इस शब्द क रचनाकाल म देश म आभीर संस्कृति अत्यत प्रबल रही होगी और ग्वाला का तत्कालीन राज्यसत्ता पर काफी प्रभाव रहा होगा। दूध म पानी मिलाने वालो को किसी प्रकार की सजा न मिले इसी कारण स दोनो क लिए एक ही शब्द की योजना हुई होगी। पय म पय मिलाना जुम कसे हो सकता है? मृच्छकटिक नाटक म एक ग्वाले के लडके द्वारा राजा पालक का राज्य जीता जाने का उल्लख है। उस लडके (आयक) के राज्यकाल म ही इस द्विअर्थी शब्द की रचना हुई हो यह नितात सभव है। इसी नाटक म बादलो को 'आद्रमहिषोदर तुल्य' कहकर उनकी तुलना भीगी हुई भस के उदर स की गई है। सस्कृत म मेघ के लिए पयाद शब्द है और दूध देने वाली भैस को भी 'पयोद' कहा जा सकता है। इस शब्दयोजना स फिर एक बार दूध और पानी का अभेद स्थापित होता है। दूध देन वाली भस

और पानी बरसाने वाले बादल के बीच उपमान-उपमेय संबंध स्थापित हो जाने पर दूध और पानी का समानधर्म अपने आप सिद्ध हो जाता है। हो सकता है कि इन शब्दों द्वारा गोपराजा के आश्रित कवि ने ग्वाला की बदनामी पर छींटाकशी की हो। पर अधिक संभावना प्रथम निष्कर्ष के पक्ष में ही रहती है इसी प्रकार पटरानी के लिए सम्मानसूचक 'महिषी' शब्द का प्रयोग भी आभीर संस्कृति के उत्कर्ष के उसी कालखंड में हुआ होगा।

6 'अंबर' शब्द आकाश और वस्त्र दोनों अर्थों का वाचक है। इस शब्द का उद्भव रजक वंश के राजाओं के समय में हुआ होगा। इस शब्द को भी द्विअर्थी बनाने के पीछे उद्देश्य यही रहा होगा कि नील की अधिकता के कारण वस्त्र यदि आकाशवर्णीय हो जाए, तो किसी को शिकायत का कारण न रहे। इन सत्ताधीशों के राज्यकाल में हिमधवलता को शायद धुले हुए वस्त्रों का अनिवार्य गुण नहीं माना जाता था, और शुभ्रता के उचित उपमान रजत की खोज भी शायद तब तक नहीं हुई थी। यही कारण है कि सोना लोहा कांसा आदि धातुओं के कारीगरों के लिए जिस प्रकार क्रमशः सुनार लोहार, कसेरा आदि व्यवसाय सूचक संज्ञाएं दी गई हैं, उसी प्रकार चांदी का काम करने वालों के लिए कोई अलग नाम नहीं दिया गया।

7 'वर्ण' के संस्कृत में दो अर्थ होते हैं। रंग और जाति। 'रक्त' शब्द के भी दो अर्थ हैं। लाल रंग और रुधिर। स्वाभाविक है कि लाल रंग की पहली चीज जिस पर मनुष्य की नजर पड़ी हो, वह खून हो। अब वर्ण के जातिवाचक अर्थ पर भी विचार कर लिया जाए। इसका एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा। प्राचीन काल में वेश्याओं के कोठे अक्सर व्यापारियों की दुकानों के ऊपर हुआ करते थे। इसी कारण से व्यापार करने वाले वणिकों के लिए संज्ञा बनी 'वैश्य'।

8 कुछ फुटकर शब्द —गहनों के लिए अलंकार शब्द अत्यंत उपयुक्त है। उस जमाने में भी लोगों को स्त्रियों के आभूषणप्रेम से काफी परेशानी रही होगी। इस हालत में गहनों का जिक्र छिड़ते ही उनके मुख से 'अलम्' (पर्याप्त, काफी है) की ध्वनि निकल पड़ना स्वाभाविक था।

उपनिषदों के साथ-साथ आरण्यक नामक ग्रंथों की रचना करने वाले महापंडित उस युग में तो अरण्य में रहने के कारण आरण्यक जाति के कहलाते होंगे या फिर उनके पोथों में भरा हुआ ज्ञान कोरा अरण्यरुदन प्रमाणित होने की वजह

से उन ग्रथा का नाम अरण्यक पडा होगा।

9 लिग और वचन —पत्नी के लिए दारा' इस पुल्लिगी और सदा बहुवचन म प्रयुक्त होने वाले शब्द से यह ध्वनित होता है कि उस युग म पुरुष की अनक स्त्रिया होती हागी और वे पुरुषो की ही तरह ढीठ और झगडालू होती हागी।

इसी प्रकार मित्र' शब्द का नपुसकलिगी प्रयोग यह सिद्ध करता है कि मित्र पत्नी के साथ अन्य मित्रा का व्यवहार अत पुर के कचुकी क समान हाना चाहिए।

23 साहित्य परिपद् की तैयारी

पहले एक बार हमारे नगर म चारा का सम्मलन हुआ था जिसका वणन किया जा चुका है। उसके बाद बडोदा और अकोला म आयोजित साहित्य-सम्मलन के वड हृदयगम वणन अखबारा म पढ़न म आए और तभी स साहित्य परिपद जसा कोई सम्मेलन अपन शहर म आयाजित करन की इच्छा मर मन म कुल बुलाने लगी। काई भी नया काय शुरू करने स पहले अपन अभिन्न मित्र वडूनाना और पाडूतात्या स सलाह मशवरा करन की मरी पुरानी परिपाटी है। इसी लिए एक रोज मैंने दोनो को अपन घर बुलवा लिया और मन म घुटन वाली बात उनके सामने रखी। मरा विचार इन दोना को भी पसन्द आया।

परतु सन्यासी के विवाह की तयारी जिस प्रकार उसकी चोटी उगान म करनी पडती है उसी प्रकार साहित्य परिपद की तयारी हम खुद ग्रथकार बनकर करनी पडी। परिपद की निमत्रण पत्रिका के नीचे सही करन वाल लाग खुद अनुभवी ग्रथकार हा यह नितात आवश्यक था। इसी प्रकार साहित्यकारा का स्वागत करने वाला समिति क सदस्या के लिए भी खुद साहित्यकार होना वाछनीय था। परिपद के सामन आने वाल प्रस्तावा म कुछ स्थानीय लोगा द्वारा किए जाए यह अत्यत आवश्यक था पर इसक लिए उनका भी साहित्यकार होना जरूरी था। साहित्यक्षत्र म हमारे शहर का जो रुतबा था उस देखत हुए यह समझन म हम देर नही लगी कि यह महान उत्तरदायित्व अततोगत्वा हम तीनो पर ही पडने वाला है। खुद ग्रथ लिखकर साहित्यकार सभा के पात्र बनने की सूचना से पाडू तात्या का हौसला कुछ पस्त होता हुआ दिखाई दिया। परतु हम दोना ने जब उनकी सहायता करने का वचन दिया तो वे तयार हो गए। उनका आत्मविश्वास शीघ्र ही इस हद तक बढ गया कि उन्होने हमसे किसी भी प्रकार

की सहायता लेने से इनकार कर दिया। हमारे तात्या वैसे बड़े जिंदादिल और खिलाड़ी वृत्ति के आदमी हैं। अपना-अपना ग्रंथ सबको एक महीने के भीतर छपवा लेना चाहिए यह निर्णय भी इसी बैठक में हो गया।

दूसरे ही दिन मैं एक संक्षिप्त और सरल अंग्रेजी उपन्यास खरीद लाया और एक मित्र की सहायता से उसका अनुवाद करना आरंभ कर दिया। अनुवाद का काम आठ दिन में पूरा हो गया। इसके बाद मित्र की सहायता की आवश्यकता न रही और मैंने उसे बड़ी सफाई से खिसका दिया। इसके बाद का सप्ताह मैंने मूल के अंग्रेजी नामों और रस्मोरिवाज के स्थान पर भारतीय नाम और रीतिरिवाज जड़ने में खर्च किया। इसमें वैसे तो कोई कठिनाई नहीं हुई, परंतु मूल उपन्यास में अंग्रेजी समाज में प्रचलित बॉलडांस, प्रेमविवाह, स्त्रीपुरुष का उन्मुक्त मिलन आदि सुधारवादी ढंग के प्रसंगों की भरमार होने के कारण अनुवाद में सब पात्रों को सुधारवादी ढांचे में ढालना पड़ा। इससे मेरा परिश्रम कम हो जाने के साथ-साथ सुधारकों की खिल्ली उड़ाने का मौका भी अनायास ही मिल गया। उदाहरणार्थ, दुराचारी पात्रों के दुष्कृत्यों का वर्णन करते समय मैं 'यह होता है सिर के बाल बढ़ाने का और स्त्रियों द्वारा जूड़ा बांधा जाने का परिणाम'—आदि टिप्पणियां जोड़ना नहीं भूला। परंतु इस तरकीब ने एक और दुविधा खड़ी कर दी। मूल उपन्यास सुखांत होने के कारण अंत में नायक-नायिका का विवाह होकर शेष जीवन उन्होंने सुख से व्यतीत किया—ऐसा वर्णन था। उसे अपनी भाषा में ज्यों का त्यों उतारने में मुझे बड़ा संकोच महसूस हुआ। आधुनिकता में आकंठ डूबे हुए सुधारकवृत्ति के जोड़े को अंत में सुखी होता दिखाना धर्म के साथ सरासर द्रोह था और उससे हमारे भारतीय समाज के रसातल में धंस जाने की पूरी संभावना थी। इसलिए मूलउपन्यासकार के अनुसार गिरजे में उनका विवाह होता दिखाकर और मधुयात्रा पर उनकी रवानगी करने के बाद मैंने उपन्यास का अंत इस प्रकार किया—

'यह सुधारक युगल रेलगाड़ी से यात्रा कर रहा था। रेल जब एक पुल पर से गुजर रही थी तब पुल टूट गया और उनका डिब्बा इंजन के साथ नीचे नदी में गिर-कर डूब गया। पीछे के डिब्बों के साथ उनके डिब्बे को जोड़ने वाली कड़ी टूट जाने के कारण और उसी समय दैवयोग से भूचाल के कारण दोनों के बीच एक बहुत बड़ी पहाड़ी खड़ी हो जाने के कारण बाकी के डिब्बे सुरक्षित बच गए।

याद की जाँच से मालूम हुआ कि इन डिब्बों में यात्रा करने वाले सभी मुसाफिर सनातन धर्माभिमानी थे जबकि टूट जाने वाले डिब्बे के सारे यात्री सुधारक थे। पाठकों को इस योगायोग से सबक सीखना चाहिए।"

उपन्यास प्रकाशित हो जाने पर मुझ पर कहीं साहित्यचौर्य का इलजाम न लगाया जाए इस हेतु मैंने बड़ी दूरअंदेशी के साथ प्रस्तावना में निम्नोक्त वाक्य जोड़ दिए—'यह उपन्यास नितांत मौलिक है और इसमें किसी अन्य पुस्तक की सहायता नहीं ली गई। तथापि इसका थो के नामक प्रसिद्ध अंग्रेजी उपन्यास के साथ साम्य पाया जाए तो इससे आलोचकों को उछल-कूद मचाने की जरूरत नहीं। प्रस्तुत लेखक के लिए तो यह संकोच का नहीं बल्कि बड़े अभिमान का विषय है कि उसके विचार भाषाशैली किसी प्रसिद्ध आंग्ल उपन्यासकार के विचारों और शैली के साथ इतना मेल खाते हैं।" इस स्पष्टीकरण के बाद अनुवादकार्य में मेरी सहायता करने वाले उपरोक्त मित्र का आभार मानना भी मैं नहीं भूला।

इस प्रकार ग्रंथ तैयार हो जाने पर मैंने उसे छपवाने के लिए बंबई भेज दिया। प्रकाशक की सूचनानुसार बीच-बीच में कुछ चित्र और आरंभ में मेरा फोटो छापने की बात भी तय हुई। पर चित्रों के नीचे छापी जाने वाली इबारत में न मालूम कैसे कुछ गड़बड़ी हो गई। चित्रकार ने उन दो चार वाक्यों को छोड़कर बाकी का उपन्यास तो पढ़ा नहीं था और लेखक के साथ उसका कई बातों में तात्त्विक मतभेद होना भी स्वाभाविक था। अतः अफसोस की कई छोटी मोटी गलतियाँ हो गईं। उदाहरणार्थ एक स्थान पर नायिका द्वारा नायक का आलिंगन किया जाने का वर्णन था। इस प्रसंग का चित्र भी छपा था। परंतु नायक का नाम चित्रकार के ध्यान में न रहने के कारण चित्र में उक्त आलिंगन का लाभ खलनायक को मिल गया। एक स्थान पर खलनायक अंधेरी रात में नायिका के पिता के वसीयतनामे की चोरी करता है ऐसा वर्णन था। इस प्रसंग को चित्रित करने में तो चित्रकार के सामने अत्यंत भारी उलझन थी। अंधेरे में होने वाली चोरी को चित्र में कैसे दिखाया जाए? इसलिए उसने ब्योरे में मामूली परिवर्तन करके चोरी के समय को मध्याह्न में बदल दिया और पूरे प्रसंग को दोपहर की चिलचिलाती हुई धूप में साकार किया। वसीयतनामे की शर्तों को पढ़ने में पाठकों को आसानी हो इस उदात्त विचार से उसका आकार साइनबोर्ड जितना

बडा करके उसका प्रत्येक शब्द इश्तहारो के शीर्षक की तरह बडे-बडे अक्षरो मे लिखा गया। इसी प्रकार उपन्यास के अत म खलनायक को फासी होकर नायक-नायिका के विवाहबद्ध होने का उल्लेख था। परतु चित्रकार के कोमल मन को यह स्थिति मजूर न होने के कारण उसने खलनायक को भागते हुए दिखाया और फांसी के मचान पर एक ओर जल्लाद और दूसरी ओर खुद ग्रथकार को लटका दिया। विवाह-बधन के चित्र म 'बधन' शब्द का गलत अर्थ लगाकर उसने नायक-नायिका के हाथपावो को हथकडी बेडी म जकड दिया। चित्रकार की इन सारी त्रुटियो का निवारण मुझे शुद्धिपत्रक जोडकर करना पडा।

उधर बड़ूनाना का लेखनकार्य भी जोरो से चल रहा था। उन्ह उपन्यास कहानियो स शुरू से ही चिढ थी। भारत की अवनति के अनेक कारणो म वे उपन्यासो के प्रचार को प्रमुख मानते थे। बच्चो के हाथो म किस्से कहानियो की पुस्तको के बजाय गणित या व्याकरण का ग्रथ पढना ही श्रेयस्कर है इस मत का प्रतिपादन वे जोरो से करते रहते थे। घुटना चलने वाले बच्चो के हाथो म भी कहानियो और चित्रो के बजाय गभीर विषयो से भरे हुए ग्रथ या विविध ज्ञान से पूर्ण समाचारपत्र देना ही हितकर है ऐसी उनकी स्पष्ट राय थी। इस बात को लेकर एक बार उ ह बडा विचित्र अनुभव हुआ। उनके यहा एक दैनिक समाचार पत्र आता था। रोज सुबह उनके पढ लेने के बाद उनकी गृहिणी समाचारपत्र को बैठक म स उठाकर भीतर ले जाती थी। कहती कि बच्चो के काम आएगा। अपनी अर्धांगिनी का बच्चो की शिक्षा की ओर इतना ध्यान है और इस कच्ची उम्र म ही बच्चो को सासारिक ज्ञान की जानकारी प्राप्त हो रही है इस बात से नाना को बडा सतोष हुआ और थोडा-बहुत अभिमान भी। एक रोज अखबार की पढाई किस प्रकार होती है यह देखने के लिए वे पत्नी के पीछे पीछे गये और छिप कर खडे रहे। मालूम दिया कि बच्चे भी अखबार की बेचनी से राह देख रहे थे। परतु अब तक की बातो से उ हे होने वाला आनद बाद की घटनाओ को देखकर काफूर हो गया। जिस अखबार का उपयोग चित्तशुद्धि के लिए होना चाहिए उसका प्रयोग शरीरशुद्धि के लिए होता देखकर भला किसे दुख नही होगा। मस्तक पर धारण करने योग्य सत्साहित्य का शरीर के अधोभाग मे विनियोग होता देखकर नाना की आखो म शोकाश्रु उभर आए और वे सतोप से थर-थर कापने लगे। अब यह सही है कि उस रोज के अखबार का सपादकीय लेख कृपि

के विकास के संबंध में था। परंतु उस कागजी खेती को इतनी जल्दी खाद मिल जाएगी यह कल्पना नाना तो क्या खुद संपादक के दिमाग में भी नहीं आई होगी। पत्र में एक लेख अत्यंत अश्लील और गंदा था। उसकी यथायोग्य खातिर होती देखकर नाना को उस दुःख में भी कुछ संताप हुआ। भविष्य में समाचारपत्र का किसी भी घरेलू काम में उपयोग न करने की उन्होंने पत्नी को कड़ी हिदायत दी। बहुत विनती की जाने पर उन्होंने केवल एक अपवाद छोड़ा। पत्र के गरमा-गरम और मसालेदार लेखों का उपयोग दाल में छौंक लगाने के लिए करने की इजाजत उन्होंने पत्नी को दे दी।

इस प्रकार बहूनाना को गंभीर और शास्त्रीय वाङ्मय आरंभ से ही पसंद होने के कारण उनका ग्रंथ किसी वैज्ञानिक और गहन विषय पर ही होगा इसका अंदाजा मुझे पहले से ही था और अंत में वह सही निकला। नाना ने महीने भर के भीतर बारहखड़ी और पहाड़ों का समावेश करके एक ग्रंथ लिख डाला और उसे छपवा भी दिया। ग्रंथ में रह जाने वाली अशुद्धियों की संख्या को देखते हुए ऐसा लगता था कि उसका मुद्रण किसी भयानक भूचाल के दौरान में हुआ होगा। या फिर यह भी संभव था किसी ग्रंथ के प्रकाशन के साथ साथ ही शुद्धिपत्र का प्रकाशन करने के हेतु से नाना ने ये गलतियां जान-बूझकर रहने दी हों। हमारे नाना हैं बड़े दूरअंदेश आदमी। खैर प्रयोजन कुछ भी रहा हो, इस सारी गड़बड़ी का सार यह निकला कि गणित जैसे निश्चित नियमों वाले विषय में भी अनेक स्थानों पर वैचित्र्य और नावीन्य के दर्शन हुए। गणित जैसे रूखे विषय को भी रोचक बनाने में इन अशुद्धियों ने बड़ी सहायता पहुंचाई। ग्रंथ के लेखनकाल में नाना के भांग गांजे की मात्रा क्यों बढ़ गयी थी इसका रहस्य अब मेरी समझ में आया। शुद्धिपत्रक में नाना ने इन सारी अशुद्धियों को सुधार दिया था इसमें कोई संदेह नहीं। पर मूलग्रंथ और शुद्धिपत्रक इन दोनों में से सिर्फ एक ही पुस्तक खरीदने पर किसी भी पाठक का काम चलने वाला नहीं था। उसके लिए दोनों पुस्तकें एक-साथ खरीदना निहायत जरूरी था और शायद इसी हेतु से नाना ने यह सारा गोडबंगाल फैलाया था। उनकी इस योजना को कल्पनातीत सफलता मिली। शुद्धिपत्रक में भी इतनी अधिक अशुद्धियां रह गईं कि उन्हें सुधारने के लिए दूसरा और दूसरे का नियमन करने के लिए तीसरा यों यह परंपरा चार-पांच पत्रकों तक पहुंची और प्रत्येक शुद्धिपत्रक मूलग्रंथ के अनिवार्य

परिशिष्ट के रूप म छहल्ले म दिखन लगा। आकार के हिसाब स देखन पर मूल ग्रथ की अपेक्षा इन शुद्धिपत्रका का ही विस्तार अधिक था।

इस ग्रथ म पहाडों के अलावा वणमाला ओर बारहखडी भी दी गई थी। साथ मे लबी चौडी प्रस्तावना भी थी जिसम नाना ने अपने उपजाऊ भेजे की शोभा देने वाली अनेक कल्पनाए प्रस्तुत की थी। पाठका के लाभाथ उक्त प्रस्तावना के कुछ अश यहा उद्धत किये जाते हैं। नाना ने लिखा था —

'हिंदू समाज म अनादि काल स चली आने वाली वणव्यवस्था के समान व्याकरण म भी वर्णों का नियमन आवश्यक है। इसके पक्ष मे हमारे पास कुछ अकाट्य प्रमाण हैं। समाज म भिन्न भिन्न वर्णों की उत्पत्ति जिस प्रकार विराट पुरुष के विभिन्न अगो म से हुई है उसी प्रकार वणमाला के व्यजनो का जन्म भी मुख के कठओष्ठादि विभिन्न भागो स होता है। सामाजिक व्यवस्था म वर्णों की सख्या चार है जबकि ध्वनिशास्त्र की दृष्टि स व्यजनो के उद्गम स्थान पाच हैं, यही उनके बीच म एकमात्र भेद है। प्रत्यक वग के व्यजन पुरुषत्व के प्रतीक हैं जबकि स्वर स्त्री जाति के प्रतिनिधि हैं। अत प्रत्येक वग के व्यजनो के अनुरूप एक एक स्वर की नियुक्ति कर देनी चाहिए। पाच पुरुषवर्गीय व्यजना के लिए एक स्त्री-वर्गीय स्वर की नियुक्ति करने स इस व्यवस्था का सबध पाडवो के काल से भी जोडा जा सकेगा। स्वर स्त्रिया की तरह स्वभाव से ही मृदु होते हैं जबकि व्यजन पुरुषा की तरह कठोर। जिस प्रकार स्त्री के अभाव मे पुरुष का जीवन अधूरा रह जाता है उसी प्रकार स्वरो की सहायता के बिना व्यजनो का उच्चारण भी पूण नही होता।

"व्यजनो का उनके उद्गम स्थान के क्रम से विचार करने पर यह मालूम देता है कि कठ्य व्यजन ब्राह्मणो के प्रतीक हैं, अतएव सवश्रेष्ठ हैं। तालू मूर्धा, दात, और होठो का स्थान कठ से उत्तरोत्तर नीचा होने के कारण तालव्य, मूधन्य, दत्य और ओष्ठ्य वर्णों की योग्यता भी उत्तरोत्तर कम होनी चाहिए। उन्हे क्रमश क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अतिशूद्रो का प्रतिनिधि मानना उचित होगा। उत्तम भक्ष्य भोजन पदार्थों को निगलने का अधिकार जिस प्रकार केवल कठ को है और बाकी के अवयवो का काम उन्हें खाने के योग्य बनाने का है उसी प्रकार कठ रूपी गर्भगृह की उसके तालू, मूर्धा इत्यादि परिसरो के साथ रक्षा करने का काम दातो का है। दातों के महाद्वार के बाहर होठो की अतिरिक्त रक्षापक्ति आती है जो

मूर्धा के बाल रूपी भाला से सज्जित होकर भीतरी स्थानों की रक्षा करती है। वैसे तो दन्त्य और ओष्ठ्य व्यंजनों की गणना शूद्र और अतिशूद्र के रूप में होती है परन्तु अन्य दन्तोष्ठों के साथ विनिमय करने की अतिरिक्त जिम्मेदारी भी उन्हीं के ऊपर आ पड़ने के कारण वे कभी कभी अपनी मर्यादा का अतिक्रमण करके वाणिज्यवृत्ति धारण कर लेते हैं।

'इस प्रकार व्यंजनों के उद्गम स्थानों के संबंध में प्रकृति द्वारा जब जातिभेद का पालन कठोरता से होता है, तो उनके वंशजों द्वारा उसका पालन न किया जाना बड़ी उद्वेगजनक और लज्जास्पद बात है। कंठ्यादि वर्गों के अनुरूप स्वरों का अपने अपने वर्ग के व्यंजनों के साथ ही विवाह होना उपयुक्त होने पर भी अन्य वर्गों के व्यंजनों के साथ उनका संबंध जोड़ा जाता है यह बड़ी शोचनीय बात है। यह तो खुलेआम वर्णसंकर है। संयुक्ताक्षर रूपी स्नेहबंधन भी स्ववर्गीयों के अंतर्गत होना ही इष्ट है। व्यंजनों का भिन्नवर्गीयों के साथ गठबंधन करना वर्णव्यवस्था के सर्वथा प्रतिकूल है। जब हमारे शास्त्रों की स्पष्ट आज्ञा है कि शूद्र की छाया पड़ने से भी पाप होता है तो फिर व्यंजनों का इस प्रकार गलबहियां डाल कर प्रेमालाप करना तो घोर पातक माना जाना चाहिए। हम तो वर्णशुद्धि के इस हद तक पक्षपाती हैं कि हमारे मतानुसार तो शूद्र और अतिशूद्र वर्णों अर्थात् दन्त्य और ओष्ठ्य व्यंजनों को श्रेष्ठवर्गीय व्यंजनों से अलग करके छापने की व्यवस्था होनी चाहिए। इससे भाषा के क्षेत्र में होने वाले वर्णसंकर पर प्रतिबंध लग सकेगा।"

उपरोक्त उद्धरण बहूनाना द्वारा लिखित 'वर्णमाला एवं अक्षर प्रवेश' नामक वृहत् ग्रंथ और उसमें ग्रथित सामग्री से पाठकों का परिचय कराने में सहायक होगा। उनके एतद्विषयक विचारों को अमल में लाने के लिए वे इन सुधारों को भाषा में स्वीकृत करवाने वाला एक प्रस्ताव भी साहित्य परिषद् के विचारार्थ रखने वाले हैं। इसीलिए उनके ग्रंथ का उपरोक्त परिच्छेद कुछ लंबा होने पर भी यहां उद्धृत किया गया है।

बहूनाना की ग्रंथ लेखनक्षमता के संबंध में तो मुझे कभी कोई शंका नहीं थी पर पाडूनारणा की बात और थी। वे बड़े मौजी जीव हैं। अतः मेरे मन में बार-बार यह शंका उठती कि यह लिखने लिखाने की जिम्मेदारी डालकर मैंने कहीं उनके गले में झंझट तो नहीं बांध दिया। एक महीने की मोहलत में से पहला सप्ताह तो उन्होंने सिर खुजाने में बिता दिया। यहां तक कि खुजा खुजा कर

उनकी खोपडी पर खरोंचें पड गई। परंतु इससे खोपडी के भीतर की उलझन का विशेष निराकरण नहीं हुआ। इसके बाद वे रोज मेरे पास आकर ग्रंथ कैसा होना चाहिए, पृष्ठों की संख्या कितनी हो, प्रत्येक पृष्ठ पर कितने शब्द हों, जिल्द का गत्ता कितना मोटा हो आदि बातों की चर्चा करने लगे। निश्चित की हुई अवधि का दूसरा चतुर्थांश उत्थान या ग्रंथ के बाह्य रंगरूप के संबंध में सरपच्ची करने में बिता दिया। इस हिसाब से चले तो तात्या आगे भी क्या तीर मारेंगे इसके लक्षण मुझे दिखाई दे गए। परंतु शीघ्र ही मेरा अंदाज गलत होने के चिह्न दिखाई देने लगे। तीसरे सप्ताह में तात्या का घर से बाहर निकलना बिलकुल बंद हो गया। रात को दो-दो बजे तक उनके कमरे में रोशनी दिखाई देने लगी। उनके खर्राटे, जो आमतौर पर सडक तक सुनाई देते थे, अब सुनाई नहीं पडते थे, कुछ दिन बाद वे मेरे यहां से एक कैलेंडर मांगकर ले गये। मैंने सोचा कि बचे हुए दिनों का हिसाब लगाकर काम को अवधि के भीतर समाप्त करने के लिए ही उन्हें कैलेंडर की जरूरत पडी होगी। उनकी इस लगन को देखकर मैं मुग्ध हो गया।

तीसरे सप्ताह के अंत में तो उनका ग्रंथ छपाई के लिए भेजा जा चुकने की खबर कानों में आई। तात्या के बारे में आजतक मेरे मन में जो गलतफहमी थी वह उनकी इस कर्त्तव्यपरायणता से बिलकुल दूर हो गई। अनुकूल अवसर मिलने पर मनुष्य नर से नारायण कैसे बन जाता है, इसका तात्या ने प्रत्यक्ष उदाहरण प्रस्तुत किया था। एक दिन सुना कि उनके ग्रंथ की पृष्ठ संख्या चार सौ के आस पास होने जा रही है। यह सुनकर मेरा दर्प चूर्ण हो गया और अपने सवा सौ पन्ने के क्षीणकाय उपन्यास की मुझे लाज आने लगी। उनके प्रति हमारा व्यवहार भी बदल गया। विद्वता के तेज से उद्दीप्त उनकी मुखमुद्रा देखने की बार बार इच्छा होने लगी और उनके दर्शनों के लिए हम तरसने लगे। बडी कठिनाई से उनसे मुलाकात हुई तब हम उनके साथ बडे अदब से पेश आए। अगले महीने की पहली तारीख की ओर हमारी आंखें लग गई। महीने के अंत में तो यह दशा हुई कि हम अपनी पुस्तकों को बिलकुल भूल गए और तात्या की विद्वता से अभिभूत होकर उत्सुकता से उनके ग्रंथ की राह देखने लगे।

आखिर वह सुनहरा दिन आया। बडूनाना और मैं अपनी-अपनी पुस्तकों की एक-एक प्रति लेकर उनके घर गए। बरामदे में ही उनके प्रचंड ग्रंथराज के कई

गट्ठर पड़े हुए थे और तात्या उनकी ओर साभिमान दृष्टि से देखते हुए बठ गे। हमे देखते ही उन्होने कहा, ग्रथरचना मैं समझता था उतनी मुश्किल बात नही है। हम ध्यान नही देते तभी तक कुछ हौआ सा लगता है। पर एक बार निश्चय करके जुट गए कि काम बायें हाथ का खेल हो जाता है।"

उनके विशाल ग्रथ की तुलना मे हमारे छुटभैय ग्रथो की अवगणना होकर हम निराशा न हो इस दृष्टि से तात्या ने हम प्रोत्साहन दिया और कहने लगे कि 'पहले तुम अपनी पुस्तकें दिखाओ। अपना वृहद ग्रथ मैं बाद म दिखाऊगा। इसमे शरमाने की कोई बात नही हैं। तुम लोगो का यह पहला ही प्रयत्न है यह मैं जानता हू। तुमसे बहुत ज्यादा अपेक्षा भी नही है। और फिर चार पाच सौ पष्ठ का ग्रथ लिख देना हर ऐरे-गैरे नत्थू खरे के बूते की बात तो है नही।"

तात्या से अभय प्राप्त हो जाने पर हमने सजाते शरमाते अपनी-अपनी पुस्तकें उन्हे दिखाइ। उन्होने दोनो पुस्तकें एक एक हाथ म लेकर पहले तो उनके वजन का जायजा लिया। फिर बोले 'एक महीने के भीतर इतनी वजनदार पुस्तक लिख देना वाकई तुम लोगो के लिए भूषणास्पद है। मैंने भी अपनी अल्प सामर्थ्य के अनुसार कोई चार सौ पन्नो का ग्रथ लिख डाला है।' यह कहते हुए उन्होंने बढिया कपडे की जिल्द और सुनहरे अक्षरो से मडित अपने ग्रथ की एक प्रति नाना के हाथ मे रखी। ग्रथ की जिल्द और सज्जा को देखकर एक क्षण के लिए तो नाना की आखें चौंधिया गइ। पर जसे ही उन्होने पन्ना पलट कर देखा, उन्हें कुछ ऐसी दुर्निवार हसी छूटी जो काबू मे ही नही आई। हसी का आवेग कुछ कम होने पर वे चिल्लाए 'अरे तात्या! यह तो डायरी है। वाह गुरू! इसी के बलबूते पर पिछले महीने भर से हम झासा दे रहे हो! मानते हैं उस्ताद! इसके कोरे पन्ने तुम्हारे कोरे दिमाग की ही तरह शोभा दे रहे हैं। पर गुरु यह क्या किया? डायरी ही सही, पर वह आने वाले साल की न हो तो कम स कम इस वष की तो छपवानी थी। तुम्हारी गति सदा तीन लोक से न्यारी रही पर रहे घामड के घामड! यह पिछले साल की डायरी किस खुशी म छपवा मारी है? इसे खरीदेगा कौन?'

तात्या खिसिया गये। झेंपते हुए बोले 'भई एक गलती और हो गई है। पिछले साल फरवरी मे उनतीस दिन थे जबकि मैं अट्ठाइस ही दिन गिनकर चला। इसस फरवरी के बाद क महीनो म तारीख के हिसाब से वार सब गलत हो गए हैं।'

"कोई फर्क नहीं पडता, तात्या ! जब डायरी ही पिछले साल की है, तो अव्वल तो इसे कोई खरीदेगा नहीं, और खरीदेगा भी, तो इसस उसका कोई नफा नुक्सान नहीं होगा। अब तो विंध गया सो मोती ! इसम कितनी ही गलतिया क्यो न हो, तुम्हें ग्रथकार बनान का काम तो इसने पूरा कर ही दिया है। इसकी दो दो प्रतिया अधिवेशन म भाग लेने वाल हर प्रतिनिधि को बिना मूल्य बाट देंगे। कुछ पट्ठर कम हो जाएगे। अब इसकी सोच छोडो। अब आगे के काम पर ध्यान देना चाहिए।' नाना ने बात को रफा दफा कर दिया।

अगले रविवार को नगर के सावजनिक पुस्तकालय के दालान म सम्मेलन की प्रारभिक सभा करने का निश्चय हुआ। उसके प्रचार के लिए बाटे जाने वाले हस्तपत्रा का मसविदा बहूनाना ने तयार किया। वतनी और व्याकरण के नियमो के साथ अधिक परिचय न होने वाले सामान्यजनो के लिए हस्तपत्रक लिखने का काम पाडूतात्या को सौंपा गया जिसे उन्होने बडे समाधानकारक ढग से अजाम दिया। दोनो पत्रको के नीचे हम तीनो के दस्तखत थे जिनके अत म हमारी साहित्यिक उपलब्धि के रूप मे क्रमश "प्रसिद्ध मौलिक उपन्यासकार', 'वणमाला एव अकज्ञान नामक भाषाविज्ञान एव गणित के सैद्धातिक ग्रथ के रचयिता' एव 'सम्मेलन डायरी के सूत्रधार" जसे मोहक विशेषणों की बिरुदावलि जोडी गई थी।

होले-होले सभा का दिन आ पहुचा। सभा का कार्यारभ ठीक चार बजे होने वाला था। पाच दस मिनट भी पहले पहुच गए तो अपना रोब नहीं जमेगा इस डर से हम तीनो ऐन वक्त पर पहुचने की योजना बना कर घर से निकले। सभा म बेहिसाब भीड होगी यह मानकर हमने बदोबस्त के लिए पुलिस के दो अधिकारी बुलवा लिए थे। परतु हम सभास्थान पर पहुचे तब वहा पर चिडिया का पूत भी नहीं था। ढलती उम्र के कारण हमारी दृष्टि शायद ठीक काम नहीं दे रही यह सोचकर हमने ऐनक के काच पोछ पोछ कर चारो तरफ खूब घूर घूरकर देखा—पर सब व्यथ। चश्मे के शीशो मे सामने उपस्थित वस्तु को स्पष्ट और हूबहू दिखाने की शक्ति तो होती है, पर शून्य के स्थान पर नई वस्तु निर्माण-करके दिखाने की सामथ्य उनमे बिलकुल नहीं होती। हमने बडे ठाठ से भीड का नियत्रण करने के लिए पुलिस के अफसर बुलवाये थे। पर जहा भीड ही नहीं थी वहा व बेचारे उसका बदोबस्त क्या खाक करते। वे निर्विकार भाव स इधर-उधर चक्कर लगा रहे थे। पर न तो उन्हे किसी सभासद का धक्का लगा, न किसी

सभागार की उजाड़ी ठोकर लगी। विज्ञापन में कहीं हमने तारीख, वार, समय आदि का उल्लेख करने में तो कोई गलती नहीं कर दी? यही सोच अन्त में हमने इश्तहारों की आँखों पर ऐनक लगाकर बड़ी बारीकी से निरीक्षण किया, पर वहाँ कोई गलती मालूम नहीं दी। अन्त में यह मानकर कि हमारी घड़ियाँ शायद ठीक समय नहीं बता रही या फिर हमने उसे पढ़ने में गलती की है, हमने तीनों घड़ियों को मिलाकर देखा। पर यहाँ भी निराशा ही पल्ले पड़ी। घड़ियों की परम्परा के विरुद्ध तीनों घड़ियों की सुइयाँ बिलकुल एक समय बता रही थीं। आखिर यह सब हमारे देशवासियों की अनियमितता का परिणाम है और लोग कुछ देर में आएँगे इस निष्कर्ष पर पहुँचकर हम खामोशी से बैठ गए और सभासदों के आगमन की प्रतीक्षा करने लगे।

एक घंटा बीता, दो घंटे बीते, पर कोई नहीं फटका। इतनी देर करके आने वाले लोगों को हमारी घड़ियाँ देखकर शर्मिन्दा न होना पड़े इस आशय से हमने अपनी घड़ियों की सुइयाँ छह के बजाय चार पर कर दीं। रोज शाम को वाचनालय में दस पाँच लोग नियमित रूप से पढ़ने के लिए आते थे पर आज उनका भी पता नहीं था। हमें बाद में मालूम हुआ कि वे चौराहे तक तो आये थे, पर नीली वरदी वालों का पहरा देखकर दूर से ही वापस लौट गए थे। इस बात के कारण शहर भर में हमारे संबंध में तरह-तरह की अफवाहें उड़ने लगीं। उन सबका सार यह था कि पुलिस ने हम तीनों को हथकड़ी बड़ी से कसकर वाचनालय में नजरबंद कर रखा है। कुछ गुंडों ने तो यह अफवाह फैला दी कि पुलिस ने हमारी मरम्मत भी की है। यह सब जो कुछ भी हो, एक बात का हम विश्वास दिला सकते हैं कि सभा की वजह से नागरिकों की शांति में कोई खलल नहीं पहुँचा। अपराध होने के बाद अपराधी को सजा देने की निस्बत जिस प्रकार अपराध का न होना ही बेहतर होता है उसी प्रकार भीड़ होकर उसका नियंत्रण होने के बजाय भीड़ का न होना ही श्रेयस्कर होता है इस तत्त्व का उस रोज हमारे और पुलिस के हाथों अनायास ही आचरण हो गया।

आखिर जब सात बज जाने पर भी किसी के आने का कोई चिह्न दिखाई न दिया तो ऊबकर हम तीनों मित्रों ने अपने बलबूते पर ही सभा की कार्रवाई शुरू कर देने का निश्चय किया। बंडूनाना से अध्यक्ष स्थान ग्रहण करने की मैंने विनती की। पांडुतात्या ने मेरे प्रस्ताव का अनुमोदन किया। नाना की योग्यता

हो गयी थी कि यह प्रस्ताव सर्वानुमति से पारित हुआ और वे अध्यक्ष के आसन पर विराजमान हुए। "इस सभा में मुझसे अधिक योग्यता वाले कई लोग होने पर भी आपने यह सम्मान मुझे दिया इसलिए मैं आप लोगों का अंतःकरणपूर्वक आभार मानता हूं।" आदि विनयपूर्ण शब्दों से आरंभ करके नाना ने प्रास्ताविक भाषण किया। उस प्रस्ताव के प्रस्तावक और अनुमोदक सभासदों ने तालियां बजायीं। अन्य लोगों का समर्थन उनके मौन के आधार पर गृहीत मान लिया गया। इसके बाद इस वर्ष का साहित्य-सम्मेलन हमारे ही शहर में रखना किन कारणों से उचित था इस विषय पर बाबू ताल्या ने मार्गदर्शित भाषण किया। मैंने अपने भाषण में उनके विचारों का समर्थन किया। मेरा भाषण इतना आवेशपूर्ण हुआ कि पुलिस वालों के सर्गना का छोड़कर पूरी सभा चित्रलिखित की तरह स्तब्ध रही। तीसरा प्रस्ताव खुद अध्यक्ष महोदय ने प्रस्तुत किया और मैंने उसका अनुमोदन किया। इस प्रस्ताव द्वारा अभ्यागतों की यथायोग्य खातिर-तवाजह करने का स्वागत समिति को आदेश दिया गया। वैसे देखा जाए तो क्या स्वागत समिति और क्या कार्यकारिणी, सभी समितियों में हम तीनों के ही नाम थे। एकरसता टाल कर कुछ वैविध्य लाने के लिए सिर्फ इस बात का ध्यान रखा गया था कि हर समिति में हमारे नामों का उल्लेख भिन्न क्रम से हो। यह प्रस्ताव भी सर्वानुमत से मंजूर हुआ। फर्क सिर्फ इतना रहा कि उसके प्रस्तावक खुद अध्यक्ष महोदय होने के कारण उनके पक्ष में एक वोट अधिक मिला।

इस प्रकार परिषद की आरंभिक सभा हमारी अपेक्षा से भी अधिक शांति के साथ पूरी हुई। सभा में उत्तम व्यवस्था और अनुशासन रखने के लिए हमने पुलिस अधिकारियों को धन्यवाद दिया और वे यथोचित दस्तूरी स्वीकार करके विदा हुए। एक बुद्धिमानी मैंने अवश्य की। जोर जोर से खर्राटे लेकर सभा के काम में व्याघात डालने के इल्जाम स्वरूप मैंने उनके सिरमिरों में से दो दो आने जुरमाना काट लिया।

दूसरे दिन से हम तीनों चंदा उगाहने के लिए घर घर घूमने लगे। इस काम में हमें ऐसा विचित्र अनुभव हुआ कि चोरों के सम्मेलन की स्वागत समिति से हमें ईर्ष्या होने लगी। उस समिति को इस काम के लिए कोई मेहनत नहीं करनी पड़ी थी और न उसके सदस्यों को चंदा उगाहने के लिए किसी के दरवाजे पर जूते घिसने पड़े थे। नागरिकों की जेबों और तिजारियों में होने वाले धन को व

अपना ही मानकर चले थे। आवश्यकता पड़ने पर रात के समय सिर्फ उसका स्थानांतर कर देने से काम चल जाता था। यह जोर-जबरदस्ती की वसूली दूसरे दिन जब लोगों के ध्यान में आती तो वे चुपचाप उसे स्वेच्छा से दिया हुआ चंदा मान लेते थे। पुलिस में रपट लिखाकर गड़बड़ी फैलाने से स्वागत समिति द्वारा उनका नाम उस रात को फिर से दाताओं की सूची में सम्मिलित किया जाने का खतरा रहता था। अब लोग रोज रात के प्रकट-दान की अपेक्षा एक रात के गुप्तदान को श्रेयस्कर मानकर उसकी प्रकट चर्चा नहीं करते थे।

परंतु हमें इससे ठीक उलटा अनुभव हुआ जिसे हम जीवनभर नहीं भूलेंगे। स्वेच्छा से दिए जाने वाले चंदे के लिए हमें बार-बार लोगों के घर जाना पड़ा। अधिकांश लोग हमें ड्योढ़ी में घुसते देखकर ही नौकर द्वारा अपने अनुपस्थित होने की सूचना भिजवाने लगे। इस विधान की सचाई के संबंध में हम नौकर से हुज्जत करते तो गृहस्वामी खुद खिड़की में से झांककर कहता, 'मैं खुद कह रहा हूं न कि मैं घर पर नहीं हूं। इस पर भी विश्वास न करो, तो तुम लोगों के लीचड़पन को दूर से ही नमस्कार है। कोई कर्जा वसूल करने आये हो क्या?' इसके बाद दरवाजा धड़ाम् से बंद कर दिया जाता। कुछ निठल्ले लोग हमारे पहुंचते ही कोई पुस्तक हाथ में उठा लेते और उसे ऐसे मनोयोग से पढ़ने लगते कि साहित्य परिषद् आयोजित करने का उद्देश्य उसके अधिवेशन से पहले ही पूर्ण होता दिखाई देता। कुछ लोग हम पर नजर पड़ते ही अपनी घरवाली को या किसी नौकर को ऐसी सरगर्मी से डांटने लगते कि 'बेटी से कहो बहू को लागे'— वाली कहावत के अनुसार हम वहां का रंग-ढंग समझकर रास्ता नापते। एक बार हम एक बंगले वाले के यहां भिक्षांदेहि की नियत से गए। उसने अपना शिकारी कुत्ता हम पर छोड़ दिया और हम जान बचाकर भागे। कुछ धूर्त लोगों ने चंदे की रकम चुपचाप लिख दी और उसे शीघ्र ही चुका देने का वादा किया। परंतु वसूली के समय वे मुंह चुराने लगे। शीघ्र ही हमारी समझ में आ गया कि रकम 'चुकाने' की बात उन्होंने किस अर्थ में कही थी। चंदा उगाहने के लिए हम सुबह ही निकलते हैं यह समाचार फैल जाने पर भोर होते ही घूमने के लिए घर से बाहर निकल जाने वालों के झुंड-के-झुंड सड़कों पर दिखाई देने लगे। सुबह ताजी हवा में घूमकर शरीर को व्यायाम देने का महत्व जिसे हम व्याख्यानों द्वारा लोगों के मन पर नहीं ठसा सके थे उसे चंदे के भय से अनायास ही पूरा

होता देखकर हमे उस दुख मे भी सुख का अनुभव हुआ। चदा उगाहने म हमे भी शारीरिक कष्ट कुछ कम नही पडा था। इस काय कारणभाव से इसी सिद्धात का समथन हुआ कि शब्दो की अपेक्षा कृति ही अधिक प्रभावशाली होती है और सौ उपदेशो की अपेक्षा एक मिसाल अधिक कारगार होती है। शीघ्र ही शहर मे यह आलम हो गया कि हम जिस भी रास्ते से गुजरते वह वीरान हो जाता और शहर के अन्य भागो मे चहल पहल मची रहती। अत मे इस आख मिचौनी के खेल से हम ऊब गए। दो महीने दौड धूप करने के बाद उन महीनो के गिना जितन रुपये भी जमा नहीं हुए। जितन रुपये वसूल हुए उनसे दसगुन मित्रो की मित्रता से हमे हाथ धोना पडा सो अलग। यह सब देखकर हमने जमा हो चुकने वाले रुपयो के भीतर ही सम्मेलन का पूरा खच चलाने का निणय लिया।

इतनी अल्प रकम मे सारे खच को निबाहना बच्चो का खेल नही था। कदम-कदम पर किफायत करना आवश्य हो उठा। परिषद् के लिए अलग शामियान बनवाने का विचार छोड देना पडा और अधिवशन नगर वाचनालय के मकान म ही करना लाजिमी हो गया। इस के बाद आमत्रित मेहमानो के निवास का प्रश्न उपस्थित हुआ। पाडूतात्या की हवेली वसे तो बहुत विशाल और सब प्रकार की सुविधाओ से युक्त थी। परतु पिछले दिनो उन्होने डायरी छपवाने का जो अव्यापारेषु व्यापार किया था उसका कज अभी तक नही चुका था। छापेखाने वाले की डिग्री हो चुकी थी। और कागज, छपाई, जिल्दसाजी आदि का खच वसूल करन के लिए उसे कुर्की का हुक्मनामा भी मिल गया था। इस हालत मे निमत्रितो को यदि उनके यहा ठहराया जाता और उसी समय लेनदार यदि कुर्की की तामील करवा देता तो अभ्यागत मेहमानो का बोरिया बिस्तरा जब्त होन की पूरी सभावना थी। इसलिए यह विचार छोड देना पडा।

मकान बडूनाना का भी बहुत खुला और हवादार था। परतु उसम मेहमानो को ठहराने लायक सिफ एक ही बडा दीवानखाना था। उस एक ही कमरे में तुकात और अतुकात कविता के समथको को या नयी और पुरानी कविता के एकात भक्तो को एक साथ ठहराना बुद्धिमानी की बात न होती। परस्पर विरोधी ध्वजो के नीचे लडनेवाले और अपने-अपने वादो और मतो के प्रचार मे रात दिन कुकरहाव करने वाले इन वीरो का पडाव अलग-अलग डेरो म डलना नितात आवश्यक था। इन सबकी अलग-अलग व्यवस्था करने की सुविधा मेरे

घर म भी थी। लेकिन वहा मच्छरो भुनगा और पिस्सुओं का ऐसा एकछत्र साम्राज्य था कि कवियो और साहित्यकारो का नवरसयुक्त रुधिर चखने का पहले कभी न मिलने वाला मौका उन्हे मिला होता तो प्रचकारो को अपने इन ममश और रसपिपासु भक्तो की याद जीवन भर रही होती। आखिर हा-ना करते करते मेहमानो को धमशाला म ठहराने का निणय किया गया। धमशाला बहुत छोटी और सुविधाहीन थी। पाहुनो की सख्या एक निश्चित मर्यादा के बाहर जाने पर उन्हे बहुत भीड भाड म और एक दूसरे के आवश्यकता स अधिक निकट सपक म रहना पडता जो किसी भी हालत म वाछनीय नही था। इन सारी अडचनो से बचने के लिए आखिर हमने एक तरकीब भिडाई। निणय हुआ कि साहित्यकारो को भेजी जानेवाली निमत्रण पत्रिका म यह सूचना छपवा दी जाय कि शहर म इन दिनो प्लेग की महामारी फैली हुई है और स्वागत समिति द्वारा निश्चित किए हुए निवास स्थान म भी कुछ मरे हुए चूहे बरामद हुए हैं। साथ ही यह आशा भी व्यक्त की जाए कि खरे साहित्यभक्त इन छोटे मोटे सकटो की परवाह किए बिना हम अपनी उपस्थिति से कृताथ करेगे।

परतु इस सारी नाकेबदी क बावजूद कुछ पशेवर महानुभाव आने से चूकेगे नही यह हम जानते थ। सरस्वती के कुछ निस्सीम भक्त प्लेग का टीका लगवा कर भी आएग जरूर इसम कोई सदेह नही था। जिन शहरो म प्लेग का आरभ पहले ही हो चुका होगा वहा से आने वाले प्रतिनिधि तो हमारी इस चेतावनी को उपेक्षणीय मानकर प्लेग की छूत अपने साथ लाएगे और महामारी का उलटे हमारे शहर म प्रसार करके हमारा जूता और हमारा ही सर वाली स्थिति उत्पन्न कर देगे इसका भी हम पूरा विश्वास था। इन सब कारणो स आखिर यही तय पाया कि मरे हुए चूहे पाये जाने वाली कल्पना को हमारी शालीनता को शोभा न देने वाली बात मानकर त्याग दिया जाए।

परतु इसस मुख्य समस्या हल नही हुई। सम्माननीय अतिथियो की सख्या पर किसी प्रकार का नियत्रण न रहा तो हमारी टुटपुजिया रकम म उनका आदर सत्कार कैसे होगा यह बडा टेढा प्रश्न था परतु बहूनाना के बाइयापन का भी जवाब नही। यह गुत्थी आखिर उन्ही ने सुलझायी। उन्होने ज्योतिषशास्त्र के नियमो की कुछ खीचातानी करके रामनवमी के बाद की तिथि का क्षय दिखा दिया जिसम रामनवमी और एकादशी एक साथ आ गई। स्वागत समिति के

अध्यक्ष की हैसियत से नाना ने परिषद के अधिवेशन के लिए यही दो दिन मुकर्रर किए और निमंत्रण-पत्रिका में यह सूचना छपवा दी कि इस साल के सम्मेलन में शास्त्राज्ञाओं का संपूर्णता से पालन करने का निश्चय किया गया है। सौभाग्य से उन्हीं दिनों एक ऐसी मतप्रणाली नई-नई प्रचलित हुई थी कि धर्म पर ऐकांतिक निष्ठा हुए बिना प्रासादिक साहित्यरचना हो ही नहीं सकती। अतः अधिकांश साहित्यकार—कम से कम उनमें के सनातन धर्माभिमानी लोग तो—दो दिनों तक अन्नजल ग्रहण नहीं करेंगे इसकी पूरी संभावना थी। कमजोर धर्मश्रद्धा वाले दो-चार लोगों ने यदि पानी पीने का आग्रह प्रकट किया तो आंगन में का नल उनकी प्यास न बुझाने की अनुदारता दिखाने वाला नहीं था। इससे भी नीची श्रेणी की धर्मश्रद्धा वाले कुछ नास्तिकों ने यदि दूध पीने की ही जिद की तो उनके लिए रुपये के सोलह सेर की दर से सफेद किया हुआ पानी सप्लाई करने का ठेका गंगाप्रसाद ग्वाले को दिया जा चुका था।

अब बचे सुधारक ग्रंथकार ! ये बड़े बड़े विघ्नसंतोषी और बापदादों का नाम डुबाने वाले होते हैं। इन्हीं लोगों ने पूरे देश में अनाचार फैला रखा है। इन्होंने विधवाओं का केशवपन करने की प्रथा को बंद करवा कर और अपने सिर पर बालों का छप्पर बढ़ाकर देशी नाइयों का धंधा ठप कर दिया। कथा कीर्तन बंद करवा कर धूपबत्तियों के कारखानों का दिवाला निकाल दिया। होम हवन और व्रत-उपवास बंद करवाकर अनेक ब्राह्मणों के भोजन की व्यवस्था नष्ट कर दी। श्राद्धपक्ष में अनपढ़ और मूर्ख ब्राह्मणों को भी कुछ समय के लिए मृत यजमान का स्थान ग्रहण करके उनके उत्तराधिकारियों द्वारा पैर पुजवाने की जो सुविधा परापूर्व से उपलब्ध थी उसका इन्होंने नामोनिशान मिटा दिया। पिंडदान के समय चावल का प्रयोग बंद करवा कर कौओं के लिए भूखे मरने की स्थिति पैदा कर दी। चौथेपन में कमसिन लड़कियों से विवाह करके उन्हें अपनी संपत्ति की वारिस बनाने की दुहाजू वृद्धों की उन्मत्त इच्छा को इन्होंने जड़मूल से काट दिया। बालविधवाओं का विवाह करवा कर उनके संबंधियों का बिना-तनख्वाह की नौकरानी प्राप्त करने का जन्मसिद्ध अधिकार छीन लिया। गांव के बाहर की खुली हवा खाकर अज्ञान के सुख में डूबे रहने वाले भंगी चमारों को गांव के घुटनभरे वातावरण में बसाकर उनके सिर पर उनसे कुछ अधिक ज्ञान प्राप्त करने की अनावश्यक जिम्मेदारी लाद दी। सती की प्रथा का कानून बंद करवा

कर लकड़ी की टाल वालो का नुकसान तो किया ही, साथ मे मृतक के पितपक्ष के वारिसो को मिलने वाली सपत्ति से उन्हें वचित कर दिया। एक दो हो, तो गिनायें। इन लोगो ने तो ऐसे हजारो अनाचार समाज में फैला रखे हैं। इन्होंने कौन कौन से भ्रष्टाचार फैलाए इसकी सूची बनाने की अपेक्षा इन्होंने क्या नही किया, और किस बात की कसर छोड दी, इसकी फहरिश्त बनाना वही आसान रहेगा।

सुधारको पर आम तौर पर लगाए जाने वाले ये अभियोग सच्चे हो या न हो, इतनी बात बिलकुल सच्ची थी कि उस समय उन्ही के कारण हमे अडचन महसूस हो रही थी। सुधारक साहित्यकार हमे साहित्यद्रोही ही नही, बल्कि देशद्रोही भी दिखाई देने लगे थे। औसत आदमी अकसर अपने शहर को पूरी दुनिया और अपने-आप को पूरा देश मानकर चलता है। इस न्याय से देखा जाए तो सयोजको को सकट मे डालने वाले लोग हमे देशद्रोही दिखाई दें इसमे ताज्जुब की कोई बात नही। रह रहकर चुभन वाले इस काटे को निकालने के लिए पहले तो हमने यह निश्चय किया कि साहित्यकार शब्द की व्याख्या ही कुछ इस प्रकार की जाए कि नास्तिक ग्रथकारो की उसमें गणना ही न हो सके। पाडुतात्या की रखी हुई डायरी को भी साहित्यिक रचना घोषित करने वाली हमारी मित्रमडली सरस्वती की अनन्य भाव से सेवा करने वाले उपासको को उसके मदिर में घुसने से रोकने पर उतारू हो जाए, यह बात पाठको को कुछ विचित्र लग सकती है। परतु उस समय हम चारो तरफ से घिरकर मजबूर हो गए थे इस बात को ध्यान मे रखने पर हमारा बर्ताव बिलकुल स्वाभाविक दिखाई देगा। डूबता हुआ आदमी तिनके का भी सहारा लेता है।

परतु इस नियम को अमल मे लाने के मार्ग मे भी कई कठिनाइया दिखाई दी। इसलिए हमने साहित्यकार शब्द की नई व्याख्या करने का विचार छोड दिया और सुधारको का साहित्य परिषद् मे से पत्ता काट देने के लिए निम्नलिखित सीधे-सीधे नियम बनाए —

1 प्रत्येक ग्रथकार को गाडी से उतरते ही स्वागत समिति के सदस्यो को अपनी चुटिया और जनेऊ दिखाना होगा।

2 हर साहित्यकार को दिन मे तीन बार अध्यम स्नान से शुचिर्भूत होकर सध्या करनी होगी। सध्या करते समय बजाई जाने वाली तालियां, चुटकियां

आदि मे तिलमात्र भी भूल होगी तो परमेश्वर को तो क्षोभ होगा ही, स्वागत-समिति के सदस्य भी खफा होगे।

3 प्रत्येक ग्रथकार को रामनवमी और एकादशी दोनो उपवास निर्जल रह कर करने होगे। इन दिनो मे अन्न का कण तो क्या पानी की बूद भी पेट मे न जाए, तो उत्तम है। यदि यह सभव न हो, तो केवल पानी पर, या अपवादात्मक रूप से, दस गुना पानी मिले हुए दूध पर गुजारा करना होगा।

4 जो साहित्यिक इन नियमो का पालन करना न चाहें, उन्हें दो रोज के भोजन खर्च के लिए दस रुपये की रकम देनी होगी।

इस प्रकार निमत्रितो के भोजनव्यय की व्यवस्था तो हो गई। इस प्रस्ताव में पाडूतात्या ने एक सुधार सुझाया कि इन दिनो स्वागत-समिति के सदस्यो पर काम का बोझ बहुत अधिक रहेगा और अतिथियो का सत्कार करते-करते वे शारीरिक और मानसिक, दोनो स्तरो पर इतने थक जाएगे कि उनके दोनो समय के भोजन का उत्तम प्रबध होना चाहिए। यह सूचना सर्वानुमत से स्वीकृत हुई। इस मद का पूरा खर्च चदे की रकम मे से ही किया गया, यह अलग से बताने की जरूरत नही। चौके की व्यवस्था करने की पूरी जिम्मेदारी उन्हें सौंप दी जाए ऐसी एक और विनम्र उपसूचना भी पाडूतात्या ने की थी। परतु इस स्थिति के खतरो को मद्देनजर रखते हुए हमने उसे मजूर नही किया।

परिषद् मे स्थानीय निवासियो की ओर से कुछ प्रस्ताव रखे जाने वाले थे। उनमे के कुछ यहा दिये जाते हैं —

(क) बडूनाना के प्रस्ताव —

1 सामाजिक वर्णव्यवस्था के अनुसार लिपि मे भी वर्णव्यवस्था होनी चाहिए (इस प्रस्ताव का ब्योरेवार विवेचन और बडूनाना द्वारा उसका समर्थन उनके ग्रथ की प्रस्तावना मे किया जा चुका है।)

2 प्रकाशको को चाहिए कि वे साहित्यकारों के ग्रथो को ग्रथप्रकाशन में लगने वाली लागत से आधे खर्च मे छाप दें।

3 किसी भी ग्रथ का बहुत सी प्रतियो वाला एक ही सस्करण छापने के बजाए थोडी-थोडी प्रतियों के अनेक सस्करण एक साथ छापने चाहिए। पुनर्मुद्रण मे सस्करण की सख्या के सिवा और कोई परिवर्तन नही करना पडेगा। इस

आदि मे तिलमात्र भी भूल होगी तो परमेश्वर को तो क्षोभ होगा ही, स्वागत-समिति के सदस्य भी खफा होंगे।

3 प्रत्येक ग्रथकार को रामनवमी और एकादशी दोनो उपवास निर्जल रह कर करने होगे। इन दिनो मे अन्न का कण तो क्या पानी की बूद भी पेट मे न जाए, तो उत्तम है। यदि यह सभव न हो, तो केवल पानी पर, या अपवादात्मक रूप से, दस गुना पानी मिले हुए दूध पर गुजारा करना होगा।

4 जो साहित्यिक इन नियमो का पालन करना न चाहें, उन्हें दो रोज के भोजन खर्च के लिए दस रुपये की रकम देनी होगी।

इस प्रकार निमत्रितो के भोजनव्यय की व्यवस्था तो हो गई। इस प्रस्ताव मे पाडूतात्या ने एक सुधार सुझाया कि इन दिनो स्वागत-समिति के सदस्यो पर काम का बोझ बहुत अधिक रहेगा और अतिथियो का सत्कार करते-करते वे शारीरिक और मानसिक, दोनो स्तरो पर इतने थक जाएगे कि उनके दोनो समय के भोजन का उत्तम प्रबध होना चाहिए। यह सूचना सर्वानुमत से स्वीकृत हुई। इस मद का पूरा खर्च चदे की रकम म से ही किया गया, यह अलग से बताने की जरूरत नही। चौके की व्यवस्था करने की पूरी जिम्मेदारी उन्हें सौंप दी जाए ऐसी एक और विनम्र उपसूचना भी पाडूतात्या ने की थी। परतु इस स्थिति के खतरो को मद्देनजर रखते हुए हमने उसे मजूर नही किया।

परिषद् मे स्थानीय निवासियो की ओर से कुछ प्रस्ताव रखे जाने वाले थे। उनमे से कुछ यहा दिये जाते हैं —

(क) बडूनाना के प्रस्ताव —

1 सामाजिक वर्णव्यवस्था के अनुसार लिपि मे भी वर्णव्यवस्था होनी चाहिए (इस प्रस्ताव का ब्योरेवार विवेचन और बडूनाना द्वारा उसका समर्थन उनके ग्रथ की प्रस्तावना मे किया जा चुका है।)

2 प्रकाशको को चाहिए कि वे साहित्यकारों के ग्रथो को ग्रथप्रकाशन मे लगने वाली लागत से आधे खर्च मे छाप दें।

3 किसी भी ग्रथ का बहुत सी प्रतियो वाला एक ही सस्करण छापने के बजाए थोडी थोडी प्रतियो के अनेक सस्करण एक साथ छापने चाहिए। पुनर्मुद्रण मे सस्करण की सख्या के सिवा और कोई परिवर्तन नहीं करना पडेगा। इस

प्रकार नए लेखकों की पुस्तकों के भी अनेक संस्करण हो कर उन्हें प्रोत्साहन मिलेगा।

4 सरकार को चाहिए कि व्यवहार में चलने वाले नोटों की संख्या एकदम दुगुनी कर दे। इससे पुस्तकों की कीमत दुगुनी की जा सकेगी और प्रकाशकों की आय भी दुगुनी हो जाएगी।

5 उपन्यासों का प्रसार समाज के लिए अनिष्ट होने के कारण उनकी कीमत प्रति पृष्ठ दो पैसे के हिसाब से निश्चित की जाए। इस प्रकार भारी कीमत के कारण उनकी बिक्री अपने आप कम हो जाएगी। बेचते समय उपन्यास की प्रत्येक प्रति के साथ दियासलाई की एक एक डिबिया मुफ्त दी जाए ताकि पढ़ने के बाद उपन्यास को जलाने में सुविधा रहे।

(ख) पांडुलिपियों के प्रस्ताव —

1 अनुस्वार और ह्रस्व-दीर्घ के संबंध में व्याकरण में जो जटिल और कठोर नियम प्रचलित हैं उन्हें तुरंत हटा दिया जाए। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी रुचि के अनुसार ह्रस्व दीर्घ का प्रयोग करने की छूट होनी चाहिए।

2 शास्त्रीय या वैज्ञानिक विषयों के ग्रंथों में भी चार से अधिक अक्षरों का शब्द या दो से अधिक पंक्तियों का वाक्य नहीं होना चाहिए। सम्मेलन इस नियम का कठोरता से पालन करवाए।

3 डायरियों की कीमत अक्सर बहुत कम रखी जाती है। अतः हर प्रकार की डायरियों का मूल्य तुरंत बढ़ा दिया जाए।

(ग) खुद मेरे प्रस्ताव —

1 अंग्रेजी उपन्यासों का अपनी भाषाओं में अनुवाद या रूपांतर करते समय उनके रस्मोरिवाज की भिन्नता के कारण ग्रंथकारों को बड़ी मेहनत उठानी पड़ती है। इस परेशानी से बचने के लिए अंग्रेज समाज के रीति रिवाज कायदे कानून विवाहपद्धति नृत्यगीतादि मनोरंजन के प्रकार एवम् उनकी तहजीब के अन्य नियम अपने देश में अनिवार्य तौर पर प्रचलित कर दिए जाएं।

2 ऐतिहासिक ग्रंथों में स्वदेश विषयक कथन सदा स्तुति परक होने चाहिए निंदा या आलोचनात्मक नहीं। माना कि सत्यकथन ही इतिहास का चरम उद्देश्य

होता है। परंतु अक्सर मन का प्रिय लगने वाली वस्तु ही सत्य लगने लगती है। अत प्रशसात्मक विधानो द्वारा सत्य का कही विपर्यय भी हो जाता हो, तो उसे असत्य न माना जाए।

3 हमारी सामाजिक रूढियो की कठोर आलोचना या निंदा करने वाली पुस्तकों को कोरे कागज की डायरिया समझ कर बेचा जाए और उसी अनुसार उनकी कीमत भी न्यूनतम रखी जाए ताकि ग्रथकारो को विशेष लाभ न हो और अन्य लेखको को ऐसे ग्रथ लिखने की रुचि न रहे।

इस प्रकार विविध प्रस्तावो का स्वरूप निश्चित हो जाने के बाद निमत्रण पत्रिकाए भेजने का काम शुरू किया गया। हस्तपत्रक के नीचे जिस प्रकार हम तीनो मित्रो के दस्तखत थे उसी प्रकार निमत्रण पत्रिकाए भी हमारे ही नाम से छपवाई गइ। इन पत्रिकाओ म सबोधन की शब्दावली म हमने पराकाष्ठा की नम्रता धारण की थी। लक्ष्मी के साथ पुश्तैनी वैर होने वाले अकिंचन सरस्वतीपुत्रो पर श्रीमान, श्रीयुत आदि विशेषणो की वर्षा करके हमने उन्ह लक्ष्मीनदन बना दिया था। जिन ग्रथकारो के साथ हमारा नाममात्र का परिचय था उन पर रायसाहब, रायबहादुर आदि पदविया की वर्षा की गई थी। दरअसल इस प्रकार की शाब्दिक उदारता प्रकट करने म दमडी का भी खच नही होना। फिर भी न मालूम क्यो, कुछ कृपण लोग इसमे भी कोताही कर जाते हैं। हम उन मक्खीचूसो मे से नही थे, यह पाठको को अब तक मालूम हो ही गया होगा।

निमत्रण-पत्रिकाओ पर नाम लिख कर तैयार हो जाने के बाद उन्ह बड्डूनाना के हवाले कर दिया गया। उन्हें लिफाफे म डाल कर और पता लिख कर रवाना करने की जिम्मेदारी उन पर थी।

पत्रिकाए भेजे कई रोज हो गए, पर किसी का भी कोई जवाब नही आया। किसी भलेमानस ने दो पैसे का कार्ड लिख कर पहुच तक नही दी। हम सोचने लगे कि ये साहित्यकार भी बडे अभिमानी जीव होते हैं। व्यवहारज्ञान का तो इनम छींटा भी नहीं होता। हमने तो इतनी सरपच्ची करके परिषद की तयारी की, इतनी जहमत उठाकर और इतना अपमान सहन करके चदा उगाहा, इतनी नम्रता से निमत्रण पत्र भेजे पर इनको इसकी कोई कीमत ही नही। हम महीनो से काम में लगे हुए हैं, हम तीनो ने अत्यत नीरस होने पर भी विशाल ग्रथो की रचना की, और एक यह हैं कि दो पक्ति का पत्र भी नही लिख सकते। फिर हम

ख्याल आया कि पहले से सूचना देकर आने के बजाय शायद सबने अचानक आन कर हमे आश्चर्यचकित करने की बात सोची हो। वैसे भी ये लेखक लोग अद्भुत रस के बड़े शौकीन होते हैं। सीधी सी बात को भी ये लोग बड़े विलक्षण ढग से कहते हैं। दुनिया की चाल से उलटे चलने की इनकी हौंस दुर्निवार्य होती है। अतिशयोक्ति को एक अनावश्यक दुर्गुण मानने के बजाय इन लोगोने उसे अलकारो की श्रेणी मे ला बैठाया है। विदेशी ग्रथकारो का अनुकरण करके बचकानी हरकतो और ऊलजलूल बकवास को विनोद का नाम दे दिया है। किसी के पत्रो का उत्तर न देना भी शायद इन लोगो की दृष्टि मे कोई अलकार या उच्च कोटि का विनोद हो।

रेल का स्टेशन शहर से काफी दूर था। फिर भी हमने चैत्र शुक्ला अष्टमी की सुबह से ही हर गाडी को देखना शुरू किया। बारी-बारी से हम तीनो स्टेशन के चक्कर काटते रहे। सवारी गाडी तो क्या, मालगाडी का भी एक एक डिब्बा हम देखे बिना नहीं छोडते थे। परतु पुस्तको के एक भी रचयिता आलोचक प्रकाशक, मुद्रक, जिल्दसाज या विक्रेता तो क्या, किसी शौकीन पाठक के भी दर्शन नही हुए। अब हमारे मन मे विचार आया कि सारे ग्रथकारो ने शायद आखिरी गाडी से एक साथ आकर हमे आश्चर्यचकित कर देने की योजना बनाई हो। अत आखिरी गाडी के समय तो हम तीनो मित्र फूलमालाए लेकर सुबह चार बजे ही स्टेशन पर हाजिर हो गए। गाडी यथासमय आयी। उसमे से उतरने वाला प्रत्येक यात्री साहित्यकार होना ही चाहिए यह धारणा हमारे मन मे इस हद तक घर कर गयी थी कि हमारे हाथो कुछ विलक्षण गलतिया हो गईं। हर यात्री को देखकर स्नेहाश्रु से हमारी आखें डबडबा आती। बडूनाना ने तो गार्ड को कोई बडा साहित्यकार समझ कर भरे प्लेटफार्म पर उसे आलिंगन मे कस लिया। उधर पाडू सास्या इजन मे कोयला झोकने वाले को नवकवि मानकर उससे हस्तादोलन करने लगे। कुछ यात्रियो ने हमे उनका सामान उठाते देख कर चोर चोर का शोर मचा दिया जबकि कुछ घाघ यात्रियो ने हमे सामान चुपचाप उठाने दिया। इतना ही नही स्टेशन के बाहर तक ले जाने दिया और उसे तागे मे रखवाने के बाद ही हमसे अपरिचय प्रकट किया। तब कही जाकर हमारे दिमाग मे यह बात आयी कि वे ग्रथकार या प्रकाशक तो क्या, पुस्तकें पढने की तकलीफ उठाने वाले पाठक भी नहीं थे। इनसे भी उच्चकोटि के कुछ परमघाघ मुसाफिरो ने बडी मासूमियत

से हम कुली समझ लिया और दो चार पैसे मजदूरी भी देना चाहा। गुस्से में आकर उन्हें दूर फेंक देने के सिवा और चारा ही क्या था।

घर लौटकर हम विचार करने लगे कि इस गड़बड़ी की जड़ में क्या कारण हो सकता है। हमें अधिक देर तक संशय में नहीं रहना पड़ा। दोपहर की डाक से ही बंबई के डेड-लेटर-आफिस द्वारा भेजा हुआ लिफाफों का एक बहुत बड़ा पुलंदा हमें मिला। देखा तो वे हमारे भेजे हुए निमंत्रण-पत्र थे। बारीकी से देखने पर मालूम हुआ कि लिफाफे पर पते ही नहीं लिखे गए थे। डेड-लेटर-आफिस ने भीतर की निमंत्रण पत्रिकाओं पर भेजने वाले का पता पढ़ कर उन्हें हमें लौटा दिया था।

यह सब बहूनाना का जौहर था।

24 चित्रकार

चित्रकला का हर जानकार इस बात को मान्यता देगा कि कवियों की तरह चित्रकार भी जन्म लेते हैं, बनाए नहीं जाते। रसिकों के हृदय को मुग्ध कर देने वाले कर्णमधुर गीतों का बीज जिस प्रकार सद्यजात शिशु की कानों के परदे फाड़ देने वाली चीखों में होता है उसी प्रकार देखने वालों को आश्चर्यचकित कर देने वाले चित्रों का उद्गमस्थान उसकी बंधी हुई मुट्ठियों में होता है।

यह नियम जितना हमारे पाडूतात्या के संबंध में चरितार्थ हुआ उतना अन्यत्र होना मुश्किल है। सूक्ष्म अवलोकन करने वालों को उनकी बचपन की लीलाएं देखकर उनके भविष्य की घोषणा करने में कोई कठिनाई न हुई होती। पालने के ऊपर टंगे हुए खिलौने के सामने घंटों तक टकटकी लगाकर ताकते रहने की और किसी भी चित्र को देखते ही उसे मुंह में डालकर चबा चबाकर आत्मसात कर लेने की वृत्ति उनमें जन्म से ही थी। उनके घर में एक बार गणेशोत्सव के दिनों में मूषक पर विराजमान गणेशजी की मिट्टी की मूर्ति मंगवाई गयी थी। बालक तात्या ने सबकी नजरें बचा कर उसे हाथ के मोदक और सवारी के मूषक के साथ उदरस्थ कर लिया। शैशवावस्था में वे खाते समय अपनी देह को जठन से मंडित कर लेते थे। कोयले से स्लेट घिसकर साफ करते समय वे पूरे शरीर को बड़ी कलात्मकता से रंग लेते थे और पाठशाला में हमजोलियों के साथ नोचखसोट करते समय वे उनके शरीर पर नाखूनों की सहायता से बनी चित्र विचित्र नक्काशी खरोंच देते थे। उनकी ये बाललीलाएं चित्रकला के साथ साथ उनमें सुषुप्तावस्था में बसने वाली कोयला चित्रण और नख चित्रण कलाओं की परिचायिका थीं। इसी प्रकार मारपीट के मौकों पर वे अपने विरोधियों के गाल पर थप्पड़ मारकर पांचों उंगलियों के निशान जिस कलात्मकता से उठाते थे वह भी

उनकी भविष्य की कलाप्रियता की पूवसूचना मात्र थी।

परन्तु चित्रकला का महत्व तात्या के मन पर अमिट तौर से अंकित करने वाले और भी कई कारण थे। एक बार एक सचित्र पुस्तक उनके देखने में आई। उसके मुखपृष्ठ पर गणेशजी का सुंदर मनरगा चित्र था जिसके बलबूते पर ही प्रकाशक उस पुस्तक की चौगुनी कीमत वसूल करता था। चित्रकला के सहयोग से साहित्य का मूल्य और महत्व का अनेकगुना बढता देखकर तात्या के मन में उस कला के प्रति आदर उत्पन्न होना स्वाभाविक था। उन्ही दिनों शहर में एक नाटक मण्डली आई हुई थी। उसके नेपथ्य का चित्रण बमता किसी ग्रामीण चित्रकार ने किया था। परंतु भडकीले रंगो से रंगे हुए वे परदे हम बच्चो को इतने वास्तविक लगते थे कि गर्मी के दिनों में शकुंतला नाटक के तपोवन का दृश्य दिखाने वाले परदो के सामने बैठने पर हमे जलती हुई लू की झुलस महसूस नही होती थी और सर्दियों में हरिश्चंद्र नाटक के दावानल के दृश्य के सामने बैठकर हम घटों तक हाथ सेंका करते थे। जीवन की छोटी मोटी आवश्यकताएं पूरी करने में चित्रकला का ऐसा महत्वपूर्ण योगदान देखकर तात्या का उसकी ओर आकर्षित होना स्वाभाविक था।

उन दिनों यह कला कुछ विशेष कठिन या कष्टसाध्य है यह मानने का भी कोई कारण नही था। हमारे बचपन में जो चित्र हम लोगो के देखने में आते थे उनके लिए कोई विशेष ज्ञान सपादित करने की आवश्यकता दिखाई नही देती थी। इतना ही नही कभी कभी तो सपादित ज्ञान को बिसार देना ही श्रेयस्कर दिखाई देता था। उस जमाने के चित्रो में सभी चेहरे प्राय एक जैसे और समान रूप से एक तरफ को घूमे हुए हुआ करते थे। देखने वाले की आखो से आखें मिलाने का साहस उनमे से किसी का नही होता था। चित्रांकित व्यक्तियों में से अधिकाश फिर वे चाहे जिस पद के हो—के हाथ में कोई न कोई फूल अवश्य होता था। इतिहास प्रसिद्ध नवाबो बादशाहो के हाथ में क्वचित फूल के बदले बाज या अन्य कोई शिकारी पक्षी भी दिखाई दे जाता था। चेहरे मात्र निरपवाद रूप से निर्विकार और भावशून्य हुआ करते थे। परिणामस्वरूप उन्हें देखकर देखने वालो के मन में भी कोई भाव उत्पन्न नही होता था। सब मिलाकर उस युग की चित्रकला तत्कालीन अन्य बातो की तरह सरल और सीधीसादी हुआ करती थी।

तात्या ने चित्रकारी का आरंभ इससे भी सरल सोपान पर किया। चेहरे —

स्थान पर एक बड़ा-सा गोलक, मुह की जगह एक छोटा वर्तुल, आखो के बदले दो भिन्न आकार के छोटे-मोटे वर्तुल, नाक के स्थान पर एक तिकान और हाथ पाव की जगह कुछ टेढ़ी मेढ़ी रेखाए। बस इतने कच्चे मसाले की सहायता से वे किसी भी मनुष्याकृति को रेखाकित कर सकते थे। भीम के लिए एक आकृति और सुदामा के लिए दूसरी, ऐसा भेदभाव उनके यहा नहीं था। कलोत्पादन के क्षेत्र मे वे स्वय विधाता से भी अधिक निष्पक्षपाती थे। जगत् का आरभ होने से पहले वह जिस प्रकार अव्यक्तावस्था मे था उसी प्रकार तात्या की कला भी आरभ म अमूर्तावस्था मे थी। महानुभावपथ के अनुयायियो की तरह उनके स्त्री-पुरुषो को भी एक-दूसरे से भिन्न करके पहचाना नही जा सकता था। परतु शीघ्र ही वे पुरुषो के सिर पर चोटी और स्त्रियो के सिर पर जूडे की स्थापना करने लगे। इससे स्त्री पुरुष के बीच का स्थूल भेद स्थापित होकर वे अलग-अलग पहचाने जाने लगे। इसी प्रकार आरभ म उनके चित्रो के स्त्री-पुरुष ईसाई पुराणो मे वर्णित मनुष्य जाति के आद्य पूर्वजो की तरह कम से कम वस्त्रो से अवगुठित हुआ करते थे। परतु कुछ समय बाद, शायद खुद ही लज्जा महसूस करके, वे उन्हे प्रचुर वस्त्रालकारो से मडित करने लगे। इससे कृष्ण द्वारा चीर बढाया जाने पर द्रौपदी को जो आनद हुआ था, कुछ उसी प्रकार का आनद उनके चित्रो की स्त्रियो को भी हुआ होगा। फिर धीरे धीरे उन्होंने स्त्रियो के गले म मगलसूत्र बाधकर और हाथो को चूडियो से भरकर उन्हे सौभाग्यदान और चूडादान दिया। पुरुषो के सिर पर पगडी या टोपी दिखाई देने लगी। परतु चेहरे पर किसी भी प्रकार की विशिष्टता या भाव दिखाई देने के चिह्न अब भी दिखाई नही दिए। उनके समस्त मानसपुत्र और पुत्रिया जुडवा भाई-बहन दिखाई देते थे। सबके चेहरे एक से—सबकी मुखमुद्रा एक सी! बात यहा तक बढी कि एकबार उन्होंने जब अशोक वाटिका मे बदिनी सीता और पहरा देने वाली त्रिजटा का चित्र बनाया तो उनमे से सीता कौन है और त्रिजटा कौन, यह पहचानना मुश्किल हो गया। एक अन्य चित्र मे कुरुक्षेत्र स्थित अर्जुन के रथ का निरूपण हुआ था। परतु ध्वज पर विराजमान हनुमानजी की अपेक्षा सारथ्य करने वाले कृष्ण का चेहरा ही अधिक वानर-सदृश हो जाने के कारण देखने वालो के मन में यह शका उत्पन्न होने लगी कि दोनो ने कही अपने-अपने स्थानो का अदल बदल तो नही कर लिया। उनके चित्रो का रावण सिर्फ उसके सिरो की सख्या के सहारे ही पहचाना जा सकता था। एकबार

कागज की चौडाई कम होने के कारण उन्होंने रावण के दस के बजाय छह सिरा से ही काम चला लिया। प्रसग सीताहरण का था। अत सीता को कधे पर उठाकर भगा ले जाने का पातक बेचारे स्त्रीद्वेष्टा कार्तिकेय को सहन करना पडा। एक बार उन्होंने भारी परिश्रम से रति का चित्र तैयार किया। परतु अरसिक सामान्य जनो के मन मे मार्मिकता का सपूर्ण अभाव होने के कारण लोग प्रश्न पूछने लगे कि यह चित्र शूर्पणखा का है या हिडिबा का।

चेहरो को लेकर देखने वाला के मन मे जो गलतफहमी होती थी उससे बचने के लिए तात्या ने सिर्फ ऐसे ही व्यक्तियो के चित्र बनाने का निश्चय किया जिन्हे देखने पर दुविधा की कोई गुजाइश ही न रहे। ऐतिहासिक पुरुषो मे शिवाजी महाराज अपनी वशिष्टयपूर्ण दाढी मूछो की वजह से और रामदास स्वामी अपनी कौपीन कुबडी के सरजाम के कारण अनायास ही इतर जनो से भिन्न दिखाई देते हैं। इसी प्रकार सूड की वजह से किसी भी प्रकार की गलतफहमी की सभावना न छोडने वाले गणेशजी भी सब देवताओ से भिन्न दिखाई देते हैं। शीघ्र ही ये तीनो तात्या की चित्रकला के प्रिय विषय बन गये।

अब तात्या अपने चित्रो के माध्यम से हास्य शोक और भय के भाव बडी सरलता से व्यक्त करने लगे, उनके कुछ चित्रो को देखकर प्रेक्षको का हसते हसते बुरा हाल हो जाता था जबकि कुछ को देखकर उनका मुह सूखकर चेहरा रुआसा हो उठता था। इन परिणामो की उत्पत्ति वैसे तो अन्य कलाकारो के चित्रो को देखकर भी हो सकती थी, पर तात्या की विशेषता यह थी कि अकसर ये भाव उनके विपरीतभाव दर्शक चित्रो को देखकर उत्पन्न होते थे। चित्र का प्रसग आनददायी होता तो देखने वाला अवश्य ही सुबकने लगता और दु खदायी होता तो प्रेक्षक ठठाकर हसने लगता। उनके चित्रो मे इतनी सामर्थ्य होती थी कि वे बडे से बडे आशावादी को निराशावादी और निराशावादी को आशावादी बना सकते थे। केवल रगो और कूचियो की सहायता से मनुष्य के बुनियादी स्वभाव मे इतनी बडी क्राति ला देने की क्षमता ससार के इने गिने चित्रकारो मे ही पायी जाती है।

अपनी चित्रकारी का ऐसा मूलगामी परिणाम होता देखकर तात्या ने चित्रो की मानो टकसाल शुरू कर दी। उनके चित्रो को मोल देकर खरीदने वाले रसिको ने इस भूमि पर अभी जन्म नही लिया था। इसलिए उन्होने उन्हे मुफ्त बाटने की परि-

पाटी चलाई। शहर के घर घर मे तात्या के चित्र दिखाई देने लगे और लोगो का दीवानखानो मे बैठना मुश्किल हो गया। उनके द्वारा अंकित देवी देवताओं के चित्र देखकर लोग नास्तिक होने लगे। उनके हिसाब से सुदर होने वाली स्त्रियों की चित्राकृति को देखकर कवियो की प्रतिभा जल कर भस्म होने लगी। उनके रति के चित्र को देखने वाले बच्चे रात की नीद मे डरने लगे, यहा तक कि शीघ्र ही वह चित्र सुलभ प्रसूति के लिए आसन्न प्रसवा स्त्रिया म बडा लोकप्रिय हुआ। चित्रो की इस बाढ से बचने के लिए कुछ लोग शहर छोडकर भागने का विचार करने लगे जबकि कुछ लोगो ने जिलाधीश को अर्जिया लिख भेजी कि चित्रकला की हत्या की बराबरी का अपराध घोषित कर दिया जाए। सुबह सुबह उनके चित्रो पर नजर पडती तो दिन भर दुकानदारो की बोहनी न होती और उन्हे रात दिन आखो के सामने रखने पर तो एक-दूसरे पर प्राण निछावर करने वाले पति पत्नी मे और राम-लक्ष्मण जैसे भाइयो मे भी झगडे होने लगते। चित्रो की इस भरमार से सिर्फ एक फायदा हुआ। नवोदित चित्रकारो को उन्हे देख देख कर बडा दिलासा मिला। वे सोचने लगे कि उन्होने यदि आखें बद करके कागज या कैनवस पर कूची के बदले झाडू भी फेर दी तो भी कोई चिंता की बात नही। तात्या की चित्रकारी ने वाकई ऐसे नये मानदड स्थापित किय थ कि इससे आगे किसी भी चित्रकार का चित्र लोगो को नापसद होने की सभावना ही न थी। उदीयमान चित्रकारो को इससे बडा सतोष हुआ।

अपने चित्रो का अपेक्षा से ठीक उलटा परिणाम होता देखकर तात्या प्रेक्षको पर जो प्रभाव डालना हो उससे ठीक उलटी विषयवस्तु के चित्र बनाने लगे। बारात का दृश्य चित्रित करना हो तो वे जानबूझकर श्मशान यात्रा का चित्र बनाते और बाग का दृश्य दिखाना हो तो सहारा का रेगिस्तान अंकित करते। इसी प्रकार समुद्र अभिप्रेत हो तो पहाड और पर्वत इष्ट हो तो महासागर का चित्र बना देते। फोटो खीचते समय नेगेटिव म जिस प्रकार काले की जगह सफेद और सफेद के स्थान पर काला दिखाई देता है, कुछ वैसी ही प्रक्रिया तात्या की चित्रकला के सबध मे भी पायी जाने लगी।

बाद म कुछ दिनो तक तात्या को ऐतिहासिक प्रसग अकित करने का शौक चर्राया। परतु इस क्षेत्र म उपरोक्त उलटबासियों का प्रयोग कारगर होने की सभावना नही थी। मन मे औरगजेब की कल्पना करके शिवाजी महाराज का

चित्र बनाना या सवाई माधवराव पेशवा के समय के रंगोत्सवों का चिंतन करके पानीपत के युद्ध का दृश्य अंकित करना संभव नहीं था। अतः अब वे हूबहू चेहरे चित्रित करने की कला साधने की कोशिश में लग गए। इसके लिए पहले उन्होंने शीशे में देखकर अपना ही चेहरा चित्रित करने का निश्चय किया। परंतु इस बात का संकल्प जितना आसान था उतना उसे अमल में लाना नहीं था। आरंभ में तो दर्पण के सामने खड़े होते ही मुंह बना-बनाकर खुद अपने आप को चिढ़ाने की इच्छा उनके मन में दुर्निवार हो उठती और वे उसी प्रवाह में बहने लगते। वे दांत किटकिटाते जीभ बाहर निकालते नाक सिकोड़ते, गर्दन झटकते भौंहों का तांडव नृत्य करते मुट्ठी भींच कर अपने ही प्रतिबिंब को डराते और फिर इन सारी मर्कटलीलाओं को देखकर पेट पकड़ पकड़कर हंसते। इस प्रकार काफी देर तक अपने आपको चिढ़ा लेने के बाद उन्हें अपने संकल्प की याद आती। शीघ्र ही वे हाथ में कागज-कलम लेकर और चेहरे पर गंभीरता धारण करके लिखने का स्वांग भरते और अपनी इस दार्शनिक मुद्रा को घंटों तक दर्पण में निरखते। एक बार इस ध्यानसमाधि के दरमियान उन्हें जोर से छींक आ गयी। एक के बाद दूसरी तीसरी, यों लगातार छह-सात छींकें आयीं। करुणरसपर्यवसायी नाटक में शोक रस का पद घोंट घोंटकर गाते समय गायक को बीच में ही छींक आ जाए, तो उसके मुख पर जिस प्रकार की लाचारी की मुद्रा अंकित होगी, कुछ उसी प्रकार के भाव इस प्रथमग्रासे मक्षिकापात को देखकर तात्या के चेहरे पर भी आए। नाक सिनककर और चेहरा पोंछकर वे फिर स्वरूपदर्शन के रियाज में लग गए। अब की बार एक मधुमक्खी उनके प्रतिबिंब के गाल पर बैठने का प्रयत्न करने लगी। उन्होंने उसे एक जोरदार रहपट रसीद किया जिसके परिणामस्वरूप एक ओर तो शीशा टूटकर उनकी हथेली लहूलुहान हो गयी और दूसरी ओर गाल पर सचमुच की मधुमक्खी ने डंक मारा। तथापि इन छोटे-मोटे विघ्नों की ओर ध्यान न देने का तात्या ने दृढ़ निश्चय किया। पुनः एक बार स्वस्थ होकर वे तैयार हुए। इस बार उनके मन में आया कि कूची हाथ में लेकर चित्र बनाने की मुद्रा को चित्र में अंकित किया जाए। शीघ्र ही हाथ का चित्र और कूची एवम् चेहरे को छोड़कर शरीर के बाकी अंगों का एवं बैठने के ढंग का चित्रण फलक पर हो गया।

अब रहा चेहरे का रेखांकन। दरअसल यह कोई कठिन बात नहीं थी। उनके

चेहरे पर दाढ़ी मूछ का ऐसा घना जगल फैला हुआ था कि उसके बीच मे से गाल, होठ, ठोडी आदि फुटकर अवयवो के दिखाई देने की सभावना ही नही थी। उन की मूछो की बाढ तो इतनी रफ्तार से होती थी कि मूछें मुडवाकर उन्हें शाकुन्तल नाटक के पहले अक म शकुन्तला की भूमिका दी गई हो तो नकली दाढ़ी मूछ लगाने का झमेला फैलाए बिना ही वे दूसरे अक म दुष्यत की, चौथे अक म कण्व की, सातवें मे सर्वदमन के साथ खेलने वाले सिंह की और अत मे मारीच की भूमिका सुगमता से निभा सकते थे। उनके चेहरे पर का जगल हम लोगो के मजाक का विषय बन चुका था। हम कहते 'तात्या, तुम कही भी जाओ, इस जगल से तुम्हारा छुटकारा नही और इसी कारण से तुम्हारी जगलीपन की आदतें सुधरना भी मुश्किल है।' इस हालत मे उनके चेहरे का रेखाकन करते समय आरभ मे तो केवल काले रग से दो चार बार आडी तिरछी कूची फिरा देने भर से काम चल सकता था। बाकी के अवयव बाद मे सुविधानुसार रग जा सकते थे। इन कारणो से तात्या को अपनी मुखश्री का चित्रण करने म तो कोई कठिनाई नही हुई। परतु बहुत प्रयत्न करने पर भी आखो का चित्रण नही हो सका। आखो को हाथ मे के चित्र की तरफ झुकी हुई दिखाना आवश्यक था। इसके लिए चित्र की ओर देखना जरूरी था। परतु ऐसा करने म दर्पण की ओर से आखें हटानी पडती थी और अपना प्रतिबिंब दिखाई नही पडता था। यदि दर्पण की ओर देखें तो आखें चित्र पर से हट जाती थी। तात्या ने दो-तीन घटे तक प्रखरसाधना की, पर आखें चित्र की ओर नीचे और दर्पण की ओर ऊपर एक साथ नही देख सकी। आखिर हारकर उन्होने आखो का चित्रण कल्पना की सहायता से ही पूरा किया।

यह सब झझट पूरा हो जाने के बाद उन्होने अपने बनाए हुए चित्र पर साभिमान नजर डाली ही थी कि घोर निराशा से कम ठोकने की नौबत आ गयी। जिस बात का उन्हे डर था वही हुआ। चित्र को हूबहू वास्तविकता प्रदान करने के लिए उन्होने यह सारा महाभारत रचा था और यहा तो बायें हाथ की अगूठी दाहिने हाथ मे, दायें कान की मुरकी बायें कान मे और पगडी की दाहिनी ओर का तुर्रा बायी ओर दिखाई दे रहा था। और तो और चित्र मे कूची भी बायें हाथ मे पकडी हुई दिखाई दे रही थी। तात्या ने सिर पीट लिया। उनकी देखादेखी दर्पण के प्रतिबिंब ने भी माना उनका उपहास करने के लिए बाया हाथ अपने कपाल पर दे मारा।

सादृश्य अंकित करने की कला साध्य हो जाने के बाद तात्या ने फिर एक बार ऐतिहासिक प्रसंगों की ओर मोर्चा घुमाया। परंतु विभिन्न कारणों से उनके यह चित्र वास्तविकता प्राप्त न कर सके। एक तो तात्या की स्वभाव प्रकृति आरंभ से ही शांति की ओर उन्मुख थी। अनेक लोगों की एकसाथ भीड़ या हिंसाचार उन्हें बिलकुल पसंद नहीं था जबकि ऐतिहासिक प्रसंगों में इन्हीं बातों की भरमार होती है। उनकी स्मृति भी इच्छानुगामी थी। वह याद रखने योग्य व्यक्तियों की संख्या को सदा मर्यादित रखती थी और अप्रिय व्यक्तियों को अर्धचंद्र देकर निकाल बाहर करती थी। स्वभाव खूनसी न होने के कारण याददाश्त की पकड़ भी कुछ ढीली-ढाली थी। किसी बात को आज उसके सुपुर्द किया जाए तो कल उसमें ज्यों की त्यों मिलने का कोई भरोसा नहीं था। अकसर वह घटनाओं को अपने रंग में रंग लेती थी। उनकी स्मृति का तीसरा गुण था समदृष्टि। अपने साम्राज्य में प्रवेश करने वाली घटनाओं या व्यक्तियों के बीच भेदभाव करके उनमें से कुछ को एक कमरे में और बाकी को दूसरी कोठरियों में बंद रखना उसे बिलकुल पसंद नहीं था। इस कारण से स्मृति में संचित व्यक्तियों और घटनाओं की अकसर खिचड़ी पक जाती थी। एक शताब्दी में जन्म लेने वाले व्यक्तियों का किसी अन्य शताब्दियों के व्यक्तियों से संपर्क हो जाता था और उनके मिलन से किसी तीसरी ही शताब्दी की घटनाएं घटित हो उठती थी।

बाजीराव प्रथम का कायरता के साथ स्वप्न में भी संबंध नहीं था। परंतु द्वितीय बाजीराव के साथ नामसादृश्य होने के कारण तात्या के चित्रों में अंकित होने पर उस वीर पुरुष को अनेक बार युद्धक्षेत्र से पलायन करना पड़ा। इसी प्रकार तात्या की स्मृति ने निश्चय किया कि दक्खन के बहमनी राज्य का संबंध पेशवाओं के ब्राह्मणवंश से अवश्य होना चाहिए। बस फिर क्या था। पेशवाओं के पूरे घराने को अठारहवीं शताब्दी से उठकर सोलहवीं शताब्दी में जाना पड़ा। इसी प्रकार की किसी मान्यता के कारण बाबर को अफ्रीका के बर्बर देश में जन्म लेना पड़ा और राणा प्रताप को अरावली की पहाड़ियों के बजाय हिमालय की तराई को अपना कार्यक्षेत्र बनाना पड़ा।

चित्रों में प्रकाश और छाया कहां और किस परिमाण में दिखाने चाहिए और रंगों का मिश्रण किस अनुपात में करना चाहिए इसका अध्ययन भी तात्या की नजरों से छूटा नहीं था। परंतु हर बात में चित्रकला के प्रचलित नियमों को

मानने के बजाय अपनी अकल चलाना ही उनका अपना कमाल था। अत एक बार उन्होंने सूर्य की किरणों के सातों रंगों को एकत्र करके उन्हें सूरज के मुंह पर चुपड़ दिया। इतना ही नहीं उसे छाया से भी वंचित नहीं रखा। सूर्यबिंब के आधे भाग को वे अक्सर छाया से ग्रस्त दिखाते थे। अब इसे देखकर कुछ कुत्सित टीकाकार सूर्य को ग्रहण लगा हुआ मानने लगें, तो इसमें तात्या का कोई दोष नहीं था।

कुछ उपन्यासकारों को जिस प्रकार पात्रों के नामों की योजना उनके चरित्रानुसार करने की आदत होती है उसी प्रकार तात्या अपने पात्रों की वर्णयोजना उनके चरित्रानुसार करते थे। उदाहरणार्थ सदा काली करतूतों में डूबे रहने वाले व्यक्तियों का चेहरा वे स्याह काले रंग से चित्रित करते थे और बात-बात में तमतमा उठने वाले व्यक्तियों का चेहरा लाल रंग से। जिस व्यक्ति का चरित्र गंगाजल की तरह निर्मल हो उसकी मुखमुद्रा पर वे पानी की इतनी परतें चढ़ा देते थे कि चेहरा दिखाई ही न दे। इसके विरुद्ध, दभी बर्ताव करने वाले लोगों के साथ चित्रकला में भी वे जैसे को तैसा वाला न्याय बरतते थे। मतलब यह कि पहले उसके चेहरे को उसके अंतःकरण के भावों के अनुरूप रंग कर ऊपर से उसके बाह्य बर्ताव के अनुसार रंग पोतते थे। इसी प्रकार मन में एक, वाणी में दूसरा और कृति में तीसरे ही प्रकार का व्यवहार करने वालों की मुखमुद्रा पर पेपरमिंट की रंग बिरंगी गोलियों की तरह रंग के तीन-तीन पुट चढ़ा देते थे। मन में गांठ रखने वाले किसी घुन्ने आदमी का चित्रण करते समय चित्र के पीछे का भाग भी रंग दिया जाता था। इन बारीकियों का पालन करने में उन्होंने कभी आलस्य नहीं किया। इससे यही प्रमाणित होता है कि कोई भी कला निरंतर अध्यवसाय और परिश्रम के बिना साध्य नहीं होती।

आखिर-आखिर में तो तात्या पर चित्रकारी का कुछ ऐसा भूत सवार हुआ कि उसके बिना उन्हें कुछ सूझता ही नहीं था। भोजन करते समय वे रंगोली की आकृतियां बनाने लगते और थाली में उंगलियों की सहायता से कुछ न कुछ लकीरें खींचते रहते। घर की दीवारों पर पौराणिक और ऐतिहासिक प्रसंगों के चित्रों की भीड़ हो गयी थी। इतना ही नहीं, जमाखर्च की बहियों में भी वे हाशिये पर या और जहां कहीं भी खाली जगह दिखाई देती चित्र बनाने लगते। विशेष तौर पर साहूकारों के खातों में वे जमा की तरफ इतने चित्रों की भीड़ कर देते कि जमा रकमों को पढ़ पाना भी मुश्किल हो जाता। शीघ्र ही घर में चित्रविहीन

कागज का टुकड़ा भी मिलना दूभर हो गया। प्रियतमा के शरीर पर चित्रवल्ली बनाने की प्राचीन प्रथा का उन्होंने अपनी अर्धांगिनी की देह पर पुनरुद्धार किया या नहीं यह तो हम नहीं जानते पर अपने शरीर पर चित्र विचित्र गोदने उन्होंने अवश्य गुदवा लिये थे। इतना ही नहीं, मिस्र, चीन, आदि देशों की चित्रलिपियों की तरह भारतीय भाषाओं के लिए भी चित्रमय वर्णमाला ईजाद करने की कल्पना उनके मन में बुलबुलाने लगी थी। कपड़ा, छाता, जूते, आदि नित्योपयोगी वस्तुएं खरीदते समय वे उनकी गुणवत्ता के बजाय उनके लेबलों पर छपे हुए चित्रों को अधिक महत्व देने लगे। सारे सचित्र समाचार पत्रों और पत्रिकाओं के वे आजीवन ग्राहक बन गए। सचित्र नाटक और उपन्यासों से उनका घर भर गया। इतना ही नहीं, सचित्र विज्ञापनों को काट-काट कर वे उनके अलबम बनाने लगे। विलायती सिगरेटों की डिबिया पर अकसर रंगीन चित्र छपे हुए होते हैं। महज इसी कारण से उन्होंने देसी बीड़ी का शौक छोड़कर विलायती सिगरेट का व्यसन गले में बांधा।

तात्या के इस मज्जागत शौक के छूटने की वैसे तो कोई उम्मीद नजर नहीं आ रही थी पर एकबार एक मामूली कारण से यह असंभव बात संभव हो गयी। तात्या ने एक बार चित्रकला के यथारूपदर्शन (Perspective) संबंधी सिद्धांतों का अनुसरण करके चातुर्वर्ण्य का एक बृहत चित्र बनाया। इसे उन्होंने अपनी कला की मूर्धन्य रचना घोषित करके अपनी समूची प्रतिष्ठा दांव पर लगा दी। चित्र में ब्राह्मण को स्वाभाविक रूप से सामने का मध्यवर्ती स्थान दिया गया था। क्षत्रिय और वैश्य को क्रमशः ब्राह्मण की दायीं और बायीं ओर कुछ पीछे का स्थान मिला और शूद्र के लिए सबसे पीछे कुछ दूर का स्थान नियत हुआ। चित्र तैयार होने में समय तो बहुत लगा पर आखिर वह उनके मन के अनुसार बन गया। तात्या ने उसमें अपना सर्वस्व कौशल उंडेल दिया था। ब्राह्मण सत्त्वगुणनिष्ठ होना चाहिए। इसलिए उसके चेहरे पर सफेदी पोती गयी थी। क्षत्रिय और वैश्य रजोगुणी होते हैं अतः उनके चेहरे लाल बनाये गये थे और तमोगुणयुक्त अधम शूद्र का मुख काला स्याह रंगा गया था। ब्राह्मण पद्मासन लगा कर बैठा था और क्षत्रिय एवं वैश्य उसके दोनों ओर हाथ जोड़े खड़े हुए थे। शूद्र तो बिलकुल पृष्ठभूमि में घुटनों के बल बैठा हुआ था और हाथों की अंजलि पसार मानो दया की भीख मांग रहा था। यहां तक तो सब ठीक था। पर इस यथारूपदर्शन (perspective)

वाले नियम ने सब गुड़ गोबर कर दिया। शूद्र को यद्यपि ब्राह्मण से नीचे स्तर पर दिखाया गया था तथापि वह उसके पीछे कुछ दूरी पर होने के कारण चित्र-कला के नियमानुसार ब्राह्मण के आसन से ऊंचे स्तर पर दिखाई दे रहा था। इतना ही नहीं, कृपायाचना के लिए फैली हुई उसकी हथेलियां कुछ ऐसा आभास उत्पन्न कर रही थीं मानो वह ब्राह्मण के कंधे पर सवार होकर उसे दबोचे दे रहा हो और उसे मारने के लिए हाथ उठा रहा हो। चित्र बनाते समय तात्या आलेखन में आकंठ डूबे हुए थे। अतः चित्र पूरा होने तक यह त्रुटि उनके ध्यान में नहीं आयी। जिस चित्र पर उनकी आकांक्षाओं का दारोमदार था उसकी यह हालत हुई देखकर उनका दिल टूट गया और तभी से कूची या रंगों को हाथ भी न लगाने की उन्होंने प्रतिज्ञा कर ली। आजकल तो यह हालत हो चुकी है कि कोई उनके सामने चित्रकला का जिक्र भी करता है तो वे उसका हाथ कलम कर देने की और मुंह रंग देने की धमकियां देने लगते हैं।

25 छायाचित्र अर्थात् फोटो

ललित कलाओ के क्षेत्र मे यथार्थ और काल्पनिक का झगडा बडे पुराने समय से चला आ रहा है। या प्रत्येक कला का उद्गम प्रकृति से हुआ है। साथ ही प्रत्येक कलाकृति को व्यवस्थित और पूर्ण स्वरूप प्रदान करने के लिए कल्पना का प्रयोग भी अत्यत आवश्यक होना है। वास्तव मे कला के क्षेत्र में प्रकृति और कल्पना का कम-अधिक प्रमाण म मिश्रण वाछनीय ही नही, अनिवार्य होता है। इस दृष्टि से देखा जाए तो उपर्युक्त दोनो मतवादा के बीच का फक मौलिक नही बल्कि प्रमाण का ही मालूम देता है। यह सतही अतर भी दोनो प्रकार की विचारधाराओ म कला के प्रयोजन को लेकर जो मतभेद है उस पर आधारित है। यथार्थवादियो के मतानुसार सृष्ट पदार्थों का यथार्थ चित्रण कराना ही कला का प्रयोजन माना गया है जबकि कल्पनावादी तत्त्वबोध और मनोरजन को कला का प्रधान उद्देश्य मानते हैं। इस कारण से पहले गिरोह का लक्ष्य मुख्यत प्रकृत स्वरूप की ओर और दूसरे की दृष्टि रसिका के चित्त की ओर रहती है। इसी कारण से जड और चेतन सृष्टि के चमत्कारो का चित्रण पहले गिरोह द्वारा बहुधा उनके मिश्र स्वरूप मे होना है जबकि दूसरे मतावादियो द्वारा प्राय उनके एकातिक स्वरूप म होता है। पहले गिरोह की कृतियो म विरोध या वैषम्य और दूसरे के सृजन मे सवाद और सामजस्य को अधिक महत्त्व दिया जाता है। यथार्थवादी चित्रकार वन्य जीवन का चित्रण करते समय बाघ द्वारा हिरन का शिकार होता दिखायेगा तो कल्पनावादी कलाकार दोनो को एक ही घाट पर पानी पीता हुआ चित्रित करेगा। यथार्थवादी शेक्सपियर अपने नाटको म सुदर और बीभत्स वस्तुओ को एक साथ प्रस्तुत करता है तो आदर्शवादी कालिदास रसिका को सुदर-असुदर के पचडे से ऊपर उठाकर और कल्पना के मेघ पर आरूढ़ करके उन्हें केवल रमणीय वस्तुओ के ही दर्शन करवाते हैं।

और वैज्ञानिक यत्रो की प्रगति के कारण यथार्थवादियो को एक बहुत बडा सहारा मिल गया है। कलाल के अड्डे म चलने वाली रसमधुर तू-तू मैं मैं को शब्दश अकित करने की इच्छा हो तो ध्वनियत्र (Phonograph) की सहायता से उसका एक-एक शब्द—प्रत्येक के विशिष्ट लहजे के साथ—चिरकाल के लिए सचित किया जा सकता है। सभ्यता के आक्रमण के कारण अपनी भाषा के अपशब्दो के विस्मृत हो जाने का खतरा उपस्थित होते ही, यत्र की सहायता से अपनी इस प्राचीन विरासत का पुनरानुभव किया जा सकता है। ताडीखाने के उक्त ग्राहक जब आत्माभिव्यक्ति के अगले सोपान पर पहुचकर हाथापाई करने लगें और अत म नालियो मे गिरकर विश्राम करने लगें तब तक के चमत्कारो का हूबहू चित्राकन करने की इच्छा हो तो गतिमान छाया चित्रण यत्र (Cinema to graph) की सहायता ली जा सकती है और उन उत्साहवर्धक दृश्यो को सदा के लिए वज्रलेप किया जा सकता है। होश मे आने पर नाटक के प्रधान पात्रो की इच्छा हो, तो उन्हे उनकी नालीलोटन लीला का पुनर्दर्शन भी करवाया जा सकता है।

प्रकाश-लेखक अथवा स्थिर छायाचित्रण यत्र (Camera) की सहायता से मनुष्य की मुखमुद्रा के साथ-साथ उसके मनोभावो को भी यथातथ्य प्रतिबिंबित किया जा सकता है। परतु यह सभव होने के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य के चेहरे पर उन भावो की स्पष्ट अभिव्यक्ति हो। मन के भावो को मन मे ही छिपा रखने वाले या उन्हे चेहरे पर व्यक्त करने म असमर्थ मनुष्य के सामने यत्र भला कहा तक सर फोडेगा। चेहरे पर भावदर्शन के अभाव मे चित्रकार तो कल्पना के बलबूते पर इस दिशा म काफी कुछ कर सकता है, परतु यत्रावलबी छायाचित्र कला मे उसका शताश भी सभव नही होगा।

हमारे नगर मे एक ऐसा ही कुशल चित्रकार रहता था। उसने एक बार रगो और कूचियो के चमत्कार से तीन चित्र तैयार किए। प्रत्येक चित्र मे एक मध्यम आयु का पुरुष एक युवती के कधे पर हाथ रख कर खडा हुआ था। उन दोनो का आपस मे रिश्ता क्या था यह जानने का पुरुष की दृष्टि के सिवा चित्र में और कोई साधन नही था। परतु केवल आखो की भावाभिव्यक्ति के बल पर एक चित्र मे उनका आपसी नाता पति पत्नी का, दूसरे मे भाई-बहन का और तीसरे मे पिता पुत्री का स्पष्ट अनुलक्षित होता था। चेहरे और आखो के भावो का चित्रण

इतना वास्तविक हुआ था कि किसी भी रसिक [illegible] मन में इन रिश्तों को लेकर रत्तीमात्र भी सदेह रहने की गुंजाइश नहीं थी।

इन चित्रों को देखकर हमारे बहूनाना के मन में इसी प्रकार की सिद्धि कैमरे की सहायता से कर दिखाने की महत्त्वाकांक्षा जगी। उनकी योजना तो इससे भी बहुत लंबी चौड़ी थी। एक ही जोड़े को लेकर वे उपरोक्त तीन ही नहीं बल्कि दस-बीस रिश्तों की अभिव्यक्ति करना चाहते थे। उदाहरणार्थ, केवल पति पत्नी के नाते के ही वे कम से कम चार फोटो खींचना चाहते थे। एक में प्रथमवर और कुमारी वधू, दूसरे में दुहाजू वर और कुमारी कन्या, तीसरे में प्रथमवर और गतभर्तृका स्त्री, तो चौथे में विधुर वर और विधवा वधू। इतना ही नहीं वे तो इस मालिका को और भी ब्योरेवार बनाना चाहते थे। कहीं पुत्रहीन पति और वंध्या भार्या तो कहीं संतति के आधिक्य से त्रस्त दंपति। कहीं पहले से ही नजदीक के रिश्तेदार होकर बाद में पति पत्नी के नाते में बंधने वाला जोड़ा, तो कहीं विवाह से पहले एक-दूसरे का नामगांव भी न जानने वाले नितांत अपरिचित अजनबी। इस प्रकार की विविध बारीकियों को केवल मुखमुद्रा की अभिव्यक्ति के बल पर चित्रित करने का उनका मनसूबा था। बहन भाई के रिश्ते में तो इससे भी अधिक वैविध्य की गुंजाइश थी। एक फोटो में सगे भाई-बहन तो दूसरे में सौतेले। तीसरे में चचेरे तो चौथे में मौसेरे और पांचवें में ममेरे फुफेरे। पांचवें चित्र के दो उपभेद हो सकते थे। एक में ममेरा भाई और फुफेरी बहन तो दूसरे में फुफेरा भाई और ममेरी बहन। इस से भी आगे बढ़कर एक पीढ़ी के अंतर के, और दो या तीन पीढ़ियों के अंतर के चचेरे भाई-बहनों का चित्रण हो सकता था। अंत में दत्तक भाई और औरस बहन एवम् धर्मबंधु और मुंहबोली बहन का निरूपण होकर यह मालिका समाप्त हो सकती थी। पिता पुत्रों के नाते में अधिक वैभिन्य की गुंजाइश नहीं थी, फिर भी औरस, दत्तक आदि दो-तीन प्रभेद दिखाए जा सकते थे।

इस फोटो मालिका के लिए सिर्फ दो कुशल कलाकारों की आवश्यकता थी एक अभिनेता और एक अभिनेत्री। बहूनाना ने शहर की सारी नाटक कंपनियां छान मारीं, पर आरंभ में वर्णित तीन रिश्तों के अलावा एक भी नाते की अभिव्यक्ति करने को तत्पर जोड़ा उन्हें कहीं नहीं मिला। उन्होंने रुपये का लालच दिया, प्रसिद्धि का लोभ दिलाया, कीमती वस्त्रालंकार देने के वादे किए, पर कोई

परिणाम नहीं निकला। अंत मे दो निकृष्ट कोटि के नौटकी वालो पर यह जिम्मेदारी सौंपनी पडी। इन लोगो का आत्मविश्वास इतनी उच्च कोटि का था कि उन्होंने उपरोक्त सारे रिश्ते ही नहीं बल्कि आवश्यकता पडने पर मा-बेटे का नाता अभिव्यक्त करने की भी तैयारी दिखाई।

शीघ्र ही फोटो खीचने का दिन आ पहुचा। कलाकारो की जोडी वस्त्राभूषण मे सजी। फोटोग्राफर अपने यत्रो सहित उपस्थित हुआ। उसने अपनी तिपाई खडी की और नाना के हुक्म छूटने लगे। शुरुआत सगे-सौतेले, औरस-दत्तक, चचेर-फुफेरे, ममेरे मौसेर आदि बहन भाइयो के सबधदर्शक फोटो लेने से हुई। नाना रिश्तो का नाम पुकारते जाते थे और कलाकार नातो के अनुसार अपने चेहरो के भावो मे परिवर्तन करते जाते थे। नाते ज्यो ज्यो एक एक पीढी से दूर के होने लगे त्यो-त्यो कलाकारो की मुखमुद्रा पर मनुष्य के बजाए मनुष्य के आदिम पूर्वजो के भाव अधिकाधिक दिखाई देने लगे। इन दोनो महान कलाकारो का शायद ऐसा विश्वास था कि नातो के बीच का अतर ज्यो ज्यो बढता जाए त्यो-त्यो चेहरे और दृष्टि मे से मार्दव का भाव कम होता जाना चाहिए और उसका स्थान ऊब और सत्रास के भावो को ले लेना चाहिए। चौथी-पाचवी पीढी के भाइ बहनो के चित्रण तक पहुचते-पहुचते तो उनके मुख पर उकताहट और खुनस का कुछ ऐसा भयावह मिश्रण दिखाई देने लगा मानो वे एक दूसरे को खा जाना चाहते हो। आगे चलकर ये उग्र भाव उनके चेहरो पर स्थायी रूप से अकित हो जाने के कारण पति-पत्नी और पिता पुत्री की सबधदर्शक फोटो मालिका अपेक्षा से बिलकुल भिन्न प्रकार की सिद्ध हुई।

कैमरे के सामने बैठने पर नाट्यकला की तालीम पा चुकने वालो की जब यह हालत होती है, तो फिर अभिनय या भावाभिव्यक्ति किस चिडिया का नाम है यह भी मालूम न होने वाले सामान्य जनो की फोटो खिचवाते समय कैसी दुर्दशा होती होगी इसकी भला बात ही क्या पूछी जाए! बोलचाल की भाषा मे 'फोटू खिचना' को 'फजीहत होना' का समानार्थी मुहावरा शायद इन्हीं लोगो के कारण माना जाता होगा।

फोटो खिचवाने का मूल उद्देश्य स्वाभाविक अवस्था की छवि अकित करना होने पर भी ये लोग फोटो उतरवाने से पहले पूरे शरीर को वस्त्रालकारो से लाद कर कुछ ऐसा कृत्रिम रूप दे देते हैं कि उन्हें पहचानना उनकी अर्धांगिनियो के

लिए भी मुश्किल हो जाए। फोटो खिचवाते समय चेहरे पर बड़े गंभीर और सात्विक भाव होने चाहिए ऐसे किसी शास्त्रीय विधान से प्रेरित होकर लोग बड़ी भौंडी और बेतुकी मकट चेष्टाए करते हैं। मुस्कराने का अथ दांत निपोरना लगा कर बूढ़े लोग फोटो खिचवाने समय दांतो की नकली बत्तीसी लगाना कभी नहीं भूलते। शरीर के व्यग को छिपाने के लिए बेहिसाब झझट फलाया जाता है और फोटो खिचवाते समय चेहरे पर मुस्कान होनी चाहिए यह तो शायद इस कला का अतिरिक्त और अनिवाय नियम माना जाने लगा है।

परतु सबसे ज्यादा लोग तो कपडो को लेकर चोटी जाती है। किसी कोरी कहार को भी फोटो खिचवाना हुआ तो वह किसी का रेशमी कुरता और जरी किनार का दुपट्टा मागकर जरूर लाएगा। जीवन म कभी साफा सर पर बाधने का मौका न पडने के कारण हाथ-पांव जोडकर किसी से साफा बधवाएगा। कोट की ऊपर वाली जेब मे तहाया हुआ, पर ईषत् बाहर को झांकता हुआ रूमाल और नीचे वाली जेब मे जजीर वाली घडी और घडी न हुई तो कम से कम भीतर की ओर जाती हुई जजीर लटकाने से कभी नही चूकेगा। कुछ लाग ता रेशमी कुरते म भीतर कमख्वाब का जाकिट और सोने का कठा पहनने की हिमाकत भी करते हैं और कुछ अति बुद्धिमान लोग फोटो का सुगध के साथ कोई सबध नही होता यह मालूम होने पर भी शरीर पर इत्र फुलेल चुपडकर ही कैमरे के सामने खडे हाते हैं। एक दूसरा अत्यावश्यक तामझाम होता है फोटो मे मोटे मोटे ग्रथों का समावेश। एक मोटा-सा ग्रथराज हाथ में और दूसरा उससे भी बृहदाकार ग्रथ टेबल पर रख कर गहन विचार-सागर मे डूबी हुई मुखमुद्रा धारण करके फोटो खिचवाना हमेशा से लोकप्रिय रहा है। उन ग्रथो की सुनहरे अक्षरों में लिखी हुई नाम वाली किनारी हमेशा कैमरे क सामने रखी जाती है। अगर उन्ह घुमाकर देखा जाए तो तुरत पोल खुल जाती है कि उनके तो अभी पन्ने भी नही काटे गए।

फोटो खीचने वाले की दृष्टि से देखा जाए तो सबसे अधिक कष्टप्रद काम होता है फाटो खिचवाने वालो को व्यवस्थित ढग से तरतीबवार बिठाना। उसका कौशल जितना इस बात मे खच होता है उतना और किसी मे नही। बैठने वालो की रचना उनके पदानुसार और ज्येष्ठतानुसार हो एव अन्य दृष्टियो से आकषक हो इसकी वह बेचारा जीजान से कोशिश करता है जबकि फोटो खिचवाने वालो

मे से प्रत्येक व्यक्ति औरो की अपेक्षा अपने आप को ही आकर्षण का केंद्र बनाने की तजवीज मे रहता है। अक्सर ठिगने लोगों का आगे की पंक्ति मे बिठाया जाता है। इससे उन्हें अपनी धोती की रेशमी किनारी, घडी की जजीर, कानो की मुरकिया, मूछो की ऐंठन, माथे के तिलक और हाथो को कुशलता स जमा कर रखने पर उगलियो की अगूठियो को भी फोटो मे प्रदर्शित करने का मौका मिलता है। उन्हें सिर्फ शारीरिक कमियो को ढकने की थोडी बहुत कोशिश अवश्य करनी पडती है। फोटोग्राफर कुशल हुआ, तो यह सब आसानी से हो जाता है। माथे पर कोई जख्म का निशान हो, तो विचारमग्न मुद्रा बना कर सर को हथेली पर टिकाया जा सकता है। मूछें अस्तव्यस्त हो, तो छितरायी हुई ओर को उगलियो से ऐंठने का पोज बनाया जा सकता है। आखें भैंगी हो, तो गहरे रग का चश्मा पहना जा सकता है। कुरते के ऐन गले के नीचे का हिस्सा फटा हुआ हो, तो उसे दुपट्टे के नीचे छिपाया जा सकता है और धोती फटी हुई हो तो उस स्थान को ढकने वाला कोण बना कर वहा छाता रखा जा सकता है।

इसी प्रकार लबे लोगो को बहुधा सबसे पीछे की कतार मे खडा किया जाता है। शारीरिक कमी को छिपाना उनके लिए बडा सरल होता है। गरदन ऊट की सी हो, सीना भीतर की ओर धसा हुआ हो, पेट बढा हुआ हो या पाव अष्टावक्र के से हो, बल्कि यह कहिए कि चेहरे को छोडकर शरीर के किसी भी अग मे कितना ही वैगुण्य क्यो न हो, उसे आगे बैठे हुए व्यक्ति के पीछे आसानी से छिपाया जा सकता है। खडे रहने के लिए किसी ऊचा साफा बाधे हुए व्यक्ति के पीछे की जगह चुन कर फेंटे रूपी जटाजूट पर अपना मुखचद्र टिका दिया जाए, तो अपना फोटो सौ फीसदी व्यगरहित निकलने की गारटी रहती है। पीछे खडे रहने वाले के लिए सिर्फ एक दिक्कत है। आगे बैठने वालो को जहा अपनी शारीरिक कमियो को छिपाना मुश्किल होता है वहा इन्हे अपने अगसौष्ठव या वस्त्रवैभव का प्रदर्शन करने मे कठिनाई होती है। एक बार एक ठिगने आदमी को उसकी कुरूपता के कारण पीछे खडाकर दिया गया। उसे अपनी ऐंठी हुई मूछो का बडा अभिमान था। उसके सामने एक विशालकाय सज्जन बैठे हुए थे। उनके साफे ने नाटे महाशय के मूछा रूपी कलक से युक्त मुखचद्र को खग्रास ग्रहण लगाया हुआ था। आखिर चेहरा नहीं तो मूछें ही फोटो मे दिखाई दे जाए इस उदात्त हेतु से प्रेरित होकर उसने आगे के भीमकाय सज्जन की बगलो की दरार से अपनी मूछें

सटा दी। उसका प्रयोजन सफल हुआ। फोटो मे मूछो के स्पष्ट दर्शन हुए। अब देखने वालो को यदि ऐसा भास हुआ हो कि स्थूलकाय सज्जन के कुरते की बगलें फटी हुई होने के कारण भीतर की सुषमा के बाहर तक दर्शन हो रहे हैं, तो इसमे दोनो मे से किसी का कोई दोष नही था। किसी अन्य महात्मा ने फोटो खिचवाते समय पहनने के लिए डासन के विलायती बूट महगे दामो खरीदे थे। पीछे खडे रहने की नौबत आने पर उसकी खिन्नता का पारावार न रहा। फोटोग्राफर द्वारा सावधान रहने की सूचना दी जाने पर उसे एक तरकीब सूझी। उसने झट से अपने पाव आगे बैठे हुए व्यक्ति के पावो से सटा दिए। बस, फोटो मे बूटो की छवि अकित हो गई। इससे आगे बठे हुए महाशय चतुष्पाद दिखाई देने लगे थे यह अलग बात है। तीसरे एक महाशय ने फोटो खिचवाते समय पहनने के लिए चमडे का कमरबद खास बबई से मगवाया था। उसे भी जब पीछे खडा रहना पडा, तो अपना कमरबद अपने शरीर पर न सही, किसी अन्य के ही शरीर पर दिखाई दे जाए इस उदात्त विचार से प्रेरित होकर, फोटोग्राफर के एक-दो-तीन करते ही उसे आगे बैठे हुए व्यक्ति के गले म लटका दिया। आगे बैठने वाले सज्जन चेहरे पर मुस्कान लाने के प्रयत्न मे मशगूल होने के कारण उन्ह अपने गले मे पडने वाले इस श्वानकठभूषण की जानकारी भी नही हुई।

सर्कस के रिंगमास्टर को विभिन्न स्वभाव वाले अनेकविध जानवरो को काबू म रखने म जितनी परेशानी होती होगी उससे कई गुना अधिक परिश्रम फोटोग्राफरो को अपने विविध वर्णीय ग्राहको को व्यवस्थित ढग से बैठाने म करना पडता है। छाती तान कर बठे हुए किसी नरपुगव से कुछ झुक कर बठने को कहा जाए तो उसे इसमे अपना अपमान महसूस होता है। अधखुली आखो को ठीक से खोलने को कहा जाए तो लोग आखें फाडने लगत हैं और विभिन्न कोण बना कर झुकी हुई गर्दन को सीधा करने का कितना ही प्रयत्न क्यो न किया जाए, फोटोग्राफर का हाथ हटते ही वह स्प्रिंग लगे हुए खटके की तरह फिर अपना मूल स्थान प्राप्त कर लेगी। इतने लोगो के सामने यह टके का फोटूवाला उनकी गर्दन को पकड कर चाहे। जस झटके देता रहे इसे भला इतने बडे राय बहादुर या रायसाहब कैसे सहन कर सकते है। उनकी चुटिया पकड कर उन्हें मनमाना नाच नचाने का अधिकार तो सिर्फ दो व्यक्तियो को होता है उनके अर्धांग पर अधिकार जताने

मानी जाती कुर्सियों की ओर उनके इस्तेमाल व महत्त्व क्या माहिर था।

और इतना सच, कहते-कहते आज भी [illegible] फोटोग्राफर को [illegible] है। [illegible] देता है कि [illegible] अवस्था [illegible] जाती है। [illegible] और [illegible] है। [illegible] विभिन्न [illegible] मुखाकृति की [illegible] और इस परिस्थिति के [illegible] अंतिम [illegible] जाती है। बेचारा फोटोग्राफर [illegible] का [illegible] भी नहीं कर सकता।

इस पुरुष व महिलाओं का अनुपात का [illegible] और भी टेढ़ी खीर है। इस प्रकार पर स्त्रियों को कुर्सियों पर बिठाकर पुरुषों को पीछे खड़े करने का रिवाज होता है। किंतु जिन स्त्रियों के पीछे, तस्वीर में [illegible] जो खड़ा पुरुष खड़ा है, वह सामान्यतः अक्सर बड़ा वयोवृद्ध सिद्ध होता है। हर स्त्री की यही मांग होती है कि फोटोग्राफी में उसके पीछे खड़ा रहने वाला पुरुष उसका पति ही हो। यदि आप पति-पत्नी के ही हों, तब तो इसमें कोई दिक्कत नहीं होगी। परन्तु पतियों की अनुपस्थिति में फोटो खिंचवाने वाली महिलाएं पीछे का स्थान खाली रखने का आग्रह करती हैं। विधवाओं के संबंध में यह प्रश्न बहुत उपस्थित ही नहीं होना चाहिए, पर इस बात का खतरा तो भी कभी-कभी ऐसा संदेह पैदा करती है कि विधवा के दावे से विषय उपस्थित हो तो सामाजिकता की मान्यता गलती मालूम पड़ने लगती है। कभी-कभी दो भार्याओं का पति होने वाला कोई नरपुंगव उन दोनों की कुर्सियों पर हाथ जमा कर दोनों पर अपना स्वामित्व सिद्ध करना चाहता है। बेचारे फोटोग्राफर को यह सारा अत्याचार चुपचाप सहन करना पड़ता है। इन सब बातों से फोटो की रचना में भले ही विषमता आ जाए, फोटो खिंचवाने वालों के मन में किसी प्रकार के वैषम्य की गुंजाइश नहीं रहती।

कुर्सियों के आगे की खाली जगह परंपरा से बच्चों के लिए सुरक्षित मानी जाती है। बच्चों को अपने माता पिता की तरह फोटो की महत्ता का ज्ञान नहीं होता। अतः वे इतना ऊधम मचाते रहते हैं कि उन्हें काबू में रखते रखते फोटो

ग्राफर के नाकों दम आ जाता है। उन्हें कुछ खाने-पीने की चीज देकर चुप बैठाना भी श्रेयस्कर नहीं होता क्योंकि उन्हें यदि एक बार यह मालूम हो जाए कि अपने उत्पातों के बलबूते पर वे खाने-पीने की चीजें वसूल कर सकते हैं, तो उनका उधम कम होने के बजाय और भी बढ़ जाने की संभावना रहती है। मारपीट का डर दिखा कर उन्हें धमकाने से भी काम नहीं चलता। इससे उनके गला फाड़ कर रोने की संभावना रहती है। इस अड़चन में फंसे हुए फोटोग्राफर को प्राय किसी गप के सहारे ही उनका ध्यान केंद्रित करना पड़ता है। अक्सर ही इसमें उन्हें सफलता मिलती है परंतु कभी-कभी यह मार्ग भी खतरे से खाली नहीं होता। एक बार एक फोटोग्राफर ने कैमरे के भीतर कुत्ता छिपा हुआ है यह कह कर छोटे बच्चों को शांत बैठाया। फोटो खिंचने तक तो वे तसवीर की तरह निश्चल बैठे रहे। परंतु फोटोग्राफर का ध्यान जरा इधर-उधर होते ही उनमें से एक ने कैमरे का शटर खोल कर भीतर छिपे हुए कुत्ते को देखने का प्रयत्न किया और फोटो के काच को निकम्मा कर डाला। असत्य बोलने वाले के भाग्य में सदा अपयश ही बदा होता है इसका इससे अच्छा प्रमाण और कहां मिलेगा।

यह सारी व्यवस्था पूरी होते-होते कभी-कभी तो इतना अधिक समय बीत जाता है कि फोटो के योग्य प्रकाश ही नहीं रहता। फोटो का समय सुबह का हो, तो दोपहर होकर धूप बहुत तेज हो जाती है और शाम का हो, तो सूरज ढल कर अंधेरा हो जाता है। इन दोनों ही हालतों में फोटो खींचना श्रेयस्कर नहीं होता और पूरे आयोजन को किसी और दिन पर टालना पड़ता है। उस दिन भी प्राय पहले दिन की ही पुनरावृत्ति होती है। फोटो के लिए जितना प्रकाश आवश्यक होता है उतना रहने के भीतर ही फोटो खिंच जाए ऐसा सुनहरा अवसर प्राय दो या तीन दिन व्यर्थ गवाने के बाद ही सधता है।

बैठने की व्यवस्था यथायोग्य होकर फोटो खिंचने का क्षण आते-आते फोटो खींचने वाला और खिंचवाने वाले, दोनों रुआंसे हो उठते हैं। इसी बीच कैमरे का फोकस भी साधना पड़ता है। इसके लिए फोटोग्राफर काला कपड़ा ओढ़ कर कैमरे के काच में से बार-बार बैठने वालों की ओर देखता है और उन्हें कैमरे की ओर ताकते रहने की सूचना देता है। लगातार एक ही स्थान पर ताकते रहने से लोगों की आंखों से पानी बहने लगता है। साथ ही चेहरे पर कृत्रिम मुस्कराहट धारण किये रहना भी नितांत आवश्यक होता

है। इस हालत मे यह समझना अक्सर मुश्किल हो जाता है कि फोटो खिचवाने वाला हस रहा है या रो रहा है। पलको को लगातार खुली रखने का यह परिणाम होता है कि वे ऐन मौके पर अनिवाय रूप से झपक जाती हैं और सारा षटक्रम निरथक सिद्ध हो जाता है। फोटोग्राफर नाटा और विशालोदर हो, तो उसकी उछल-कूद को देख कर आने वाली हसी प्रयत्न करके दबाने पर भी ऐन मौके पर फूट पडती है और फोटो मे चेहरे पर मद मद मुस्कान के बजाए पूरी बत्तीसी झलकाने वाला विकट हास्य अकित हो जाता है। कभी-कभी फोटो खिचने के ऐन क्षण पर कोई मक्खी नाक या चेहरे पर विराजमान होकर यथेच्छ भ्रमण करने लगती है। यह मौका मक्खिया मारने का न होने के कारण बचारा फोटो खिचवाने वाला चुपचाप अपने साथ उसकी भी छवि अकित होने देता है। कमर के लेंस को उचित अनुचित की विवेकबुद्धि बिलकुल ही न होने के कारण वह तो दृश्य की यथातथ्य छवि अकित कर देता है और मक्खिका फोटो म भी स्थापित रहती है।

फोटो खिचवाते समय ऐन मौके पर कभी-कभी कही खुजान की इच्छा इतनी दुर्निवाय हो उठती है या खासी, छीक, हिचकी, डकार या जम्हाई का वग इतना प्रबल हो उठता है कि रोके नही रुकता और इन क्रियाओ सहित फोटो अकित होकर वह देखने वाला के मनोरजन का साधन बन जाता है। जिस मुस्कान को इतन प्रयत्नो के बाद फोटो खिचवाने वाला अपने मुख पर अकित करना चाहता है वह आखिर दूसरा के मुख पर अकित होकर कृतकाय होती है। अधा मागे एक आख और दाता देव दोय' वाला 'याय शायद इसी का कहते हैं।

शरीर पोशाक और मन की ऐसी चरम अस्वाभाविक स्थितियो मे खिंचे हुए फोटो म खिचवाने वाला व्यक्ति पहचान न जाए तो इसमे आश्चय की कोई बात नही। आखिर देखने वाला उसे पहचान भी किस आधार पर ? उसकी एक भी स्वाभाविक भगिमा फोटो मे नही होती। उसके कारे कपडे, बठने का ढग हाथ का ग्रथ, चेहरे की कृत्रिम मुस्कान कुछ भी परिचित नही होता। ऐन वक्त पर उपस्थित हाने वाली उपरोक्त आपत्तियो के कारण चेहरा टेढा मेढा हो गया हो या आख मुद गई हो, तब तो कुछ पूछिए ही मत। इस हालत म पहचाना न जाने पर फोटो खिचवाने वाले को भी विशेष बुरा नही लगता। फोटो म उसका चेहरा अकसर इतना विद्रूप और विचित्र दिखाई देता है कि लोग उसे अपने

मुखचद्र की यथातथ्य प्रतिकृति न मानें। यहा तक कि उसे देख कर पहचानें भी नही, तो इससे उसका कोई अपमान नही होता बल्कि एक अप्रिय स्थिति से उसका छुटकारा हो जाता है। इतने सब खटकरम म से गुजरने के बाद यह परिणाम निकलता देखकर अधिकाश लोग भविष्य मे फिर कभी फोटो न खिचवाने की कसम खा लेते हैं और जो फोटो खिच चुके हैं उन्हे हनुमान से लगा कर जामवत तक किसी का भी चित्र कहकर श्रद्धालु लोगो के हाथो पैसे दो पैसे म बेच देते हैं। इससे फोटो खिचवाने के खर्च की आशिक रूप म क्षतिपूर्ति हो जाती है और उन्हे सभाल कर रखने की अप्रिय जिम्मेदारी से मुक्ति मिल जाती है।

26 साधुसंत

भारतवर्ष में आजकल जितने भी उद्योग व्यवसाय प्रचलित हैं, उनमें से प्रत्येक में धन, मान या शक्ति रूपी पूंजी की आवश्यकता पड़ती है। खेती के लिए हल बैल आवश्यक होते हैं और सुनार, लुहार, ठठेरे, बढ़ई, दरजी, धोबी और नाइयों को भी अपने अपने धंधे के हथियार औजारों की और अपने फन की जानकारी की आवश्यकता पड़ती है। साहूकारों और व्यापारियों या पूंजी के बिना काम नहीं चलता और वकीलों एवं डाक्टरों को अपने व्यवसाय के ग्रंथों और अनेक प्रकार के उपकरणों की आवश्यकता पड़ती है। चित्रकार, गवैये और अभिनेताओं को अपनी-अपनी कला का गहन अध्ययन करना पड़ता है और नटों, मदारियों तथा बाजीगरों को भी विशिष्ट साधनों की सहायता से कई प्रकार के करतब दिखाने पड़ते हैं। रसोइयों के लिए पाकसिद्धि के ज्ञान के साथ-साथ आंच-गर्मी की सहनशक्ति आवश्यक होती है और कहारों मजदूरों का काम कमरतोड़ परिश्रम और भरपूर शारीरिक बल के बिना नहीं चल सकता। और तो और, सबसे निकृष्ट व्यवसाय जो भीख मांगने का है उसमें भी झोलीतसले की आवश्यकता पड़ती है, इतना ही नहीं, मनुष्य स्वभाव की उत्तम जानकारी हुए बिना भीख मिलना भी मुश्किल है।

उपरोक्त व्यवसायों में जिम्मेदारी के अनुपात में द्रव्य-लाभ होने के अलावा उनके करने वालों को कम अधिक प्रमाण में आनुषंगिक लाभ भी होते रहते हैं। वकीलों और डाक्टरों पर क्रमशः मानवीय या ईश्वरीय न्यायालय के कटघरे में अभियुक्त के रूप में खड़े होने की नौबत आए तो उस संकट से छूटने के लिए उन्हें अन्य किसी की सलाह लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती। गवैये को दूसरे गवैयों का गाना सुनने के लिए और अभिनेताओं को अन्य नाटक मंडलियों के खेल देखने के लिए जेब हलकी नहीं करनी पड़ती। दर्जियों या धोबियों के पास पहनने के

लिए अच्छे कपडे न हो ऐसी शिकायत कभी सुनने म नही आई। रसोइया को तो मालिक स भी अच्छा भोजन मिलता है यह मानी हुइ बात है। नाइयो को अपनी ठोडी बनवाने के लिए किसी की चिरौरी नही करनी पडती और नीरक्षीर का बेमालूम मिश्रण करन की कला अवगत हो, तो ग्वाला को कभी दूध की तगी महसूस होन की सभावना नही रहती।

परतु किसी भी प्रकार की पूजी जमान का या ज्ञान प्राप्त करने का कष्ट किए बिना सब प्रकार क सुखो का उपभोग करन वाला एक वग भी हमार देश म बडे प्राचीन काल स मौजूद रहा है। यह वग है साधुसतो का। भारतवासी स्वभाव म ही दयालु और श्रद्धालु होत हैं। अकाल क समय पटापट मरन वाल मनुष्य प्राणियो की व भल ही उपेक्षा कर जाए पर चिउटियो को शक्कर के बिना तरसान का पातक उनक हाथो कभी नही होता। कमर तोड कर मेहनत करन वाल मजदूर को रोटी का टुकडा भी न मिले, तो हम अपना अपना भाग्य या पूवजन्म के कर्मों का फल मान कर व अपन मन का समाधान कर लेगे पर दिन भर जम्हाइया लेकर गाजे की चिलम फूकन के सिवा और कोई काम न करन वाले साधुमतो का छप्पन प्रकार के व्यजनो म अन्तर डालने पहुचाने म उनके द्वारा कभी कोताही नहीं होगी। जिन्हाने अपना-अपना व्यवसाय चुन कर अपन आपको उसी म जोत दिया है उनका पट भरन की जिम्मेदारी तो उनकी अपनी अपनी है। परतु जिनका कोइ भी व्यवसाय नही उन चिउटियो और साधुसतो का पट भरन का दायित्व तो सवथा अपन ही ऊपर है ऐसी हर हिंदू की एकात धारणा होती है। इसलिए साधुसतो को हमारे देश मे न तो कभी किसी चीज की कमी पडती है न कभी काम करन की आवश्यकता। स्त्री का जन्म मिले तो वह इग्लैंड या अमरीका म मिले और पुरुष का जन्म मिल तो फ्रास म यह इच्छा जिस प्रकार औसत आदमी के मन म होती है उसी प्रकार मत महत का अवतार भाग्य म बदा हो तो वह भारत म ही मिल यह कामना भी स्वाभाविक ही मानी जाएगी। इन महात्माओ को सब प्रकार के सुख प्राप्त करन क लिए न तो एडिया रगडनी पडती है न किसी के सामन दात निपोरन पडत है। 'अजगर करे न चाकरी पछी करे न काम' वाले सिद्धात पर अटल विश्वास होने के कारण उन्ह सबसुख अपन मठो या आश्रमो म बठे-बठे ही प्राप्त हो जाते हैं। मानो जून राजसी भोजन की पत्तल और महात्माजी कुछ पहुचे हुए हो तो पाव दबाने के लिए कोमल हाथो

वाली गुदरिया उन पर बैठे उपलब्ध हो जाती हैं।

साधुओं के लिए किसी भी धंधे का चार न तो आवश्यक होता है न अपेक्षित। फिर भी उन्हें अन्य धंधे वालों का शोभा न दें ऐसी अनेक हरकतें करने का जन्म सिद्ध अधिकार प्राप्त है। कोई राज मिस्त्री लोगों को ढेले फेंक कर मारने लगे, कोई बजाज कपड़े की धज्जियां उड़ाने लगे या कोई वकील अपने मुवक्किलों को गालियां देने लगे, तो लोग उसे पागलों में शुमार करेंगे और यह धंधा मरेगा। परन्तु इनमें की कोई भी बेहूदगी यदि कोई साधु अपने मठ में या गांव के पीपल के चबूतरे पर बैठ कर करना शुरू कर दे तो उसे कोई बुरा भला नहीं कहेगा, इतना ही नहीं बल्कि उसकी प्रसिद्धि एक सिद्ध के रूप में दूर-दूर तक फैल जाएगी। साधारण और असाधारण जनों के बीच में यही फर्क होता है। कोई साधु अपने हाथों से भोजन करने के बजाय दूसरे के हाथों से करने लगे और शरीर धर्म की अन्य विधियां भी अपनी जगह पर बैठे-बैठे ही करने लगे तो उसकी इस बेहूदगी को साधु महाराज की बाल्यवृत्ति की पदवी मिल जाएगी। बैठे-बैठे अपने आप ही बड़बड़ाने लगे तो उस पागलपन को बाबा की उन्मत्त अवस्था का विरद प्राप्त हो जाएगा। भक्तों को गालियां देकर ढेले उठा-उठा कर मारने पर तो बाबा केवल परमसिद्धों को प्राप्त होने वाली उच्च कोटि की उन्मत्तावस्था पर जा पहुंचते हैं और देह को नितांत गलीज एवं जुगुप्साजनक स्थिति में रखने वाले शीघ्र ही अघोरीवृत्ति वाले परमहंस घोषित हो जाते हैं। इन सब हरकतों का कम-अधिक प्रमाण में एक साथ उदय हो जाने पर महाराज मोक्ष प्राप्ति से केवल एक सोपान नीचे की पिशाचवृत्ति में प्रवेश कर जाते हैं। शुक्र है कि मनुष्य-प्राणी की बेहूदा करतूतों के लिए पिशाचवृत्ति के बाद की कोई अवस्था संभव न होने के कारण यह वर्गीकरण यहीं समाप्त हो जाता है। अन्यथा कुछ जीवन्मुक्त साधुसंत इसके बाद की अवस्थाओं को आत्मसात करने में भी आगा पीछा न करते।

हमारे नगर को एक बार एक ऐसे ही उच्च कोटि के साधु के समागम का लाभ मिला। वे उक्त अवस्थाओं में से किसी एक ही के समर्थक न होकर प्रसंगानुसार सभी को अंगीकार करते रहते थे। बहुधा वे दिगंबरावस्था में रहते थे। हम दुनी संसारियों की तरह उनके पास छिपाने योग्य कुछ भी नहीं था। इस हालत में वस्त्रों का झंझट भला वे क्यों पालते। अपनी वस्त्रविहीनता की लज्जा

महसूस करने के बजाय वे देखने वाला की ओर कुछ ऐसी तुच्छता से देखत थे कि कपडे पहनने वाला को वस्त्र जैसी गहित वस्तु धारण करने की लाज आने लगे। स्वच्छता के सबध म तो वे नितात वीतराग थे। बालो को तल या कघी का स्पश उन्होंने कभी नही होने दिया था और स्नान वे सिफ भक्तो के लिए पादोदक की रस्म जारी रखने के उदात्त हतु स छठे छमाहे ही करते थे। देह को जहा रीठे जैसी स्वदेशी वस्तु का भी स्पश न हुआ हो, वहा साबुन जसी विदेशी वस्तु की तो बात ही छोडिए। अत भक्तो को यह चरणामृत किसी भी प्रकार के विदेशी सुगध द्रव्य से सवथा अछूत और पवित्र रूप म प्राप्त होता था। वे दिनरात अपने आप से कुछ बडबडाते रहते थे। उनकी इस फुसफुसाहट का शायद ही कोई शब्द किसी की समझ म आता हो। परतु भक्तो के तत्पर कान उसम से मनमाना अथ निकाल लेते थे और उनकी यह अनमनी वाणी सैकडो भक्तो की शकाओ का एक साथ समाधान करने मे समथ होती थी। दशनार्थियो को पत्थर फेंक कर मारने की साधु सुलभ वत्ति तो उन्होंने आरभ से ही धारण कर रखी थी।

मैं बचपन मे नियमित रूप से इन साधु महाराज के दशनो को जाया करता था। बाबा का कृपाप्रसाद कही आवश्यकता से अधिक मात्रा म न मिल जाए इस डर से वक्त-जरूरत काम आने वाला एक मोटा-सा सोटा सदा साथ रखता था। साधुसतो के पास खाली हाथो जाने का रिवाज नही होता। इसलिए मैं भी हर बार एक नारियल या दो चार पैसे ले जाता था। उन्हें नमस्कार करके चढावा सामने रखते समय डर के मारे मेरी ऐसी बुरी हालत हो जाती कि बयान नही कर सकता। एक तरफ निस्सीम श्रद्धा और दूसरी ओर सर फटने का भय, इनके सयोग स कुछ ऐसी विचित्र मनस्थिति उत्पन्न होती थी कि बाबा का ध्यान कुछ दूसरी ओर बटते ही मैं उन्हें झटपट नमस्कार कर लेता था और उनके कृपाकटाक्ष की राह देखे बिना पीछे की पक्ति मे बैठ कर अन्य भक्तो की आड म अपना पापी मुह छिपा लेता था। बाबा का निस्पृहता का बाना तो उस पूरे इलाके मे प्रसिद्ध था। चढावे के नारियल को वे चढाने वाले भक्त की गुरुभक्ति की परीक्षा लेने के लिए उसके सिर पर कब दे मारेंगे इसका कोई भरोसा नही था। एक बार बाबा बाल्यवृत्ति म डूबे हुए हैं ऐसा भ्रम हो जाने के कारण मैंने डरते डरते उनका चरण स्पश करने की हिम्मत की। परतु क्षणाध म उनके मन मे बाल्यवृत्ति के स्थान पर उन्मत्तावस्था का सचार हो गया और उन्होंने मेरे गाल पर इतने जोर से

रहपट लगाया कि उनके वरद हस्त की छाप पांचों उंगलियों सहित गाल पर उभर आई। दूसरे गाल को भी यही दशा होने का अंदेशा न होता तो मैं शायद बेहोश होकर वहीं गिर पड़ा होता। इतना कृपाप्रसाद एक साथ ग्रहण करने की मुझ जैसे पामर की तैयारी नहीं थी। अतः साधु महाराज का उठाया हुआ हाथ दूसरे गाल पर पड़ कर उसका भी कल्याण कर उसके पहले ही उन्हें शतशः धन्यवाद देकर मैं उठ खड़ा हुआ और नौ दो ग्यारह हो गया।

दरअसल उन दिनों मैंने हाईस्कूल की परीक्षा दी थी। साधु महाराज के प्रति मेरी इतनी उत्कट श्रद्धा परीक्षा के परिणाम पर उनकी दिव्य सिद्धियों का प्रभाव डलवाने के हेतु से ही जमी थी। मुझे बाबा का उपरोक्त कृपाप्रसाद प्राप्त होने के कुछ ही दिनों बाद परीक्षा का परिणाम घोषित हुआ। मुझे उसमें कल्पनातीत सफलता प्राप्त हुई। बस, अब क्या था ? उसका बाबा की कृपा के साथ अविच्छेद्य संबंध जुड़ गया। अब तो परीक्षा में बैठना चाहने वाला हर विद्यार्थी अध्ययन करने के बजाय बाबा के सामने गाल आगे कर घंटों बैठने लगा। बाबा ने भी कभी किसी को निराश नहीं किया। उनके हाथों से रोज पांच-सात गालों को प्रसाद मिलने लगा। जिन विद्यार्थियों को यह अनुग्रह आसानी से नहीं मिला वे नाना उपायों से बाबा को भड़काने की चेष्टा करने लगे। इस प्रकार की यंत्रणा से दुखियों कर तो शांत से शांत मनुष्य का भी क्रोध आ सकता था। बाबा तो पिशाचवत्ति की अत्यंतिक उन्मत्तावस्था में पहुंचे हुए थे। शीघ्र ही उनके हाथ का प्रसाद न मिलने वाला एक भी विद्यार्थी नगर में नहीं बचा। होते होते परीक्षा का दिन आ पहुंचा। पाठ याद करने के बजाय चेहरा रंगवाने वाले सारे श्रद्धालु विद्यार्थी बड़ी आशा से परीक्षा में बैठे और सबके सब अनुत्तीर्ण हुए। परंतु बाबा की चमत्कार सिद्धियों की शोहरत में इससे कोई फर्क नहीं पड़ा। लोग अब यह कहने लगे कि सिद्ध पुरुषों के कृपाकटाक्ष के तो कई रूप हो सकते हैं। इन विद्यार्थियों का परीक्षा में अनुत्तीर्ण होना ही शायद उनके अधिक हित में हो। इस प्रकार बाबा के चापड़ और परीक्षा में सफलता के बीच का कार्यकारणभाव नष्ट हो जाने पर भी विद्यार्थियों की झापड़ खाने की तमन्ना में कोई फर्क नहीं पड़ा। झापड़ का अर्थ जब सफलता या असफलता कुछ भी हो सकता था, तो कौन जाने अपने संबंध में वह न मालूम किस रूप में यशदायक सिद्ध हो जाए इन सब परस्पर विरोधी संभावनाओं का परिणाम यह निकला कि विद्यार्थी रहपट खाते

रहे, परीक्षा के परिणाम के अनुसार उसे शुभ या अशुभ समझते रहे, और बाबा की त्रिकालदर्शिता मे और भी चार चाद लगते रह।

यह तो हुई मनुष्य योनि के साधुसतो की बात। परन्तु हमारी उदात्त सस्कृति म पशु पक्षी और मनुष्यो के बीच भेदभाव कभी नही किया गया। हमारी पौराणिक कथाओ म मनुष्येतर योनियो के पशु पक्षियो को भी बडी निष्पक्षता से बराबरी का स्थान मिला है। साधु व के दशन पशु पक्षी, स्थावर जगम, जड चेतन, किसी भी वस्तु म हो हमारे मन मे उनके प्रति आदर उत्पन्न हुए बिना नही रहता। इसका प्रमाण कुछ वष पहले हमारे नगर म एक वृषभ-सत (या सत वृषभ) का जो सत्कार हुआ था, उसस मिल जाता है। बल का मालिक अत्यत दरिद्र था। कई दिन तक रोटी न मिलने पर एक रोज स्वप्न म उसे अपने बैल के महान विभूति होने का समाचार मिला। इस बात की प्रसिद्धि होने की देर थी कि दशनेच्छु भक्तो की भीड उमडने लगी और अवतारी बैल महाराज के खुरो पर चढाव के ढेर लगने लगे। परतु वह महात्मा भी धन्य थे। वे उस सारे द्रव्य को तृणवत मानते थे। बल्कि या कहिये कि तृण से भी निकृष्ट मानते थे क्योकि तृण पर तो उनकी बडी आसक्ति थी। अनेक धनवान भक्तो ने उन पर कामदानी की झूलें चढवाइ। कइयो ने उनके सीग सोने से मढवा दिए और अनेको न उनके गले म मोती की मालाए पहनाइ। पर उस महान तपस्वी ने कभी अपनी पीठ या सीग या गले की ओर मुड कर भी नही देखा। इस दृष्टि से देखा जाए तो उसकी निस्पृहता मनुष्य योनि के सतो की अपेक्षा कही ऊचे दर्जे की सिद्ध होती थी। उसके दशनो को पुरुषो की तरह स्त्रिया भी आती थी, किंतु उस महामुनि ने किसी की ओर आख उठा कर भी नही देखा। आरभ म तो भक्तगण आसीनावस्था मे दशन करके ही सतुष्ट हो जाते थे। परतु फिर भक्तो ने उनके चारो पावो के बीच म से निकलने का आग्रह दिखाया। तुरत वह चतुष्पाद सत जनकल्याण के हेतु घटो खडा रहने लगा और उसको टागो के बीच से निकल निकल कर अनेक ससारी प्राणी भवसागर को पार करते रहे। ऐस मौको पर कभी कभी सत्पात्र को देख कर वृषभमुनि तीर्थोदक का प्रसाद भी दे देते थे। मानव साधुओ की तरह उसे किसी ने कोपायमान होते नहीं देखा। उसने सिफ एक बार ही पूछ मरोडने वाले किसी भक्त पर लत्ताप्रहार किया था। जिस की खोपडी पर वह किया गया था उसकी वही कपालक्रिया होकर सत

के बल पर उसके स्वर्गारोहण की तैयारी हो गई थी। परंतु उसे अभी इस पापी संसार में अनेक वर्ष बिताने थे इसलिए कुछ लोगों ने उसके सिर पर पानी के छींटे मारे और वह होश में आ गया। उसके बाद उसके मन में वृषभमुनि के प्रति ऐसा भयमिश्रित आदर उत्पन्न हुआ कि अपने आपको उनकी चरणधूलि का नितांत अपात्र मानकर वह उनसे चार हाथ दूर ही रहने लगा। 'भय बिन होत न प्रीति' वाली युक्ति निरपवाद रूप से सत्य है। इस दुर्घटना के बाद वृषभसंत को रस्से से बांधा जाने लगा। परंतु इससे पामर मनुष्यों को भवसागर से मुक्ति दिलाने की उसकी योग्यता रत्तीमात्र भी कम नहीं हुई। यह महान संत समाधिस्थ हुए तब से उनके नाम से प्रतिवर्ष बड़ा मेला लगता है। उनकी संतति में सिर्फ एक सांड था। मालिक ने उसमें भी साधुत्व का साक्षात्कार होने का प्रचार किया। परंतु इस देश के चतुर लोग ऐसे बहकावे में नहीं आते। लोगों ने सांड को संत मानने के बजाय उसके मालिक को ही पाखंडी करार दिया। संतसमागम की महिमा ऐसी अगाध है कि वृषभसंत की निर्वाण प्राप्ति के बाद उनके मालिक को परद्रव्य का स्पर्श भी नहीं हुआ। उनके जीवनकाल में चढ़ावे के रूप में प्राप्त द्रव्य में से एक दमड़ी भी खर्च करने की उसकी इच्छा नहीं हुई यह उसकी कृपणता का लक्षण था। अन्यथा उस पूंजी का वह जीवन भर खाकर भी समाप्त नहीं कर सकता था।

हमारे बडूनाना की भक्ति जन्म से ही श्रद्धालु थी। एक बार हाल ही में समाधिस्थ होने वाले किसी संत ने उन्हें स्वप्न में दर्शन दिए और कहा कि बच्चा, मेरा फिर से अवतार हो गया है। कल तुम्हें एक खटमल के रूप में मैं दर्शन देने वाला हूं। सावधान रह, और कल घर में जो सबसे मोटा खटमल मिले उसी को मेरा रूप मान। बस बडूनाना ने दिन निकलते ही घर के तमाम खिड़की दरवाजे बंद करके पक्की नाकेबंदी कर ली। दरवाजों पर तो बड़े-बड़े ताले लगा दिए। अब न तो कोई बाहर का खटमल अंदर आ सकता था, न भीतर का बाहर जा सकता था। फिर उन्होंने पलंग, तख्त, पटड़े, मेज कुर्सियां, अलमारियां, गद्दे, तकिये, लोड आदि खटमलों को प्रिय लगने वाले समस्त निवासस्थानों को झटक झटक कर घर के संपूर्ण मत्कुण समुदाय को एकत्रित किया और साधु महाराज के मत्कुणावतार को ढूंढ निकालने की मुहिम शुरू की। छानते-बीनते आखिर उन्हें सबसे मोटा और पुष्ट खटमल मिल गया। उन्होंने तुरंत उसको एक डिबिया

में प्राणप्रतिष्ठा करके उसकी षोडशोपचार पूजा आरंभ की। सूर्योदय से पहले की मंगला आरती से लगाकर दिन की धूपआरती और सूर्यास्त वेला की सन्ध्या आरती तक एक भी उन्होंने चूकने नहीं दी। भोजन से पहले वे उसे नैवेद्य भी अर्पण करने लगे। परंतु नाना को शय्या पर यथेच्छ सवार करके उनके खून के घूंट पीने का चसका लगे हुए उस मत्कुणराज का दूर से दिखाए जाने वाले नैवेद्य से समाधान नहीं हुआ। उसने अन्न-जल त्याग दिया और परम कृशता को प्राप्त करके वह संत शिरोमणि समाधिस्थ हुआ।

अब तक हमने केवल पाखंडी और बुद्धिहीन साधु संतों का वर्णन किया। परंतु सभी साधु ऐसे नहीं होते। इनमें से कई महाबुद्धिमान, परम विद्वान और सामर्थ्यशाली भी होते हैं। इन्हें भूत भविष्य का ज्ञान वर्तमान की अपेक्षा कई गुना ज्यादा होता है। योगबल के सहारे वे आश्चर्यजनक चमत्कार कर सकते हैं। बहुतेरे नाना को स्वप्न में साक्षात्कार कराने वाले साधु महाराज इसी श्रेणी के थे। नाना का तो शुरू से ही यह हाल था कि दोपहर के भोजन के समय आ टपकने वाले हर साधु-बैरागी को वे अपनी सत्वपरीक्षा करने को आने वाला महान तपस्वी मान लेते थे। श्रद्धावान को सत्वपरीक्षकों की कमी कभी नहीं पड़ती। अतः दोपहर के समय कोई न कोई महात्मा उन्हें गुसाईं, बैरागी या फकीर के रूप में बिलानागा दर्शन देता रहता था। एक साधु तो प्रायः रोज आने लगा। स्वादिष्ट भोजन का परोसा पेट में पड़ते ही वह गायब हो जाता था। उसके साथ धीरे धीरे घर की कई वस्तुएं गायब होने लगीं। नाना तो इसे भी साधुबाबा का चमत्कार मान कर चुप रहे। परंतु शीघ्र ही घर के इर्द गिर्द पुलिस मंडराने लगी। तब से साधु महाराज ने दर्शन देना बंद कर दिया। विघ्नसंतोषी पुलिस वालों ने बीच में ही बाधा न डाली होती, तो साधु महाराज ने नाना के सिर पर का सांसारिक बोझ बिलकुल हल्का कर दिया होता।

नाना के यह अनेकविध गुरु भोजन तो उनके यहां करते थे पर बीच-बीच में सूक्ष्म देह से इर्द गिर्द के गांवों का चक्कर लगाकर पुलिस को दिलचस्पी हो ऐसे चमत्कार कर आते थे और फिर हमारे शहर में आ जाते थे। कहीं वे स्पर्श मात्र से पीतल का सोना बना देते थे। कहीं फूंक मार कर असाध्य रोगों को अच्छा कर देते थे तो कहीं मृतकों को पुनर्जीवित कर देते थे। कभी केले के पत्ते बैठकर लंबी लंबी जलयात्राएं कर आते थे तो कभी रेल की ...

खड़े होकर सामने से पूरे वेग से आती हुई रेलगाड़ी को रोक देते थे। परन्तु ऐसे चमत्कार सबके सामने करने पर लोग अपना पिंड नहीं छोड़ेंगे और भजन साधना में बाधा पड़ेगी इस आशंका से वे उन्हें गुप्त रूप से करते थे। यही कारण था कि इन चमत्कारों को अपनी आंखों से देखने का सौभाग्य शायद ही किसी को प्राप्त हुआ हो। लोगों के कानों में इन चमत्कारों का सुरस वर्णन प्रायः महाराज के चेले-चपाटों द्वारा उंडेला जाता था। भक्तों की भीड़ और उससे जनित तपोभंग का उन्हें इतना डर लगता था कि लोगों को बिदकाने के लिए वे उनके सामने सुरापान, परस्त्रीगमन जैसे अनाचार भी करते थे। परन्तु हमारे लोग भी कुछ कम चालाक नहीं हैं। वे साधुबाबा की तिकड़म को तुरन्त पहचान जाते और उनके इर्द गिर्द और भी अधिक भीड़ करने लगते। एक साधु महाराज ने तो लोगों के मन में अपने प्रति संपूर्ण तिरस्कार उत्पन्न करने के लिए एक छैलछबीली पुंश्चली को कामचलाऊ उपपत्नी के रूप में अपनी कुटिया में ही रख लिया था। परन्तु इससे उनकी अपकीर्ति होना तो दरकिनार उलटे दूर दूर के प्रदेशों से लोग उनके (उनकी आश्रयप्राप्त देवदासी के नहीं) दर्शनों के लिए आने लगे। किसी ने ठीक ही कहा था कि कीर्ति स्वेच्छाचारिणी स्त्री के समान होती है। जो पागल होकर उसके पीछे पड़ते हैं उनसे वह सीधे मुंह बात भी नहीं करती। और जो उसे झिड़ककर दुत्कार देते हैं उनका वह एकनिष्ठा से अनुसरण करती है। कुछ ऐसा ही अनुभव साधुओं को लेकर भी होता है। साधु संत ज्यों ज्यों अपने असाधु होने का प्रमाण देते हैं त्यों त्यों साधुत्व उन्हें गोंद की तरह चिपकता जाता है। मद्यपान मांसाहार या व्यभिचार को ले कर झूठी बदनामी फैल जाए तो वह बड़े बड़े समर्थ पुरुषों के चरित्र को भी मटियामेट कर सकती है। परन्तु इन्हीं दुराचारों के प्रत्यक्ष प्रमाण उपलब्ध होने पर भी साधुओं का चरित्र उस गंदगी से मलिन होने के बजाए और भी अधिक उज्ज्वल हो उठता है।

चमत्कारों का प्रत्यक्ष प्रदर्शन न करने के लिए साधुसंतों द्वारा इतनी सावधानी बरती जाने पर भी कभी कभी उनके हाथों कोई छोटा मोटा चमत्कार हो ही जाता है। इससे उनकी कीर्ति में और भी वृद्धि होती है। अनेक स्त्रियां पुत्रप्राप्ति के लिए बाबा की सेवा करने लगती हैं। अपने कृपाप्रसाद के लिए सत्पात्र और एकनिष्ठ शिष्याएं चुन कर बाबा भी उनकी मनोकामना पूरी करते रहते हैं और उनके पतियों का पुंनामक नरक से उद्धार करते रहते हैं। जिनके मनोरथ पूरे

नहीं होते वे, मानी हुई बात है कि सत्पात्रता और एकनिष्ठा की कसौटी पर खरी नहीं उतरी होगी। गुरु महाराज के इर्द गिर्द रोज जितनी घटनाएं होती हैं उनका इलहाम उन्हें पहले से ही हो जाता है। घटना होने के तुरंत बाद वे अपने शिष्यों से खुद को उसका पूर्वज्ञान होने का जिक्र कर देते हैं अतः उन पर शंका करने का कोई कारण ही नहीं रहता। एक बार एक साधु महाराज किसी भक्त के यहां प्रसाद पाने के लिए गए। उसी रात को उसके यहां चोरी हो गई। दूसरे दिन सुबह साधुबाबा ने चोरी का माल आंगन के जिस कोने में गड़ा हुआ है यह बता दिया और गढ़ा खोलकर माल बरामद भी करवा दिया। इतना ही नहीं चोर ने गड्ढा खोदने के लिए जिस कुदाल का प्रयोग किया था यह भी बताया। जाहिर है कि चोरी हुई उस समय भक्तवत्सल बाबा की जागरूक सूक्ष्मदेह चोर के रूप में संचार कर रही थी। एक बार तो उन्होंने इससे भी बड़ा चमत्कार कर दिखाया। उनके दर्शनों को आने वाली किसी स्त्री की अंगूठी मठ में ही कहीं खो गई। बात का होहल्ला न होता तो बाबा इस चमत्कार को गुप्त रख जाते। पर चकल्लस बढ़ती देख कर उन्होंने अंगूठी को अपनी गोमुखी में से निकाल दिखाया और लोगों को आश्चर्य विमूढ़ कर दिया।

इस श्रेणी के साधु संत भूत भविष्य वर्तमान का अचूक ज्ञान रखते हैं यह पहले कहा जा चुका है। परंतु उनका यह ज्ञान बहुधा पूर्वजन्म और पुनर्जन्म की घटनाओं तक ही सीमित रहता है। मनुष्य के वर्तमान जन्म की गत और अनागत घटनाओं को वे विशेष महत्त्व नहीं देते, क्योंकि यह बातें तो कोई साधारण ज्योतिषी भी बता सकता है। परंतु इस क्षेत्र में भी अपना पूरा अधिकार है यह दर्शाने के लिए कभी-कभी 'तुम्हें शीघ्र ही किसी महात्मा से मोक्षप्राप्ति का साधन प्राप्त होगा' जैसी महत्त्वपूर्ण भविष्यवाणियां वे भक्तों के कान में डालते रहते हैं। इसके विरुद्ध, मनुष्य के गत जन्म और आने वाले अवतार की उन्हें संपूर्ण जानकारी होती है। उनके अधिकांश भक्त पूर्वजन्म में अक्सर सूकर, गदर्भ, बैल आदि निम्न योनियों में विहार करते पाए जाते हैं जबकि आने वाले जन्म में उन्हें प्राय: महंत, श्रेष्ठी, राजा आदि उच्च योनियां प्राप्त होने वाली होती हैं। मोटे हिसाब से यह कहा जा सकता है कि पूर्वजन्म में जिसने जितनी ही अधिक खाक छानी हो उसे आने वाले जन्म में उतना ही अधिक ऐश्वर्य की संभावना रहती है। शर्त सिर्फ एक होती है कि वर्तमान जन्म में

सेवा द्वारा पूर्वजन्म के पापों का परिमार्जन कर ले। आने वाले जन्म में प्राप्त होने वाले वैभव और सुख की कल्पना में डूब कर भक्तगण न सिर्फ पूर्वजन्म में भुगती हुई यातनाओं को ही विसार देते हैं बल्कि वर्तमान जन्म में गुजारने वाले पशुतुल्य जीवन के साथ भी समझौता कर लेते हैं।

इस श्रेणी के साधु संत अपने पूर्वजन्मों की जो परंपरा बताते हैं वह तो वाकई विस्मयजनक होती है। इससे उन्हें वर्तमान जन्म में इतना ऊंचा अधिकार का प्राप्त हुआ इसकी संगति लग जाती है। किसी सुदूर अतीत में वे वेदकालीन कश्यप ऋषि थे और उन्होंने ऋग्वेद के कई सूक्तों की रचना की थी। इस बात को अनेक युग बीत जाने के कारण इस जन्म में उन्हें वह सब कुछ याद न रहे और उन ऋचाओं का वे अर्थ भी न समझते हों, यह स्वाभाविक है। रामावतार में वे रघुकुल के गुरु वसिष्ठ ऋषि थे और कृष्णावतार में उन्हें गर्गमुनि का चोला प्राप्त हुआ था। उस अवतार में उन्होंने सुभद्राहरण के समय अर्जुन की सहायता करके असत्याचरण किया था जिसके प्रायश्चित्त स्वरूप उन्हें कपिल के रूप में पुनः मनुष्य योनि में आना पड़ा। इस बार भी उन्होंने सांख्य दर्शन के रचयिता के रूप में प्रकृति को सर्वाधिकार प्रदान करके पुरुष को उसकी तुलना में नितांत पंगु बना देने का पातक किया। इस दोष के निवारणार्थ उन्हें श्रीमद् आद्य शंकराचार्य का अवतार धारण करना पड़ा। इस बार उन्होंने माया का दबदबा कम करके ब्रह्म के वर्चस्व की पुनर्स्थापना की। परंतु योगबल द्वारा मन को एकाग्र करके किसी भी विषय का मर्म समझने की शक्ति होने पर भी गीता का भाष्य करते समय उन्होंने उसका समुचित प्रयोग नहीं किया। इस त्रुटि के प्रक्षालन के लिए इसके बाद वाले जन्म में उन्हें ईसा मसीह का अवतार धारण करके सूली पर लटकना पड़ा। आजकल के पाश्चात्य विद्वान और उनकी देखादेखी कुछ भारतीय मनीषी शंकराचार्य को ईसा के बाद के युग में खींचते हैं। पर यह उनका मिथ्या भ्रम है। मसीहा के बाद उन्होंने एकनाथ महाराज का चोला धारण किया। परंतु इस जन्म में उन्होंने अस्पृश्योद्धार आदि सुधारक वृत्ति की बेहूदा हरकतें कीं। उनका निवारण करने के लिए उन्हें कबीर का जन्म प्राप्त हुआ। परंतु इस बार भी उन्होंने 'जात पांत पूछे नहीं कोई, हरि को भजे सो हरि का होई' जैसी चातुर्वर्ण्य विरोधी रट लगाई जिसके कारण वे मुक्ति का अधिकार खो बैठे। इसके बाद छोटे मोटे संतावतारों में पूर्वदोषों का संपूर्ण परिमार्जन हो जाने के कारण

उनका वतमान जन्म पवित्र ब्राह्मण कुल म हुआ। यह उनका अंतिम अवतार है। इसके बाद व मोक्ष प्राप्त करके ब्रह्मज्योति म विलीन हो जाएंग।

वत्ति म नितात विरक्त होने पर भी ये साधुसत अत करण से अत्यत मृदु और स्वभाव से परम दयालु होत हैं। इसी कारण व अपनी पूवजन्म की पत्नियो को कभी नही भूलत। कोई विशेष लावण्यवती युवती उनके चरणस्पश करा जाए तो उन्ह उसम अपनी पूवजन्म की भार्या क दशन होने लगत हैं और व तुरत उस उसी भाव स देखना आरभ कर दत हैं। इस जन्म म वह परस्त्री है जसे क्षुद्र विचार का मन म स्थान देकर ये उसके साथ बेरुखी का बर्ताव नही करत। एसी समस्त स्त्रिया सुन्दर और तरुण होती हैं, यह अलग स बताने की आवश्यकता नही। किसी वद्धा या कुरूपा स्त्री को देखकर किसी बाबा के मन म उसके पूव जन्म की भार्या होन का इलहाम हुआ हो, एसा कभी सुनने म नही आया। एसी महान आत्माओ के सान्निध्य म बुढापा और बदसूरती भला एक क्षण के लिए भी कैसे टिक सकती है।

बाबाओ को पूवजन्म की पत्निया तो नखशिखात याद रहती हैं पर उस जन्म के मा बाप की उन्ह कोई स्मृति नही रहती। ऐसी कुत्सित टीका कभी कभी मसखरे लोगो के मुह से सुनाई द जाती है। ये मूढ इतना भी नही समझत कि ऐसी महान विभूतियो को जन्म देने वाले भाग्यवान माता पिता तो इसी जन्म के अत म मोक्ष के अधिकारी होकर आवागमन के फदे स छूट गए होग। परतु महात्माओ क साथ पूवजन्म म या इस जन्म म, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष किसी भी प्रकार का सबध न होन वाले मदभाग्यो को इतनी सुबुद्धि भला सूझ ही कस सकती है। इस हालत म यही स्वाभाविक है कि य बुद्धिशून्य लोग साधुसतो की निंदा ही नही बल्कि उनके साथ घनिष्ठ सबध म आन वाले श्रद्धालु भाग्यवानो स ईर्ष्या भी करत रह। यदि यह सौभाग्य उनक ललाट म लिखा होता तो मानी हुई बात है कि व इतना शोरगुल कभी न मचात। परतु इसका भी कोई भरोसा नही। इन उलटी खोपडी के सुधारको के सबध म कोई बात निश्चित रूप से नही कही जा सकती। किसी पहुचे हुए महात्माजी स पूवजन्म म अप्रत्यक्ष रूप से सबधित एक सुधारक नराधम ने उनके साथ बडा ही गहणीय व्यवहार किया था। वह महात्माजी की पूवजन्म की भार्या का इस जन्म का पति था। अपनी स्त्री के साथ बाबा का पूवजन्म का नाता सुनते ही उसने पाव से जूता निकालकर

बाबाजी के सिर पर दे मारा और कहा, बाबा, यह जूता पूर्वजन्म मे तुम्हारी पगडी था।" उसके इस अविचार का उसे तुरत दड भी मिल गया। बाबा ने उसकी स्त्री को अपनी सेवा से फौरन हटा लिया और उस अविचारी को शाप दिया कि 'जा, अगले अवतार मे तुझे चमार का जन्म मिलेगा।' ऐसे नराधम को कीट या कृमियोनि मे धकेलने के बजाय उसे मनुष्ययोनि मे ही जन्म लेने का अधिकार दिया इसे बाबा की दयालुता और न्यायप्रियता का अकाट्य प्रमाण मानना होगा।

पूर्वजन्म की बिछुडी हुई पत्नी के साथ जान पहचान स्थापित होते ही उसकी इस जन्म की जाति को लेकर किसी प्रकार के निर्बंध का पालन करना उच्च कोटि के साधु कभी पसद नही करते। सुदर स्त्री मे पूर्वजन्म की भार्या के दर्शन होते ही उनका एक ही बाना रहता है कि जातपात पूछे नही कोई हरि को भजे सो हरि का होई।' इसके बाद वे रात दिन उसके साथ हरिभजन मे डूबे रहते हैं।

अत मे एक और बात भी बडी दिलचस्प है कि लबे बिछोह के बाद जन्मातर मे प्राप्त होने वाली उनकी ये पत्निया अकसर सुहागिन विवाहिताए ही होती हैं। उनके क्वारी या विधवा होने से कभी कभी बडा झमेला खडा हो जाता है। एक बार एक विधवा कोरिन आठ-दस महीने तक एक बाबाजी की चरणसेवा मे रही। उसके पूर्वजन्म की पत्नी होने का इलहाम तो बाबा को सेवा के आरभकाल मे ही हो गया था। छह सात महीने तक अविच्छिन्न सेवा चलते रहने के बाद बाबा ने उस एकनिष्ठ सेविका को इस जन्म मे भी विवाहरज्जु से बद्ध कर लेना उचित समझा। इस विवाह से विधवा विवाह और अतर्जातीय विवाह ये दोनो सुधार एक साथ सपन्न हो जाने के कारण सुधारको को मुह की खानी पडी। इस पराभव से क्षुब्ध होकर वे कई दिनो तक बाबा के शिष्यो के साथ के विवाहपूर्व सबध को लेकर बेमतलब थूक उडाते रहे। पर लोगो ने इसे द्वेष के सिवा कुछ नही माना।

फलश्रुति के रूप मे यह बता देना भी हम उचित समझते हैं कि इस नवपरिणीता वधू से बाबा को एक महीने के भीतर ही दिव्य पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। पहले फूल और बाद मे फल यह प्रकृति का नियम है, यह हम भी जानते हैं। पर साधुसत जैसे अवतारी पुरुषो के सदर्भ मे यह नियम उलटा भी हो जाए तो आश्चर्य की कोई बात नही माननी चाहिए।

27 पाडूतात्या की निर्जला एकादशी

जवानी म जाश के साथ बहन वाला रक्त का प्रवाह उत्तरावस्था म जब मद गति से बहने लगता है तो देह की अन्य क्रियाओ के साथ जठराग्नि की ज्वाला भी मद पड जाती है। प्याज जसी वातप्रकोपक वस्तुओ क प्रति अपन आप अरुचि हो जाती है। चातुर्मास का व्रत करन की इच्छा होन लगती है और एक-भुक्त रहने म तो कोई कठिनाई ही नही पडती। भुक्त आयुष्य बढकर भोग्य आयु ज्यो ज्यो कम होती जाती है त्यो त्यो धमश्रद्धा भी बढन लगती है। यौवन म विषयभोग अपनी नवीनता के कारण प्रिय मालूम देते हैं और धमजिज्ञासा के लिए अभी बहुत समय पडा है ऐसा विश्वास रहता है। इसी कारण स तरुणाई म मनुष्य नास्तिक न हो तो भी धम के सबध म उदासीन रहता है। परतु विषयो को भोग भोगकर उनके प्रति आसक्ति ज्यो ज्यो कम होने लगती है और उवरित आयु के समाप्त होने के लक्षण दिखाई देन लगते हैं कि मनुष्य को ईश्वर की सुध आने लगती है। जवानी मे गालियो की सहायता के बिना एक वाक्य भी न बाल पान वाले नास्तिक रामभजन करन का समय आते ही बात-बात म भगवान की दुहाई देकर उसका नामस्मरण करन लगते हैं। धम की खिल्ली उडाने वाले हूश उसके अभिमानी और पुरस्कर्ता हो उठते हैं। और तो और मूर्तिपूजा का आवश-पूण विरोध करने वाले देवनिदक सगुण उपासना के एकातिक समथक बन कर दिन रात सेवा पूजा म लग रहते हैं। भगवान के घर जाने का दिन आने स पहले ही उस सवनियता के शक्तिशाली अस्तित्व की छाया मनुष्य के मन पर अपन आप पडने लगती है।

उत्तरावस्था मे खाने पीने के प्रति अनासक्ति और धम एवम ईश्वर के प्रति बढती हुई श्रद्धा के कारण ही चातुर्मास एकादशी, शिवरात्रि आदि व्रतो का जन्म हुआ होगा। चातुर्मास म मदाग्नि के कारण हजम न होने वाले बगन प्याज,

लहसुन आदि पदार्थ ही निषिद्ध माने जाते हैं। परन्तु एकादशी शिवरात्रि जैसे उपवासों में अन्नसेवन—और व्रत का पालन कठोरता से करना हो तो जलसेवन—पूर्णतः वर्जित होता है। धीरे धीरे इन व्रतों का प्रभाव बड़े-बूढ़ों के साथ युवा स्त्री पुरुषों पर भी पड़ने के कारण उनका मूल उद्देश्य लुप्त होकर कन्द-फलों के आहार को निराहार व्रत और दूध के सेवन को निर्जल उपवास की संज्ञा प्राप्त हुई होगी। फिर तो अनेक प्रकार के निरान्न पदार्थों का समावेश फलाहार संज्ञा के अंतर्गत हो गया और आजकल तो पदार्थों की विविधता एवं गरिष्ठता में 'फलाहार' ने अनाहार को कहीं पीछे छोड़ दिया है। बड़े-बूढ़ों के व्रतों का तरुणों के साथ संबंध होने पर उनके नियमों उपनियमों की आरम्भिक कठोरता क्रम होकर अब उसका स्थान सुविधा और समझौते ने ले लिया है। पहले उपवास के दिन लोगों को एकाध फल खाने में भी संकोच होता था। अब तो केले के गुच्छे के गुच्छे और आम के टोकरे स्वाहा होने लगे हैं। आलू, शकरकन्द और सिंघाड़े से इतने प्रकार के उपवास के पदार्थ बनने लगे हैं कि उनके सामने रबड़ी मलाई भी मात खा जाए।

आजकल तो उपवास के दिन बूढ़े बुढ़ियों का भी चाय कॉफी के बिना काम नहीं चलता। ये चीजें विदेशी हैं पर इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। इस दृष्टि से देखने पर तो आलू भी विदेशी है पर व्रत उपवासों में उसे ऐसे सम्मान का स्थान मिल चुका है कि उसके अभाव में 'फलाहार' की कल्पना भी नहीं की जा सकती। फिर चाय कॉफी में जो विदेशी चीनी मिलाई जाती है वह गौमाता की हड्डियों के चूर्ण से शुद्ध की हुई होती है। इसलिए उसमें निषेध योग्य कुछ भी नहीं। इसी प्रकार सामान्य दिनों में मुखशुद्धि के लिए सुपारी का टुकड़ा पर्याप्त होता है जबकि उपवास के दिन लौंग इलायची के बिना काम नहीं चलता।

पहले भगवान भोलानाथ की प्रिय बूटी विजया का सेवन केवल शिवरात्रि के दिन ही किया जाता था। परन्तु अब तो शाम्भवी इतनी लोकप्रिय हो उठी है कि एकादशी के दिन कट्टर से कट्टर वैष्णव को भी शैव बन कर उसका सेवन करने में कोई हिचक नहीं होती। शिवरात्रि तो आजकल भंगड़ी गंजेड़ियों का प्रधान त्योहार बन गई है। उस दिन नौजवानों का अधिकांश समय भांग घोटने में ही व्यतीत होता है। हमारे कुछ व्रतों में रात्रि जागरण करने की भी प्रथा है। पहले इस समय का सदुपयोग नामस्मरण और कीर्तन आदि में होता था। अब रात-रात भर ताश चौपड़ के फड़ जमते हैं। सीताराम और राधेश्याम के स्मरण में

खच होने वाला समय अब गाटा की मारपीट और बेगम बादशाहा की जोडिया जमान मे खच होने लगा है। साराश यह कि आजकल नौजवान पीढी जितनी उत्सुकता से होली के हुडदग की बाट दखती है उतनी ही आतुरता म व्रता-उपवासा की राह तकती है।

आजकल की तरह बचपन म भी बड्नाना और पाडुतात्या के साथ मरी घनिष्ठ मैत्री थी। हम लगोटिया यार थ। हम तीनो क घर के बुजुग बडे धमनिष्ट और पुराणमताभिमानी थे। यज्ञोपवीत होन से पहले ही हम तीना को सध्या, पुरषसूक्त, सौर, पवमान, रुद्र अश्वदेव और पूजा अर्चा की दीक्षा मिल चुकी थी। जबरदस्ती की धार्मिकता के इस अकाल आग्रह का परिणाम यह हुआ कि प्रतिक्रिया के रूप म हमारी वत्ति हमार पिताओ का नापसद होने वाली अधार्मिकता की आर झुकने लगी। घर के लोगा की शोचाशोच, छुआछूत और सखरे निखरे पर एकातिक श्रद्धा थी। हम भी बुजुर्गों के सामने तो ऐसी धार्मिकता दिखाते कि स्नान के बाद सूत क धागे पर भी पाव न पडने देते। परतु उनकी पीठ फिरते ही छुआछूत के सारे नियमा को ताक पर रखकर बैठक की गद्दिया पर कलाबाजी करते, रसोईघर म जाकर सखरे निखरे के मारे बधना को तोडकर पूरे रसोइ को छूत लगा देते। पिताजी के सामने बैठकर सध्या करते समय हम अपने चेहरा को यथासभव गभीर बनाए रखते। परतु जाप के लिए उनकी आखें मुदत ही हम एक-दूसरे को जीभ निकालकर चिढान लगते। थालिया परोसी जाए तब तक तो हम शून्य मे दृष्टि को केंद्रित करके ध्यानावस्था म होने का दिखावा करत। पर पिताजी ने ठाकुरजी का भोग लगाने के लिए जस ही आखें मूदी कि हम दूसरो की थालियो की चीजें अपनी थाली म और अपनी थाली के पदाथ मुह म डालना आरभ कर देते। पितजी को प्याज स सख्त नफरत थी और घर म प्याज की कोई चीज बनाने की तो क्या प्याज लाने की भी मनाही थी। परतु दो चार महीन म पिता जी जब भी कही बाहर जाते कि हम मा के पीछे पड कर प्याज की पकौडिया और चीले बनाते। पिताजी के लौटने पर घर मे सब जगह अगरबत्तिया जला देते ताकि कहीं से प्याज की दुर्गंध न आए और उनके आने के समय लौंग-इलायची चबाकर बडी गभीरता स पोथिया खोले अध्ययन के लिए बठ जाते। घर मे आते ही पिताजी चारो ओर से धूप की पवित्र सुगध का अनुभव करते और कुलदीपका को शास्त्रा के अध्ययन मे डूबे हुए पाते। इससे उनके आनद की सीमा

[illegible] धनश्रद्धा की वे सराहना करते। गुरु की मार से वही
[illegible] न हो जाए इस डर से एकाध दिन हम उनके पास न जाते।
[illegible] से बात करते। हम लोगों में ऐसी शालीनता का उदय
[illegible] और भी अधिक संतोष होता।
[illegible] जन्माष्टमी और शिवरात्रि के दिन हमारे घर में तीन प्रकार का
भोजन बनता था। बच्चों के लिए दालभात और रोज का सादा खाना, बीमारों
के लिए साबूदाना और व्रत रखने वालों के लिए फलाहार। हम बच्चे इन
तीनों पकवानों में शरीक होकर तीनों प्रकार के व्यंजनों पर हाथ साफ करते। पिता
[illegible] पानी बूँद का भी स्पर्श किए बिना कोरा उपवास करते थे। उस रोज
[illegible] के दिन उनके सामने फटकना बुद्धिमानी का काम नहीं था। उस रोज
[illegible] भड़का हुआ रहता था और बाधित होने के किसी बहाने की व मानो
[illegible] रहते थे। इस हालत में उनके सामने जाना भूखे शेर की माद में जाने
के कम खतरनाक काम नहीं था। एक बार एकादशी के दिन मैंने पिताजी के
सामने डकार लेने की बेवकूफी की। अब आप ही बताइये जिसके पेट में जठ
[illegible] की ज्वाला भड़क रही हो उनके सामने डकार लेना भला कहा की बुद्धि
[illegible] है। पिताजी को इतना गुस्सा आया कि उन्होंने मुझे पूजा का पंचपात्र फेंक
[illegible] मैं थोड़ा-सा बच गया। पंचपात्र सिर में लगता तो वहीं कपालक्रिया
[illegible] एकादशी के दिन मृत्यु होने के कारण मुझे अपनी इच्छा के विरुद्ध
[illegible]

में ही दिखाई दे जाते हैं। तात्या के पिता ने भी विचार किया कि इस तरह फेंक-फेंक कर मारने पर घर की सारी चीजें भले ही टूट फूट जाए, सुपुत्र की खोपड़ी का बाल भी बांका नहीं होगा। सुविचार से क्रोध पर रोक लगकर हानि टलती है इसका इससे अच्छा उदाहरण और कहां मिलेगा।

बहुनाना के पिता भी बेहद गुस्सैल थे। परतु उनका क्रोध कुछ अन्य प्रकार का और आत्मकेंद्रित था। क्रोध के आवेश में वे दूसरों के बजाय अपने ही जी को क्लेश पहुंचाते थे। किसी के साथ झगड़ा हो जाने पर वे अन्नजल का त्याग करके अपना ही सर पीटने लगते। गुस्से का दौरा पड़ने पर वे जडचेतन का भेद भी भूल जाते थे। एक बार किसी उपवास के दिन अनाहार के कारण चक्कर आ जाने से वे जीने से लुढ़क गए। बस, अब क्या था ? उनके आत्मकेंद्रीय क्रोध ने रौद्र रूप धारण कर लिया। वे पांच-सात बार जीने पर चढ़कर जानबूझकर नीचे लुढ़के। हर बार जीने को सबोधित करके कहते जाते थे, "ले ससुर ! मुझे नीचे गिराता है न ? ले भर लेना जा ।" इस आततायीपन से जीने की अक्ल कहां तक ठिकाने आई यह तो नहीं कहा जा सकता, पर नाना के पिताजी की हड्डी पसलियां चूर चूर हो गई और वे महीनों तक खटिया तोड़ते रहे।

हम तीनों के पिता जिस रोज निजल उपवास करते थे उस रोज तीनों के घरों में प्रायः एक-सी स्थिति रहती थी। निजल वे व्रत करते थे और मुंह का पानी घर के अन्य लोगों का सूख जाता था। उन तीनों को इससे कुछ पुण्यलाभ होता था या नहीं, यह कहना तो मुश्किल है पर घर के अन्य लोगों को ऐसा लगता था मानो पिछले कई जन्मों के पाप साकार होकर सामने आ खड़े हो। यह आतंक दूसरे दिन द्वादशी का पारण हो जाने पर ही समाप्त होता था। बुजुर्गों के पेट में खीर पूरी पहुंचते ही उन्हें पिछले दिन के अपने शीघ्रकोप को लेकर कुछ पश्चात्ताप भी होता था। इससे यही प्रमाणित होता है कि क्रोध का शमन करने में मधुर शब्दों की अपेक्षा मधुर भोजन की क्षमता कहीं अधिक होती है। उनकी यह सौम्य-वृत्ति (बीच में अन्य कोई व्रत का मौका न आए तो) अगली एकादशी तक टिकती थी।

इस प्रकार बचपन में ही हम लोगों के मन पर निर्जला एकादशी का आतंक सवार हो जाने के कारण आगे के जीवन में भी उसका दबदबा कायम रहा। कायाकल्प के त्याज्य अंग को छोड़कर व्रत के बाकी अंगों का पालन हम बड़े

भक्तिभाव से करते थे। मुझे जिस प्रकार मिष्टान्न प्रिय है उसी प्रकार बहूनाना को तीखे चटपटे पदार्थों का बचपन से ही शौक था। मेरे द्वारा रबड़ी का और उनके द्वारा कूटू के दहीबड़ों का पहला ही कौर मुंह में रखा जाते ही एकादशी व्रतोपवास का स्वयमुत्र के साथ कितना निकट का संबंध है इसकी अनुभूति हम दोनों को एक साथ होने लगती थी। मेरा तो यह स्पष्ट मत है कि इस प्रकार के मधुर व्रत-अनुष्ठानों की बुनियाद पर ही हिंदू धर्म के पुराने संस्कार आज तक अक्षुण्ण टिके हुए हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि उपवास के दिन बर्फी और आलू की पकौड़ियां के बजाए कुनैन की गोलियां और चिरायते के काढ़े का सेवन करने का विधान शंकराचार्य जी ने किया होता, तो हमारे अधिकांश धर्म-श्रद्धालु स्वर्ग-सुख को तिलांजलि देने को तैयार हो जाते।

एकादशी शिवरात्रि के जैसा ही मधुरानुभूति पर आधारित दूसरा कोई व्रत हो, तो वह है सत्यनारायण का। साधुवैश्य की कारागृह में खानगी होकर उसके जामाता के नाव सहित जल में डूब जाने की कथा मैंने सैकड़ों बार सुनी होगी। फिर भी उसे बार-बार सुनने से मैं कभी ऊबता नहीं। प्रसाद के अंजलि भर पंचामृत और दोना भर पंजीरी के बदले में साधुवैश्य को और भी सैकड़ों बार जेल भिजवाने में और उसके दामाद को जलसमाधि दिलवाने में मुझे कोई संकोच नहीं होगा। सत्यनारायण की कथा शहर में कहीं भी हो, मैं वहां पंडितजी के पहुंचने से पहले ही पहुंच जाता हूं और सब लोगों के चले जाने के बाद तक जमा रहता हूं। सत्यनारायण के प्रति मेरी भक्ति कदलीफल के टुकड़े डालकर खालिस देसी घी में बनाए हुए प्रसाद की मजबूत बुनियाद पर टिकी हुई है। कथा कहीं भी हो, उसके लिए मुझे निमंत्रण की आवश्यकता नहीं पड़ती। यह इस व्रत का दूसरा बड़ा लाभ है। सांसारिक मान मर्यादाओं का विचार त्यागकर मैं भक्ति भाव में बिना बुलाए ही पहुंच जाता हूं। एकादशी का उपवास इस व्रत से केवल एक दृष्टि से श्रेष्ठ है। उसमें पारण के निमित्त से द्वादशी के दिन भी उतने ही मधुर पदार्थ खाने को मिलते हैं।

पाडुतात्या की पसंद हम दोनों की रुचि की तरह मर्यादित नहीं है। खाद्य-पदार्थ मीठे हों या चरपरे, पकाये हुए हों या कच्चे, ठंडे हों या गरम इसकी परवाह किए बिना व उन्हें पेट में ठूसने रहते हैं। आरंभ में व्रतोपवास के दिन अपना भक्तिभाव उबले हुए आलू, भूने हुए शकरकंद और सिकी हुई मूंगफलियां

कई सात्विक पदार्थों के सेवन से ही मस्त करते थे—इसका कारण यह कदापि नहीं कि उनकी इन्द्रियाँ एकाग्रचित्त नहीं थी। एकादशी में उनकी कचहरी करने वाले कम ही नजर मेरे देखने में आते हैं। बात यह थी कि ताइत्या उन बेचारी को कच्चे अन्न का पकवानों में इस्तेमाल करने का मौका ही नहीं देते थे। उपवास के दिन वे सुबह से ही रसोईघर के चक्कर काटने लगते और कच्ची-अधकच्ची जो भी चीज हाथ लगती उसे उदरस्थ करने लगते। इस हालत में आप ही बताइए, वह बेचारी कर ही क्या सकती थी। आखिर उसे एक युक्ति सूझी। उपवास के दिन भोर होने से पहले ही वह एक टोकरी में बहुत सा कच्चा सामान भरकर तात्या के बिस्तर के पास रखने लगी। आलस में तो तात्या का हाथ पकड़ने वाले महापुरुष ने अब तक जन्म ही नहीं लिया। सुबह उठते ही यह चीजें प्राप्त हो जाए तो रसोईघर तक आने का कष्ट उठाने वाली विभूति तो वे थे नहीं। एक फर्क अवश्य पड़ा। उपवास के दिन के इस नैमित्तिक कर्म के प्रति उनकी भक्ति इतनी बढ़ गई कि रोज आठ बजे से पहले सोकर न उठने वाले तात्या व्रत के दिन प्रातः पाँच बजे ही उठने लगे। तात्या का स्वभाव कितना अल्पसंतोषी है इसका प्रमाण इस बात से मिल जाता है कि टोकरी की सारी खाद्य-वस्तुएँ समाप्त हो जाने पर भी उसमें गन्ने की गँडेरियाँ, केले और मूँगफली के छिलके, आम की गुठलियाँ आदि वस्तुएँ बाकी बच जाती थी। इतना मर्यादित नाश्ता करने के कारण भोजन के समय तक उन्हें जोर की भूख लग आती थी। यह उनके मिताहार का दूसरा आनुषंगिक फल था। तब तक उनकी कुशल पत्नी आलू, शकरकंद, सिंघाड़े आदि कंदमूलों की सहायता से जो वैविध्यपूर्ण रसोई तैयार करती थी उनमें से एक भी चीज का तात्या के हाथों अनादर होने की संभावना नहीं थी। पर इन सारे पकवानों को शांति से, अलग-अलग स्वाद लेकर खाने का उन्हें सब्र नहीं था। पेट में पहुँचने के बाद तो सब चीजें एक होने ही वाली हैं तो फिर उन्हें पहले से ही मिलाकर खाने में क्या हर्ज है ऐसे किसी अद्वैत तत्त्व से प्रेरित होकर वे एक तसले में आलू की पकौड़ियाँ, सिंघाड़े का हलवा, नारियल की बर्फी आदि वस्तुओं को एकत्र करते और ऊपर से दूध या दही डालकर उसकी सानी-सी बना लेते थे। फिर उसे श्वानवत् लोलुपता और हड़बड़ी से खाते थे। उनके फलाहार के समय इर्द-गिर्द उपस्थित रहने वाला या इस कांड को देखकर ही पेट भर जाता था। आनंददायक बातों को जुगुप्साजनक कैसे बनाएँ

विद्या कोई तात्या से सीखे तो उनकी विद्वता का पता चले।

उपवास के दिन हमारे पिताजी की जो हालत अनाहार के कारण होती थी वही तात्या की किसी रोज अत्याहार के कारण होगी इस आशंका से हम सब चिंतित रहने लगे हैं। व्रत के दिन शाम को अक्सर उनका पेट फूल जाता है। उनका प्राणोत्क्रमण एकादशी या शिवरात्री के दिन हुआ तो उन्हें वैकुंठ या कैलाश की प्राप्ति होगी इसमें कोई संदेह नहीं। इस जन्म को खतरे में डाल कर परलोक की इतनी एकनिष्ठा से साधना करने वाला उनके जैसा महात्मा इस कलियुग में कहीं ढूंढे नहीं मिलेगा। तात्या फलाहार तो इतना डट कर करते हैं, परंतु शास्त्रानुसार निर्जल उपवास करने का दृढ़ संकल्प होने के कारण पानी की बूंद का भी स्पर्श नहीं करते। पेट को वे इतना ठूस-ठूस कर भरते हैं कि न उसमें पानी की एक बूंद के लिए जगह रहे और न पानी पीने की इच्छा हो। फलाहार के बाद गरिष्ठ पदार्थों को पाचन के लिए वे जो सोंठ की फंकी लगाते हैं वही जब उनके गले में नीचे बड़ी मुश्किल से उतरती है तो फिर पानी की गुंजाइश ही कहां रही। इतनी मोर्चेबंदी के बावजूद भी पानी पीने की इच्छा हुई, तो वे पेट के गड्ढे को फिर खाद्यपदार्थों से नाक तक भर लेते हैं।

इस प्रकार व्रत का दिन तो जैसे-तैसे बीत जाता है। अब रही दूसरे दिन उपवास का पारण करने की बात। उस दिन तो उनके यहां भोर से ही भोजन का जो विराट आयोजन चलता है, वह देखते ही बनता है। परंतु हमारे वीतराग तात्या अगले दिन के गरिष्ठ पदार्थ हजम होने से पहले मध्याह्न भोजन की खीर-पूरी को छूते भी नहीं। उनकी पत्नी व्रत को समाप्त करने के लिए बड़ी अधीर रहती है। यह स्वाभाविक है। उपवास के दिन तात्या उसके लिए फलाहार का एक तिनका भी नहीं बचने देते और निरने पेट पानी न पीने का उसका नियम होने के कारण उस बेचारी के लिए तो हर उपवास शब्दशः निर्जल ही सिद्ध होता है। इसलिए उसकी सुबह से ही टकटकी लगी रहती है कि तात्या कब उठें और कब नहा धोकर तैयार हों।

इस प्रकार हर मास में दो बार सपत्नीक निर्जला एकादशी करने के कारण तात्या के खाते में अब तक काफी पुण्य का संचय हो गया होगा। भविष्य में किसी उपवास के दिन पेट फट जाने के कारण उनकी मृत्यु होगी तब तुकाराम महाराज की तरह उन्हें भी सदेह स्वर्ग ले जाने के लिए वैकुंठ से विमान आएगा इसमें

28 मरणोत्तर क्रियाकर्म

मानव जीवन को जो रगभूमि की उपमा दी जाती है यह अत्यत सार्थक है। इस लाक्षणिक रगभूमि पर भला बुरा अभिनय करके मनुष्य मृत्यु रूपी परदे के पीछे ऐसा अतर्धान हो जाता है कि फिर कभी दिखाई नही देता। वास्तविक रगभूमि के नटो को परदे के पीछे से झाक कर प्रेक्षको की ओर देखने की सख्त मनाही होती है। फिर भी, उसकी परवाह न करके कोई उत्साही अभिनेता प्रेक्षको की सख्या का अदाज लगाने के लिए या उनमे कोई अपनी जान-पहचान का है या नही यह देखने के लिए परदे की दरार मे से बाहर झाक ही लेता है। नाटक मडली के लोगों से परिचित किसी प्रेक्षक को भी नेपथ्य मे जाने का मौका मिले तो अपने इस विशेषाधिकार का रोब अन्य प्रेक्षको पर डालने के लिए वह भी परदे को थोडा सा हटाकर बाहर झाकने से नही चूकता। परतु एक बार मृत्यु रूपी यवनिका के पीछे चला जाने वाला आदमी अपना चेहरा दिखाने के लिए या दूसरो के मुख देखने के लिए जीवन की ओर मुडकर नही देख सकता।

आत्मा की मरणोत्तर स्थिति के सबध मे जानकारी प्राप्त करने का एक भी वैज्ञानिक साधन उपलब्ध न होने के कारण इस क्षेत्र मे तर्क का ही सहारा लिया जाता है। उस स्थिति के सबध मे भिन्न भिन्न धर्मों और सप्रदायो ने भिन्न भिन्न कल्पनाए की हुई हैं। जीवन रूपी रगभूमि पर निभाई हुई भूमिका की सफलता असफलता के अनुपात मे सूत्रधार की ओर से पारितोषिक या दड प्राप्त होकर प्राणी को चौरासी लाख योनियो के विभिन्न मुखौटे पहन कर इस रगभूमि पर बार-बार आना पडता है ऐसा एक धर्म का मत है, तो मृत्यु रूपी परदे के पीछे चले जाने वाले प्राणी का इस रगभूमि के साथ फिर कोई वास्ता नही रहता और अपनी योग्यतानुसार स्वर्ग सुख या नरक यातनाए भोगते हुए उसे अनत काल तक वही पडा रहना पडता है ऐसी दूसरे धर्म की धारणा है। कोई धर्म आत्मा को कयामत

वे दिन वे न्याय निर्णय तक मृत्युकालीन स्थिति म ही रखता है तो कोई अग्निदाह से शुद्ध करके उसकी परलोक मे स्थापना करता है। कोई सप्रदाय उसे अणुमात्र भी देह प्रदान नहीं करता तो कोई उसे सतह तत्त्वो से बनी हुई अगुष्ठमात्र लिंगदेह देकर अपना औदार्य प्रदर्शित करता है। किसी मतवाद मे आत्मा की स्मरणशक्ति ज्यों की त्यो बनी रहती है तो किसी मे उससे पूवस्मृति बिलकुल ही छीन ली जाती है। भिन्न भिन्न वैद्यो को जिस प्रकार अपनी-अपनी रोग परीक्षा और औषधियोजना की अचूकता पर दृढ विश्वास होता है उसी प्रकार भिन्न-भिन्न धर्मों को भी अपनी अपनी मतप्रणालियो और धारणाओ के सबध मे एकातिक आग्रह होता है। शारीरिक स्वास्थ्य चाहने वाला रोगी जिस प्रकार विभिन्न धन्वतरियो की परस्पर विरोधी रायो को सुनकर घबरा जाता है उसी प्रकार आत्मा का कल्याण चाहने वाला मुमुक्षु भी विभिन्न धर्माचार्यों के आश्वासनो को सुनकर दुविधा में पड जाता है। वैद्य की योग्यता को तो फिर भी उसके ग्रथाध्ययन, बुद्धिमत्ता, विद्वत्ता और यशस्विता की कसौटी पर पडताला जा सकता है परतु शब्द प्रमाण की दुहाई देने वाले धम सस्थापको की योग्यता या प्रामाणिकता को जाचने का कोई साधन जन साधारण को आज तक उपलब्ध नही। इस हालत मे यह स्वाभाविक ही है कि जिसकी कल्पना अधिक मोहक होगी और उसे आकषक रूप मे पेश करने की क्षमता जितनी अधिक होगी, उस सिद्ध के पीछे साधको का भेडियाधसान भी उतना ही आधिक होगा। वास्तव में देखा जाए तो जितना इन धमगुरुओं का वक्तृत्व अथहीन होता है उतनी ही उनकी धारणाए भी खोखली और बेबुनियाद होती हैं। सत्य की कसौटी पर कस कर देखने पर यही मालूम देता है कि सिद्ध और साधक, पैगबर और अनुयायी, दोनो अज्ञान के एक ही स्तर पर होते हैं।

उपरोक्त तकवाद दरअसल तो नास्तिको को शोभा देे ऐसा है। सच्चा धर्माभिमानी इन युक्तियो से कभी परास्त नहीं होगा। हर व्यक्ति को अपने-अपने धम का अभिमान होता है। इसी न्याय से हमे भी अपने सनातन धम का अभिमान हो, तो किसी को शिकायत नहीं होनी चाहिए। हमारे पूवजो ने अपनी अलौकिक शक्तियो और अतीद्रिय साधनो द्वारा परलोक का सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त किया था, ऐसा हमे दृढ विश्वास है। भौतिक सष्टि के सबध मे उनकी अधिकाश धारणाए बडी काव्यमय थीं। पृथ्वी से ऊपर के लोको के सबध मे उनकी जान-

धारी तो किसी रहस्यमय उपन्यास का शोभा दे ऐसी अलकारिक और कल्पना प्रचुर थी। आधुनिक भूगोल मे रक्त, पीत, कृष्ण जैसे रक्त नामो से पहचाने जाने वाले सागरो को हमारे पूर्वजो ने क्षीर, दधि, मधु, आदि पचामृतों से छला-छल भर दिया था और उनका नामकरण भी उसी के अनुसार किया था। यह माना कि ऊष्णता, प्रकाश, चुबकत्व, विद्युत् इत्यादि के गुणधर्मों और भाप, बिजली आदि की सामर्थ्य के विषय मे उन्हें विशेष जानकारी नहीं थी। परतु इसका एक मात्र कारण यह है कि इन ऐहिक और इद्रिय गोचर वस्तुओ में उन्हें विशेष दिलचस्पी नही थी और इन भौतिक बातों के प्रति वे पूर्णत उदासीन थे। उन्होंने दूरवीक्षण यत्र का आविष्कार भले ही न किया हो फिर भी सुदूर परलोक के चप्पे-चप्पे की उन्हें सूक्ष्म जानकारी थी। रेल, जहाज आदि वाहनो मे उन्होंने भले ही यात्रा न की हो, पर सूर्यचद्रादि लोको मे वे क्षणाध मे पहुच सकते थे और दूसरे क्षणाध मे लौटकर वापस आ सकते थे। ऐहिक जगत सबधी अपने अज्ञान की कसर उन्होंने पारलौकिक जगत के ज्ञान से पूरी कर ली थी। अपने कमरे का क्षेत्रफल उन्हे भले ही ज्ञात न हो किसी निकट के सबधी के घर की दूरी उन्हें भले ही मालूम न हो, पर यमपुरी की लबाई चौडाई और इस ससार से उसकी दूरी उन्हें कठाग्र याद थी।

पौराणिक वर्णना से ऐसा मालूम देता है कि उस युग मे काशी आदि ऐहिक तीर्थक्षेत्रो की यात्रा की अपेक्षा यमपुरी की यात्रा कही सुगम और सुविधाजनक रही होगी। काशीयात्रा का अधिकार प्राप्त करने के लिए पहले तो ब्रह्महत्या या मार्जारहत्या जसा महापातक करना पडता था। पाथेय के लिए पर्याप्त अन्नधान्य की और मार्गव्यय के लिए प्रचुर द्रव्य की आवश्यकता भी पडती थी। यात्रा अनेक यात्रियो के सघ मे मिल कर होने के कारण चिउटी की रफ्तार से होती थी। इतना सब करके भी राह मे मिलने वाले ठगो पिंडारियो की कृपा से कभी-कभी पास के द्रव्य और धान्य सामग्री से वचित होकर काशीपुरी के बजाय यमपुरी की ही यात्रा हो जाती थी। इन महात्माओ के चगुल से छूट भी गए तो तीर्थक्षेत्र मे रह कर खुलेआम लूटमार करने वाले पडो, चौबो, गयापुत्रो और उपाध्यायों से पाला पडता था। राह में खाने पीने की तकलीफ की वजह से तीर्थक्षेत्र में पहुचते-पहुचते शरीर का मांस सूखकर यात्री ककालवत् हो जाता था और इतने सब सकटो से बचकर सही सलामत वापस भी लौट आए तो यात्रा सुफल का

भोज देने में रहा-सहा द्रव्य भी खर्च हो जाता था।

तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाए तो यमलोक की यात्रा इससे कहीं कम झंझट की सिद्ध होती है। यह सही है कि तीर्थयात्रा की तरह इस महायात्रा के लिए भी पहले कोई पातक कर के योग्यता प्राप्त करनी पड़ती है। परंतु यह पातक ब्रह्महत्या या मार्जारहत्या के जैसा जघन्य न हो, तब भी काम चल जाता है। यमलोक यात्रा का अधिकार प्राप्त करने के लिए तो छोटे-मोटे पातक भी पर्याप्त होते हैं। स्नानादि से शुचिर्भूत होने के बाद कोरे सूत पर पांव पड़ जाने से भी यह योग्यता प्राप्त हो सकती है। कच्चे धागे के सहारे स्वर्ग में चाहे न पहुंचा जा सके, नरक में जाने की पूरी सुविधा रहती है। इसके अलावा यवनभाषा बोलना, सुबह-सुबह गवैये-बजवैये, नट आदि कलाकारों का मुंह देखना, शूद्र या अतिशूद्र के सामने वेदपाठ करना इत्यादि सूत से भी हल्के कारण यमपुरी की यात्रा के लिए पात्रता प्रदान कर सकते हैं। यमलोक यात्रा का अधिकार प्रदान करने वाले ये सारे पातक व्यक्ति को खुद ही करने पड़ें, यह भी आवश्यक नहीं होता। शास्त्रों का इस बात को लेकर कोई दुराग्रह नहीं है। पतिनिधन के बाद केशकर्तन न करवाने वाली विधवा को या बाल स्त्री के पति होने वाले पुरुष को पत्नी के पाप के बलबूते पर यमपुरी का परवाना अनायास ही मिल जाता है। इस यात्रा के लिए संगी-साथी ढूंढ़ने या योग्य मुहूर्त देखने की आवश्यकता नहीं पड़ती। समय पूरा होते ही यमदूत खुद हाजिर हो जाते हैं। भारी शरीर के लोगों को साधारण यात्राओं में बड़ी तकलीफ होती है। परंतु यमपुरी की यात्रा में ढाई मन की काया का बोझ ढोना नहीं पड़ता। वहां सिर्फ प्राणी की अंगुष्ठ परिमाण लिंगदेह जाती है। आरंभ में इस सूक्ष्म देह के हाथ, पांव आदि अवयव नहीं होते और इतनी लंबी यात्रा की क्षमता भी उसमें नहीं होती। मृत्यु के बाद पिंडों की रसद नियमित रूप से पहुंचती रहे तो जीव को नौ दिनों में क्रमशः मस्तक, ग्रीवा, कंधे, हृदय, पीठ, नाभि, कमर, नाड़ियां और हाथ पांव प्राप्त होते हैं। आंख, नाक, कान आदि ज्ञानेंद्रियों का शास्त्रों में कोई उल्लेख नहीं पाया जाता। दसवें दिन के पिंड से जीव में क्षुधा और तृषा उत्पन्न होती है। इस पिंडविशेष से क्षुधा का शमन होने के बजाय उसका जन्म होता है, यह उसकी विशिष्टता है। इस पिंड का यह विशिष्ट कार्य शास्त्रों ने निश्चित न किया होता तो श्राद्धभोजन से ब्राह्मण सदा के लिए वंचित रह जाते। मृतक की क्षुधा को प्रदीप्त करने वाला यह पिंड हजारों सजीव ब्राह्मणों

की क्षुधा को तृप्त करने वाला प्रमाणित होता है। इस प्रकार तैयार होने वाले लिंगदेह को ग्यारहवें दिन के पिंड से पुष्टि प्राप्त होती है। और बारहवें दिन के पिंड से वह लंबी यात्रा के लिए सामर्थ्य प्राप्त करता है। इसके बाद तुरंत वह अपनी महायात्रा पर निकलता है। रवाना होने से पहले दो एक क्षण के लिए यमदूत उसे यमपुरी का संक्षिप्त दर्शन कराते हैं। बानगी के तौर पर यमलोक की अप्रिय झलक दिखाने वाली यह यात्रा शायद विद्युत् वेग से होती होगी क्योंकि जीव क्षणार्ध में वहां के चमत्कारों का दर्शन करके वापस भी लौट आता है। इससे उसकी जिज्ञासा का शमन होकर वह निर्विकार भाव से यात्रा के लिए तैयार हो जाता है। उसे साथ में पाथेय कुछ भी नहीं लेना पड़ता। पुत्रपौत्रादि स्वजन पृथ्वीतल पर कहीं भी उसका पाक्षिक, मासिक, षण्मासिक आदि श्राद्ध करते रहें तो पिंडों की रसद, वह जहां कहीं भी हो, उसे सुरक्षित मिलती रहती है। इसके लिए पिंडों पर जीव का पता ठिकाना लिखने की भी आवश्यकता नहीं होती।

दरअसल यह एक बहुत बड़ी सुविधा है जिसका ऐहिक जीवन में भी स्वीकार होना चाहिए। यह तो बेतार के यंत्र को भी मात करने वाली करामात है। बेतार के यंत्र की सहायता से तो केवल थोथे संदेशे ही भेजे जा सकते हैं, जबकि हमारी यह भारतीय पद्धति ठोस पिंडों को यथास्थान पहुंचाने की क्षमता रखती है। वर्तमान महायुद्ध में रणक्षेत्र में सैनिकों को रसद पहुंचाने के लिए सरकार को एक अलग विभाग खोलना पड़ा। उस विभाग की पूरी सावधानी के बावजूद शत्रु कभी-कभी रसद की सामग्री को नष्ट कर देता था। इस पिंडदान वाली पद्धति को स्वीकार करके हजार दो हजार ब्राह्मणों को पिंडदान, अर्घ्य, तर्पण, तिलांजलि आदि देने के कार्य पर नियुक्त कर दिया जाता तो योरप, अफ्रीका और एशिया के रणमैदानों पर लड़ने वाले लाखों हिंदू सैनिकों की रसद-व्यवस्था से सरकार को हमेशा के लिए मुक्ति मिल जाती।

मृतक को अर्पित किया जाने वाला पिंड देखने में छोटा होने पर भी बहुत ठोस और वजनदार होता है। अंगुष्ठमात्र जीव के वह कई दिनों तक काम आता होगा। जीव के भोजन की इस प्रकार उचित व्यवस्था हो जाने के बाद तेरहवें दिन धोती, जोड़ा, कुर्ता, टोपी, छड़ी, छाता, जूते, बिस्तर, अंगूठी, आसन, बर्तन आदि आवश्यक सामान ब्राह्मणों के माध्यम से उसे पहुंचा दिए जाते हैं। मार्ग में बारहों आदित्य पूरे तेज से चमकते रहने के कारण और शीतपजन्यादि की भी आत्यंतिक

पीड़ा होने के कारण जीव को यह बोझ व्यर्थ ढोना पड़ता है यह तो नही कहा जा सकता, परन्तु उसकी अंगुष्ठ प्रमाण देह के उपयोगी होने के लिए इन वस्तुओ को भी सूक्ष्म रूप धारण करना पड़ता होगा। अन्यथा 'मियां बालिश्त भर और दाढी गज भर' वाली बात के अनुसार बेचारे जीव के इन चीजो के बोझ के नीचे दब जाने की संभावना है।

यमलोक यात्रा के मार्ग मे यमदूत जीव की अंगुष्ठ प्रमाण देह पर लगातार कोड़े बरसाते रहते हैं इसलिए यात्रा म ढीलढाल की कोई गुंजाइश नही रहती। बेचारे अंगुष्ठ प्रमाण जीव को अपना बोरिया बिस्तरा सर पर लादे इन लवे-तड़गे यमदूतो की रफ्तार के साथ कदम मिलाकर चलना पड़े यह वैसे तो बड़े अन्याय की बात है। पर साथ साथ यह भी ध्यान म रखना चाहिए कि अपनी हलकी-फुलकी देह के कारण उसे अपनी रफ्तार तेज रखने मे विशेष कठिनाई नही पड़ती होगी। उलटे राह म कही आधी-तूफान आने पर झंझा के झोके के साथ पख की तरह उड़ने वाले जीव का साथ बनाये रखने म यमदूतो को ही कष्ट होता होगा।

राह में जीव को विषैले साप, बिच्छू, शिकारी कुत्ते, बाघ, शेर आदि भयानक प्राणी पीडा पहुचाते रहते हैं। गरुड़पुराण मे इसका बडा रोचक ब्यौरा मिलता है। परतु जीव को इनस भयभीत होने की आवश्यकता नही होती। शरीर से कितने ही साप अजगर क्यो न लिपटें वे उनका कुछ नही बिगाड़ सकते और बाघ-सिंह मास के कितने ही लोथड़े क्यो न नोच लें, दोबारा प्राण जाने की कोई सभावना नही रहती। अत वह सापो को किसी गारुडी की तरह नचाता हुआ और बाघ सिंहो को किसी सरकस के रिंग मास्टर की तरह कुत्ते बिल्ली के समान समझता हुआ आगे बढ़ता रहता है। राह के किसी भी सकट से भयभीत न होने का दूसरा कारण यह होता है कि यात्रा के आरभ मे ही बानगी के तौर पर यमदूतो ने उसे नरकपुरी की झांकी दिखाई होती है। यात्रा के अत मे किन भयावह स्थितियो का मुकाबला करना है इसकी स्पष्ट कल्पना होने के कारण राह के इन छोटे मोटे सकटो को वह बच्चो का खेल समझने लगता है।

मार्ग मे वैतरणी नामक नदी पार करनी पड़ती है। वह आठ प्रकार की गदगियो से भरी रहती है। उसका पाट भी बहुत चौड़ा होता है। इस प्रकार की नदी को तैर कर पार करने मे साधारण यात्री को बहुत कष्ट हो सकता है। परतु यहा

वे घटवार बड़े परोपकारी होने के कारण जीव को खुद कुछ भी नहीं करना पड़ता। मल्लाह की ड्यूटी पर तैनात यमदूत उनके गले में फन्दा अटका कर उसे घसीटते हुए ले जाते हैं और सुरक्षित ढंग से पार उतार देते हैं। मृत्यु से पहले गोदान कर चुकने वाले जीवात्मा दान की हुई गाय की पूंछ पकड़ कर बिना किसी कष्ट के वैतरणी पार कर लेते हैं।

अज्ञानी मनुष्यों की ऐसी धारणा हो सकती है कि इतने कष्टदायक मार्ग से रोजमर्रा यात्रा करने को मजबूर होने वाले यमदूत पूर्वजन्म में निश्चित ही नितांत गर्हित कोटि के पापी रहे होंगे जिसके दंड स्वरूप उनकी इस अप्रिय कार्य में नियुक्ति हुई होगी। परंतु यह धारणा बिलकुल गलत है। पापियों में उनका स्थान अत्यंत उच्च कोटि का होने के कारण ही इस दायित्वपूर्ण काम पर उनकी नियुक्ति होती है। दूसरों की यातनाएं देखने में मनुष्य को कितना आनंद प्राप्त होता है यह तो सबके अनुभव की बात है। फिर यमदूतों को तो उन्हें देखने का आनंद ही नहीं बल्कि उनका जनक होने का ब्रह्मानंद भी प्राप्त रहता है। इस हालत में इस अधिकार प्राप्ति को उनके पूर्वभुक्त कार्यों के फल के सिवा और क्या कहा जा सकता है।

जीव को यह यात्रा विशेष अरुचिकर नहीं होती इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि उसे पूर्ण करने में वह पक्का एक वर्ष का समय लेता है। इस दौरान उसकी अंगुष्ठमात्र देह बढ़ कर एक हाथ जितनी हो जाती है। पृथ्वी से यमपुरी का अंतर साढ़े-तीन गुना अधिक होता, तो जीव वहां तक पहुंचते-पहुंचते पूरा साढ़े-तीन हाथ का हो जाता और यमदूतों की आंखों से आंखें मिला सकता। परंतु यमलोक में प्रवेश करने से पहले जीव को यह साल भर के कष्ट द्वारा कमाया हुआ विस्तार त्याग देना पड़ता है और उसका आकार फिर से अंगुष्ठमात्र हो जाता है। उसका प्रवेश आवश्यक तौर से यमपुरी के दक्षिण द्वार से होता है। अन्य द्वार अधिक पुण्यवानों के लिए आरक्षित रखे गए हैं।

पापपुण्य का जमाखर्च चित्रगुप्त के जिम्मे होने के कारण जीव के भले-बुरे कर्मों का फैसला उन्हीं के दरबार में होता है। उनके निवासस्थान की शास्त्रोक्त चतुःसीमा इस प्रकार है पूर्व दिशा में ज्वर का स्थान, दक्षिण में शूल और खाजखुजली का घर पश्चिम में अजीर्ण और अरुचि का वासस्थान और उत्तर में यक्ष्मा और पाडुरोग की बस्ती। इसी प्रकार ईशान्य कोण में सरदर्द, अग्नि में

मूर्च्छा, नैऋत्य म अतिसार और वायव्य मे शीत और दाह का निवास होता है। यहा स्थान' या घर' आदि शब्दा का प्रयोग उनके अभिप्राय मे ही हुआ है। लाक्षणिक अथ 'रोगी' या 'मरीज' अभिप्रेत नही है। चित्रगुप्त के कार्यालय की चहारदीवारी चिनी गई तब भूतल पर रोगा की सख्या कितनी मर्यादित थी और उनका स्वरूप कितना सीधा-सादा था इसका विचार करने पर उस काल के लोगा से ईर्ष्या होने लगती है। उस समय प्रमेह या जलोदर जसे प्राणघातक रोगो का शायद जन्म ही नही हुआ था और हैजा, प्लेग आदि महामारिया का भी अस्तित्व नही था। इन दिनो रोगा की सख्या और परिणामकारकता म बहुत वृद्धि हुई है यह हमारे लिए बडे अभिमान की बात है। चित्रगुप्त के दरबार के आसपास आधुनिक महामारिया म से एक भी फटकी होती तो उस बारिया बिस्तरा समेट कर मकान बदलना पडता।

एक तरफ यक्ष्मा और पाण्डुरोग से निस्तेज चेहरे तो दूसरी ओर अजीर्ण और अतिसार की दुगध। तीसरी ओर शूल की कराहटता चौथी ओर ज्वर का उत्ताप। इस माहौल म चित्रगुप्त महोदय के गले मे अन्न कसे उतरता होगा और रात को उन्ह नीद कसे आती होगी, यह यमराज ही जानें। पापपुण्य का पूरा हिसाब-किताब उनके जिम्मे होने के कारण उनका दायित्व बहुत अधिक है इसमे कोई सदेह नहीं। इस हालत मे आहारनिद्रा के सुखचन म डूब कर उनके हाथो कत्तव्य की कही उपेक्षा न हो जाए शायद इसी अदेशे से उन्हे इस स्वास्थ्यवधक और उत्साहजनक वातावरण म रखा गया होगा। खैर प्रयोजन जो कुछ भी रहा हो 'निंदक नियरे राखिये आगन कुटी छवाय' के बदले महाशय चित्रगुप्त ने 'रोगी नियरे राखिये' को ही आत्मकल्याण के लिए अधिक श्रेयस्कर समझा हो ऐसा मालूम देता है।

यमराज की दडनीति की धाराए बडी कठोर होती हैं। उन दफाओ मे चोर जार, वचक और हत्यारो के साथ-साथ समाजसुधारक वेदनिंदक, ब्राह्मणद्रोही इत्यादि पापात्माओ के लिए तमिस्र रौरव, कुभीपाक इत्यादि विविध नरको का विधान किया गया है और उनके विशिष्ट प्रकार के अतिथिसत्कार की व्यवस्था भी की गई है। तीर्थस्थानो म पडे यात्रियो को भयानक शीत मे गीले कपडो मे घटो खडा रखकर मनमानी दक्षिणा ऐंठते हैं और नाई लोग आधी खोपडी घोटकर और एक तरफ की मूछें मूडकर मुहमांगा पारिश्रमिक पाए बिना जिजमान का

पिंड नहीं छोड़ते। उन यतणाओ की तुलना मे नरक की ये यातनाए सौम्य ही मानी जाएगी।

नरक की ज्वालाओ मे पाप भस्म होकर पुन मनुष्य-जन्म प्राप्त होने से पहले जीवात्मा को वनस्पति कृमि कीटक सप, पक्षी, पशु शूद्र, स्त्री आदि चौरासी लाख योनियो मे से गुजरना पडता है। इस कारण से यमपुर-यात्रा के बाद सुफलभोज कराने के झंझट से प्राणी सबे समय के लिए बच जाता है।

अब तक मृत्यु के बाद पापियो को प्राप्त होने वाली गतियो का वणन हुआ। पुण्यात्माओ को उनकी योग्यतानुसार इससे नितात भिन्न प्रकार की गतिया प्राप्त होती हैं। इनमे से ब्रह्म मे विलीन हो जाने वाले जीवन्मुक्तो का वग छोड दिया जाए, तो देवलोक और पितलोक को प्राप्त करने वाले दो मोटे मोटे वग बचते हैं। यज्ञयागादि वेदविहित कर्मों को सकाम भाव से करने वाले पुण्यात्माओ को ही नही बल्कि निष्काम भाव मे कमयोग का आचरण करने वाले योगियो को भी देवलोक मे स्थान मिलता है। वहा उन्हे इच्छा से हो या अनिच्छा से, अमृत का पान करके अप्सराओ के साथ नाचरग मे डूबे रहना पडता है। बचे हुए पुण्यात्मा सचित पुण्य का क्षय होकर फिर जन्म मरण के फेरे मे पडने तक पितलोक म निवास करते हैं। मृत्युलोक मे पुत्रपौत्रादि द्वारा समर्पित पिंडो और श्राद्धपक्ष मे ब्राह्मणो को खराये जाने वाले पकवानो को उन्ही की मध्यस्थता से प्राप्त करके जीवनयापन करते रहते हैं। देवलोक म सुखो का अनुभव प्रतिदिन और प्रत्यक्ष रूप मे होता है जबकि पितलोक मे वह ब्राह्मणो के माध्यम से और पुण्य के अनुपात म समय-समय पर मिलता है परन्तु इससे भोग्य सुखो की उत्कटता मे कोई फक नही पडता। पितयोनि प्राप्त पुण्यात्माओ के इहलोक के प्रतिनिधियो को श्राद्धपक्ष के अतगत या और किसी भी दिन चावल की खीर और उडद की दाल मे बडे चरा दिए कि पितृलोक म पूवजो को डकारें आने लगती हैं।

प्राचीन युग म श्राद्ध के दिन ब्राह्मणो को उडद की दाल के बडे और इमरतियो के बजाय मासभोजन करवाया जाता था। पर बुरा हो इन अहिंसा के समथकों का जिन्होने कालातर म 'मासान्न' के बदले 'माषान्न' का पाठभेद लोगो के गल उतार दिया। तब से पितृयोनि प्राप्त पूवज मास को तरसने लगे हैं। परन्तु इसकी कमी अन्य बातो से पूरी हो जाती है। पुरखो क प्रतिनिधियों के रूप म जिमाय जाने वाले ब्राह्मण सत्पात्र, सात्विक और सतोषी हो, तब तो अलग बात है। परन्तु

कलियुग मे ऐसे ब्राह्मणो का मिलना दिनो दिन दुश्वार होता जा रहा है। आजकल के ब्राह्मण तो शायद ही किसी महापातक से परहेज करते हो। फिर भी, ब्राह्मण कैसा भी हो, ब्राह्मण है, और इस नाते पवित्रता पर उसका जन्मसिद्ध अधिकार है। पुरखो को अन्नजल की रसद पहुचाने का काम अनादि काल से उसी के द्वारा होता आ रहा है। फक सिर्फ इतना है कि आजकल उसके आचरणो के कारण पूवजो को कई प्रकार के ऐंद्रिय सुख अनायास ही मिल जाते हैं। श्राद्ध के दिन पितृस्थान पर आसीन होने वाले ब्राह्मण ने दक्षिणा के रुपयो से शाम को कोई कुकम किया, तो पितरो को उसका अनुभव मिला ही समझिए। इस नियम से देखें तो परस्त्री को माता के समान मानने वाले पूवजो को अपने प्रतिनिधि की लाज रखने के लिए कोठो के जीने भी चढने पडते होंगे और मदिरा को नाली के पानी के समान त्याज्य मानने वाले उन उदारचेताओ को कभी कभी पितृलोक की नालियों में लोटना भी पडता होगा। समाधान की बात सिफ इतनी है कि मास के अभ्यस्त पुरखा को मदिरा के साथ कभी-कभी मास का स्वाद चखने को मिल जाता होगा। श्राद्ध के दिन ब्राह्मण को महुए की पत्तला म खिलने का विशेष महात्म्य माना जाता है। ठर्रे के उत्पादन मे होने वाले महुए के प्रयोग को नजर मे रखा जाए तो यह भी कहा जा सकता है कि पूवकाल मे पूवजो को मास के साथ-साथ मदिरा भी अर्पित करने का रिवाज रहा होगा। इस रहस्य को ठीक तौर से समझ लिया जाए, तो दुराचारी ब्राह्मण के मद्यपान से होने वाले पितरो के मद्यसपक को लेकर विशेष ग्लानि महसूस करने की आवश्यकता नही रहती।

वसे इस पूरे झझट से बचने का भी उपाय है। आपद्धम के रूप मे आसन पर ब्राह्मण की जगह दभ की स्थापना करके पूरी विधि अपने हाथो कर लेने से भी काम चल सकता है। शास्त्रो मे इसका स्पष्ट विधान है। दरअसल हमारे शास्त्रो के विधिनिषेधो की अपेक्षा ये आपद्धम ही अधिक आकषक और रोचक होते हैं। दर्भ मे ब्राह्मण का आरोपण कर दीजिए और अपणीय पूजा द्रव्यो का काम अक्षत से चला लीजिए कि छुट्टी! आरोपण और आपद्धम के इन सिद्धांतो को व्यवहार की दुनिया मे मान लेने से सबको बडी सुविधा हो सकती है। कोई दभरूपी अफसर अक्षतरूपी कर वसूल करने लगे तो कितना ही टक्स क्यो न बढ़ जाए चुकाने मे कोई आनाकानी नही करेगा। बडे बडे कर्जों की अदायगी दभरूपी साहूकार को अक्षत के दो चार दाने रूपी द्रव्य समर्पित कर देने से हो जाएगी। पर हमारे देश मे

लोगो की सुविधा की इतनी फिक्र भला कौन करता है।

हमारे यहा के भीखू भट्ट को यजमानो के पूर्वजो की अतृप्त वासनाओ का श्राद्ध के पहले दिन स्वप्न म साक्षात्कार हो जाता था। श्राद्ध के दिन श्रद्धालु यजमानो द्वारा उनकी पूर्ति भी हो जाती थी। किसी पूर्वज को धोतीजोडे की किसी का कुर्ते की तो किसी को दुपट्टे की लालसा रह जाती है। इन छोटी मोटी इच्छाओ की पूर्ति होने म कोई कठिनाई नही होती। परतु धीरे धीरे पूर्वजो की ये हसरतें उपयोगिता की अपेक्षा शौकीनी की ओर झुकने लगी। अब उन्हें सादे धोतीजोडे या दुपट्टो की जगह रेशमी किनारी की धोतिया और जरदोजी के दुपट्टो की इच्छा होने लगी। भीखू भट्टजी की सात्विकता और निस्पृहता इलाके भर म प्रसिद्ध होने के कारण इन इच्छाओ की पूर्ति होने मे भी कठिनाई नही हुई। परतु धीरे धीरे बदलते हुए फैशनो के साथ-साथ पुरखो के चोचले भी बढन लगे। धोती की जगह पीताबर और दुपट्टे की जगह दोशालो की माग होने लगी। देसी चमरौधा जूता पितरो के पाव को काटने लगा और वे वारनिश के पपशू की माग करने लगे। श्रद्धालु यजमानो ने फिर भी हार नही मानी और वे पुरखो की हर भलीबुरी वासना की पूर्ति करते रहे। भीखू भट्ट के बैठे हुए गाल अब फूलकर गुलाबी दिखाई देने लगे। उनकी सूखी हुई काया पुष्ट और तेजस्वी हो उठी और धसा हुआ सीना अब सुडौल दिखाई देने लगा। निस्तेज आखो मे चचलता थिरकने लगी। उन्हे अब पितरो की ओर भी ऊचे दरजे की अतृप्त कामनाओ का इलहाम होने लगा। वे बढिया इत्र फुलेल लगाने लगे और वारागनाओ के मधुर कठ के तानआलाप सुनने लगे। यहा तक तो सब ठीक था। परतु एक बार श्राद्धपक्ष म भट्टजी ने अपने किसी यजमान से कहा, 'बेटा, कल रात तुम्हारे पिताजी ने स्वप्न मे दर्शन दिए। बडे दुखी दिखाई दे रहे थे।" भोले यमजान ने पूछा "यह कैसे हो सकता है, पडितजी? आपके जरिए हम उन्हें समय-समय पर उत्तम अन्नवस्त्र, उच्च कोटि के इत्र फुलेल और कनमधुर सगीत की रसद भेजते रहे हैं। अब भला शिकायत की गुजाइश ही कहा रही?" पडित जी ने कहा 'यह तो सब ठीक है। परतु अपनी पुत्री को गोद मे बिठाकर प्यार करने की उनकी अतसमय की इच्छा आज तक अतृप्त रह गई है। यह पुत्री अब षोडश वर्षीया युवती हो चुकी थी। अत पडितजी के मुख से ये शब्द निकलते ही उस कलियुगी यजमान ने अपनी छडी से उनकी पीठ पर प्यार के ऐसे अमिट

चिह्न अंकित किए कि उस सात्त्विक विप्र को इसे घोर पितृद्रोह घोषित करना पड़ा और फिर जीवन भर वे उस धमद्रोही की देहली पर नही चढे।

मृतात्मा के पारलौकिक कल्याण को लेकर अब तक जो विवेचन हुआ है वह धर्म के सिद्धातो पर एकातिक श्रद्धा रखने वाले आस्तिको के नजरिये से किया गया है। परतु जिन्हे इन बातो पर श्रद्धा नही या जिन्हे परलोक के अस्तित्व के सबध मे ही शका है, उनके लिए भी मरणोत्तर क्रियाकर्म श्रेयस्कर सिद्ध हो सकते हैं। इसका विवेचन अब होगा। इन जटिल कर्मकाड के उत्पादको के मन मे धर्माचरण के साथ साथ व्यावहारिक हेतु भी अवश्य रहा होगा। इस हेतु के अनेक पहलू हो सकते हैं जिनमे से प्रत्येक मृतक के सबधीजनो के ऐहिक कल्याण के साथ जुडा हुआ है। मरने वाला तो दुनियादारी के सारे झझटो से मुक्त हो जाता है। परतु जीवित बच जाने वाले प्रियजनो को दुख का आवेग असह्य न हो उठे बल्कि आनुषगिक बातो मे उनका ध्यान बट कर वे उसे सहन कर सकें ऐसा नितात व्यावहारिक हेतु भी क्रियाकर्म के मूल मे छिपा हुआ है। साथ ही साथ कालान्तर से उन्हें मृतात्मा की बिलकुल ही विस्मृति न हो जाए और वे समय समय पर उसे याद करते रहें ऐसा उदात्त हेतु भी श्राद्धादि सामयिक विधियो की जड मे देखा जा सकता है।

मृत्यु के पश्चात, दाहकर्म इत्यादि से निवृत्त हो जाने के बाद आप्तजनो का विश्रांति प्राप्त होकर वे मृतक को याद कर-करके वियोगजनित दुख को घोटते न रहें इस उदात्त हेतु से बारह-तेरह दिनो तक उन्हें जोते रखने वाली विविध प्रकार की धार्मिक विधियो की योजना की गई है। जाडे का भयानक शीत हो, ग्रीष्म की झुलसा देने वाली लू हो, या वर्षा की लगातार झडी हो, आप्तजनो को प्रतिदिन नदी के किनारे जाकर पुरोहितो की सहायता से पिंडदान आदि क्रियाए करनी पडती हैं। घर लौटने पर भी चैन की सास लेना कठिन होता है। शोक-प्रदर्शन के लिए आने वाले इष्टमित्र इसका मौका ही नहीं देते। तीसरे दिन अस्थिसचय करके उन्हें किसी तीर्थक्षेत्र मे विसर्जित करने का रिवाज होता है। इससे अनायास ही स्थान-परिवर्तन हो जाने के कारण सबधीजनो को कुछ दिनो के लिए मन शाति प्राप्त हो जाती है और मृत व्यक्ति के चले जाने से होने वाली हानि की विस्मृति होना आरभ हो जाती है। तब तक घर पर रुक जाने वाले आप्तजनो का दुखभार भी ब्राह्मणो की लोलुपता और मृतक के विषय

बचपन प्रश्न पूछ पूछ कर दिमाग चाट जाने वाले सबधीजनों के अत्याचारों से बहुत कम हो जाता है। कभी-कभी तो ऐसा डर लगने लगता है कि तरह दिन की लगातार परेशानियों के कारण पुत्रपौत्रादि कहीं मृतक को पूर्णरूप से भूल न जाए। जिन्हें क्षौर करवाना पडा हो वे निकट सबधी उत्सुकता से बालों के बढने की राह देखने लगते हैं। सूतककाल मे श्मश्रू पूर्णत वर्जित होने के कारण बकरे की तरह बढी हुई दाढी और मूछो की चुभने वाली खूटियां पर हाथ फेरते हुए प्रौढ आप्त जन बारहवें दिन की प्रतीक्षा करने लगते हैं। प्रत्येक दिन सुई की तरह चुभने वाली खूटियो मे बेशुमार वृद्धि करने के साथ साथ फिर से दाढी बनवा सकने के आनद मय क्षण के पास आने के कारण दुख असह्य मालूम नहीं देता। उन दिनों में केशवर्धक तेलों के प्रति अकारण द्वेष और उस्तरे के प्रति उतनी ही बेबुनियाद आत्मीयता का अनुभव होने लगता है। युवा पुत्रगण शोक से स्तभित हुए मन और अश्रुपूर्ण आखो से अपनी अर्धांगिनियों की ओर कटाक्ष फेंकने लगते हैं और व्यवहारविद सगेसबधी मृतक के लेनदेन का हिसाब लगाने के लिए बहियां टटोलने लगते हैं। मृतक के आरभकाल म मृत्युजन्य शोक और शारीरिक विलास के बीच दिखाई देने वाला वैषम्य धीरे धीरे कम होता जाता है। आरभ म खट्टा मिठा खाने का जी नहीं होता और शय्या आदि सुखसाधनो का त्याग नितात स्वाभाविक मालूम देता है। परतु बाद में, अपने ऊपर लगाए हुए ये बधन कष्टकर प्रतीत होने लगते हैं और सुखसाधनो का त्याग अखरने लगता है। आवागमन की अनिवार्यता पटने लगती है और मन मृत्यु के साथ समझौता कर लेता है। धीरे-धीरे दिन भर निकम्मे बैठे रहने की ऊब खलने लगती है और उसे टालने के लिए ताश या शतरज खेलने म कोई हर्ज मालूम नहीं देता। मृतक व्यक्ति यदि सधवा स्त्री हो, तो उसका दुखी विधुर पति भावी जीवन के एकाकीपन को दूर करने के लिए विवाहयोग्य कन्याओं की जन्मपत्रिया जाचने लगता है। कुछ दिनों तक दिल बहलाव के ये विभिन्न साधन चलते रहने पर मृतक व्यक्ति का पूर्णत विस्मरण हो जाता है और वह अपना कोई लगता भी था या नहीं इस प्रकार के आश्चर्यपूर्ण प्रश्नों म खो जाता है। परतु सपूर्ण विस्मृति को टालने के लिए शास्त्रकारों ने बडी प्रभावी व्यवस्था की है। दस दिनों तक सूतक का पालन करके सबसुखों का त्याग करना चाहिए और बारह दिनों तक पिंडदान आदि क्रियाकर्म नियमित रूप से करने ही चाहिए। इन विधानों के पीछे शास्त्रकारों की शायद यही दूरदृष्टि रही

होगी। इसके अलावा गरुडपुराण के रोमहर्षक नरकयातना वर्णनो को श्रद्धा-पूर्वक श्रवण करने की जो पाबंदी लगाई जाती है, उसके पीछे भी इसके अलावा क्या हेतु हो सकता है कि प्रियजन मृतक को कहीं भूल न जाए।

दसवें दिन मृतक के पिंड को कौए का स्पर्श करवाने को लेकर जो झमेला खड़ा होता है उसके मूल में भी आप्तजनों की सहनशक्ति की कसौटी परखने का ही प्रयोजन होना चाहिए। मृतक का आज दसवां दिन है इसकी कौआ को शायद पूर्वसूचना रहती है और वे काकोचित बर्ताव के लिए सज्जित होकर आते हैं। अव्वल तो समय पर कौए एकत्र ही नही होते। भूला-भटका कोई आया भी तो पिंड के भयानक रंगरूप को देख कर और उसके चहुओर लोगो को मंडराते हुए देख कर वह काइयां प्राणी बिदक जाता है और उसे उनके सद्हेतु के विषय में शंका होने लगती है। उसकी चोंच के स्पर्शमात्र से मृतात्मा को सद्गति प्राप्त हो सकती है ऐसी एकांत श्रद्धा से ये सारे बुद्धिमान लोग यहां जमे हुए हैं या अपनी चोंच में एसी कोई शक्ति है भी या नहीं इसकी उस बुद्धिहीन पक्षी को कल्पना भी नही होती। मृतक के मन की इच्छा केवल उसी की समझ में आती है ऐसे एकांतिक विश्वास से प्रेरित होकर, अन्यथा समझदार दिखाई देने वाला मनुष्यप्राणी आज उसकी हर तरह से खुशामद करने को क्या तत्पर हो रहा है, यह भी उस बेचारे की समझ के परे होता है। अन्य प्रसंगो पर उसे दुत्कार देने वाले मनुष्य आज उसके प्रति इतनी आत्मीयता क्यो प्रकट कर रहे हैं इतना ही नहीं, खुद कांय कांय करके उसका ध्यान आकर्षित करने की कोशिश क्यो कर रहे हैं, इसका उस बेचारे को कोई कारण दिखलाई नही पड़ता। इसलिए लोग ज्यो-ज्यो उसे पुचकार कर उसका पीछा करने लगते हैं। वह और भी दूर-दूर फुदकता जाता है।

इस आयोजन में अक्सर मध्याह्नवेला ढल जाती है और मृतात्मा को सद्गति दिलवाने के हेतु से एकत्र हुए लोगो के पेट में चूहे दौड़ने लगते हैं। कौआ फिर भी सुनवाई नहीं करता। धीरे-धीरे लोग पिंड की ओर ललचाई हुई निगाहो से और कौए की ओर द्वेष बुद्धि से देखने लगते हैं और पूरी काकजाति को उसके काइयांपन के लिए बुराभला कहने लगते हैं। लोगो को विश्वास हो जाता है कि इतने लोगो के प्रयत्न के बावजूद पिंड की तरफ आंख उठा कर भी न देखने वाला कौआ केवल मृतात्मा के ही नही बल्कि इतनी जीवित आत्माओ के कल्याण के प्रति भी पूर्णत उदासीन है। आप्तजनो की इतनी सदिच्छा के बावजूद मृत जीव अपने मन में

कुछ हसरतें छिपाये बैठा है, जिसके परिणामस्वरूप कौआ पिंड को स्पर्श नहीं कर रहा, इससे जीवित आत्माओं को बड़ी चिढ़चिड़ाहट होती है और वे मरने वाले (बुड्ढा या बुढ़िया) की तृष्णा को कोसना आरंभ कर देते हैं। दूसरी ओर प्रतिक्षण बलवती होती जाने वाली भोजनेच्छा उन्हें विचलित कर देती है और वे दर्भ का कौआ बना कर पिंड को स्पर्श करवा लेने की अनुमति पुरोहित को दे देते हैं। इस प्रकार मृतक की अंतिम इच्छा जान और शायद उसकी इच्छा के विरुद्ध ही उसे सद्‌गति प्रदान कर दी जाती है। एक बार तो हमारे वेचन भट्ट जी ने कौए को पिंड स्पर्श करता न देखकर पिंड ही उसे उठा कर दे मारा था जिससे मृतात्मा और कौआ, दोनों की सद्‌गति एक साथ हो गई थी। ब्रह्म तेज में जो शापादपि शरादपि की दोहरी शक्ति छिपी हुई है उसका यह श्रेष्ठ उदाहरण है।

दसवें दिन मृतात्मा को तो मुक्ति मिल जाती है, पर कुटुंबीजनों का छुटकारा इतनी आसानी से नहीं होता। उन्हें ग्यारहवें और बारहवें दिन भी पिंडदान करना पड़ता है। पलथी मारकर जमे हुए पुरोहित के आदेशानुसार सव्यापसव्या की क़वायद करनी पड़ती है, खुद नंगे होकर ब्राह्मणों को वस्त्र अर्पण करने पड़ते हैं, खुद असिधारा व्रत धारण करके महापात्र को शय्यादान करना पड़ता है और अपना दिवाला निकाल कर ही क्यों न हो, पर अन्य अनेक प्रकारों से पुरोहितों का घर भरना पड़ता है। इस प्रकार एक मनुष्य की मृत्यु के सहारे न मालूम कितने विप्र-परिवारों का पोषण होता है। इसके बाद भी पाक्षिक, मासिक त्रैमासिक, "ऊन-षण्मासिक", "ऊनवार्षिक" आदि श्राद्ध लगे ही रहते हैं। साल पूरा होते होते तो क्रियाकर्म करने वाला रुआँसा हो उठता है। बाद के जीवन में उसे जब कभी मृतक की याद आती है, उसकी आंखों से आंसू बरसने लगते हैं और मुंह से बरबस उद्‌गार निकल पड़ते हैं "अरे रे जाने वाला हम सबको कैसे दुख सागर में डुबो कर चला गया ?"

दुनियादार और अनुभवी लोगों से इन उद्‌गारों का भावार्थ छिपा नहीं रहता।

29 नींद

किसी भी वस्तु के छोटे और बड़े आकार में अक्सर उसके गुणधर्मों के परिणाम के अलावा और कोई फर्क नहीं होता। छोटी दिवाली और बड़ी दिवाली, छोटी एकादशी और बड़ी एकादशी, छोटा मेला और बड़ा मेला—इनके बीच का भेद केवल परिणाम का होता है, तात्त्विक या मौलिक नहीं। परंतु निद्रा के संबंध में यह नियम सही नहीं है। साधारण निद्रा और महानिद्रा के स्वरूप में मौलिक भिन्नता होती है। दोनों अवस्थाओं में प्राणी निश्चल स्थिति में पड़ा रहता है इस साम्य के सिवा उनमें और कोई साधर्म्य नहीं। निद्रा में शरीर समस्त इंद्रियों सहित अबाध रूप से काम करता है जबकि महानिद्रा में पंचमहाभूतों के पृथक्करण की प्रक्रिया आरंभ होकर शरीर का विघटन होने लगता है। निद्रा में देह की शक्तियों को आराम मिल जाने से प्राणी ताजगी प्राप्त करता है और उठने के बाद दुगुने उत्साह से अपने काम में लगता है जबकि महानिद्रा में उसकी समस्त शक्तियों का विलय होकर उसे अचेतनता प्राप्त होती है। साधारण नींद के बाद प्राणी को जागृति का अनुभव होता है। परंतु महानिद्रा के बाद क्या होता है, उसका कहीं अंत है या नहीं, अंत होने पर पुनः जागृतावस्था का अनुभव होता है या और किसी स्थिति का, इत्यादि बातों के संबंध में हमें कुछ भी जानकारी नहीं और जो थोड़ी-बहुत है, वह विवादास्पद है। साधारण निद्रा का आरंभ जम्हाइयों से होता है तो महानिद्रा का असाध्य रोगों से। सामान्य निद्रा के आगमन से पहले आनंद का अनुभव होता है जबकि महानिद्रा से पहले यातनाएं भुगतनी पड़ती हैं। इन सब कारणों से निद्रा के लघु और बृहत् स्वरूपों की कल्पना से मनुष्य के मन पर भिन्न भिन्न प्रभाव पड़ते हैं। महानिद्रा की कल्पना मात्र से उसका हौसला पस्त हो जाता है जबकि सामान्य निद्रा के मोहपाश में बंधने के लिए वह किसी भी समय तैयार रहता है। नींद उसके जीवन का कम से कम

एक तिहाई हिस्सा छीन लेती है। परतु इस सुखद उपहार को वह आनद से सहन करता है। इतना ही नहीं, उसके आने म यदि कुछ घटो का भी विलब हो जाए, तो उसकी आखें भारी हो जाती हैं, मन अस्वस्थ हो उठता है, कुछ भी अच्छा नहीं लगता, और मौका मिलते ही वह आखें मूद कर उसकी आराधना मे डूब जाना चाहता है।

मनुष्यमात्र को इतनी आवश्यक और प्रिय लगने वाली सुखनिद्रा से उसका वियोग करवाने मे कुछ विघ्नसतोषी प्राणियो को बडा आनद आता है। इन प्राणियो मे खटमल सबसे मुख्य है और मक्खी, मच्छर और पिस्सू उसके निकट के सहयोगी हैं। खटमल मनुष्य से जमीन पर लडता है जबकि उसके साथी वैमानिको की तरह आकाश मार्ग से हमला करते हैं। आक्रमण के समय रणवाद्य बजाने का काम मुख्यत मच्छर के जिम्मे होता है। आप अपने काना को किसी भी दिशा मे घुमाए उनका मोर्चा भी उसी ओर मुडा समझिए। खटमलो के ये उडने वाले साथी तो फिर भी मनुष्य से कुछ अतर पर रहते हैं, पर खटमल को इतना परायापन गवारा नही। कुछ भी कहिए उसका हमारे साथ हाड मास का न सही पर खून का नाता तो है ही। हम दोनो के शरीर म बिलकुल एक ही रक्त पाया जाता है। अत वह हमारी अनुमति की राह देखे बगैर बिस्तर पर अड्डा जमा लेता है। सोने वालो ने जो नरम-नरम गद्दे-तकिये अपने आराम की खातिर बनवाए होते हैं उनका उपयोग वह किले के रूप मे करता है। सकट की सूचना मिलते ही वह उन सुरक्षित स्थानो मे छिप जाता है और सोने वाले की आख लगते ही अपने आयुधो से सज्जित होकर फिर मैदान मे उतर आता है। गफलत की नीद मे डूबे हुए शत्रु पर पूरी शक्ति से हमला करना बडे प्राचीन काल से युद्धनीति का आवश्यक अग माना गया है। गुरिल्ला युद्ध के दाव पेंचा मे तो खटमल की बराबरी कोई नही कर सकता। कभी सिर के पवत शिखर पर, तो कभी बगल की खाई में, तो कभी पेट या पीठ के समतल मैदानो मे वह हमला करता है। नीद मे से हडबडा कर जागने वाले को ऐसी शका होने लगती है कि कही मत्कुणो की पूरी सेना ने तो उसकी देह पर छावनी नही डाल दी। ब्रह्माजी ने उसका शरीर भी अलसी के दाने की तरह इतना छोटा और चपटा बना दिया है कि वह आसानी से हाथ नही लगता और पलगपोश की कितनी ही बारीक सलवट क्यो न हो, वह उसके छिपने के लिए पर्याप्त होती है। प्रतिपक्ष से दाव

पेंच लड़ाने में वह बेहद चतुर होता है। उस खटमल जैसा माधव नाम देने वाली हिंदी भाषा केवल इसी एक बात के बलबूते पर राष्ट्रभाषा बनने के लिए सर्वथा योग्य मानी जानी चाहिए। खाट पर उसका बर्ताव वाकई किसी मल्ल के जैसा होता है। अपनी चपल मोर्चेबंदी से वह सोने वाले को मिनटों में चित्त कर सकता है। सोने वाला हाथ में दीपक लेकर बारीकी से चद्दर की एक एक तह और पलंगपोश की एक एक सलवट को खोल-खोल कर देखता है, पर खटमल की चालाकी के सामने उसकी एक नहीं चलती और खटमल की तलाश सुख की खोज की तरह अंतहीन प्रमाणित होती है। जादूगर के हाथ के रुपये की तरह वह एक क्षण के लिए दिखाई देता है तो दूसरे क्षण में लुप्त हो जाता है। धूर्तता और काइयापन तो उसमें कूट-कूटकर भरे होते हैं। अपने रंग की वस्तु के इर्द गिर्द छिपने से पकड़ने वालों को अपना पता नहीं चलेगा यह सिद्धांत उसे अच्छी तरह अवगत होता है। 'केवल योग्यतम प्राणी ही अंत में जीवित बचते हैं' (Survival of the fittest) —जीवशास्त्र के इस सिद्धांत की दृष्टि से देखा जाए तो सृष्टि के अंत तक बचे रहने की योग्यता केवल खटमल में ही दिखाई देती है।

खाट और पलंग खटमलों के प्रिय निवास होते हैं। इन स्थानों में रहने से बिना विशेष परिश्रम के रणक्षेत्र में प्रवेश करके रक्तशोषण के पवित्र कार्य का आरंभ किया जा सकता है। यह सुविधा कुर्सियों में भी पाई जाने के कारण वे भी उन्हें विशेष पसंद होती हैं। बैठने वाले की पीठ कुर्सी से टिकी न टिकी कि खटमलों ने हमला किया ही समझिए। आराम-कुर्सी में बैठने वाले को जितना अधिक आराम मिलता है उससे कहीं अधिक सुविधा खटमलों को मिलती है। कारण यह कि उस पर बैठने वाला मनुष्य शीघ्र ही निद्राधीन हो जाता है और गाफिल शत्रु पर हमला करना हमेशा लाभप्रद रहता है। टेबल के साथ मनुष्य के हाथों को छोड़ कर अन्य अंगों का संबंध नहीं आता, अतः वे खटमलों को अधिक प्रिय नहीं होते। इसके खिलाफ खंभों पर से चाहे जहां कूदने की आजादी होने के कारण उनमें खटमलों की विस्तृत बस्तियां पाई जाती हैं। हिरण्यकश्यप ने क्रोधित होकर खंभे को लात मारी थी तब भगवान नरसिंह के साथ सौ-पचास खटमलों का दस्ता भी अवश्य बाहर आया होगा। इसी प्रकार भोजन के समय बैठने के पटड़े भी खटमलों को परम प्रिय होते हैं। खाते समय मनुष्य का आसन प्रायः स्थिर होने के कारण और उसका संपूर्ण ध्यान भोजन में लगा रहने के कारण खटमलों

को निर्विघ्न रूप से रक्तशोषण का मौका मिल जाता है। मनुष्य और खटमल, दोनो को उदरपूर्ति का अवसर एक साथ देने के कारण यह स्थिति सहजीवन का उत्तम उदाहरण प्रस्तुत करती है।

पलग के सारे खटमलो को निकाल कर पायो को पानी भरे प्यालो मे डूबा रखने से नाकेबदी तो पक्की हो जाती है पर खटमल इससे हताश नही होत। इद गिद की दीवारो पर चढकर या छत की कडियो पर से छलाग मार कर पलग पर कूदा जा सकता है। कुछ परम घाघ मत्कुण तो सोने वाले के कपडो मे छिपे रहते हैं और उसके कमर टेकते ही उसे यमयातना देने लगते हैं। पलग के पायो के रास्ते नीचे उतर कर फरार हो जाने का माग बद हो जाने के कारण इस बार वह केसरिया बाना धारण कर युद्ध करने वाले राजपूतो की तरह जीवन की आशा छोड कर रणक्षेत्र मे उतरता है और भरपेट रक्तपात करने को ही अपना अतिम ध्येय समझता है। और फिर धीरे धीरे उसके सिर पर खून सवार हो जाता है। इस समय खुर्दबीन की सहायता से उसका मुह देखा जा सके तो दु शासन का खून पीने वाले भीमकर्मा वकोदर के मुह की तरह उसे देख कर भी डर लगे बिना नही रहेगा।

एक बार हमारे घर मे खटमलो की इतनी इफरात हो गई कि उनके अत्याचारों से त्रस्त होकर मुझ पर पागल होने की नौबत आ गयी। मैं पाटे पर, दीवान पर, कुर्सी पर, पलग पर या खाट पर कही भी बैठू तुरत असख्य सुइया एकसाथ चुभने की-सी वेदना होने लगती। इस यातना से छुटकारा पाने के लिए मैं घटो तक खडा रहता। पलग पर लेटते समय कमर को गद्दे पर टिकाना शरशय्या पर सोने के समान था। अत मैं कमर को मेहराब की तरह ऊची उठाकर सोने लगा। रक्त की एक एक बूद चूसकर फरार हो जाने वाले खटमलो का गुस्सा मैं बच्चो पर उतारने लगा। कभी-कभी तो क्रोध का आक्रोश कम करने के लिए आसपास और कोई न मिलने पर मैं अपने ही मूह पर दो चार तमाचे जड लेता। इन सब युक्तियो का कुछ भी परिणाम निकलता न देखकर आखिर मैंने गृहत्याग करने का निश्चय किया और सपरिवार काशीयात्रा को चल दिया। इससे भवसागर से न सही, पर खटमलो के अत्याचार से छुटकारा होने की काफी सभावना थी। वसे तो तीर्थक्षेत्र में भी पडा और गयापुत्रो ने खटमलो की याद को सदा ताजा रखा पर अब तक रक्तशोषण करवाने का भरपेट अनुभव हो जाने के कारण

उनकी मूटखसोट से विशेष कष्ट नहीं हुआ। मच्छरों की गुनगुनाहट का रात दिन का अनुभव होने के कारण पडों की भुनभुनाहट भी विशेष अप्रिय नहीं लगी। महीने भर बाद हम घर लौट आए। सोचा था कि घर में घुसते ही जगह-जगह खटमलों के निर्जीव अस्थिपंजरों के ढेर के ढेर दिखाई देंगे। ऐसा यदि होता तो उन्हें बूंद दो-बूंद आंसुओं की तिलांजलि देने को भी तैयार था। रोज रोज आंसू बहाने की अपेक्षा एक रोज ही अंजलि भर आंसू अर्पण कर देना कहीं अधिक सुविधाजनक रहता।

परंतु ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। हमारी अभिलाषा पूरी होने का एक भी लक्षण दिखाई नहीं दिया। घर में घुसने पर तो एक भी खटमल के दर्शन नहीं हुए। हमने सोचा कि अनाहार के कारण बेचारे इतने कमजोर हो गए होंगे कि बाहर निकलने की भी शक्ति नहीं रही होगी और अपने छिपने के स्थानों में ही भूख से तड़प-तड़प कर मर गये होंगे। करुणा से भरे हुए हृदय से मैं खाट पर जा बैठा। खाट को पीठ लगने की देर थी कि छिप कर बैठे हुए दस्तों ने एकबारगी धावा बोलकर पहली सलामी दी। जीवन भर के सारे उपवास एक ही महीने में लगातार हो जाने के कारण उनकी क्षुधा कुछ ऐसी प्रदीप्त हो उठी थी और महीने भर तक भूख से दांत पीसते रहने के कारण दाढ़ों में कुछ ऐसी तीक्ष्ण धार आ गई थी कि महीने भर की कसर उन्होंने कुछ मिनटों में ही निकाल ली। मैं परेशान होकर कुर्सी पर जा बैठा। परंतु यहां दूसरे दस्ते तैयार थे। किस्सा कोताह, घर के चप्पे-चप्पे पर बुभुक्षित खटमलों का एकछत्र साम्राज्य छाया दिखाई दिया और चैन की सांस लेना मुहाल हो गया। हम अपनी काशीयात्रा का सुफलभोज दें उससे पहले ही उन्होंने अपने प्रदीर्घ उपवास का पारण शुरू कर दिया था। रात होने से पहले ही हम त्राहि-त्राहि कर उठे।

इसके बाद मुझे एक नई तरकीब सूझी। खटमलों को नाखून से मारना चाहो तो वे मिलते नहीं और भूख से मारना चाहो तो मरते नहीं। तो फिर क्यों न उन्हें इधर-उधर बिखेर दिया जाए। इतना बड़ा शहर है, खैरात करने में कोई कठिनाई नहीं होगी। शहर में ऐसे अनेक आलसी लोग होंगे जिनका अतिनिद्रा के कारण स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता होगा। ऐसे अनेक विद्यार्थी और मजदूर होंगे जिनकी सुबह चार बजे उठना चाहने पर भी नींद नहीं खुलती होगी और वे पाठशाला या कारखाने का समय चूक जाते

होंगे। हमारे घर भर के रात्रिजागरणों को इन सबमे बांट दिया जाए तो हम कुछ राहत मिल कर इन लोगो पर अनायास ही उपकार होने की सभावना थी। यह विचार मन म आते ही मैंने उस पर अमल करना शुरू कर दिया। खटमलों से लबलब भरे हुए कपडे पहन कर मैं इष्टमित्रो स मिलने के लिए घर से निकल दिया। कभी किसी से मिलने न जाने वाले मुझ जसे एकातप्रिय और घरघुसरे इसान के मन म अचानक इतनी मिलनसारी उत्पन्न हुई देख कर लोगो को आश्चय तो हुआ होगा। परतु किसी ने भी मेरे मेलजोल से ऊब या अरुचि प्रकट नही की। इतना ही नही लोग बडी उमग स पान-सुपारी और बीडी-तमाखू से ही नही, चाय शरबत से भी मेरा सत्कार करने लगे। अब आश्चयचकित होने की मेरी बारी थी। मैं गहराई से विचार करने लगा कि इतना लोकप्रिय हो उठने के ऐसे कौनसे गुण मुझमे छिप हुए है, जो आज तक उपयोग म न लाने के कारण सुषुप्तावस्था मे पडे हुए थे। बहुत सोचने पर भी बात कुछ समझ मे नही आई। आखिर कुछ लोगो से साफ-साफ पूछने पर मालूम हुआ कि उनमे स किसी को भी पहले स्वस्थ नीद नही आती थी। पर जब से मेरा आना-जाना शुरू हुआ है, लोगो को सुख की नीद आन लगी है। लोग इसे मेरे चरणा का प्रताप समझ कर बहुत खुश थे पर मैं और भी उलझन म पड गया। मेरी उपस्थिति मे कोई निद्रा प्रेरक शक्ति रही हो, यह मुझे तब तक मालूम नही था। अत कुछ और गहराई से खोजबीन करनी पडी। मालूम हुआ कि पहले इन लोगों के घरा म खटमलो का प्रकोप बहुत बढा हुआ था। परतु मेरा आना-जाना शुरू होन के बाद अब कहीं खटमल ढूढे नही मिलता। यह सुनते ही मेरी जो हालत हुई, आप अदाजा लगा सकते हैं। जिन कपडो के द्वारा अपने घर के खटमलो को अन्य जगह विसर्जित करने की युक्ति मैंने सोची थी, वे ही शहर भर के खटमलो को बटोरने का साधन बन गए थे। भागते हुए घर पहुचा और बडी, कुरता, फेंटा, यहा तक कि जूतो को भी झटककर देखा। मालूम दिया कि शहर भर के खटमलो ने मेरे कपडो मे शरण ली हुई थी। अधिक गहराई से जाचने पर दिखाई दिया कि बठक से लगा कर शयनगह तक उनकी कई अक्षौहिणी सेनाए पडाव डाले हुई थी। खाट, पलग, कुर्सी, टेबल आदि लकडी के सामान मे तो उनकी सख्या का कोई शुमार ही नहीं था। स्पष्ट था कि शहर भर के खटमल हमारे घर मे आकर एकत्र हो गए थे। उनमे बड्नाना के घर के दुबले मत्कुण थे और पाडूतात्या के यहां के मोटे ताजे

खटमल भी थे। काले और गोरे, चपल और मंद, लंबे और गोल-मटोल, सूखे और पुष्ट, मीठे खून के शौकीन और नमकीन खून के चाहने वाले, गरज यह कि हर वर्ग के प्रतिनिधि लाखों की संख्या में मौजूद थे। यह सब देख कर पहले तो मुझे संसार के प्रति विरक्ति उत्पन्न हुई और मैं फिर से पलायन का विचार करने लगा। परंतु अब की बार भाग कर कहीं दूर नहीं गया। सिर्फ इतना किया कि पहने हुए कपड़ों से बीवी-बच्चों के साथ घर से बाहर निकला और भारी मन से पुश्तैनी मकान को अपने हाथों से दियासलाई लगा दी। सावधानी के लिहाज से घर की राख हुए तक वहीं खड़ा रहा। फिर बजाज के यहां जाकर सारे कपड़े नये बनवाए और पुरानों की होली जला दी। अब चाहे किराये के मकान में रहना पड़ता है, पर रात को चैन की नींद तो आती है।

खटमल, मच्छर इत्यादि नींद के मार्ग में आने वाले विघ्न मनुष्य पर बाहर से हमला करते हैं जबकि चिंता फिक्र और मानसिक अस्वस्थता जैसे आंतरिक विघ्न उसे भीतर ही भीतर कुरेदते रहते हैं। प्रत्येक विघ्न में रक्तशोषण और निद्रानाश समान धर्म के रूप में मौजूद रहते हैं फिर चाहे वह बाहरी हो चाहे अंदरूनी। हमारे बड़ेनाना के मन में कोई न कोई उधेड़बुन चलती ही रहने के कारण उन्हें भी निद्रासुख कम ही मिलता था। उनका मस्तिष्क अत्यंत उपजाऊ और कल्पना-प्रवण है यह पहले देखा जा चुका है। विशेष तौर से कच्चे माल में से सीधे पक्का माल बनाने की अनेकविध कल्पनाएं तो उनके दिमाग में रातदिन घुमड़ती रहती हैं। गाय भैंसों के थनों में बिजली के ऐसे यंत्र लगा दिए जाएं कि उनमें से दूध के बजाय एकदम श्रीखंड या रबड़ी निकलने लगे, जमीन को जोत कर बिनौले बो देने के बाद कुछ ऐसी युक्ति की जाए कि पौधों पर कपास के बजाय मलमल के थान या धोती के जोड़े, ऊपर लगे हुए लेबल और चित्र के साथ उगने लगें, आदि कल्पनाएं सोते जागते उनके दिमाग में कुलबुलाती रहती हैं। इतना ही नहीं, इन कल्पनाओं के साकार होने से पहले ही वे तैयार धोतीजोड़ों को किस मंडी में बेचा जाए और उनकी कीमत क्या रखी जाए इस उधेड़बुन में पड़ जाते हैं। कभी-कभी तो वे इस मानस व्यापार के मुनाफे से प्राप्त रुपए को मन ही मन समाजसेवा की विभिन्न मदों में खर्च करने की योजना भी बनाने लगते हैं। इस स्थिति में यह स्वाभाविक है कि नाना की रातें निद्रा के बजाय योजनादेवी की उपासना में बीतें। इसका परिणाम यह हुआ कि उन्हें निद्रानाश का रोग लग गया। शीघ्र ही

हालत यहां तक बिगड़ी कि लाख जतन करने पर भी उन्हें रात-रात भर नींद न आती। उन्होंने सारे खिड़की-दरवाजों को बंद करके कृत्रिम अंधकार उत्पन्न कर देखा, घंटों तक आंखें मूंदकर चुपचाप लेटे रह कर देखा, गरमी से सांस घुटने की नौबत आने तक सिर से पांव तक ओढ़ कर देखा, दीर्घश्वसन और प्राणायाम का प्रयोग करके देखा, सोने का स्वांग भरकर सतमजिले खर्राटे लेकर देखा, पर निद्रादेवी प्रसन्न नहीं हुई सो नहीं हुई। दिन भर की मेहनत से थक जाने के बाद नींद आसानी से आ जाएगी इस विचार से प्रेरित होकर उन्होंने सुबह शाम डंड बैठक लगाए, दो दो घंटों तक दौड़ कर मीलों के चक्कर लगाए, घुड़सवारी की, अखाड़े में जाकर पहलवानों से कुश्ती की, कबड्डी, लगड़ी आदि थका देने वाले खेल खेले, पर उनकी किसी भी मर्दानगी पर निद्रासुंदरी मोहित नहीं हुई। आखिर नौबत यहां तक आई कि उन्होंने मादक पदार्थों का सेवन आरंभ किया। उन्होंने बारी-बारी में भांग, गांजा, चरस, अफीम आदि सारे निद्राप्रेरक द्रव्यों का प्रयोग करके देखा पर सब उलटे घड़े पर पानी सिद्ध हुए।

आखिर तंग आकर नाना ने आत्महत्या करने का निश्चय किया। उन्होंने पहले एक ऊंचे कगार पर से कूद कर देखा। परंतु ऊपर से नीचे पहुंचने तक सिर को धूप न लगे इस हेतु से छाता खोलकर हाथ में ले लिया। स्वाभाविक था कि प्राण देने की यह युक्ति कारगर न हुई हो। फिर एक बार उन्होंने डूब मरने का निश्चय किया। इसके लिए वे तालाब तक गये भी। पर हाथ डालकर देखने पर पानी बहुत ठंडा मालूम दिया, अत गर्मियों तक यह विचार स्थगित कर देना पड़ा। इसके कुछ दिनों बाद अखबारों में एक खबर छपी कि किसी बंगाली लड़की ने कपड़ों पर मिट्टी का तेल छिड़ककर आत्महत्या कर ली। इससे प्रेरणा प्राप्त करके नाना ने उसका अनुकरण करने का सकल्प किया। परंतु उन दिनों युद्ध के कारण मिट्टी का तेल इतना महंगा हो गया था कि परले सिरे के मितव्ययी नाना को महज मरने के लिए इतनी फिजूलखर्ची करना उचित मालूम नहीं दिया और निरुपाय होकर तेल के दाम कम होने तक उन्हें यह विचार भी स्थगित कर देना पड़ा।

नाना की अनेकविध युक्तियों को ठेंगा दिखाने वाली निद्रादेवी अंत में एक घरेलू उपाय से वश में हो गई। जिस छलनामयी ने उनके शारीरिक श्रम की परवाह नहीं की, मादक पदार्थों को जो घोल कर पी गई और जिसके वियोग के

कारण नाना को महानिद्रा की गोद में जाने का निर्णय करना पड़ा उस निद्रा सुंदरी ने आखिर एक किताब के सामने घुटने टेक दिए। बात यों हुई कि उन्हीं दिनों एक नया शास्त्रीय ग्रंथ प्रकाशित हुआ था। उसकी प्रशंसा सुन कर मैंने उसे नाना को भेंट देने का निश्चय किया। एक रोज ग्रंथ खरीद कर मैं रात को उनके यहां पहुंचा। नाना बेचारे नींद के अभाव में बिस्तर पर करवटें बदलते हुए तड़फ रहे थे। मेरे पहुंचते ही वे उठ बैठे और आंखों पर ऐनक लगा कर पढ़ना शुरू किया। उन्होंने मुश्किल से आधा पन्ना पढ़ा होगा कि कुछ दैवी चमत्कार हुआ और आज तक रूठी हुई निद्रारानी उन पर एकाएक प्रसन्न हो गयी। दो चार क्षणों में तो वे खर्राटे लेने लगे। मैंने भी उन्हें छेड़ना उचित नहीं समझा और चुपचाप उठ कर घर चला आया। दूसरे दिन मिलने पर नाना बड़े प्रसन्नचित्त दिखाई दिए। पिछली शाम के अमूल्य उपहार के लिए उन्होंने मुझे दिल की गहराई से धन्यवाद दिया। उस ग्रंथराज ने उनके महीनों के विकार को क्षणार्ध में नष्ट कर दिया था। इतना ही नहीं, कल के अनुभव से उनके अनेकविध वैज्ञानिक अनुसंधानों में एक नया आविष्कार और जुड़ गया था। हम यह देख चुके हैं कि ग्रंथ पढ़ते-पढ़ते वे चश्मा उतारे बिना ही सो गये थे। आज सुबह जागने पर उन्हें बोध हुआ कि चश्मा लगा कर सोने से स्वप्न की बातें अधिक स्पष्ट दिखाई देती हैं। नाना के इस मौलिक आविष्कार के लिए वैज्ञानिक जगत कभी न कभी उनका सत्कार अवश्य करेगा। वैसे इस तथ्य की पड़ताल रोजमर्रा के जीवन की घटनाओं से भी की जा सकती है। कभी-कभी वादविवाद के आवेश में हम आंखों पर का चश्मा ऊपर कपाल पर चढ़ा लेते हैं। और यह देखा गया है कि तब तक बुद्धि को न पटने वाली विचारधारा ऐनक के कपाल पर चढ़ते ही ग्राह्य मालूम देने लगती है। इस नियम को स्थापित करने के लिए अभी कुछ अधिक प्रयोगों की आवश्यकता है पर सिद्धांत रूप से यह मान लेने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि ललाट पर ऐनक को सरकाते ही दिमाग में अधिक रोशनी पड़ती होगी और इसी कारण से सामने वाले की बात पटने लगती होगी।

नींद के मामले में पांडुतात्या का तजरबा हम दोनों के अनुभवों से नितांत भिन्न प्रकार का रहा है। तात्या के जैसे सुखी जीव इस मृत्युलोक में कम ही दिखाई देते हैं। उनकी नींद न कभी खटमलों के रक्तशोषण से टूटती है न मच्छरों की गुनगुनाहट से। उनकी मोटी चमड़ी को आरपार भेदना इन क्षुद्र कीटकों के

बूते की बात नही। और चिंता फिक्र तो उनकी नींद की पुख्ता किलेवदी के आसपास भी नही फटक सकती। आहार और निद्रा के बीच कुछ समय बीतना चाहिए, वैद्यकशास्त्र के इस नियम को भी उन्होंने उठाकर ताक पर रख दिया है। खाना खाते ही सो जाने को और सोकर उठते ही फिर से खाने को वे सदा तत्पर रहते हैं। ज्यादा खा लेने से कभी उनकी नींद नही बिगडी और अतिनिद्रा से कभी उन्हें अग्निमाद्य नही हुआ। उनके खर्राटो के कारण घर के अन्य लोगो की आख लगना चाहे जितना दुश्वार रहा हो, इससे उनकी अपनी नींद मे कभी कोई खलल नही पहुचा।

दोपहर के भोजन के बाद दो तीन घटा तक लबी तान देने की तात्या को कई वर्षों से आदत है। अस्सी वर्ष की आयु मे उनके पिताजी का अतसमय नजदीक आया उस समय तात्या दोपहर का भोजन समाप्त करके लेटने की तयारी कर रहे थे। उधर बुढऊ की ऊर्ध्वसास चलने लगी। तात्या का चेहरा उतर गया। पिताकी आयु कम से कम दो-तीन घटो तक बढा देने के लिए उस पितवत्सल पुत्र ने मन ही मन भगवान से बहुत प्रार्थना की। परतु निष्ठुर दैव ने उनकी बिनती नही सुनी। पिताजी का प्राणोत्क्रमण हो गया और आगे की तैयारी का तुरत प्रारभ करना पडा। उधर तात्या की आखें झपकने लगी और शरीर भारी होने लगा। कफन काठी आने तक तो उनका सिर घूमने लगा और आखें खुली रखना दूभर हो गया। चेहरे पर पानी के छीटे मार मार कर लोगो ने उन्हें जागत न रखा होता तो वे मूर्छित होकर गिर पडे होते। शव को अर्थी पर बाधते समय उनके मुह से 'बापू, मुझे इसी समय छोड जाने की जल्दी क्यो की"—ऐसे जो हृदयद्रावक उद्गार निकले उनका विभिन्न लोगो ने अलग-अलग अर्थ लगाया। नवागतुको ने उन्हें पिता के अकाल निधन से दुखसागर मे डूब जाने वाले पुत्र के शोकविह्वल उदगार समझा। परतु भीतर की बात जानने वाला के लिए उनम कुछ अधिक गहरा अर्थ भी छिपा हुआ था।

दोपहर का नियमित रूप से सोने की आदत के कारण कभी कभी कितनी असुविधा हो सकती है इसका अनुभव होने के बाद तात्या ने उसमे सुधार करने का निश्चय किया। बडे कठोर मनोनिग्रह से उन्होंने निर्णय किया कि अब नियमित समय पर सोने के बजाय चाहे जब और चाहे जिस स्थिति म सोने की आदत डालनी चाहिए।

निर्णय पर उन्होंने तुरत अमल करना शुरू कर दिया। अब रात को जागरण

करने मे भी हर्ज नही था क्योकि रात को खायी हुई नीद की क्षतिपूर्ति चाहे जब सोकर की जा सकती थी। अब वे हमारे साथ गाने की महफिलो मे भी आने लगे। परतु वर्षों की पुरानी आदत छूटते छूटते ही छूटती है। महफिला मे वे हारमोनियम का साथ अपने खर्राटो से भरने लगे। बाजे के सुर के साथ खर्राटो का सुर मिलाने के बजाय वे इस जिम्मेदारी को बजाने वाले पर ही छोड देते। बेचारा हारमोनियम वाला मजबूर होकर उनके सुर के साथ अपने बाजे का सुर मिला लेता। महफिला मे वे जाते थे श्रोता की हैसियत से पर आते थे अक्सर दूसरो को श्रोता बनाकर। बडे बडे पहाडी आवाज वाले गवये भी उनके खर्राटो के सामने टिक न पाते। कभी-कभी तो गवैया बोरिया बिस्तरा समेट कर भागता हुआ नजर आता। नाटकगहो मे तात्या के खर्राटे शुरू होते ही अभिनेताओ के आवेश युक्त सवाद और गाने वालो के तानआलाप तो क्या, दर्शका की तालियो की गड गडाहट भी सुनाई देना दुश्वार हो जाता। बेसुरे गाने वालो की आवाज श्रोताओ तक और सुरीले गवैया को दी जाने वाली दाद गाने वाला तक पहुचना मुश्किल हो जाता। एक तरह से यह बात दोनो पक्षो के लिए सुविधाजनक थी। अत तात्या के षडजगधार के विरुद्ध आज तक किसी ने कोई आपत्ति नही उठाई।

इस अतहीन निद्राराधना के कारण खुद तात्या को भी असुविधा न होती हो सो बात नही। भोजन के सिवा और किसी भी काम के लिए वे समयपर उपस्थित रहे हा ऐसा शायद ही कभी होता है। श्रावणी के दिन पचगव्य प्राशन के समय वे अदबदा कर अनुपस्थित रहेग पर सत्तू खाने के समय हाजिर रहने से कभी नही चूकते। कीतन या सत्यनारायण की कथा के अवसरो पर तो प्रसाद बटने स पहले वे जाते ही नही और साधुवश्य की रोचक कथा के श्रवण से वचित रह जाते हैं। वहा जाकर अपने खर्राटो से दूसरो को पुण्यलाभ से वचित करने की अपेक्षा खुद ही उससे महरूम रह जाने की आदत उनकी परोपकारी वत्ति की ही द्योतक है इसमे कोई सदेह नही।

एक बार निद्राधीन हो जाने के बाद तात्या को स्थानकाल का कुछ भी होश नही रहता। बीच मे कई दिनो तक उनके मन मे ऐसी शका आने लगी थी कि उनकी आखें लगते ही उनकी घडी पाच मिनट मे एक घटे की रफ्तार से चलने लगती है और आख खुलने से पहले दो-तीन घटो की मजिल तय कर लेती हैं। घडी की इस बुरी आदत को दुरुस्त करने के लिए उन्होंने उसे घडीसाज के यहा भेजा पर

कई बार मरम्मत होने पर भी घडी की गति मंद होने के लक्षण दिखाई नही दिए। दूसरी ओर मरम्मत का खर्च बढता जा रहा था। धीरे धीरे वह बढ कर घडी की मूल कीमत से दस गुना अधिक हो गया। तब उन्होंने पुरानी घडी की छुट्टी करके नयी घडी खरीदने का निश्चय किया और वे घडियों की दूकान में पहुचे। वहा सारी घडियो की सुइया को नाटक की नर्तकियो के हाथो की तरह एक साथ एक ही दिशा मे उठते गिरते देख कर उन्हे उन पर विश्वास न रहा। साथ ही यह भी मालूम किया कि पुरानी घडी का समय उन सबमे बिलकुल मिलता जुलता था। अत उन्होने नई घडी खरीदने का विचार छोड दिया। दूकान मे जाकर वहा की नयी और आकर्षक वस्तुओ को देख कर भी उन्हे खरीदने का विचार छोड कर पुरानी से ही काम चला लेने का आत्मनिग्रह कम ही लोगो मे पाया जाता है। परंतु तात्या ने यह चमत्कार कर दिखाया। योगायोग से उसी समय उनकी पुरानी घडी ने बीच बीच में बंद हो जाने का निश्चय किया। एक रोज तीन घंटे सोकर उठने के बाद तात्या ने देखा कि उस ईमानदार सेविका ने तीन घटा तक अपनी सुइया को भी अपने स्वामी के अगो की तरह निश्चल रखा था। घडी की अकल ठिकाने आयी हुई देख कर तात्या को हार्दिक आनंद हुआ। बडे संतोष के साथ वे सबसे कहने लगे "देखा नयी घडी खरीदने का विचार करते ही ससुरी की अकल ठिकाने आ गई।" इस दिन के बाद तो वह घडी उनके गले का हार बन गई। यहा तक कि कालगति से जब उसकी दोनो सुइया टूट गई डायल चटक गया तब भी तात्या ने समय जानने के लिए दूसरी घडी का प्रयोग नही किया। इतनी भरोसे की घडी उन्हे भला मिलती भी कहा।

रेलयात्रा के समय की तात्या की भगदड तो बस देखते ही बनती है। दोपहर के भोजन के बाद दो मिनट के लिए आखें मूदी न मूदी कि गडबड हुई ही समझिए। सात्विक आक्रोश से थरथराते हुए तात्या फतवा देते 'इन गाडियो का समय हमेशा ही असुविधाजनक होता है। यह भी भला कोई बात हुई कि घडी भर के लिए आदमी जरा सुस्ताने लगे कि इन मसुरियों के छूटने का टैम हो जाए। दूसरे और तीसरे पहर के बीच देश भर में कोई भी गाडी किसी भी स्टेशन पर न पहुचे ऐसा कानून बना देना चाहिए। मैं रेलकंपनी को इस सबंध मे शिकायत लिखने वाला हू।' इत्यादि।

प्रयत्न की पराकाष्ठा के बाद तात्या को कभी गाडी मिल भी जाए तो वे समय

पर गतव्य स्थान पर पहुच ही जाएगे इसका कोई भरोसा नही रहता। नीद के खुमार म वे अक्सर गतव्य स्थान से दो चार स्टेशन आग पहुच जात हैं और फिर दूसरी गाडी से वापस लौटत हैं। इस बार दो-तीन स्टेशन पीछे पहुचने के बाद आख खुलती है। घडी के लटकन की तरह यह आगे-पीछे की यात्रा दो-तीन बार होने के बाद ही वे गतव्य स्थान पर पहुचते हैं। एक बार एक ही रात म रेल के एक ही विभाग की यात्रा उन्होंने दोना दिशाओ मे दो-दो बार की थी। एक बार वे कल्याण स्टेशन पर बबई से पूना जाने वाली गाडी की राह देखते हुए बैठे थे नहीं-नहीं, ऊघ रहे थे। एक के बाद एक पूना की तीन गाडिया निकल गइ। हर बार गाडी के छूटने की सीटी बज जाने के बाद ही तात्या की आख खुलती थी और दौड कर गाडी पकडन का प्रयत्न करने के बावजूद भी वह छूट जाती थी। दो गाडियो के बीच म कुछ समय होना स्वाभाविक था, अत तात्या विचार करते कि चलो, तब तक एक झपकी और ले ली जाए। परतु एक बार आखें मुदते ही पिछली बार की पुनरावृत्ति होना अनिवार्य था। तीसरी बार तो गाडी की सीटी स आख खुलते ही नीद की बेहोशी मे वे उलटी दिशा म भाग कर बबई की गाडी म चढने की कोशिश करन लगे। चौथी बार वे गाडी पकड पाये इसका कारण यह था कि उन्होंने कुली से कह दिया था कि गाडी आने स पहले उन्हें जगा दिया जाए और हिलाने डुलाने पर भी आखें न खुलें, तो कान म यह मत्र फूका जाय कि 'उठिये तात्या, भोजन तैयार है।'

इन दिनो तो देह की किसी भी अवस्था म सोत रहने की आदत उन्होने आत्मसात् कर ली है। व बठे-बठे सात हैं, खडे-खडे सोते हैं यहा तक कि चलते चलते भी सोन रहत हैं। अलबत्ता भागत समय सोत हुए उन्ह आज तक किसी ने नही देखा। परतु इसी रफ्तार से तरक्की होती रही तो शीघ्र ही वह दिन भी देखने को मिल जाएगा। भविष्य के गभ म क्या क्या चमत्कार छिपे हुए हैं कौन बता सकता है!

30 यशप्राप्ति के अचूक और सरल उपाय

प्रत्येक मनुष्य किसी न किसी ध्येय को दृष्टि में रख कर उसकी सिद्धि के लिए प्रयत्न करता रहता है। मनुष्य के इस उद्दिष्टचिंतन में ही कुछ लोगों के मतानुसार उसके सुख के बीज छिपे रहते हैं जबकि कुछ अन्य विचारकों ने इसी को उसके समस्त दुखों की जड़ माना है। इन ध्येयों को प्राप्त करने के आधुनिक उपाय बहुत कुछ घिसे पिटे और नीरस हैं। आजकल रोगी मनुष्य आरोग्यसंपादन के लिए कड़वी जहर जैसी दवाइयां पीने से लगा कर उपवास करने तक के अनेक भले बुरे मार्गों का अवलंबन करेगा पर अत्यंत प्राचीन काल से रामबाण सिद्ध होने वाले मंत्रतंत्र, गंडे-तावीज, जारण मारण वशीकरण आदि उपायों की तरफ आंख उठा कर भी नहीं देखेगा। जूड़ी बुखार जैसे रोगों पर तो हमारे सनातन उपाय हमेशा गुणकारी सिद्ध हुए हैं। शरीर में कितनी ही कपकपी क्यों न चढ़ रही हो, मंत्र की एक फूंक से उसका नामोनिशान मिट जाता है। तांत्रिक आकृतियां वाला गंडा या मंत्रसिद्ध तावीज का रोगी के गले या बांह से स्पर्श होते ही तिजारी जैसी व्याधियां पीछे मुड़ कर देखे बिना पलायन कर जाती हैं। किसी की बुरी नजर लग कर बच्चा मुरझाने लगे तो राई नोन से नजर उतारते ही वह रोगमुक्त होकर प्रफुल्लित दिखाई देने लगता है। अंगारों पर राई की तड़तड़ सुनाई देते ही चश्मेबद सिर पर पांव रख कर भागती है। छोटे बच्चों को भूत प्रेत की बाधा होने पर उसके कपाल पर साधुबाबा की मंत्रपूत भभूत लगा देने से या गले में पीरबाबा द्वारा फूंका हुआ काला डोरा बांध देने से उससे छुटकारा पाया जा सकता है। बच्चों के फोड़े फुंसियों पर कारगर होने वाला उपाय भी कुछ अधिक जटिल नहीं है। हाल की टांकी हुई चक्की में आटा पीस कर उससे चौराहे पर कुछ आकृतियां बना दीं कि छुट्टी हुई। जो कोई उन आकृतियों को लांघेगा, बच्चे के शरीर के फोड़े उसके शरीर पर स्थानांतरित हो जाएंगे।

आरोग्यलाभ के इन सुलभ मार्गों के उपरात सुखप्राप्ति के और भी अनेक साधना से वतमान पीढी वचित रह गई है। प्राचीन काल म पाव की तरफ से ज म लेने वाले औलिया गुप्तधन की टोह लगाने मे पारगत होते थ। कीमियागरा की सहायता स निकृष्ट धातुआ का सोने मे रूपातर किया जा सक्ता था। जिनात तो कुछ भी कर सकत थे। हलवाई की दुकान स मिठाई के थाल उठा लाना या सात समदर पार के किसी सुलतान के हरम से उसकी शाहजादी को उडा लाकर हस्तबस्ता सामने खडी कर दना उनके बाये हाथ का खेल था। स्यान और ओझे भूत प्रेतो को उगलियो के इशारे पर नचा सकते थे। सूखा पडने पर महादेवजी की पिंडी पर अभिषेक की निरतर धारा टपका कर पूरी सप्टि को जलमय किया जा सकता था। परिवार पर कोई सक्ट आन पर देवताओ का उसमे सहभागी करके उससे छुटकारा पाया जा सकता था और आपत्ति यदि लबे समय तक टिकी रहे तो इष्टदेवताओ को कुए म उलटे लटका कर उ ह अपनी विपत्तियों का आशिक मजा चखाया जा सकता था। बस उस जमाने क देवी-देवता भी आशुतोष हुआ करते थे और ऐसे अघोरी उपायो की राह देखे बिना ही मनौतिया पूरी कर देत थे। बचपन मे बहुत सी परीक्षाए मैंने एक पस की मिस्री का प्रसाद बाटने की म नत के बलबूत पर ही उत्तीण की थी। इस उपाय को सफल होता देख कर पुस्तको का अध्ययन ता क्या उ हें खरीदने के झमट स भी मैंने अपने आपको मुक्त कर लिया था। आज मुझे गणित, भापा, इतिहास या भूगोल का जो भी थाडा-बहुत ज्ञान है वह मिस्री की डलियो की मधुर बुनियाद पर टिका हुआ है। बाद म मनौती की मिस्री को अ य लोगा मे बाटने के बजाय मैं खुद ही उदरस्थ करने लगा। मिस्री की डलिया अपने ही मुह म पडने क कारण बाद के दिनो में प्रसाद की तादाद बढ गई और कुछ दिनो बाद मिस्री का स्थान पेडा ने ले लिया। हनुमानजी के सामने मनौती मानते समय मैं जानबूझ कर अथ-भेद की गुजाइश छोड देता था। 'परीक्षा मे पास हुआ, ता तरे नाम स पडे बाटूगा' —यह सकल्पतो स्पष्ट होता था। पर किसे बाटूगा, इस बात को मैं जानबूझ कर अध्याहार रहने देता था। इससे मेरी मनोकामना भी पूरी हो जाती थी, देवता के सामने मिथ्या सकल्प करने के दोष से भी बचाव हो जाता था, और मिठाई भी अपने पेट म जाती थी। मेरी इस युक्ति की बेचारे हनुमानजी को शायद आज तक कल्पना नहीं आयी होगी।

विद्यार्थी अवस्था का यह अनुभव मुझे गृहस्थाश्रम मे भी बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ। व्यापार का आरभ करने से पहले जिस प्रकार पूजी जमा करनी पड़ती है उसी प्रकार प्रत्येक काम का आरभ मैं मनौतियो द्वारा करने लगा। विभिन्न मनौतियो म सत्यनारायण की पूजा और व्रत का सकल्प मुझे सबसे अधिक पसद है। सत्यनारायण अत्यत जागृत देवता हैं। किसी भी कपट-कारस्थान का आरभ करना हो, उन्हें उसमे साझेदार बना लेने से काय की सिद्धि अटल हो जाती है। उस काय का सबध सत्य से है या असत्य से, इससे कोई फक नही पड़ता। दूसरी सुविधा इसम यह है कि व्रत का सकल्प पूरा न होने पर सत्यनारायण क्रोधायमान होकर हमारी कामना स ठीक उलटा परिणाम घटित करते हैं। उनके इस गुण से भी मैंने समय-समय पर फायदा उठाया है। एक बार मैंने कामना की कि हे भगवान् इस बार मेरे खेतो की फसल को नष्ट कर दो। एक दाना भी मत उगने दो। मेरी यह इच्छा पूरी हुई तो मैं सत्यनारायण व्रतकथा का आयोजन करूगा।' बस अब क्या था। उस साल वैसे तो वर्षा बहुत अच्छी हुई पर भगवान सत्यदेव की कृपा से मेरे खेतो मे एक बूद भी पानी नही बरसा और सारी फसल सूख गई। फसल की रक्षा के लिए खेतो मे काग भगोड़े खड़े करने की भी आवश्यकता नही पड़ी। मैं इस हद तक अकिंचन हो गया कि चाहने पर भी सत्यनारायण व्रत-कथा का आयोजन न कर पाता। मेरे मन की असली कामना की तो भगवान सत्यदेव को मैंने भनक भी नही पड़ने दी थी। अत मेरे द्वारा सकल्प पूरा नहीं हुआ यह देखते ही सत्यनारायण कोपायमान हो उठे और अपनी क्रोधाग्नि को उन्होंने मेरे खेतो पर पजन्य के रूप मे इतनी वर्षा की कि शीघ्र ही खेतो मे हरी भरी फसल लहराने लगी और मेरा घर धन धान्य से परिपूण हो गया। मनुष्य के कृपा-कटाक्ष की अपेक्षा देवता की वक्रदृष्टि भी हमारे लिए अधिक उपकारक होती है। इसका इससे अच्छा उदाहरण कहा मिलेगा।

प्रेम के क्षेत्र मे यशस्वी होने के उस समय के उपाय भी आज के नोजवानो की उछलकूद से कही अधिक प्रभावशाली और सरल होते थे। पूवकालीन प्रेमपडितो को वशीकरण के अनेक मत्रसिद्ध उपाय कठाग्र थे। उस काल में बालविवाह रूढ होने के कारण और प्रीतिविवाह का प्रचलन न होने के कारण पति-पत्नी के बीच रूपरग आकृति लबाई चौडाई शारीरिक स्वास्थ्य, स्वभाव, ज्ञान, विचारधारा, भावनाए और मनोविकारों को लेकर अक्सर उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव के

जितना अंतर हुआ करता था। कम से कम हमारी पीढ़ी के लोगों को तो इस सत्य को खुले मन से स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए। तथापि पुरुष के हाथ में पर्याप्त अधिकार और स्त्री के हिस्से में उतने ही सीमाहीन अज्ञान और परवशता की योजना करके हमारे स्मृतिकारों ने संघर्ष की संभावनाओं को न्यूनतम कर दिया था, जिसके परिणामस्वरूप इन पूरी गड़ेरी जैसे जोड़ों में भी बहुधा निस्स्वार्थ प्रेम के ही दर्शन होते थे। किन जोड़ों में प्रेमभाव रहने की संभावना अधिक होगी इसकी अटकल लगाने में ज्योतिषशास्त्र भी बहुत सहायक होता था। राक्षसगण की स्त्री का विवाह वह देवगण के पुरुष के साथ कभी नहीं होने देता था। इतनी पक्की मोर्चेबंदी के बावजूद भी वैवाहिक प्रेम के व्यक्त रूप में दर्शन न हों, तो प्रेम का सोता बहाने के लिए वशीकरण का प्रयोग बहुत उपयोगी सिद्ध होता था।

वर्तमान युग में विपुल संतति की कामना कोई नहीं करता। यहां तक कि बांझ स्त्रियां भी पुत्रप्राप्ति के लिए प्राचीन शास्त्रोक्त उपायों का अवलंबन नहीं करतीं। पुत्र के बिना सद्गति नहीं होती, यह तत्त्व अतीत के लोगों के मन में इतना पक्का ठसा हुआ था कि पुत्रप्राप्ति के लिए किए गए किसी भी उपाय को वे त्याज्य नहीं मानते थे और उसके लिए कमर कस कर प्रयत्न करते थे। बांझ स्त्रियों के लिए तो उन दिनों विभिन्न उपाय उपलब्ध थे। दिन में वे पुत्रवती स्त्रियों के घर जाकर पालने की पूजा करती थीं और रात को निवस्त्र होकर उनकी देहरी के सामने स्नान करके चौराहे की पूजा करती थीं। पालना, देहरी, तिराहा, चौराहा आदि शीघ्र फलदायक देवताओं को दंभ और बाह्य उपकरणों से इतनी चिढ़ थी कि अपने और अपने भक्तों के बीच वस्त्र का झिरझिरा परदा रहे यह भी उन्हें गवारा नहीं था। रात को निवस्त्र होकर हनुमानजी के मंदिर की उलटी प्रदक्षिणा करना तो इन सब उपायों का सिरताज माना जाता था। बेचारे बालब्रह्मचारी हनुमान जी की ऐसी कठोर अग्निपरीक्षा क्यों ली जाती थी, कुछ समझ में नहीं आता। पर इतना स्पष्ट है कि इस नग्नकांड से घबरा कर पिंड छुड़ाने के लिए वे शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते होंगे और भक्तिन को पुत्र प्रदान करने की जोरदार सिफारिश सीताराम के दरबार में कर देते होंगे।

अमावस्या की रात को पुत्रवानों के घरों में आग लगा देने से भी अपने घर में कुलदीपक का आविर्भाव किया जा सकता था। आग भड़क कर इर्दगिर्द के

दस बीस घरों को भस्म कर दे तो दूषित हवा को शुद्ध करने का और पुराने मकानों की गंदगी नष्ट करके सार्वजनिक स्वास्थ्य में योगदान देने का श्रेय अनायास ही पल्ले पड़ सकता था। अब यह सही है कि इस प्रकार की आग में दस-बीस आदमियों की आहुति पड़ जाने की भी संभावना रहती थी। परंतु लोकसंख्या को मर्यादित रखने के आधुनिक अर्थशास्त्र के सिद्धांतों का मद्देनजर रखा जाए तो इसमें कोई खास बुराई दिखाई नहीं देती। कोई भी विचारशील मनुष्य जनसंख्या को सीमित करने के किसी भी ऐसे अमानुषिक प्रयत्न की भर्त्सना करने के बजाय उसकी सैद्धांतिकता के लिए उसकी प्रशंसा ही करेगा। फिर कभी कभी एक नरश्रेष्ठ के निर्माण या सुरक्षा के लिए सैकड़ों सामान्यजनों का बलिदान नितांत जायज होता है। नेपोलियन जैसे नरपुंगव की रक्षा के लिए जब लाखों लोग अपने प्राण देने के लिए तैयार रहते थे, तो फिर किसी स्वदेशी कुलदीपक की उत्पत्ति के लिए सौ दो सौ लोग जलकर भस्म हो जाएं तो इसमें किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिए। पुत्रप्राप्ति के लिए जलाये गए मकानों में अब तक हजारों लोग जल कर मर गए होंगे। परंतु आज तक किसी ने इसकी शिकायत की हो, ऐसा सुनने में नहीं आया।

पुत्रप्राप्ति का एक अन्य रामबाण उपाय है साधुसंतों की सेवा करना। इस उपाय में साधन-सामग्री की आवश्यकता बिलकुल नहीं पड़ती। केवल एक निष्ठा से सेवा करना ही पर्याप्त होता है। सतसमागम की महिमा तो ऐसी अगाध है कि तन्मयता से सेवा करने वाली पुत्रेच्छुकाओं को कभी-कभी विवाह से पहले या पतिनिधन के बाद भी पुत्रप्राप्ति होती देखी जाती है। इस विषय का विस्तृत विवेचन हम पहले एक बार कर चुके हैं।

प्राचीन युग के लोगों को जिस प्रकार सुखप्राप्ति के विभिन्न सुगम मार्ग अवगत थे उसी प्रकार शत्रु का हानि पहुंचाने के साधनों में भी उनकी गहरी पैठ थी। अन्य शास्त्रों की तरह हमने शकुनशास्त्र में भी बहुत प्रगति की थी। जम्हाई और छींक, हिचकी और डकार, आंख फड़कना और हथेली खुजाना आदि शारीरिक लक्षणों पर से और बिल्ली द्वारा रास्ता काटा जाना, उल्लू बोलना, छिपकली गिरना आदि पशु पक्षियों की गतिविधियों द्वारा शुभाशुभ भविष्य की अचूक जानकारी हो सकती थी। ये सारे शकुन स्वाभाविक ढंग से हों या उन्हें जबरदस्ती करवाया जाए इससे उनकी प्रभावोत्पादकता में कोई फर्क नहीं पड़ता।

प्राणियों की गतिविधि द्वारा मिलने वाली भावी अनिष्ट की सूचना में तो उस गतिविधि के कृत्रिम होने से रत्तीभर भी फर्क नहीं पड़ता। बिल्ली ने रास्ता अपने आप काटा हो या सामने चूहा रख कर जबरदस्ती कटवाया गया हो परिणाम दोनों का एक ही निकलेगा। इसी प्रकार छिपकली सिर पर गिरी हो तो मृत्यु अवश्यंभावी है, फिर चाहे वह पंजों की पकड़ ढीली हो जाने के कारण गिरी हो चाहे किसी ने उसे लकड़ी से खदेड़ कर गिराया हो। दूल्हा दुल्हन को ब्याहने के लिए घोड़ी पर बैठ कर बाजेगाजे के साथ बारात लेकर निकल रहा हो और सामने से कोई छींक दे, तो इससे बड़ा असगुन तो कोई हो ही नहीं सकता। वह छींक किसी को जुकाम होने की वजह से आयी हो, या सुंघनी सूंघने की वजह से, आदि बातें यहां अप्रस्तुत हैं। शकुनशास्त्र के इन गूढ़ तत्त्वों से एक बार परिचय प्राप्त कर लिया जाए तो आत्मरक्षा का कवच और शत्रु पर हमला करने का अस्त्र, दोनों एकसाथ हाथ में आ जाते हैं।

इन दिनों लोगों का सगुन असगुन पर से विश्वास उठता जा रहा है, यह बड़े खेद की बात है। उस फिर से जमाने के लिए यहां स्वानुभव के दो तीन प्रसंगों का वर्णन करना आवश्यक है। प्लेग के रोगी को अच्छा करने में बड़े बड़े डाक्टरों को भी सफलता क्यों नहीं मिलती इसका रहस्य बहुत दिनों तक मेरी समझ में नहीं आया था। परंतु एक बार गहन विचार और एकाग्रता से निरीक्षण करते ही वह स्पष्ट हो गई। इस महामारी के आरंभ में चूहों का उत्पात बहुत बढ़ जाता है यह तो सभी जानते हैं। चूहों को पकड़ने के लिए बिल्लियां इधर-उधर मंडराती रहें यह भी उतना ही स्वाभाविक है। प्लेग का आरंभ इसी वातावरण में होता है। शीघ्र ही रोगियों की चिकित्सा के लिए डाक्टरों की दौड़धूप शुरू हो जाती है। इस गड़बड़ी में चूहों का पीछा करने वाली बिल्लियां डाक्टरों का रास्ता काटती रहें यह अत्यंत स्वाभाविक बात है। अब आप ही बताइए इस तरह लगातार अपशकुन होता रहने पर डाक्टरों को सफलता कैसे प्राप्त हो सकती है। हमारा विश्वास है कि प्लेग के दिनों में चूहों का संहार करने के बजाय बिल्लियों का नष्ट करने की योजना बनायी जाए तो रोगियों को बचाने में डाक्टरों को बहुत अधिक सफलता मिलने लगेगी।

इसी प्रकार एक बार मुझ जो छिपकली गिरने का प्रत्यक्ष अनुभव हुआ था, उसका भी यहां उल्लेख कर देना आवश्यक मानता हूं। एक बार मेरे कमरे की

छत की कुछ महतीरें ढीली हो गई थी जिन्हें बदलने के लिए राज मजदूर आए हुए थे। बल्लियों में छिपकलियों ने घर कर रखे थे। एक दिन दोपहर को एक मजदूर के सिर पर ऊपर से एक बल्ली आन गिरी जिस पर एक छिपकली चिपकी रही थी। मजदूर वहीं ठंडा हो गया। किसी भी शकुन की पड़ताल इससे अधिक अकाट्य ढंग से होना संभव नहीं। बल्ली सिर पर गिरने से कोई जीवित बच भी जाए, छिपकली गिरने पर प्राण बचने की कोई संभावना नहीं रहती। इस घटना के बाद छिपकली से तो मुझे मगरमच्छ से भी ज्यादा डर लगने लगा है और मैं उससे यथासंभव बच कर ही रहता हूं।

छींक की परिणामकारकता का तो मुझे कई बार इतना खरा-खरा और प्रत्यक्ष अनुभव हो चुका है कि उसके संस्कार मेरे मन पर से कभी नहीं मिट सकते। एक बार हमारी मित्रमंडली के शौकिया नाटक विभाग ने हरिश्चंद्र नाटक खेलने का निश्चय किया। सर्वानुमत से यह तय हुआ कि नवीनता की खातिर नाटक को करुण के बजाय हास्यरस का कर दिया जाए। इस सर्वथा अभिनव प्रयोग के लिए सूत्रधार के रूप में मेरी नियुक्ति हुई। उस दिन मुझे जोरों की सर्दी हो जाने के कारण मैंने सुबह से ही सुंघनी का सेवन आरंभ कर दिया था। नाक में सुंघनी की कई चुटकियां चढ़ा देने पर भी जुकाम नहीं खुला और छींक तो लाख जतन करने पर भी नहीं आई। नाटक आरंभ होने के समय तक तो नाक की हालत बारूद से लबालब भरी हुई बंदूक की तरह हो गई जिसका स्फोट चाहे जब हो सकता था। सुबह से ठूस ठूसकर भरी हुई और अब तक चुपचाप दबी रहने वाली सुंघनी ने ऐन वक्त पर बलवा करने की ठानी। मैंने छींक दबाने के सारे प्रयत्न कर देखे, पर सब व्यर्थ। जिस प्रकार हंसी को दबाने की चाहे जितनी कोशिश की जाए वह फूट फूटकर बाहर निकलती ही रहती है, उसी प्रकार छींक को दबाने का मैं ज्यों ज्यों प्रयत्न करता गया, वह नाक के बाहर निकल पड़ने के लिए उतना ही अधिक विप्लव मचाने लगी। आखिर नाटक का परदा बंदूक के फायर के बजाए मेरी पहली छींक के स्फोट द्वारा खुला। दर्शकों को तो क्या, खुद परदा उठाने वाले तक को आखिर तक मालूम नहीं पड़ा कि यह गगनभेदी निनाद फौलाद की नहीं बल्कि हाड़ चाम की बनी हुई दोनाली से बाहर गिरा था। जिन लोगों ने मुझे छींकते हुए देख लिया था उनकी यह धारणा हुई कि इस अत्याधुनिक युग में जिस प्रकार हरिश्चंद्र नाटक के मुख्य रस को करुण के बजाय हास्य में

परिवर्तित किया जा सकता है उसी प्रकार नाटक का आरंभ बंदूक की सलामी के बजाय सूत्रधार की छींक से करने की कोई नई परिपाटी चली होगी। उन्होंने तालियां बजा कर इस अभिनव परंपरा का स्वागत किया। परंतु मेरी छींकों के नक्कारखाने में तालियों की तूती भला कहां तक सुनाई देती। छींकें अनवरत क्रम से जारी रहीं। क्रमश दर्शकों के चेहरे पर आनंद और कुतूहल के बजाय तिरस्कार के भाव झलकने लगे जो शीघ्र ही घोर अरुचि और भय में परिणत हो गए। छींकों का सिलसिला फिर भी नहीं टूटा। ऐसा मालूम देने लगा जैसे छींकों के स्फोट असंख्य लाठियों का मूर्त रूप धारण करके दर्शकों के कान के परदों की धज्जियां उड़ा रहे हैं। बस अब क्या था। दर्शकों ने उठकर एकमत से बाहर निकलने के दरवाजे की तरफ पलायन किया और प्रेक्षागार क्षण भर में खाली हो गया। इस प्रकार नाटक के मंगलाचरण को भरतवाक्य का रूप देने वाली प्रेरक शक्ति मेरी अपशकुनी छींक ही थी जिसमें कोई संदेह नहीं रहता। छींक सुंघनी रूपी कृत्रिम उपाय से आई थी फिर भी उसके अमंगलकारी गुणधर्म में कोई अंतर नहीं पड़ा, यह बात भी इस घटना द्वारा निःसंशय रूप से स्थापित होती है।

शकुनशास्त्र के बड़े से बड़े समर्थक को भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि अपशकुनों द्वारा शत्रु को संकटग्रस्त करने की परोक्ष योजना उस प्रत्यक्ष हानि पहुंचाने की अपेक्षा कम प्रभावशाली रहती है। इसके अलावा बिल्ली हो या छिपकली, हैं तो दोनों बुद्धिहीन प्राणी। अपनी किस महत्त्वपूर्ण अभियान पर नियुक्ति हुई है इसका उन्हें अक्सर एहसास नहीं होता जिसके परिणामस्वरूप उनके द्वारा कभी कभी योजक की ही हानि होने की संभावना रहती है। बिल्ली को हमारे शत्रुओं का रास्ता काटने को प्रवृत्त करने के लिए अकसर उकसाना पड़ता है। इससे चकराकर कभी-कभी वह शत्रु के बजाय हमारा ही रास्ता काट देती है और हमारी सारी योजना धूल में मिल जाती है। छिपकली को लेकर तो एक बार मुझे ऐसा भयानक अनुभव हुआ था कि अब उसकी सहायता लेने से पहले मैं दस बार विचार करता हूं। एक बार बडूनाना और मैं भोजनोत्तर गपशप करते हुए बैठे थे। पास ही हमारे एक सुधारक संप्रदाय के संबंधी मुंह बाए सो रहे थे। कुछ देर पहले ही वे पल्लिकापतन के शास्त्रोक्त परिणामों को महज पोंगापंथी अंधविश्वास बता कर हमसे बहस कर चुके थे। हमने सोचा कि उन्हें प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा ऐसा सबक सिखाया जाए कि जीवन भर न भूलें।

छत की कुछ शहतीरें ढीली हो गई थी जिन्हें बदलने के लिए राज मजदूर आए हुए थे। वल्लियों में छिपकलियों ने घर कर रखे थे। एक दिन दोपहर को एक मजदूर के सिर पर ऊपर से एक वल्ली आन गिरी जिस पर एक छिपकली निचिया रही थी। मजदूर वहीं ठंडा हो गया। किसी भी शकुन की पड़ताल इससे अधिक अकाट्य ढंग से होना संभव नहीं। बल्ली सिर पर गिरने से कोई जीवित बच भी जाए, छिपकली गिरने पर प्राण बचने की कोई संभावना नहीं रहती। इस घटना के बाद छिपकली से तो मुझे मगरमच्छ से भी ज्यादा डर लगने लगा है और मैं उससे यथासंभव बच कर ही रहता हूं।

छींक की परिणामकारकता का तो मुझे कई बार इतना खरा खरा और प्रत्यक्ष अनुभव हो चुका है कि उसके संस्कार मेरे मन पर से कभी नहीं मिट सकते। एक बार हमारी मित्रमंडली के शौकिया नाटक विभाग ने हरिश्चंद्र नाटक खेलने का निश्चय किया। सर्वानुमत से यह तय हुआ कि नवीनता की खातिर नाटक को करुण के बजाय हास्यरस का कर दिया जाए। इस सर्वथा अभिनव प्रय[illegible] के लिए सूत्रधार के रूप में मेरी नियुक्ति हुई। उस दिन मुझे जोरों की सर्दी [illegible] जाने के कारण मैंने सुबह से ही सुंघनी का सेवन आरंभ कर दिया था। ना[illegible] सुंघनी की कई चुटकियां चढ़ा देने पर भी जुकाम नहीं खुला और छींक तो जतन करने पर भी नहीं आई। नाटक आरंभ होने के समय तक तो [illegible] हालत बारूद से लबालब भरी हुई बंदूक की तरह हो गई जिसका [illegible] जब हो सकता था। सुबह से ठूस-ठूसकर भरी हुई और अब तक चुपचाप [illegible] वाली सुंघनी ने एन वक्त पर बलवा करने की ठानी। मैंने छींक दबा[illegible] प्रयत्न कर देखे, पर सब व्यर्थ। जिस प्रकार हंसी को दबाने की [illegible] कोशिश की जाए वह फूट फूटकर बाहर निकलती ही रहती है, उ[illegible] को दबाने का मैं ज्यों ज्यों प्रयत्न करता गया, वह नाक के बाहर [illegible] लिए उतना ही अधिक विप्लव मचाने लगी। आखिर नाटक [illegible] फायर के बजाए मेरी पहली छींक के स्फोट द्वारा खुला। दशक[illegible] परदा उठाने वाले तक को आखिर तक मालूम नहीं पड़ा कि [illegible] फौलाद की नहीं बल्कि हाड़ चाम की बनी हुई दोनाली से बा[illegible] लोगों ने मुझे छींकते हुए देख लिया था उनकी यह धारणा हुई [illegible] युग में जिस प्रकार हरिश्चंद्र नाटक में मुख्य रस को [illegible]

की अपेक्षा कहीं अधिक थी, बल्कि आवश्यकता पड़ने पर व घातक सामर्थ्य का प्रमाण भी दे सकती थी। उपरोक्त मारण प्रयोगों को उस जमाने की दंडसंहिताओं के अनुसार भयानक जुर्म माना जाता था और अपराध की जघन्यता के अनुसार उन्हें दंड भी मिलता था। आज के नास्तिक युग में जब लोगों का मंत्र तंत्र पर विश्वास ही नहीं रहा, तो उनका जाब्ता फौजदारी में समावेश होने का सवाल ही कहां उठता है।

प्राचीन युग में ग्रहण के दिन गंगा किनारे मंत्र जाप करने वालों की बड़ी भीड़ लगा करती थी। श्रद्धालु लोग बेचारे सूर्य चंद्र पर आये हुए संकट का निवारण करने के लिए गायत्री मंत्र जपते थे और भिखमंगे लोगों को दान करने का आवाहन करके मनों नाज इकट्ठा कर लेते थे। आखिर इन दोनों वर्गों के संयुक्त प्रयत्नों से सूर्य चंद्र का ग्रहण से छुटकारा होता था। इनके अलावा एक तीसरा वर्ग भी ग्रहण के दिन बहुत व्यस्त रहता था। बिच्छू, सांप, जूड़ी, मूठ, वशीकरण या उच्चाटन से संबंधित टोने टोटकों का जनकल्याणार्थ प्रयोग करने वाले मांत्रिक भी ग्रहों पर आए हुए संकट की बहती गंगा में हाथ धो लेते थे।

आज के युग में उपरोक्त विभिन्न उपायों का किसी महत्कार्य में सामूहिक प्रयोग किया जा सके तो समाज पर बेहद उपकार हो सकता है। वर्तमान महायुद्ध का ही उदाहरण ले लीजिए। चार पांच साल से पृथ्वी के अधिकांश युयुत्सु राष्ट्र अपनी सेनाओं को भूखंड में घुमा रहे हैं। मछलियों की तरह उनके जहाज समुद्रों में संचार कर रहे हैं और टिड्डियों के दल की तरह वायुयान आकाश में मंडरा रहे हैं। सैकड़ों विमान चकनाचूर हो गए, हजारों जहाजों को जलसमाधि मिली, लाखों सैनिक मारे गए और अनगिनत परिवार बेसहारा हो गए तब कहीं जाकर मित्रराष्ट्रों को विजयश्री प्राप्त हुई। हमारे पुराणों में वर्णित अग्नि, वायु, पर्जन्य, निद्रा आदि अस्त्रों की उन्हें जानकारी होती तो शत्रु का नामोनिशान मिटाने में पांच साल तो क्या पांच मिनट भी न लगे होते। कोई कह सकता है कि द्वापरयुग के ये अस्त्र कलियुग में कैसे प्रभावी हो सकते थे? ठीक है। परंतु वे संभव न होने तो भी घबराने की कोई बात नहीं थी। उनके तो जितनी अचूक कार्यक्षमता वाले मारण, उच्चाटन आदि अन्य मंत्रसिद्ध उपाय भी तो उपलब्ध थे। फलित ज्योतिष और शकुन जैसे साधन भी कम कारगर न रहे होते। हम तो कहते हैं कि अब भी कुछ नहीं बिगड़ा। भविष्य में कभी आवश्यकता पड़ने पर इन साधनों

दूसरी ओर शास्त्रोक्त सिद्धांतों की पड़ताल कर देखने की जिज्ञासा मुझे शुरू से ही रही है। अत हमारे इस प्रयोग से उसको अलग हिसाब आ के साथ-साथ हमारा भी कुछ फायदा होने की संभावना थी। कुछ देर प्रतीक्षा करने के बाद एक छिपकली ठीक उनके सिर के ऊपर वाली शहतीर पर रेंगती हुई दिखाई दी। मैंने उस दुष्टी से उसका कर उनके सिर पर गिराना चाहा। पर इससे घबरा कर वह नीचे गिरने के बजाय इधर-उधर भागने लगी और फिर ठीक मेरे सिर पर आकर गिरी। सिर पर गाज गिरी होती तो भी मुझे इतना आघात न लगा होता। डर के मारे मैंने आखें बंद कर लीं। कुछ देर बाद, मैं जीवित हूं या मर चुका इसकी टोह लेने के लिए आखें अधखुली करके देखा। लक्षण तो सब जीवित होने के दिखाई दिए। वल्लभाचार्य सामने बैठे हुए एक बिल्ली को गोद में लिए उसकी पीठ सहला रहे थे। मुझे आखें खोलता देख कर कहने लगे, 'भाई सुदामा आज तो इस बिल्ली ने ही तुम्हारे प्राण बचाए। तुम्हारे सिर पर छिपकली गिरने ही वाली थी कि मुझे न मालूम कैसे सुबुद्धि सूझी और मैंने इस बिल्ली को तुम दोनों के बीच में फेंका। बिल्ली द्वारा रास्ता काटा जाने के कारण ही तुम्हारा शरीरांत करने का दुष्ट छिपकली का हेतु सफल नहीं हुआ।' यह जो कुछ भी हुआ हो, मेरे ऊपर आया हुआ प्राणसंकट अलक्ष्य रीति से टल गया था और मुझे छिपकली और बिल्ली, दोनों की अपशकुनकारी शक्तियों का अकाट्य प्रमाण मिल चुका था।

शत्रु को हानि पहुंचाने के ये सारे साधन प्राचीन काल में राजमान्य हुआ करते थे। मारण का प्रयोग करके दुश्मन के पेट में शूल उत्पन्न करना, उसकी देह में दाह फैलाना, उसके भोजन में जहर मिलाना आदि लीलाएं उस काल में जायज और न्यायसंगत मानी जाती थीं। चावल या उड़द की सहायता से मूठ मार कर शत्रु के प्राण लेने की कला कुछ अधिक जटिल थी। यह साधारण मांत्रिक का काम नहीं था। आधे रास्ते तक पहुंचने के बाद मूठ बीच में से ही लौटा दी जाए तो वह चलाने वाले के ही प्राण ले लेती है। अत उसके प्रयोग के लिए उच्चकोटि की तांत्रिक योग्यता की आवश्यकता पड़ती थी। शास्त्रोक्त पद्धति से चलाई जाने पर वह शत्रु के शरीर में असंख्य सुइयां चुभने की वेदना उत्पन्न करके और खून की उलटियां करा के अगाध में उसके प्राण ले सकती थी। जो चावल तिल या उड़द जैसी सामान्य चीजों में उस जमाने में न केवल पोषक शक्ति ही आज

की अपेक्षा कहीं अधिक थी, बल्कि आवश्यकता पड़ने पर वे घातक सामर्थ्य का प्रमाण भी दे सकती थी। उपरोक्त मारण प्रयोगों को उस जमाने की दंडसंहिताओं के अनुसार भयानक जुर्म माना जाता था और अपराध की जघन्यता के अनुसार उन्हें दंड भी मिलता था। आज के नास्तिक युग में जब लोगों का मंत्र तंत्र पर विश्वास ही नहीं रहा, तो उनका जाब्ता फौजदारी में समावेश होने का सवाल ही कहां उठता है।

प्राचीन युग में ग्रहण के दिन गंगा किनारे मंत्र जाप करने वालों की बड़ी भीड़ लगा करती थी। श्रद्धालु लोग बेचारे सूर्य चंद्र पर आये हुए संकट का निवारण करने के लिए गायत्री मंत्र जपते थे और भिखमंगे लोगों को दान करने का आवाहन करके मनो नाज इकट्ठा कर लेते थे। आखिर इन दोनों वर्गों के संयुक्त प्रयत्नों से सूर्य चंद्र का ग्रहण से छुटकारा होता था। इनके अलावा एक तीसरा वर्ग भी ग्रहण के दिन बहुत व्यस्त रहता था। बिच्छू, सांप, जूड़ी, मूठ, वशीकरण या उच्चाटन से संबंधित टोने टोटकों का जनकल्याणार्थ प्रयोग करने वाले मांत्रिक भी ग्रहों पर आए हुए संकट की बहती गंगा में हाथ धो लेते थे।

आज के युग में उपरोक्त विभिन्न उपायों का किसी महत्त्वाय में सामूहिक प्रयोग किया जा सके तो समाज पर बेहद उपकार हो सकता है। वर्तमान महायुद्ध का ही उदाहरण ले लीजिए। चार-पांच साल से पृथ्वी के अधिकांश युयुत्सु राष्ट्र अपनी सेनाओं को मौखड में घुमा रहे हैं। मछलियों की तरह उनके जहाज समुद्र में संचार कर रहे हैं और टिड्डियों के दल की तरह वायुयान आकाश में मंडरा रहे हैं। सैकड़ों विमान चकनाचूर हो गए, हजारों जहाजों को जलसमाधि मिली, लाखों सैनिक मारे गए और अनगिनत परिवार बेसहारा हो गए तब कहीं जाकर मित्रराष्ट्रों को विजयश्री प्राप्त हुई। हमारे पुराणों में वर्णित अग्नि, वायु, पर्जन्य, निद्रा आदि अस्त्रों की उन्हें जानकारी होती तो शत्रु का नामोनिशान मिटाने में पांच साल तो क्या पांच मिनट भी न लगे होते। कोई कह सकता है कि द्वापर युग के ये अस्त्र कलियुग में कैसे प्रभावी हो सकते थे? ठीक है। परंतु वे सफल न होते तो भी घबराने की कोई बात नहीं थी। उनके ही जितने अचूक कार्यक्षमता वाले मारण, उच्चाटन आदि अन्य मंत्रसिद्ध उपाय भी तो उपलब्ध थे। फलित ज्योतिष और शकुन जैसे साधन भी कम कारगर न रहे होते। हम तो कहते हैं कि अब भी कुछ नहीं बिगड़ा। भविष्य में कभी आवश्यकता पड़ने पर इन साधनों

का प्रयोग कब, कहा और कसे किया जाए इसका सक्षिप्त विवेचन इसीलिए आवश्यक है ताकि बाद मे हाथ मलने की नौबत न आए।

मूठ का प्रयोग राजा पर नही हो सकता ऐसा नियम होने के कारण इस काम को शकुन अपशकुन आदि क्षुद्र उपायो से ही सिद्ध करना होगा । इसके लिए यह अत्यत आवश्यक है कि युद्ध के सरजाम मे रसद, रिसाला, तोपखाना, पदल, घुडसवार आदि विभागो के साथ-साथ एक अपशकुन विभाग का भी निर्माण होना चाहिए। इसे विधवा विभाग, बिल्ली छिपकली विभाग, छीक वाम नेत्र स्फुरण विभाग आदि उपविभागो मे बाटा जा सकता है। विधवा विभाग के अध्यक्ष के रूप मे किसी पढे पुरोहित को और प्राणी विभाग के सचालक पद पर सरकस के अवकाशप्राप्त लोगो की नियुक्ति हो सकती है । सनिको की जिस प्रकार कवायद होती है उसी प्रकार विधवाओ और बिल्ली छिपकलियो की भी नियमित परेड होनी चाहिए। फलित ज्योतिष विभाग के अतगत रमल, सामुद्रिक, हस्तरेखा आदि उपविभागो का समावेश किया जा सकता है और उनके सचालन के लिए अनुभवी भिक्षुको की नियुक्ति की जा सकती है।

आप पूछेंगे कि ऐसी सर्वांगसुदर योजना को मैंने युद्ध से पहले प्रकाशित क्यो नही किया। इसका मेरे पास सबल कारण है। वतमान महायुद्ध मे मित्रराष्ट्रो की सरकारो को इस योजना का लाभ मिले इस सदहेतु से प्रेरित होकर मैंने उसे तरतीबवार लिखा और डाक मे भेजने का निश्चय किया। लेकिन चिट्ठी डालने के लिए डाकखाने जा रहा था कि बिल्ली ने रास्ता काट दिया। अशुभ परिणाम से डर कर मैंने चिट्ठी भेजने का विचार छोड दिया और वह जेब मे ही रह गयी। परिणाम यह निकला कि महायुद्ध आवश्यकता से अधिक अवधि तक चलता रहा और मुझे यह सब हाथ पर हाथ धरे देखत रहना पडा। आखिर विधि के विधान को कौन टाल सकता है। मेरे जसे साधारण मनुष्य के प्रयत्नो से लाखो लोगो के भाग्य को कैसे बदला जा सकता था ?

31 हमारे शहर मे पानी का अकाल

अत्यत उपयोगी पदार्थ भी पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध हो, तो उनका महत्त्व कम हो जाता है। सष्टि म चेतना उत्पन्न करन वाली सूरज की किरणें या उन्हें हम तक पहुचाने वाली हवा भी हमे बेशकीमती मालम नही देती। हवा और पानी का बेहिसाब खच करने के आदी होने के कारण हम यदा कदा आबहवा की चर्चा अवश्य कर लेते हैं, पर वह केवल औपचारिक ही होती है। मिट्टी का तो कोई मोल ही नही होता। यहा तक कि मुहावरो मे निर्मान्य वस्तु की तुलना मिट्टी क साथ ही की जाती है। परतु इन अत्यावश्यक पर विराट महाभूता म से किसी की भी कमी हो जाए तो हमारी पूरी चेतना उसके अभाव की ओर सतक हो उठती है।

भारत मे सूयकिरणा को तुच्छ मानने वाला यात्री इग्लैड पहुचकर उनके कृपा-कटाक्ष की बाट जोहने लगता है। भूतल पर मुफ्त मिलने वाली हवा का यथेच्छ सेवन करके भी उसकी अवहेलना करने वाले कृतघ्न मनुष्य की पवत के शिखर पर पहुच कर उसकी विरलता क कारण सास उखडने लगती है। पानी की इफ रात वाले प्रदेशो म केवल आखो को सुख पहुचाने के लिए फव्वारे चलाने वाले विलासी को सहारा के रेगिस्तान में मृगमरीचिका के पीछे भटक कर पानी के एक बूद के अभाव मे प्राणत्याग करन की नौबत आ सकती है। गावा मे मिट्टी को शब्दश मिट्टीमोल समझने वाले खुली जगह का मनमाना उपयोग करने वाले ग्रामीण का जब बडे शहरो म मुट्ठी भर मिट्टी के दाम चुकान पडते हैं या साढे-तीन हाथ की देह को टिकाने जितनी जगह प्राप्त करने के लिए लोहे के चने चबाने पडते हैं तब कही धरतीमाता का खरा मोल उसकी समझ म आता है।

हमारे शहर म पहले तो घर घर म कुए थे। परतु कुछ वष पहले नगरपालिका की स्थापना हो जाने के कारण अब पास के तालाब मे सचित पानी की नला की

सहायता से घर घर पहुंचाने की व्यवस्था हो गई है और कुओं के पानी से सार्वजनीन स्वास्थ्य की हानि पहुंचती है यह कारण बताकर उन्हें पाट दिया गया है। दो चार बड़े कुए उनके मालिकों के दुराग्रह के कारण खुले रह गए थे। परंतु उन लोगों को भी नलों द्वारा प्रचुर पानी उपलब्ध होने के कारण कुओं का विशेष उपयोग नहीं हुआ। शीघ्र ही उनके पानी पर काई जमने लगी और उस घिनौना हरा रंग प्राप्त होकर उसकी सड़ांध से लोगों की नाक फटने लगी।

इधर चार पांच वर्ष से हमारे इलाके में वर्षा का परिमाण उत्तरोत्तर कम होता गया है। पिछले दो बरस से तो पर्जन्य देवता ने हमारी ओर से मानो मुंह ही फेर लिया है। पूरा चौमासा एकाध दिन की झड़ी और दो चार बार की बूंदा-बांदी में ही बीतने लगा है। यह अपर्याप्त बरखा योग्य समय पर हो जाने के कारण फसल पर तो अभी कोई अनिष्ट प्रभाव नहीं पड़ा पर शहरों में पानी की कमी महसूस होने लगी है। हमारे मुंह का कौर तो अभी तक नहीं छिना पर पानी के घूंट को तरसने की नौबत बेशक आ गई है। इस लगातार सूखे का पिछले साल तालाब पर भी प्रभाव पड़ा और पानी की सतह तपेदिक के मरीज की आयु की तरह उत्तरोत्तर गहरी धसती गई। शीघ्र ही यह नौबत आयी कि यंत्रों की सहायता के बिना पानी नलों में चढ़ना बंद हो गया। तुरंत पंप लगवाये गए पर कुछ दिनों बाद उनकी कार्य क्षमता भी समाप्त हो गई। बात इस हद तक बढ़ जाने के बाद लोगों की नजर पानी के अन्य स्रोतों की तरफ जाने लगी। सबसे पहले कुओं का खयाल आया। शहर में काई वाले और बंधे हुए पानी के कारण त्याज्य समझे जाने वाले जो दस पांच कुए थे उन पर लोग टूट पड़े।

इन कुओं में अभी काफी पानी शेष था यह देखकर सबको बड़ा आनंद हुआ। पानी का उपसिंचन होकर काई और बदबू दूर हो जाए उससे पहले ही कुओं पर लोगों की भीड़ जमने लगी। पनिहारों के कलशे मटके और पानी खींचने के लिए लपेटी हुई रस्सियों से घिरे कुओं की जगत मुंडमाला और सर्पाभूषणों से सज्जित भगवान शंकर के गले की तरह शोभायमान होने लगी। भीड़ में होने वाला लड़ाई झगड़ा और कोलाहल भगवान भूतनाथ के गणों की बारात का दृश्य उपस्थित करने लगा।

परंतु शहर भर की भीड़ उमड़ने लगे, तो पांच सात कुओं में भला कब तक निर्वाह हो सकता है। धीरे धीरे कुओं का पानी समाप्त होने लगा। अब पाटे हुए

अन्य कुए खोलने की नौबत आयी। उनसे कुछ दिनो तक पानी की माग तिहाई-चौथाई पूरी होती रही। पर जोरदार वर्षा के अभाव म यह व्यवस्था भी अधिक दिना तक चलने वाली नही थी। जोरो की वरखा होकर तालाब लबालब भर जाए तो ही इन ओछी पूजी वाले कृपण जलाशयो की खुशामद से लोगो का छुटकारा हो सकता था।

आखिर फिर वर्षा ऋतु आयी। आकाश म बादल दिखाई देने लगे। परन्तु अब की बार न तो उन्होने गजना ही की और न घनश्याम रग ही धारण किया। हमारी भयचकित मुद्राओ को देखकर उन्होने शायद सोचा होगा कि इन घबराये हुए लोगो को नाहक गरज गरज कर और क्यो डराया जाए। लोगो के झुड जगह-जगह खडे बादलो की ओर ललचायी हुई नजर से देखते रहते और साहित्यकार 'धूम ज्योति सलिल मरुताम स निपात' आदि कालीदास प्रणीत प्रशस्तियो से उनका स्वागत करते। पर उन निष्ठुरो न किसी की ओर मुडकर भी न देखा जैसे हमारे साथ उनका कोई नाता रिश्ता ही न हो। जब प्रेम और खुशामद का माग कारगर नही हुआ तो हमने उन्ह चिढाने की सोची और 'इन बादलो मे पानी ही नही।' 'यह बेचारे भला क्या बरसेंगे।'—आदि तिरस्कार व्यजक वचन उन्हे सुनाये जाने लगे। सोचा था कि इससे उनके आत्मसम्मान को ठेस लगगी और व शत धाराओ से बरसकर हमे झूठा प्रमाणित कर देंगे। पर वे भी कच्ची मिट्टी के या कच्चे धुए के बने हुए नही थे। हमारी व्यग्योक्तियो की ओर उन्होने कोई ध्यान ही नही दिया और हमे कोरा छोडकर वे हमारे सिर पर से गुजर गए।

आकाश माग स पानी प्राप्त होन की सभावना ज्यो ज्यो कम होती गयी त्यो त्यो भूमिगत पानी की ओर लोगो का मोर्चा मुडता रहा। जिन कुओ का पानी गहरा उतर गया था उन्ह और भी गहराई तक खोदा गया। पर पानी के सोत दिखाई नहीं दिये। 'पानी कुए म ही नही होगा तो हौज मे कहा से आयेगा' वाली कहावत म एक चरण और जोडा जा सकता है कि सोता म ही नही होगा तो कुए म कहा से आएगा। खुदाई करत करते चट्टान आती तो उसे सुरग लगाकर उडा दिया जाता। पर इससे चट्टान के टुकडे होने के बजाय लोगो की खोपडिया फूटने लगी। इतना सब होकर कभी चट्टान फूटती भी तो वह नये सोते बहाने के बजाय बहते हुए सोतो को भी रूध देती। यह इस ससार का नियम ही है कि

भाग्यहीन आदमी अनुकूल साधना का आश्रय ले तो भी परिणाम प्रतिकूल ही निकलता है।

हमारे बहूनाना की अन्वेषक बुद्धि का शहर भर में बोलबाला होने के कारण अंत में कृत्रिम उपायों से पानी उत्पन्न करने की जिम्मेदारी उन्हीं के कंधों पर पड़ी। उन्होंने अपने हमेशा के उत्साह के अनुरूप इस काम में भी तन-मन धन लुटा दिया। प्राणवायु और जलवायु का योग्य अनुपात में मिश्रण करने से पानी तैयार होता है यह बात तो स्कूल में पढ़ने वाला हर बच्चा जानता है। उन्होंने इसी रासायनिक प्रक्रिया का सहारा लिया। परंतु इतनी सब उछलकूद के बाद तैयार होने वाले पानी की तादाद इतनी कम होती थी कि चिड़िया की प्यास भी मुश्किल से बुझे। इसके अलावा यह कृत्रिम पानी इतना बेस्वाद होता था कि श्रावणी के दिन पंचगव्य के बजाय उसमें आचमन करने की छूट दी जाती तो भी कोई उसके लिए तैयार न होता। इसके उपरांत इन प्रयोगों के दरमियान काच के बर्तन इतनी अधिक संख्या में टूटने लगे और रासायनिक द्रव्यों पर इतना अधिक रुपया खर्च होने लगा कि हार कर यह विचार छोड़ देना पड़ा। सब की यही राय हुई कि इतना खर्च करने पर तो अन्य मार्गों से यथेष्ठ पानी प्राप्त किया जा सकता है।

नाना द्वारा आजमाई गयी दूसरी युक्ति थी तोप चलाकर बादलों को आकृष्ट करने की। इसके लिए उन्होंने पहले तो शहर के सब से अधिक कुशल लोहार से एक विशाल तोप ढलवाई और फिर शोरा, गंधक आदि द्रव्य एकत्रित करके बारूद और गोलों का कारखाना शुरू किया। इस सारी तैयारी के बाद बारूद समाप्त होने तक सैकड़ों बार तोप दागी गई। परन्तु तोप की गर्जना की प्रतिध्वनि करने के लिए इलाके भर के बादलों को सदलबल यहां एकत्रित होना चाहिए इस (नाना के मतानुसार) वैज्ञानिक नियम की बादलों को जानकारी न होने के कारण उनका छोटा सा टुकड़ा भी हमारे नगर की दशा में नहीं फटका। और जब बादल ही न घिरें, तो वर्षा भला हो ही कैसे सकती है।

इस प्रकार सारे भौतिक उपाय असफल हो जाने पर अब दैवी उपायों को आजमाने का निश्चय किया गया। लगातार अकाल पड़ने पर पानी बरसाने का रामबाण उपाय हमारे यहां यह माना जाता है कि शहर भर की देवी देवताओं की मूर्तियां एकत्र करके उन्हें कुएं के पानी में उलटे मुंह लटका दिया जाए। इससे

देवताओं की अकल ठिकाने आकर बरखा होन की पूरी सभावना रहती है। परतु इन दिनो कुओ का पानी इतना गहरा उतर गया था कि किसी भी तरह मूर्तिया बाधे हुए रहट की डूबने की सभावना नही थी। इस हालत मे देवी देवताओ को कुए मे उतारा भी जाता तो वे सूखे कपडा और कोरे अत करण से बाहर आ जाते। और यदि कोई रहट पानी की सतह तक पहुच भी जाता तो एक और खतरा था। सुरग के स्फोट हो-होकर कुओ मे चट्टानो के ढेर लग गये थे। उनसे टकरा कर रहट कही उलटा हो जाता तो समस्त देवजाति को सदा के लिए जलसमाधि मिल जाने की सभावना थी। देवताओ की अक्ल ठिकाने लाने के लिए उन्हे कुछ दिनो के लिए कुए मे उलटा लटका देना अलग बात थी। पर उन्हे हमेशा के लिए खो बठना तो बडे घाटे का सौदा था। मूर्तिया इतने कीमती वस्त्राभूषणो से सजी हुई थी कि उनके स्थाई वियोग का खतरा मोल लेन के लिए एक भी भक्त तैयार न होता।

पजन्यवृष्टि का यह रामबाण उपाय भी अनुपयोगी सिद्ध हो जाने पर कुछ अन्य उपाय किए गए। लक्ष्मीनारायण मदिर म सप्ताह भर तक अखड भजन-कीतन, शिवालय की पिंडी पर अविराम जलाभिषेक और देवी के मदिर म शत-चडी यज्ञ का आयोजन किया गया। भजन करने वाले भक्तो और यज्ञ करने वाले ब्राह्मणो के गले सूख कर पूजापाठ म विघ्न न पडे और अभिषेक की धारा अखड बहती रहे इसलिए तीनो मदिरो मे पानी का विपुल परिमाण म प्रबध किया गया। जो पानी खच हो रहा है उससे अनेक गुना इन अनुष्ठानो के पूरा हो जाने पर मिल जाएगा ऐसा सभी को विश्वास होने के कारण किसी ने इस फजूलखर्ची का विरोध नही किया। भजन मडली ने पहले ही दिन से झाझ-करतालो और मृदग-ढोलको की सहायता से कुछ ऐसा भीषण निनाद किया कि भगवान नारायण को क्षीरसागर मे भी सुनाई दिया होगा। जिस मदिर मे यह आयोजन किया गया था उसके इद गिद के मकानो मे रहने वाले आधे लोग तो पहले ही दिन घर छोडकर भाग गए। बचे हुए लोगो के कान बाहर से तो सलामत रहे पर भजन घोष से कानो के परदे फट जाने के कारण वे जन्मभर के लिए बहरे हो गये। एक आदमी जन्मजात बहरा था। उसके कानो के छिद्र खुलकर उसे साफ सुनाई देने लगा। कीतननाद से परदे फटकर कान कही फिर निकम्मे न हो जाए इस भय से उसने भी घर छोडकर पलायन किया। कई लोगो को उन्ही दिनो से सिरदद की

ऐसी व्याधि लगी जो आज तक कायम है। बचे हुए लोगों ने दूरअंदेशी से कानों में रूई के फाये ठूंस लिए थे इसलिए उनके कान सलामत बच गए। अनुष्ठान निर्विघ्न रूप से पूरा हो जाने पर इस मुहल्ले के लोगों को शहर के अन्य लोगों की अपेक्षा कहीं अधिक राहत महसूस हुई। शाम को यज्ञ और अभिषेक की भी समाप्ति हो गई और दूसरे दिन बड़ी धूमधाम से पारण समारंभ भी पूरा हो गया।

अनुष्ठान का पारण और यज्ञ की पूर्णाहुति होते न होते बूंदाबांदी शुरू हो गई जो कोई घंटे भर तक चलती रही। इससे वैसे तो सड़कें भी गीली नहीं हुईं पर लोगों ने इसे आगामी महावृष्टि की पूर्व सूचना मानकर उसका बड़े उत्साह से स्वागत किया। शीघ्र ही नागरिकों की एक सभा बुलाई गई जिसमें भजन कीर्तन और यज्ञ अभिषेक में भाग लेने वालों का आभार माना गया। उनमें से प्रत्येक को योग्यतानुसार शुक्रपाठशिरोमणि, अभिषेक धारासागर, भजन वाचस्पति, कीर्तन मार्तंड, मृदंग पंचानन, खरग्रीवाचार्य, अंगविक्षेप शिरोमणि आदि पदवियां देना भी तय हुआ। परंतु इन पदवियों के लिए अपनी अपनी योग्यता के आग्रह को लेकर उन लोगों में आपस में ऐसा फसाद खड़ा हुआ और तू-तू मैं-मैं की ऐसी झड़ी लगी कि पदवीदान समारंभ किसी और दिन के लिए स्थगित कर दिया गया। लेकिन दूसरे ही दिन से पानी का दुर्भिक्ष इतना भीषण हो गया कि सभा में अनुष्ठान मंडली को धन्यवाद देने के बजाए अभिषेक और यज्ञादि में बेहिसाब पानी खर्च करने के लिए उनकी भर्त्सना करने वाला प्रस्ताव पारित हुआ। लोकमत की हवा कितनी जल्दी रुख बदलती है इसका इससे अच्छा उदाहरण कहां मिलेगा।

कुओं का बचाखुचा पानी ज्यों ज्यों समाप्त होने लगा त्यों-त्यों पानी का खर्च और भी कम होता गया। गारा बनाने के लिए पानी न मिलने के कारण मकान बनाने का काम बिलकुल ठप हो गया। पानी के अभाव में पेड़ पौधे और बाग बगीचे सूख गए। छिड़काव करने के लिए और सड़क कूटने वाले भाप के इंजन को चलाने के लिए पानी न मिलने के कारण सड़कें खराब हो गईं। घरों में धोना बुहारना और बरतनों को मांजकर चमकाना आदि गृहकाम बंद हो गए। दैनिक स्नान साप्ताहिक कर्मों की श्रेणी में पहुंच गया और लोग केवल हजामत बनवाने के दिन ही स्नान करने लगे। कभी कभी तो नाई की कटोरी भर भी पानी न मिलने के कारण क्षौरकर्म साप्ताहिक से पाक्षिक और फिर धीरे धीरे मासिक कम हो गया। ब्राह्मण आदि जिन वर्गों को रोज स्नान करना पड़ता था, उनकी

स्थिति भी कुछ अधिक सतोषजनक नही रही। स्नान के लिए मिलने वाला दो लोटे पानी कुआ के तले का होने के कारण उस स्नान को शुद्धोदक स्नान के बजाय पकस्नान की सज्ञा देना ही अधिक उचित रहा। स्नान स शुचिर्भूत होने वाले ब्राह्मणो व और महीना तक स्नान सस्कार का योग न मिलने वाले अघारिया के चेहरे मोहरे म कोई विशेष अतर दिखाई नही देता था। स्थिति कुछ और बिगडने पर तीन-तीन, चार चार ब्राह्मण ऊपर नीचे सीढिया पर बठकर एक साथ स्नान करने लगे। ऊपर से नीचे बहता हुआ एक ही लोटा पानी चारा को स्नान करवा देता था। धीरे धीरे मुखमाजन और पादप्रक्षालन की भी छुट्टी हो गई। तपण मे कुछ छीटा स ही काम चलने लगा, शुद्धोदक स्नान अक्षतो द्वारा पूरा होने लगा और आचमन, पर्युक्षण, एव परिस्तरण आदि सकल्प पानी की सहायता के बिना, उच्चारण मात्र से सिद्ध होने लगे। और तो और ब्राह्मणा को दक्षिणा भी रुपए का पानी म भिगोये बिना ही दी जाने लगी। आखिर आखिर म तो पूजा के बतना का मजना भी बद हो गया। ऐसी भयानक तगी के समय हुक्के-गुडगुडी आदि पानी के बल चलने वाले विलासी उपकरणो का उपयोग बिलकुल बद हो गया हो यह बिना बताये समझ मे आने वाली बात है।

यह रोज के अनुभव की बात है कि जिस चीज की कमी होती है या जिसके मिलने मे कठिनाई होती है साधारण लोगो की नजरो मे उसका आकर्षण बहुत बढ जाता है। इस नियमानुसार पानी की ज्यो ज्यो कमी होती गई त्यो त्यो हुक्के और गुडगुडी के साथ-साथ बीडी, भाग गाजा, शराब आदि व्यसन भी कम होकर लोगो म पानी का शौक बढने लगा। किसी भी व्यसन की खासियत यह होती है कि उसे अकसर लोगो की नजरें बचा कर पूरा किया जाता है। शहर भर म पानी की ऐसी भयानक तगी होने पर भी पानी के जाम चढाने वाले लोगो को सकोच तो बहुत होता था पर क्या करें आदत स लाचारी थी। कोई उन्ह पानी पीते देख लेता तो वे सच कहने के बजाय झूठ बोल कर सफाई देते "कुछ नही या ही जरा दो घूट शराब पी रहा था।' मद्यपान की तरह जल सवन से भी लोगो पर नशा चढने लगा। पीने वालो की सुविधा के लिए जगह जगह पानी के अड्डे खुलने लगे और इन जलशालाओ म पियक्कडो की भीड जमने लगी। इनमे कुछ ईमानदार ठेकेदार तो विशुद्ध पानी बेचते थे जबकि कुछ बेईमान लोग उसमे आधे से ज्यादा दूध मिला देते थे। बात भी ठीक थी। दूध का भाव था दो

आन सर जबकि पानी आठ आन सर भी मिलना मुश्किल था।

नहान के लिए पानी मिलना बिलकुल ही बद हो जाने पर कुछ नागरिक स्नान के लिए इद गिर्द के गावो म जान लगे। शहर से कोस दो-कोस के अतर पर कई गाव बसे हुए थ जिनके कुआ म अब तक कमर भर पानी मौजूद था। नागरिक सुबह ही वहा पहुचकर घटो तक नहाने लग और जलक्रीडा करके पानी का पीने क लिए अयोग्य करने लग। शीघ्र ही शहर म पानी पीने के लिए भी मिलना मुश्किल हो गया और गावो क कुए भी सूखत चले गए। अब केवल भाजनोपरात तृषा का निवारण करन क लिए ही लाग उन कुआ का आश्रय लत थे। नहाना-धाना अपने-आप बद हो गया। परतु सुबह शाम दोनो समय प्यास बुझाने के लिए इतना लबा चक्कर काटन म लोगो के दो-दो तीन-तीन घटे खच होने लग जिसम उनके दैनिक व्यवहार म बडी हानि पहुचने लगी। इसके अलावा दो बार के आन-जान म जितना पानी पेट म पहुचता था उसस कही अधिक पसीने के रूप म बाहर निकल जाता था। अत अब गाडियो म जाने का निश्चय किया गया और यह काम कई दिना तक चलता रहा। आरभ म तो गावो क लोगो को इससे विशेष आश्चय नही हुआ। परतु जब लबे समय तक इसकी पुनरावृत्ति होती रही तो गाव वालो के मन म शका-कुशका उठने लगी। इतन लोग इतनी इतनी दूर स केवल प्यास बुझाने के लिए गाव म आते होग यह बात उनकी देहकान बुद्धि मे पटी नही। योगायोग की बात कि उन्ही दिना किसी गाव म डाका पड गया। अब गाव वालो के मन मे आगतुको के आने के प्रयोजन के सबध म कोई शका न रही। दूसरे दिन जब हम लोग वहा पहुचे तो पुलिस का दस्ता हमारे स्वागत के लिए तैयार था। उसे देखकर हमारी प्यास बिना पानी के ही बुझ गई और हमने गाडिया वापस मोड ली। परतु हमे वापस जाने की जितनी आतुरता थी उतनी पुलिस को हमे जान देने की नही थी। उन्होने सबको गिरफ्तार कर लिया और बयान वगैरह म पूरा दिन निकाल दिया। अत मे काफी जाच पडताल क बाद जब उन्ह विश्वास हो गया कि पिछली रात के डाके से हम लोगो का कोई सबध नही है, तब कही हमारा छुटकारा हुआ।

इसी प्रकार नागरिको की एक और मडली प्यास बुझाने के लिए किसी अन्य गाव म पहुची तब वहा पर जिले के बडे हाकिम दौरे पर आए हुए थे। साहब के पडाव के लिए तबू-डेरे ठोकना जरूरी था पर गाव के मुखिया के पास आदमियो

की कमी थी। इतने म ही पिपासु नागरिका की यह मडली वहा पहुची। मुखिया का मानो चारो पदाथ मिल गए। शहर के इन तमाम सफदपोशा को बेगार मे पकड लिया गया और मेमो के खूटे गाडने के काम म जोत दिया गया। चार घटो तक तबू-डेरे, खूटे और डोरिया म उलये रहने के बाद कही छुटकारा हुआ। इतना होकर भी उन्ह सूखे गलो से वापस लौटना पडा क्योकि कुआ मे पानी खीचने के लिए जो डोरिया वे साथ ले गए थे वे गडबडी म तबुओ के खूटे बाधने के काम मे आ गई थी। मुखिया स रस्सी मागी जा सकती थी, पर इसम खतरा था। किसे मालूम, किसी अन्य बडे अफसर के आगमन की सूचना आ जाए और उन्ह फिर से बेगार में जोत दिया जाए। ऐसा दूर का विचार करके और गाव के लोगो को फिर कभी अपनी उपस्थिति का लाभ न देने का पक्का निश्चय करके लोग सूखे-मुह घर लौट आए।

इसके बाद कुछ दिनो तक लोगा को भोजनोत्तर प्यास लगना ही बद हो गया। परतु पानी का अकाल ज्यो ज्यो बढता गया, उन्हें अपना अल्प सतुष्ट स्वभाव बनाये रखना भारी पडने लगा। शीघ्र ही पाच छह कोस दूर की एक नदी से बलगाडियो द्वारा पानी मगवाने की योजना बनी। बीस पचीस गाडियो की कतार सुबह जाकर शाम को लौट आती। पहले दिन पानी मगवाने के लिए जो कनस्तर भेजे गये थे वे पुराने और छेद वाले होने के कारण जसे गये थे वसे ही वापस लौट आये। किसी म एक बूद भी पानी नही। आते समय उन्होने सडक को छिडकाव द्वारा बेशक कुछ गीला कर दिया होगा, परतु इससे प्यासे लोगो का समाधान होना सभव नही था। दूसरे दिन नये, कोरे डिब्बे भेजे गए। परतु वे भी उसी तरह शुष्क और खाली वापस आये। पूछने पर मालूम हुआ कि लौटते समय गाडीवानो और बलो को भयानक प्यास लगने के कारण उन्होंने सारा पानी पी डाला था। तीसरे दिन से बैलगाडियो पर छप्पर बाध दिये गए ताकि धूप से बचाव होकर गाडीवानो को प्यास कम लगे। उस रोज डिब्बे आधे से भी अधिक भरे हुए आए। पर गाडिया खोलकर कनस्तर उतारे ही थे कि तमाम बलीवर्दों ने उन पर हमला बोल दिया और सारे पानी को हमारे देखते हुए उदरस्थ करके प्रमाणित कर दिया कि वे कोरे भारवाहक ही नहीं थे बल्कि अपने अधिकारो के प्रति नितात जागरूक थे। उन्ह रोकने का हम लोगो ने प्रयत्न न किया हो सो बात नही। पर उन्होंने सीग उठा कर आक्रमण का ऐसा पैंतरा दिखाया कि

किसी की आगे बढ़ने की हिम्मत नहीं हुई। फिर इस समानता के युग में पशु और मनुष्य के बीच भेदभाव भी कैसे किया जा सकता था। शीघ्र ही हमें अपनी स्वार्थपरायणता की लाज आने लगी और बैलों का भी पानी पर मनुष्य के जितना ही हक है ऐसा दार्शनिक विचार करके हमने मन को सांत्वना दी। हमने बैलों को केवल क्षमा ही नहीं कर दिया बल्कि स्वार्थत्याग और मानवता के एहसास का मौका देने के लिए हृदय की गहराई से उन्हें धन्यवाद भी दिया। परंतु इसके साथ ही एक दूसरा उदात्त विचार भी हमारे मन में आया। वह यह कि बैल यदि इसी प्रकार रोज रोज पानी का अतिसेवन करते रहे तो इससे उनके स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा और हो सकता है कि उन्हें जलोदर जैसा असाध्य रोग हो जाए। इस डर से दूसरे दिन से बैलों को छोड़ने से पहले ही कनस्तरों को उतार कर घरों में रख दिया जाने लगा और बैलों के मुंह को कस कर बांध दिया जाने लगा। गाड़ीवानों और बैलों को धूप में आने-जाने के कारण प्यास न लगे इस हेतु से गाड़ियों का समय भी बदल दिया गया। अब वे शाम को जाकर दूसरे दिन तड़के लौटने लगीं।

परंतु इसमें एक और मुसीबत दरपेश आयी और यह मार्ग तो पहले के अन्य मार्गों से भी अधिक त्याज्य सिद्ध हुआ। बैलों और गाड़ीवानों की इतनी दौड़धूप के बावजूद हमें पानी की एक बूंद भी मिलने की संभावना न रही। होता यह था कि गाड़ियां निकलने के कुछ देर बाद ही दिन भर के परिश्रम और ठंडी हवा के झोंकों के कारण गाड़ीवानों को नींद आने लगती और वे गाड़ियों को बैलों के भरोसे छोड़ कर खर्राटे भरने लगते। उधर मौका मिलते ही बैलों को पशुसुलभ स्वभाव के अनुसार घर भागने की पड़ती और आधे रास्ते से ही 'घूम जाओ' करके गाड़ियों का रुख घर की दिशा में मोड़ देते और भोर होने से पहले घर के सामने आकर खड़े हो जाते। हम बड़ी आशा से कनस्तरों को उतारने के लिए आते तो मालूम होता कि उनमें पानी की एक बूंद भी नहीं। गाड़ीवानों को जाग्रत करने के लिए उनकी आंखों पर छींटे मारने के लिए भी पानी घर में से लाना पड़ता। दो-चार बार ऐसा होने के बाद हम सुबह उठ कर अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों की नींद न आने की युक्ति अमल में लानी पड़ी। झोंका आते ही गरदन खिंच कर नींद खुल जाए इस हेतु से गाड़ीवानों की चुटिया को गाड़ी के छप्पर वाले डंडे से साथ बांध दिया जाने लगा। परंतु इसमें भी दिक्कत आयी। दो

गाडिया हमारे मुसलमान वधुओ की थी जिनके गाडीवान भी मुसलमान थ। उनके चुटिया ता थी नही और बाधने के लिए उनकी दाढियो का उपयोग उन्हें सिर नीचे और पाव ऊपर रख कर बिठाये बिना हो नही सकता था। नीद से उन्ह बचाये रखने का और कोई साधन नही था। हमारे दूरअदेश पूवजा ने बालो का गुच्छा ठोडी के नीचे रखने के बजाय खोपडी के ऊपर रखने की जो प्रथा चलायी उसी के बलबूते पर हमारे नौजवान विद्याभ्यास मे अ य जातिया के विद्यार्थियो से आगे निकल सके हैं। मौके-बेमौके हम इस बात को मुसलमान वधुओ के कान मे डालते रहते थे और इस्लाम की तुलना मे सनातन हिंदू धम की श्रेष्ठता स्थापित करते रहते थे। खैर, यह जो कुछ भी हो इस तरकीब के बाद नदी से पानी लाने का काम कइ दिनो तक निर्विघ्न चलता रहा। गर्मी बढने पर नदी का पानी भी कम होने लगा। शीघ्र ही उसके पाट ने रेगिस्तान का रूप धारण कर लिया और उसमे दोपहर को मृगमरीचिका दिखाई देने लगी। किंतु इससे पानी का एक लोटा भी प्राप्त होने की आशा नही थी।

अब पानी की किफायत करना और भी आवश्यक हो उठा। इसके लिए सबसे पहला उपाय हमने यह सोचा कि शरीर मे से पसीने के रूप मे सूखने वाले पानी को बचाया जाए। अब हम किसी भी प्रकार का व्यायाम नही करत। धूप की तेजी से गर्मी लग कर पसीना न आये इसलिए हमने घरा मे जगह जगह खस की टट्टिया लगवा ली हैं। यह माना कि उन पर लगातार पानी छिडकना पडता है। पर इससे क्या हुआ ? यह तो सिद्धात की बात है। कुछ भी हो, पानी भले ही खच हो, पर पसीना तो बचता है। भयभीत होने पर पसीना बहाने के बजाय आजकल हम रोगटे खडे करके ही काम चला लेते हैं और दुख का पहाड टूट पडने पर आसू बहाने के बजाय गला भर कर या लबी सासे खीच कर ही सतोप कर लेते हैं।

इस विलक्षण स्थिति का हमारी भाषा पर भी प्रभाव पडा है। पहले 'पानीदार आदमी' का अथ होता था आनबानवाला चरित्रसपन्न मनुष्य, पर अब इसका अथ हो गया है 'जिसके आगन मे कुआ हो ऐसा मनुष्य'। इसी तरह 'पानी की तरह पैसा खच करने वाले' आदमी को पहले फजूलखच और उडाऊ माना जाता था। जबकि अब उसका अथ हो गया है — 'कृपण'!

अब तो भाषा की तरह अ य रूढ कल्पनाओ मे भी बहुत फक पड गया है। पानी को सृष्टि का आदि कारण माननेवाली मतप्रणाली का तेजी से प्रसार होने लगा है।

वरुण देवता को वदकाल में जितना ही महत्त्व फिर प्राप्त हो गया है और गंगा-यमुना-गोदावरी आदि नदियों का पावित्र्य पहले से कहीं अधिक बढ़ गया है। पानी में डूब कर या जलोदर जैसी बीमारियों के कारण मृत्यु होने पर निःसंशय स्वर्ग की प्राप्ति होती है ऐसा एक महाविलक्षण मतवाद भी धार्मिक क्षेत्रों में फैलता हुआ दिखाई दे रहा है और जलदान का महत्त्व अन्नदान तो क्या स्वर्णदान से भी अधिक माना जाने लगा है।

आजकल तो हालत यह हो गई है कि कुओं में बाल्टी तो क्या छोटी मोटी लुटिया भी नहीं डूबती। डोरे को झटके दे-देकर घंटे आधे घंटे तक हिलाने के बाद बर्तन आधा-परधा भरता है। सकड़ों हाथ ऊपर खींचते-खींचते उसमें से आधा पानी छलक जाता है। बचे हुए चुल्लू दो चुल्लू कीचड़नुमा पानी से जबान तर करके लोग जैसे-तैसे जी रहे हैं। इस यमयातना से छुटकारा पाने के लिए सैकड़ों लोग शहर छोड कर जाने लगे हैं। हम लोग अभी मातृभूमि के प्रेम से बंधे हुए बैठे हैं। वर्षा को उत्तरोत्तर कम करके इस प्रदेश को उजाड़ कर देने का ईश्वरीय संकल्प है या यह किसी अभिशाप का परिणाम है, कुछ समझ में नहीं आता। कुछ भी हो, हम तो दृढ़ निश्चय कर चुके हैं कि प्राण भले ही चले जाएं, मातृभूमि को नहीं छोड़ेंगे। "स्वभूम्यां निधनं श्रेयः परभूमिः भयावहा।"

32 धर्म-परिवर्तन

प्राचीन काल मे भरतखड म सनातम वदिक धम का स्वरूप अत्यत सौम्य था इसलिए कहिये, उसे राज्यसत्ता का समथन प्राप्त था इसलिए या फिर कहिये उस युग मे यह देश अन्य धर्मों के ससग मे नही आया था पर निश्चय ही प्राचीन काल मे लोगो की धम-परिवतन की ओर प्रवत्ति बिलकुल नही थी। ज्यो ज्या धम का सौम्य रूप जटिल और मलिन होने लगा, जातिभेद जन्मजात करार दिया जाकर उसका प्राबल्य बढने लगा तथा ज्ञान, प्रभुत्व एव सपत्ति का एकाधिकार उच्च वर्णों म ही सीमित रहने लगा त्यो-त्या मनुष्यमात्र को समान मानने वाले और अपने उपदेशो का प्रचार लोक प्रचलित प्राकृत भाषाओ के माध्यम से करने वाले बौद्ध धम का प्रभाव बढता गया। राज्यसत्ता का उसे आरभ से ही सरक्षण प्राप्त होने के कारण उसका प्रसार भी बडी तेजी से हुआ और भारतवप मे एक के बजाय दो धर्मों का प्रचलन होकर उनमे श्रेष्ठता के लिए स्पर्धा होने लगी। इस प्रतियोगिता मे आरभ मे यद्यपि बौद्ध धम का पलडा कुछ भारी रहा, तथापि अत मे सनातन वैदिक धम की विजय हुई। भगवान आद्य शकराचाय के नेतत्व म वदिक धम ने पशुहिंसा जसी समाज को निंद्य लगने वाली प्रथाओ को त्याग कर और प्रतिस्पर्धियो के अहिंसा-त्याग-अस्तेय आदि गुणो का स्वीकार करके अपनी जडें मजबूत करलीं और शीघ्र ही उसने फिर एक बार भरतखड के सावभौम धम का स्थान अर्जित कर लिया। उस काल मे धम परिवतन के माग मे किसी भी प्रकार की बाधा न होने के कारण करोडो लोग जिस प्रकार अपनी राजीखुशी से आम से बौद्ध हो गए थे, उसी प्रकार स्वेच्छा से वे फिर बौद्ध से हिंदू भी हो गए। वदिक धम के नामरूप मे यह आमूल परिवतन होने के साथ ही सुदूर जावा-सुमात्रा और चीन जापान तक फला हुआ बौद्ध धम अपने जन्म की भूमि से करीब करीब निर्वासित ही हो गया। इसके बाद यवन, शक, हूण आदि अनेक विदेशी

विजेताओ न भारत पर चढ़ाई गाठी और उसके कई प्राता पर कब्जा जमाकर राज्य भी किया। परतु एक तो उनकी सस्कृति और सभ्यता भारतीयो के धम और सस्कृति की तुलना म निम्नश्रेणी की होन के कारण और दूसरे उनका प्रयोजन धमप्रसार का न होने के कारण उनकी राज्यसत्ता का पयवसान भारतीयो के धम परिवतन म न होकर खुद उन्ही के आचार परिवतन मे हुआ। कालातर म यह सारे समूह भारतीय जनजीवन और आचार व्यवहार के भाय इतन एकरूप हो गए और इस हद तक उसमें समा गय कि आज उन्ह अलग से पहचानना असभव है।

हिंदू धम की एकछत्र और सवसग्राहक शक्ति को वास्तव म यदि धक्का लगा, तो वह मुसलमानो के आक्रमण के कारण। ये लोग धमप्रसार क उद्देश्य म ही दिग्विजय करने निकले थे। इसलिए देश का स्वामित्व जब इन परकीया के हाथ मे चला गया तो हिंदू धम के अनुयायियो की सख्या उत्तरोत्तर कम होती गई। हिंदू धम प्रसरणशील या प्रचारात्मक तो कभी था ही नही। इस काल तक आते-आते तो उसका सवसग्राहक रूप भी समाप्त हो गया और वह अधिकाधिक सकुचित होता चला गया। इस हालत मे यह स्वाभाविक था कि इस देश के धम और सस्कृति को नष्ट करने का बीडा उठाकर आने वाले नृशस आक्रामको से सामना होने पर उसकी सारी शक्ति आत्मसरक्षण मे ही खच हो गई हो। बौद्ध धमप्रचारक स्वधम का प्रसार उपदेश और ऐच्छिक मत-परिवतन के सहारे ही करते थे। पर इन नये विजेताओ के तौरतरीके अलग थे। उनका लक्ष्य केवल साध्य को प्राप्त करना था। साधनो की उन्ह कोई फिक्र नही थी। परधर्मियो को इस्लाम की दीक्षा देना ही उनका चरम लक्ष्य था। काफिर उसका स्वीकार द्रव्य-लाभ और राज्यानुग्रह के लालच से करते हैं या वित्तनाश और प्राणहानि के भय से, इसकी उन्हे रत्तीभर भी परवाह नही थी। बहुधा यह तलवार की सहायता से ही सिद्ध हुआ। सारे ससार को इस्लाम की पताका के तले लाने की एकागी महत्त्वाकाक्षा से प्रेरित होने के कारण साधना के औचित्य-अनौचित्य की चिंता करने की न तो उन्हे फुरसत थी, न जरूरत। आरभ मे आखिर तक राज्यसत्ता की पूरी ताकत इस्लाम के पीछे होने के कारण लाखो हिंदू कुछ स्वेच्छा स और अधिकाश जुल्म-जबरदस्ती से, इस धम मे प्रविष्ट हो गए। राजा महाराजा और सेठ-साहूकारो से लगाकर सामान्य जन तक हजारो लोगो को अपना बहन-बेटिया

को मुसलमान शासको के हरम म भेजना पडा। हिंदू धम हाथ पाव सिकोडकर छुआछूत और चौके-चूल्हे की चहारदीवारी म बद हो गया।

इसके बाद पुतगाली लोगो ने जब गोवा प्रात जीता तो वहा के निवासियो को ईसाई धम की दीक्षा देत समय उन्होने भी मुसलमान राज्यकर्ताओ के आदश को दष्टि मे समक्ष रखा। अत्याचार करने मे तो उन्होंने अपने इन पूवगामियो का भी मात दे दी। योरप म ईसाई धम के विभिन्न सप्रदायो के अनुयायियो ने एक दूसरे को यत्रणा देने के लिए जिन आधुनिक साधनो का विकास किया था, गोवा के फिरगी शासको न उन्ह मुसलमानो के क्रूर और नशस साधना के साथ जोड दिया और इस दोहरे हथियार मे पीट-पीटकर गोमतक के अधिकाश निवासिया को प्राय उनकी इच्छा के विरुद्ध ईसाई बना लिया।

परतु पुतगालियो के बाद जिस राज्यसत्ता स हमारा पाला पडा उसकी नीति इससे नितात भिन्न थी। मुसमाना ने जहा राज्य विस्तार बहुधा धमप्रसार के हेतु से ही किया था, वहा अग्रेजो ने आरभ से ही जब तक अपने स्वार्थों और व्याव सायिक हितसबधो को ठेस न लगे तब तक एतद्देशीयो के धार्मिक मामलो म दखल न देना ही उचित समझा। अपनी इस नीति पर वे आज तक निष्ठा से चलते आए हैं। तथापि ईसाई राज्यसत्ता के अतगत ईसाई धमप्रसार को प्रत्यक्ष नही तो परोक्ष समथन मिलना अनिवाय था। अत परिणाम की दष्टि से इन दोनो स्थितियो मे विशेष अतर नही पडा और हिंदू धम के लाखो मेमने यरूशलम के उस करुणासागर चरवाहे की शरण मे चले गये। फक सिफ इतना ही पडा कि इस बार यह आकषण मुस्लिम युग की तरह भयजनित और स्थूल न होकर ऐच्छिक और सूक्ष्म रहा। बहुधा नारी, धनसपत्ति मानमर्यादा, अधिकार या सुरक्षा की लालसा ही इस आकषण की प्रेरक शक्ति रही।

हमारा शहर औसत जनसख्या वाला पुराना कस्बा था जिसकी रचना हिंदू धमव्यवस्था की जातिप्रथा के अनुसार ही हुई थी। शहर की प्रमुख बस्ती म भगी-चमार का सामना होने की सभावना बहुत कम रहती थी। हमारी समाज-व्यवस्था के शीषस्थान पर ब्राह्मणो का एकाधिकार हाने के कारण नगर के केंद्रीय भाग पर भी ब्राह्मणो का ही कब्जा था और इस केंद्र बिंदु क इदगिद राजपूत, वैश्य, कायस्थ आदि उच्चवर्णीय और सुनार दर्जी माली धोबी कुर्मी बढई, लुहार तेली, तमोली आदि स्पश्य शूद्रो की बस्तिया बसी हुई थी।

मुसलमानो को इस बस्ती से सटा हुआ एक अलग मुहल्ला दे दिया गया था और भंगी चमार डोम आदि अस्पृश्य अतिशूद्रो की गदी बस्तिया शहर के बाहर बसी हुई थी।

हम ब्राह्मणो को वैश्य-कायस्थो के मुहल्लो मे जाने का अवसर ही जब साल छह महीने मे कभी आता था, तो भगीवाडे या चमारपाडे के दर्शन तो जीवन मे कभी न होते थे, यह स्वाभाविक था। परतु दुर्भाग्य से एक बार यह विपत्ति भी हम पर आई। हमारे शहर मे एक ईसाई मिशन की स्थापना होकर उसमे एक पादरी की नियुक्ति हुई। नगर की रचना वैसे तो चक्रव्यूह की तरह अभेद्य होने के कारण और ब्राह्मणो के मकानो की स्थापना उसके मध्यभाग मे होने के कारण हमे इससे डरने की कोई आवश्यकता नही थी। हम अपने गढ मे सुरक्षित रह कर इन लोगो की मनमानी खिल्ली भी उडा सकते थे। पाडूतात्या का छोटा लडका किशन पादरी साहब का स्वाग बडे स्वाभाविक ढग से करता था। एक रोज हम अपने अड्डे पर ईसाई धर्म की खिल्ली उडाते बैठे थे और किशन पादरी साहब का भेस बना कर उनकी नकल कर रहा था कि बडूनाना हाफते हुए आए और चिल्लाकर कहने लगे, "अरे बेवकूफो, तुम यहा तमाशा देख रहे हो और वहा गोरे पादरी ने गाव भर म आग लगा दी है। यह हाहा-हीही छोडो और कमर कसकर मेरे साथ चलो।" हमने बडूनाना की बात का अभिप्राय लगाया और हमम से प्रत्येक यही सोचने लगा मानो आग उसीके घर मे लगी हो। सब लोग अपने-अपने घर की दिशा मे भागने की तैयारी करने लगे। तब नाना ने और भी चीख कर कहा, "अबे गधो, आग तुम्हारे घर मे नही बल्कि हिंदू धर्म की पूरी इमारत म लगी है। ज्वालाए अब आसमान को छूना चाहती हैं। तुम्हारे लोटा-लोटा भर पानी से वे कैसे बुझेंगी। चमारपाडे के आधे से अधिक चमार ईसाई हो गये। अब भी तुम्हारी आखें नही खुली तो बाकी के डोम-मेहतरो स भी हाथ धो बैठोगे। फिर अपन हाथो से नालिया साफ करते रहना और सडकें झाडते रहना।"

आग वास्तविक नही बल्कि लाक्षणिक अर्थ म लगी है यह जान कर हमे कुछ राहत मिली। वैसे हिंदू धर्म पर नाना के समान आस्था और उसके भविष्य के विषय मे उनके जितनी चिंता हम मे से किसी को नही थी। परतु इस समय पीठ दिखाना कायरता और बेरुखी का लक्षण होता। अत हम पद्रह बीस जवामर्द ब्राह्मणश्रेष्ठ लागें कसकर और लाठिया लेकर पादरी की अक्ल ठिकाने लाने के

इरादे से बाहर निकले। तब तक चमरौटी के हमने कभी दशन भी नहीं किए थे। काफी लबा चक्कर काटने के बाद उसके दूर से दशन तो हुए पर उसकी चहारदीवारी मे पाव रखने की किसी की भी हिम्मत नही हुई। दूर से दिखाई दिया कि पादरी साहब और उनकी मेम को घेरकर भगी चमारो की भीड खडी हुई थी और वे उन मरभुखो को रोटियाँ बाट रहे थे। साफ दिखाई दे रहा था कि पादरी दपत्ति को छूत अछूत का बिलकुल विचार नही था। मेम साहिबा तो उन गदे बच्चो को गोद मे उठा उठाकर चूम रही थी। जिन्हे छुआ छूत का रत्तीभर भी विचार नही, वे भला अछूतो का उद्धार क्या खाक करेंगे' -यह विचार बड-नाना और पाडूतात्या, दोनो के मन म एक साथ आया। उनकी दृष्टि आपस मे मिली। दोनो की आखो स इस अतिक्रामक धम के प्रति घृणा और तिरस्कार की वर्षा हो रही थी। आखो के सामने होने वाले इस भ्रष्टाचार को नाना सहन नही कर सके। जोर-जोर स चिल्लाकर और हाथो से इशारे करके वे उन अत्यजो को पास बुलाने लगे। पर उनके हाथ म लाठी थी, और उच्चवर्णीयो के हाथ की लाठी का अस्पृश्यो के लिए क्या अथ होता है, यह वे भूल गये थे। पहले तो किसी की उनके रुद्रावतार का सामना करने की हिम्मत नही हुई। फिर दो चार लोग डरते-कतराते उनके पास आए। उन्हे सबोधित करके नाना कहने लगे "अरे मूर्खो, यह क्या हो गया है तुम्हे ? इस विदेशी आदमी को अपने टोले मे घुसने देते हो इतना ही नही, भेड की तरह अधाधुध उसके गुट मे भी शामिल हो रहे हो।"

एक डोम 'क्या करें पडितजी ! साहब रोज यहा आते हैं। नमक रोटी खाने को देते हैं। कभी-कभी हमारे बच्चो को मिठाई भी खिलाते हैं। हमारी औरतो को धोती-कुरती देकर उनकी लाज ढकते हैं। इस अकाल मे उन्होने मदद न की होती तो हम तो मर जाते। अब आप ही बताइये हम उन्हे बेगाना कैसे समझें ?"

नाना 'यही तो तुम लोगो की बेवकूफी है। यह लफगा झूठे आश्वासन देकर तुम्हे भ्रष्ट कर रहा है। इसकी चाल तुम्हारी समझ मे नही आएगी। अर तुम लोगो के सच्चे हितैषी तो हम हैं। फिर हम और तुम एक ही विराट पुरुष के अलग-अलग अग हैं। अब यह बात अलग है कि हम उसका मुख हैं और तुम लोग पाव हो। बल्कि हिसाब से देखा जाए तो पाव के तलवे हो। युगानुयुग स

चले आने वाले इस नाते को तुम कैसे भूल सकते हो।"

डोम "महाराज, हम लोग अनपढ़ गवार हैं। ये सब बातें हमारी समझ मे नही आती। पर मालिक आप लोग तो इतने नाती होकर भी हमे भूल गए। आप लोगो ने कभी हमारी खबर ही नही ली। हमारे पेट को रोटी मिलती है या नही हमारे कच्चा म शरीर पर गाढे की धज्जी भी है या नही, बरखा-पानी म हमारी क्या दशा होती है इसका आपने कभी हाल पूछा ? अगर आप के चरणो की धूल कभी हमारे आगन मे पडती, तो हम आपको इसकी याद भी दिलाते। और फिर हम इस पादरी की बात क्या सुनते ?"

नाना पर तुम यह भूल रहे हो कि हम विराट पुरुष का मस्तक हैं और तुम पाव हो। कुछ ही कहो सिर पावो से दूर रहेगा ही। सिर को पावो का हाल कसे मालूम पड सकता है ?'

डोम 'फिर आज ही सिर को पावो की याद कैसे आ गयी, महाराज ?"

विराट पुरुष का मस्तक और पाव एक दूसरे से कितने ही दूर रहे हो, नाना को इस समय इस अशिक्षित अस्पृश्य ने निरुत्तर कर दिया था इसम कोई सन्देह नही। उन्हे इस समय क्रोध के बजाय लाज आ रही थी जिसका स्वीकार वे केवल अभिमान के कारण ही नही कर पा रहे थे। डोम यह समझ गया और बोला "महाराज, अब भी कुछ बिगडा नही है। अब भी हम गले से लगा लो और हमारी कोडो की मार से उधडी हुई पीठ पर प्यार से हाथ फेर दो, तो अछूत हिंदू धम मे रहने को तैयार हो जाएगे। इतना ही नही आप उन्ह हिंदू धम मे वापस लने का वादा करें तो ईसाई हो जाने वालो को भी हम समझा-बुझा कर वापस ला सकते हैं। कहिए है इरादा ?'

नाना धमसकट मे पड गए। चदा उगाह कर कुछ दिनो के लिए इन डोम-चमारो का पेट भरने की व्यवस्था की जा सकती थी। पर ब्राह्मण होकर चमार की पीठ पर हाथ फेरना ! हर हर ! यह कैसे हो सकता था। विराट पुरुष का मुख अपना हाथ उसी पुरुष के पाव की पीठ पर फेरे यह बात व्यावहारिक दृष्टि से भी मुश्किल थी। आप ही अपने मुख हाथ, पाव और पीठ को लेकर यह कसरत कर देखिए। जमेगी नही। फिर पीठ पर हाथ फेरना तो फिर भी गनीमत है। उस पाप का प्रक्षालन स्नान और गोमल भक्षण मे हो सकता था। पर चमरौटी मे जाकर अपने पावो की धूल झाडना ! यह कैसे सभव है। यह पावन धूल इतनी

सस्ती हो गई है क्या ? साल मे एकाध बार, धुलडी जसे दिन यह धूल चाडने वाली बात कही जाए, तो फिर भी कुछ हो सकता है। पर यह राज रोज की आफत कौन मोल ले ? साथ ही यह भी कही था कि गोरे पादरी का प्रभाव कम करना हो, तो अत्यज पाडे म नियमित जाना ही पडेगा। डोम मेहतरो के घर जाकर बैठना पडगा और उनके सुख दुख की बात सुननी पडेगी। कोई छोटा बच्चा घुटना चलता हुआ वहा जा पहुचा तो नाक मुह सिकोड कर ही सही पर उसे गोद म उठा कर दुलारना पडेगा। शायद उम चूमना भी पड जाए। यहा तक तो गनीमत थी, पर किसी भगी चमार ने आदरातिथ्य की भावना म चाय या शरबत पेश किया तो क्या किया जाए ? नाना के ब्राह्मण सस्कारो से ओतप्रोत विचारो की गति यहा तक पहुच कर रुध गई। इसमे आगे की सभावनाओ की तो वे कल्पना भी न कर सके। क्षणाध मे उन्होने निश्चय कर लिया कि पूरा अछूत टोला ईसाई हो जाए तो भी कोई हज नही पर वे ऐसा भ्रष्टाचार नही कर सकते।

इसके बाद उन्होने और पाडूतात्या ने अछूतो को कोरे वाग्जाल म फासने का बहुतेरा प्रयत्न किया पर पादरी साहब की सक्रिय सहानुभूति के मीठे काटे को उगल कर इस कोरे जबानी जमाखच के जाल म फसने को कोई तयार नही हुआ। अत्यजो को भुखमरी से बचाने के लिए बडूनाना ने कम से कम चदा उगाहने का विचार तो किया था। पर पाडूतात्या तो इसके लिए भी तैयार नही थे। उनका सारा दारोमदार वाग्वितडावाद पर आधारित था। उन्होने अछूतो को स्वावलवन का उपदेश देना शुरू किया और उन्ह समझाया कि प्राणो जैसी क्षुद्र वस्तु की रक्षा के लिए पादरी साहब जैसे विदेशी तो क्या अपने स्वदेशी धमबधुओ का मुह ताकना भी कितनी लज्जा की बात है। शरीर सवधन की अपेक्षा आत्मोन्नति का महत्त्व कितना अधिक है यह भी उनके मन म ठसाने का प्रयत्न किया गया। उपवास करने से शरीर कितना स्वस्थ रहता है हिंदू धम म उपवासो का कितना महत्त्व माना गया है, धनवान लोग भी आरोग्य प्राप्ति और पुण्य सपादन के लिए कभी-कभी उपवास करते रहते हैं, उन जैसे दरिद्रो को तो फाके करने से अनायास ही स्वाथ और परमाथ, दोनो की सिद्धि का मौका मिल जाता है इस सुनहरे मौके को छोड देना कितना मूखतापूण अविचार है—इत्यादि तर्कों को तात्या ने अपनी बुलद आवाज और अस्खलित वाणी के सहारे

उनके गले उतारना चाहा। पर उदरपूर्ति जैसी क्षुद्र बात को ही जीवन का चरम ध्येय मान बैठने वाले उन नारकीयों पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अत म हार कर तात्या ने फतवा दिया कि "चामरपाडे मे आने की तो इस समय हम फुरसत नहीं है पर उस पादरी के बच्चे को लेकर कभी हमारे पास आओ, तो उसके पाखडी धर्म का हम शास्त्रार्थ द्वारा खडन कर सकते हैं।" 'खडन' शब्द का उच्चारण करते समय उन्होने अपने सोटे को जमीन पर इतने जोर से पटका कि धरती हिल उठी। विरोधियों के विचारो से लगा कर उनकी खोपडी तक किसी भी बात का खडन करने के इस सार्वभौम साधन की मजबूती से बेचारे अत्यज इतने प्रभावित हुए कि अधिक चीचपड किए बिना वहा से रवाना हो गए। लक्ष्मण रेखा का उलाघना सीताहरणोत्सुक रावण के लिए जितना दुष्कर रहा होगा उतना ही पादरी साहब को मार भगाने के लिए चमारपाडे मे जाना हमारे लिए मुश्किल था। अत उन अनपढ अछूतो पर प्राप्त की हुई नैतिक और बौद्धिक विजय से ही सतोष मान कर हम घर लौट आए।

अत्यजो का धर्म-परिवर्तन करने मे पादरी साहब को यद्यपि कल्पनातीत सफलता मिली थी, फिर भी बहुत से अछूत अब तक उनके चकमे मे नही आये थे। इनमे अधिकाश वे ही लोग थे जो रोटी कपडे से सुखी थे। इनमे से एक का नाम जानू था। उसके पास काफी पैसा था। इसलिए शहर के उच्चवर्णीय नागरिक उसे किसी उपयुक्त पशु को दिया जाए उससे कुछ अधिक ही मान देते थे। वह कभी पाडूतात्या के घर आता, तो तात्या सडक पर खडे होकर उससे घटो तक बतियाते रहते। ऐसे मौको पर बाहर की ठडी हवा से उन्हे जुकाम हो जाता, तो भी वे उसकी परवाह नही करते थे। जानू को घर के भीतर आने का तो क्या, उस तरफ आखें उठाकर देखने का भी अधिकार नही था किसे मालूम डोम की दृष्टि से ही कही मकान भ्रष्ट हो जाए। अपने अनेक जातिबधुओ के ईसाई हो जाने पर भी वह अब तक अपनी बात पर अडा रहा था। इससे तात्या जैसे स्वधर्माभिमानी ब्राह्मण के मन म उसके प्रति कुछ ममत्व उत्पन्न हुआ होगा ऐसी आशा से प्रेरित होकर एक बार वह बरसती बारिश म तात्या के यहा पहुचा। उसके मन म धुधली सी आशा थी कि अब की बार तात्या उसे बरामदे मे खडे रहने को तो अवश्य कहेगे। पर उसकी ललक पूरी नही हुई। तात्या छाता लेकर घर से बाहर निकले। वे जानू के साथ लबा वार्तालाप करने की तैयारी से आये थे अत बडे इतमीनान से

छाता तान कर खड़े रहे। यह देख कर जानू कुढ़ गया और उसने जल्दी ही लौटना चाहा। पर तात्या इसके लिए तैयार नहीं थे। उन्होंने विविध विषयों पर गपशप छेड़ कर उस बेचारे को कोई घंटा डेढ़ घंटे तक मूसलाधार वर्षा में ठिठुरता हुआ खड़ा रखा। तात्या की पीनोदर देह को वर्षा की एक बूंद भी स्पर्श नहीं कर रही थी जबकि गरीब बेचारा डोम दूसरे दिन जूड़ी भरने की आशंका से परेशान था। उसको इस दयनीय हालत से तात्या को दुख न हो रहा हो, सो बात नहीं। पर किया क्या जाए? उसे छाते के नीचे लेकर अपने साथ सटा कर खड़ा करना संभव नहीं था। अगर उस घर में से दूसरा छाता लाकर देते, तो इस महंगाई के जमाने में उसका मोह छोड़ना पड़ता। अतः मुख अपने स्थान से ब्रह्मज्ञान झाड़ता रहा और पांव अपने स्थान पर खड़ा भीगता रहा और मन ही मन कुढ़ता रहा। अंत में जब उसकी ठंड के कारण कंपकंपी बंध गई तब कहीं तात्या ने उसे छोड़ा। दूसरे दिन मालूम हुआ कि जानू को जोरों का बुखार चढ़ा हुआ है। अपने इस चमार बंधु के संबंध में अधिक चमार-वत्सलता करने का तात्या को कोई प्रयोजन दिखाई नहीं दिया। जब वह कई महीनों तक दिखाई नहीं पड़ा तो वह मर गया होगा ऐसा अनुमान लगाकर तात्या ने मन का समाधान कर लिया।

एक रोज एक वृद्ध पादरी साहब अपने किसी देसी क्रिस्तान मित्र के साथ तात्या से मिलने के लिए आए। यद्यपि अछूतों द्वारा अपनी देहरी उलांघी जाने का भ्रष्टाचार तो तात्या को मंजूर नहीं था, तथापि उन लोगों का धर्मांतर करने वाले और इसीलिए उनसे भी अधिक भ्रष्ट और पतित होने वाले पादरी साहब को अपने मकान में घुसने देने में उन्हें कोई आपत्ति नहीं थी। बल्कि इसे उन्होंने अपना सम्मान ही माना। उन दोनों मेहमानों का स्वागत करते समय आरंभ में वे कुछ गड़बड़ा गए। बात यह थी कि वैसे तो घर में तीन कुर्सियां थीं। पर तीनों ही युद्ध में घायल होकर लौटने वाले वीरों की तरह खस्ताहाल हो रही थीं। उनमें से एक के किसी जमाने में हत्थे हुआ करते थे। पर मुद्दतों पहले उनके टूट जाने के कारण आजकल वह लुंज हो रही थी। फिर भी तीनों कुर्सियों में यही कुछ अच्छी होने के नाते पादरी साहब के बैठने के लिए उसकी योजना की गई। दूसरी कुर्सी जन्म से ही लूली थी। इसके अलावा उसकी रीढ़ भी टूट चुकी थी। और आजकल वह कुर्सी के बजाय स्टूल से अधिक साम्य रखती थी। वह कुर्सी देसी साहब को दी गई। तीसरी कुर्सी अद्भुत

श्रेणी की थी । उसका मूल स्वरूप जो कुछ भी रहा हो आजकल उसके हत्थे सलामत थे पर पीठ नदारद थी । आधारहीन हत्थे हवा में अधर लटकते हुए मालूम देते थे । इसके अलावा एक भीतर की बात यह थी कि उसकी एक टांग भी टूट चुकी थी । जीवन के लंबे सफर में उसका बेंत का आसन भी जीर्णशीर्ण होकर बिखर गया था और एक टांग नदारद होने के कारण उसकी गणना न तो द्विपादों में हो सकती थी, न चतुष्पादों में । इस हालत में भी वह वीरबाला मौका पड़ने पर शत्रु को पीठ नहीं दिखाएगी इसका मानो आश्वासन देती हुई दोनों हाथ उठाए जीवन के रणक्षेत्र में जूझ रही थी । खुद गिरे बिना और कुर्सी को गिराए बिना उस पर आसन जमाए रखने की कला सिर्फ तात्या को ही अवगत थी । अतः उस पर वे स्वयं आरूढ़ हुए । बैठने से पहले उन्होंने अभ्यागतों से इतने जोर से हस्तांदोलन किया कि कुर्सियों के हत्थे न होने की कमी पूरी हो गई । गोरे और काले, दोनों साहबों के मन में यह आशंका उत्पन्न हुई कि तात्या कहीं उन्हें भी अपनी कुर्सियों की हस्तहीन बिरादरी में शामिल करना तो नहीं चाहते ! हाथ मिलाते समय भी तात्या ने दाहिना हाथ गोरे पादरी की ओर बायां हाथ काले साहब की ओर बढ़ा कर यह प्रमाणित कर दिया कि गोरे और काले के बीच के आद्यकालीन भेद को वे अच्छी तरह से समझते हैं और इस ज्ञान की मार्मिकतापूर्ण अभिव्यक्ति करने की कला भी उन्हें आती है । पादरी साहब ने काले ईसाई साहब का परिचय इन शब्दों में कराया 'ये जॉन साहब हैं । मसीहा के संघ में शामिल होने वाले नवीनतम मेमने !' तात्या यह सुन कर मंद स्मित मात्र कर चुप हो गये, पर भेड़िये की मांद में जान-बूझ कर भटक जाने वाली उस भेड़ की तरफ आंख उठा कर भी नहीं देखा ।

पादरी साहब ने आते ही अपने आने का प्रयोजन जाहिर कर दिया ।—'आज सोचा कि ब्राह्मणों के घरेलू जीवन का अध्ययन किया जाए । उसका प्रत्यक्ष दर्शन करने के लिए आपके यहां चला आया हूं । आपको कोई आपत्ति तो नहीं होगी ?'

तात्या के मन में कुछ भी भाव रहे हों प्रकट रूप से उन्होंने कहा 'नहीं, नहीं साहब ! आपत्ति कैसी ! यह तो मेरा अहोभाग्य है ।'

इसके बाद तात्या उठ खड़े हुए और अपने साथ ही उठ खड़ी होने वाली कुर्सी को दीवार से सटा कर भीतर की तरफ चले । उनके पीछे-पीछे पादरी साहब

और यह देसी विरस्ताम साहब भी तात्या के निवासस्थान का अध्ययनात्मक निरीक्षण करने के लिए चले। बरामदे से कमरे के भीतर जाते समय पादरीसाहब ने ठिठक कर पूछा, "जूते बाहर उतार दें क्या ?" भारत में वर्षों से रहने वाला यह धर्म प्रचारक हिंदुओं के रीति रिवाजों से भली भांति परिचित था। तात्या चाहते तो उससे जूते उतरवा कर अपने आचार की रक्षा कर सकते थे। पर उन पर तो इस समय न मालूम कौन-सा नशा सवार था। तपाक से बोले 'नहीं, नहीं, साहब ! इस तकलीफ की कोई जरूरत नहीं।' पाहुने बेचारे क्या करते ! ब्राह्मण के घर में, उसकी अनुमति से बूट पहने हुए दाखिल हुए। बैठक के कमरे, कोठार, आगन, गुसलखाना आदि का मुआइना बूट पहने पहने ही हुआ। आगन के दूसरे सिरे पर रसोईघर था। उसमें जूते पहनकर जाते हुए साहब फिर झिझके। तात्या द्वारा निस्सकोच आगे बढ़ने का बखावा किया जाने पर भी उनके पाव बाहर ही ठिठके रहे। इसका एक कारण यह भी था कि रसोईघर में से सांस घोट देने वाला धुए का प्रचड बादल बाहर निकलकर उनकी आख नाक में भर रहा था। भीतर शायद आग लग गई है इस आशका से साहब ने कहा 'पडितजी, भीतर, शायद कुछ जल रहा है। पानी ले आइये तो बुझा दिया जाए।" तात्या ने जानकारी भरी मुस्कराहट से जवाब दिया, "चूल्हे के सिवा और कुछ नहीं जल रहा, साहब ! हम ब्राह्मणों में चौके-चूल्हे का महत्त्व कुछ अधिक ही होता है।

साहब 'फिर भी आपके रसोईघर में चिमनी नहीं है।"

तात्या "नहीं साहब ! प्राचीन ऋषिमुनियों के काल में जैसी गृहरचना होती थी, वैसी ही हमारे यहा अब तक चली आ रही है। दूसरे धर्मों से हमारे धर्म में आने वाले व्यक्ति का जिस तरह हम स्वागत नहीं करते उसी प्रकार दूसरों के रस्मोरिवाज को अपने घर में घुसने देना भी हम पसद नहीं करते। विशेष तौर पर रसोईघर और प्रसूति की कोठरी ये तो हमारी पुराणप्रियता के गढ़ हैं। जच्चा की कोठरी में सूरज की किरण या हवा का झोंका घुसते ही अनर्थ हो जाता है तो फिर पराये रीति रिवाजों की तो बात ही कहा रही।"

साहब "पर ऐसे धुए भरे कमरों में आपकी स्त्रिया दिन भर काम कैसे करती हैं ? उन्हें तकलीफ नहीं होती ?"

तात्या "यही तो रहस्य की बात है, साहब ! आप लोगों को इससे आश्चर्य होगा। पर हमारी स्त्रिया आर्य नारियां हैं। हम लोगों ने उन्हें आप लोगों की

तरह सिर पर नही चढाया। धुए से आखें फूट जाए, तो भी कोई हर्ज नही। पर परायी रीतियो को अपनाना हमे पसद नही। इसके अलावा हमारी स्त्रिया ने आपकी मेमो की तरह कुर्सी पर बैठ कर पति से हुज्जत करना या गैरो के सामने पति के मुह से मुह सटाकर गुलगुली बातें करना नही सीखा।"

साहब को न मालूम किस बात की लाज आई कि उनकी आखें झुक गई। रसोईघर मे जाकर भोजन-सामग्री का निरीक्षण करने की उनकी प्रबल इच्छा थी। पर एक तो धुए के कारण भीतर जाना सभव नही था और दूसरे अब उन्हे इसमे विशेष दिलचस्पी न रही। धुए का सवग्रासी आवरण आखो को अधा और भीतर की वस्तुओ को अस्पष्ट बना रहा था। साहब आगे बढ गए।

इसके बाद पूजा की कोठरी आई। पादरी साहब को लग रहा था कि उसमे उनका प्रवेश करना उचित नही होगा, और जूते पहने हुए तो बिलकुल नही। इसलिए वे बाहर से ही दर्शन करके आगे बढ जाने की तैयारी म थे कि तात्या ने उनसे भीतर चलने का अनुरोध किया। इसमे उनका एक सुषुप्त हेतु यह भी था कि पूजाघर के वैभव के निकट-दर्शन से साहब की आखें चौंधिया जाए। उन्होने साहब को बडे आग्रह से आमत्रित किया "आइए, साहब! भीतर आइए! भगवान के दरबार मे कोई भेदभाव नही। यहा आप और हम सब एक हैं। अ अ जूते नही उतारे तो भी चलेगा।'

साहब "पर पडितजी, यह तो अनुचित होगा। और फिर ये मेरे मित्र? आपको बता देना आवश्यक समझता हू कि पूर्वाश्रम मे ये चमार थे।'

तात्या "पर अब तो नही हैं न? अब तो ईसाई हैं न? इसमे कोई दोष नही। आइए, आइए आप दोनो आइए।"

दोनो अतिथि दग रह गए। जच्चा की कोठरी म सूर्यकिरण के प्रवेश को भी निषिद्ध मानने वाला यह धर्ममार्तंड पूजाघर जैसे अत्यत पवित्र स्थान मे दो विधर्मियो को भीतर बुला रहा था, और वह भी जूते पहने हुए! पर अपने मेजबान के अनुरोध को टालना साहब ने उचित नही समझा। बडे सकोच के साथ, सहमते हिचकिचाते वे भीतर गए। तात्या ने उन्हे शिवलिंग लड्डूगोपाल हनुमानजी, गणेशजी, शालिग्राम, दत्तात्रेय, अबाजी बालाजी आदि प्रमुख देवताओ का परिचय कराया। मूर्तियो पर सजे हुए अलकारो का वणन करते समय उन्होने आवश्यकता से कुछ अधिक विस्तार दिया। इससे किसी परदेशी

विधर्मी को यह शका हो सकती थी कि तात्या की नजरें [illegible] अपेक्षा उन पर चढाए हुए आभूषणा का ही महत्त्व अधिक है।

इस प्रकार पूरे घर का निरीक्षण हो जाने के बाद पादरी साहब विदा हुए। जाते समय उ होने कहा पडितजी आपने हमारे जान साहब को शायद पहचाना नही। ईसाई होने के बाद इनमे इतना फक पड गया है। आपका इनसे पुराना परिचय होने पर भी आप पहचान नही सके।"

तात्या 'क्या कह रहे हैं आप ? मेरा इनसे पुराना परिचय है ? '

इसका उत्तर जॉन साहब ने स्वय दिया 'तात्या, आप इस जानू चमार को शायद बिलकुल ही भूल गए। उस दिन आपके घर के सामने सडक पर खडे होकर भीगने के बाद मुझे जोर की जूडी चढी। पादरी साहब ने रातदिन सेवा करके मुझे बचाया।"

पादरी साहब ' बचाने मारने वाला तो सवशक्तिमान परमात्मा है। मैं भला बचाने वाला कौन ?"

जानू उफ जॉन साहब "आपका यह कहना तो ठीक है। पर साथ ही यह भी सही है कि उस असाध्य बीमारी मे मैंने साहब के आग्रह से मनौती मानी थी कि उससे बच जाऊगा तो ईसाई हो जाऊगा। भगवान ने मेरी बात सुन ली और बीमारी से उठते ही मैं सपरिवार भगवान ईसा की शरण म चला गया। साहब ने मेरे प्राण ही नही बचाए बल्कि मेरी आत्मा का भी उद्धार किया है। उनके इस उपकार का बदला मैं सात जनम मे भी नही चुका सकूगा।"

साहब "नही नही जॉन साहब ! यहा आपसे गलती हो रही है। हमारे धम के अनुसार आपको ज म मरण के चक्कर म नही फसना पडेगा। हिंदू धम म चौरासी लाख योनियो म जन्म लेने के बाद होने वाली ईश्वरप्राप्ति हमारे धम म एक ही जन्म म हो जाती है। सिफ प्रभु ईसा पर विश्वास होना चाहिए।"

तात्या को काटो तो खून नही। पादरी साहब की चाल अब उनकी समझ म आयी। उन्ह कोई सदेह न रहा कि साहब के आगमन का मुख्य उद्देश्य जानू चमार के धम परिवतन का प्रदशन करके उन्ह नीचा दिखाना ही था। मन ही मन वे बहुत जले भुने। पर अब हो ही क्या सकता था। यह मिठबोला पर परम धूत गोरा उनके घर म घुस कर उन्ह मात दिये जा रहा था। साहब ने जाते समय जो कुछ कहा उसने तो उनके नपुसक क्रोध को और भी भडका दिया। कुटिलता

से मुस्कराते हुए साहब कहते गए 'हमारा धम कमा भी हो, पर उसकी बदौलत आपके घर के बरामदे म भी कभी पाव न रख सकने वाले जानू को आपके रसोईघर और देवालय तक प्रवेश मिल सका। यह बात अपनेआप म कुछ कम महत्त्व की नही है यह आप भी स्वीकार करेंगे।'

तात्या के काना मे ये शब्द उबलते हुए तेल की तरह प्रविष्ट हुए। अपने पराभव का शल्य उन्हे कई दिनो तक सालता रहा। परतु उसका जो परिणाम निकला उसकी तो उन्होने कभी स्वप्न म भी कल्पना नही की थी। सन् 1918 मे मिआदी बुखार की जो भयानक महामारी अनेक इलाको को तबाह करती हुई देश भर मे फली उसकी चपट से तात्या का परिवार भी नही बचा। सबसे बुरी हालत उनके छोटे लडके किशन की हुई। आरभ मे तो ऐसा लगा कि ठड लग कर आने वाली साधारण जूडी या तिजारी होगी। इसलिए पहले दो तीन दिन तक घरेलू उपचार किए गए। तात्या के घर म छोटी मोटी बीमारियो पर घरेलू इलाज करने की परपरा थी। हर छोटी मोटी बात को लेकर वे वद्य के यहा नही भागते थे। इसके अलावा तात्या प्रचार करते रहते थे कि ये उपचार पूणत स्वदेशी होने के कारण ही उनकी योजना की जाती है। उन्हे जानने वाले लोग यह कहने स भी नही चूकते थे कि ये उपचार सस्ते और घर मे अकसर काम मे आने वाली वस्तुओ द्वारा हो सकने के कारण ही तात्या को प्रिय थे। कुछ आलोचक यह भी कहते हुए सुने जाते थे कि किसी भी प्रकार के व्यय को बचाने की और पसे पसे को दात से पकडने की आदत के कारण ही तात्या ऐसा करते थे। घरेलू दवाई के रूप म प्रयुक्त मुनक्का, छुहारे, सोंठ लौंग, दालचीनी, सौंफ आदि वस्तुए इस आरोप का समथन करती हुई मालूम देती थी। इलाज के बाद ये चीजें बच भी जाए तो घर म काम आ सकती थी। परतु ये टिप्पणिया अकसर तात्या के निदको द्वारा कुत्सित प्रचार के लिए की जाने के कारण उन्हें अधिक महत्त्व देने की आवश्यकता नही। पर जो कुछ भी हो, दो-तीन दिन तक घरेलू उपचार करने के बावजूद लडके की हालत बिगडती ही गई और तीसरे दिन तो उसकी सास उखडने लगी। इस लक्षण से तात्या पहचान गए कि उसे फेफडा का प्रदाह (Pneumonia) हो गया है। अब वे घबराए और लगे भागदौड करने। इस वैद्य को बुलाने, उस डाक्टर को दिखाने का ताता लग गया। सबने एक ही राय दी कि रोग असाध्य नही तो दुसाध्य अवश्य है। तात्या के तो जसे हाथ पाव गल गये। इस सबसे छोटे लडके के प्रति

उनके मन म आत्यतिक प्रेम था। उनकी पत्नी भी बेटे के शरीर पर हाथ फेरती हुई और आचल स आसू पाछती हुई असहाय बठी रहती। उधर ज्वर उत्तरोत्तर बढ़ता ही जा रहा था।

ऐसे म अचानक तात्या का पादरी साहब की याद आई। उस धन्व तरी का हाथ लगत ही नगर के कई असाध्य रोगी अच्छे हो गये थ। तात्या भागते हुए उनके यहा पहुचे। साहब ता माना उनके आने की बाट ही देख रह थे। तुरत उनके साथ घर आए। रोगी को जाच कर उ होन अत्यत गभीर मुद्रा धारण की और तात्या का एकात म ले जाकर बोल, "रोग असाध्य है। अब दवा की नही, दुआ की जरूरत है। एक ही उपाय है। लडका अच्छा हो जाए तो उस प्रभु ईसा की शरण म अपण कर देने की मन्नत मानो। भगवान की दया आइ, तो शायद कुछ हो सकता है।"

तात्या को लडके के बचन की उम्मीद बिलकुल नही थी। उ होने यह शत तुरत कबूल कर ली। उनकी पत्नी तो पुत्रविरह की कल्पना स पागल सी हो उठी थी। उसकी मम्मति मिलन म भी अधिक कठिनाई नही हुई। बस, पादरी साहब और उनकी मेम न रोगी क बिस्तर के पास धरना दे दिया। पादरी साहब डाक्टरी विद्या म निपुण थ तो मेम साहबा कुशल परिचारिका थी। आत्मा का उद्धार करने क साथ साथ राग का उच्चाटन करन की कला म भी दोना प्रवीण थे। दोना न अपनी पूरी योग्यता दाव पर लगा दी जिसके परिणामस्वरूप लडका कुछ ही दिनो म बिलकुल स्वस्थ हाकर खडा हा गया।

परतु उसके अच्छा हात न हात तात्या का बडा लडका रामचद्र भी विषम ज्वर की चपेट मे आ गया। इस बार भी सारे वद्य और डाक्टरो का इलाज कर लने क बाद तात्या पादरी साहब की शरण म जान की बात सोच ही रह थे कि उनके अनन्य मित्र बहूनाना ने विरोध किया। उन्होन कहा, 'तात्या एक बार जो अविचार हो गया सो हो गया। पर अब दोबारा यह भ्रष्टाचार करने की जरूरत नही। अपने हकीम साहब यूनानी हिकमत म पादरी साहब के जितने ही प्रवीण हैं। मैं आज उनस मिला था। राम क अच्छा हो जान पर उसे मुसलमान बनान की शत तुम्हे मजूर हो तो व इलाज करने को तैयार हैं। पराये धम को स्वीकार करना ही पडे, तो वह विदेशी, भ्रष्ट धम किसलिए? इस्लाम धम कम स कम स्वदेशी तो है। तुम्हारा स्वदेशी वस्तुओ के प्रयोग का कठोर व्रत जग-जाहिर है।

इतना प्यारा और भी [illegible] । [illegible] विचार को सुविधा मे पड़ [illegible] ।

[illegible] और उनकी [illegible] विरुद्ध [illegible] किया। [illegible] हबीब साहब [illegible] और उनके [illegible] हुआ [illegible] और [illegible] के लिए [illegible] और [illegible] दिखाई [illegible] । कोई कह सकता है कि [illegible] हुआ । [illegible] है कि हबीब साहब [illegible] और [illegible] ।

[illegible] साहब को [illegible] मालूम [illegible] कि उनका [illegible] इस्लाम के बाड़े म फिर [illegible] । [illegible] उनके ताल्या म [illegible] मजाक शुरू किया। उधर हबीब साहब राम को कलमा पढ़वाने की जल्दी करने लगे। आरभ म तो मालती और उनकी पत्नी ने बड़ी आनाकानी की और कई बहाने बनाये। पर अत म दो सालो के भरन मे तग आकर उन्हें [illegible] के धम परिवतन को स्वीकृति देनी पडी। एक ही दिन राम को मस्जिद म इस्लाम की ओर किशन को गिरजे म ईसाई धम की दीक्षा दी गई। बडे नाना के सुझाव पर नूतनाश्रम म उनके नाम भी पूर्वाश्रम के 'राम' और 'किशन' से मिलत-जुलते रख गये। अब वे क्रमश 'रहीमशा' और 'क्रिस्तोफर' नाम से पुकारे जाने लगे। 'क्रिस्तोफर' नामकरण म विमानप्रेमी नाना का [illegible] के प्रति आन्तरिक [illegible] स्पष्ट दिखाई देता है।

इसके बाद कुछ दिनो तक बाह्य दृष्टि से तो पूरे परिवार म अमनचैन रहा। पर यह बहुत दिनो तक टिका नही। योरप महाद्वीप इतना विशाल है। पर उसम भी इस्लाम और ईसाइयत एक साथ नहीं समा सके। भरतखड योरप के जितना ही विस्तीर्ण है। पर उसम भी हिंदुत्व और इस्लाम आज तक सुख शाति से नही रह पाये हैं। तो फिर सालो के बालिश्त भर के मकान म हिंदू, मुसलमान और ईसाई, इन तीन धमावलबियो का शातिपूर्ण सहअस्तित्व कैसे सभव था। आरभ म जब राम और किशन की पत्तलें चौके के बाहर बरामदे म परोसी जाने लगी

तो उन्हें लगा कि वे अभी-अभी भयानक बीमारी से उठे हैं इसलिए रोग की छूत के विचार से ऐसा किया जा रहा होगा। जब उनकी पत्नियां, जानकीबाई और राधाबाई उनसे दूर दूर रहने लगी तब भी उन्होंने इसी संभावना के सहारे मन को मना लिया। उनका धर्म परिवर्तन अभी नया ही होने के कारण उसके दूरगामी परिणामों का उन्हें अब तक अनुभव नहीं हुआ था। परंतु उनकी तबीयत ज्यों ज्यों सुधरती गई त्यों-त्यों उन्हें इस परिवर्तन का एहसास होने लगा और यह भेदभाव उन्हें अखरने लगा। एक बार रामचंद्र अपने छोटे लड़के को गोद में बिठा कर प्यार कर रहा था कि जानकीबाई ने बड़े ताव से कहा "बच्चे को छोड़ दो। उसे भी भ्रष्ट करना है क्या?" एक बार किशन ने चाय पीकर खाली प्याला ले जाने के लिए अपनी पत्नी से कहा। तुरत ही वह भभक कर कहने लगी "धोये बिना प्याले को कैसे छुऊं? मैं क्या तुम्हारी तरह किरस्तान हूं?" अपनी रोगजनित बेहोशी की अवस्था में अपनी रजामंदी के बगैर घर के लोगों द्वारा अपना धर्म-परिवर्तन करने की मन्नत मानी जाना और उसे पूरा करने के बाद अपने साथ इस प्रकार का अपमानपूर्ण बर्ताव करना उन्हें बिलकुल पसंद नहीं आया। जब तक उनके शरीर में कमजोरी थी, तब तक उनके जूठे बरतनों को मेहतर साफ करता था और जूठी जगह को वही गोबर से लीप देता था। परंतु ज्यों ज्यों उनकी शक्ति वापस आने लगी, त्यों-त्यों ये सारे काम उन्हें अपने हाथों से करने पड़े।

आरंभ में यह सब नागवार लगने पर भी धीरे धीरे वे बदली हुई परिस्थिति के साथ समरस होने लगे। दोनों अपने-अपने समाज की प्रार्थना, नमाज आदि में शरीक होने लगे और उन विजातियों के सामाजिक रीति रिवाज भी उनके व्यवहार में अधिकाधिक उतरने लगे। घर के अन्य लोगों के चलन व्यवहार के साथ उनका वैषम्य भी उत्तरोत्तर बढ़ता गया। किशन उर्फ क्रिस्तोफर साहब अब धोती और चमरौधे के स्थान पर तंग पतलून और विलायती बूट पहनने लगे। सिर की पगड़ी का स्थान अंगरेजी टोप ने ले लिया। उसी प्रकार रामचंद्र उर्फ रहीमखां चूड़ीदार पायजामा और अचकन पहन कर सिर पर तुर्की टोपी धारण करने लगे। उधर पाडूतात्या की चिलम सुलगती कि इधर रामभाऊ अपना हुक्का और किशन अपनी पाइप जला लेते और लंबे लंबे कश खींच कर बाप के मुंह पर धुएं के बादल छोड़ते रहते। किशन ने लंबी जुल्फें रख कर दाढ़ी मूंछ मुंड़वा ली थी तो रामचंद्र ने सिर और मूंछें मुंड़वा कर अपने मुसलमान

आइया को शिकायत का मौका नही दिया था। गजी चाद के रेगिस्तान की कसर उसने हाथ भर लबी दाढी बढा कर पूरी की तो किशन ने चिकनी चुपडी दाढी के वाला की क्षतिपूर्ति कलम के गलमुच्छे बढा कर कर ली। किशन बचपन स ही अभिनय कला म निपुण था। पर बाप जिद्दी होन क कारण मछें मुडवाकर स्त्री-भूमिका करने की उसकी हौस अब तक पूरी नही हुइ। अब अनायास ही उसका मौका मिल गया। रामचद्र मौलवीमौत अपनी दाढी पर हाथ फेर कर और किशन अपनी घुघराली जुल्फा को सहला कर लोगा का ध्यान आकर्षित करते रहते। राम घटा तक दाढी को कघी करते रहत तो किशन ब्रश से बाला का सवारते रहते। परिचित लोगा से मुलाकात हान पर रामचद्र आदाब अर्ज और बदगी करने लगे तो किशन हाथ मिला कर गुड मानिंग और हाउ-डू यू डू बघारने लगे। राम बीवी-बच्चा और घर के अन्य लोगा के सामने 'आइये फरमाइये द्वारा अपनी टूटी फूटी उर्दू का प्रदर्शन करत तो किशन केवल—यस नो' की पूजी स उतनी ही टूटी फूटी अंग्रेजी मे रोब गाठते। कुछ दिना बाद तो बात और भी बढी। रामचद्र दीन ईमान के पक्क मोमिन की तरह कान मे उगलिया डाल कर नमाज पढन लग और किशन साहब आखें मूद कर अपन पृथ्वीतल के बाप की सपूर्ण उपेक्षा करके अपने आकाशस्थ बाप का गभीर मुद्रा से ध्यान करन लगे। दोना के धर्म एक दूसरे स भिन्न थ, पर रामचद्र के धर्म का पूर्वेतिहास किशन साहब के धर्मग्रथ स ही लिया हुआ होन के कारण और दोना मता के धार्मिक विश्वास भी लगभग एक स होन के कारण उनम विवाद का मौका शायद ही कभी आता था। पर हिंदू धर्म क साथ दोना धर्मों का कोई साम्य नही था। पत्निया का कुकुम लगाना दोना को जगलीपन का लक्षण मालूम देन लगा और दोना ने अपनी पत्नियो के माथे की बिंदी जबरदस्ती पोछ डाली। इस हालत म मूर्तिपूजा के प्रति दोना का अत्यधिक तिरस्कार हो यह स्वाभाविक ही था। शीघ्र ही इस बात को लकर दोना की पिता स झडप होने लगी। रामचद्र क मूर्तिद्वेष का पर्यवसान तो एकबार मूर्तिभजन म हुआ। गजनी के महमूद ने जिस प्रकार सोमनाथ पर सवारी की थी उसी प्रकार रहीमखा ने एक रोज पिता के बाजार जाने का मौका साध कर पूजाघर पर आक्रमण कर दिया और मा के गिडगिडाने की ओर दुर्लक्ष करके सारी मूर्तिया को चकनाचूर कर दिया।

इम अत्याचार से औरा को दुख होना तो स्वाभाविक ही था, पर बाद मे खुद रहीमखा को भी बडा पश्चाताप हुआ। समय बीतते उनके मन म इस्लाम की ओर काई लगाव न रहा। घर के लोगा ने इसे बहुत बडा परोक्ष लाभ माना। उनकी चित्तवत्ति जितनी रफ्तार से इस्लाम की ओर झुकी थी अब उतने ही झपाट से उससे विमुख होने लगी। कुछ दिनो बाद तो पश्चात्ताप की भावना ने उनकी पूरी चेतना को आक्रात कर लिया। रात को सबके सो जाने के बाद व चुपचाप पूजाघर मे जाने लगे और नाना प्राथनाओ द्वारा देवताओ से क्षमा मागने लगे। उनके मन के इन प्रतिगामी आदोलनो की प्रतिक्रिया क्रिस्तोफर साहब के हृदय पर भी हुई और उनके मन म हलचल मची। निद्राभ्रमण की आदत तो उन्ह पहले से ही थी। शीघ्र ही यह देखा गया कि रात को सन्नाटा होते ही वे बिस्तर छोडकर पूजाघर म पहुच जाते थे और घटो पूजाअर्चा मे डूबे रहकर मन्त्रोच्चारण करते रहते थे। इस प्रकार दिन म कुरान शरीफ की आयतें पढने वाले रहीमखा रात को रामचद्र वनकर तुकाराम महाराज के अभग और सूरदास के पद गाने लगे तो दिन भर मसीहा के प्राथना गीत गाने वाले क्रिस्तोफर साहब रात को किशन का रूप धारण कर के गौर पवमान और रुद्र का पाठ करने लगे। पूर्वाश्रम के हिंदू धम के सस्कार और उत्तरावस्था के जबरदस्ती लादे हुए विधर्मी सस्कारो के बीच उनकी मनोभूमि पर तुमुल युद्ध होने लगा। उनकी स्थिति 'हर हर, न हिंदुनयवन' जसी क्षुब्ध और दयानीय हो उठी। घर के लोगो को आरभ मे तो इस परिवतन की कोई जानकारी नही हुई। पर एक दिन ब्राह्ममुहूत म रहीमखा की मगला आरती और क्रिस्तोफर साहब के स्तोत्रपाठ के बीच ऐसी स्पर्धा जमी और दोना की आवाजें इतनी ऊची उठी कि घर मे जगार हो गई। यह दृश्य देख कर उनके माता पिता की आखा म आनदाश्रु आ गए। रोज राज के झगडा से सात्या वसे भी ऊब चुके थे। लडको की बदली हुई मनस्थिति को देख कर उन्हे बडी राहत मिली। उन्होने तुरत भुवे और बडूनाना को बुलाया। सलाह-मशविरा हो कर शीघ्र ही कतव्य की दिशा निश्चित हो गई। राम और किशन दोनो इस मिस्कौट म शामिल थे, यह अलग से बताने की आवश्यकता नही।

शीघ्र ही एक दिन रहीमखा के पेट मे भयानक शूल उठा और उसी दरमियान क्रिस्तोफर के सिर मे भी उतनी ही भयानक व्याधि के लक्षण दिखाई दिए।

तात्या ने कई प्रकार के उपचार कर देखे पर कोई असर नहीं हुआ। अत में उन्होंने पादरी साहब और हकीम साहब को बुलवाया। उनके आते ही रहीमखाँ वेदना के मारे जमीन पर लोट कर छटपटाने लगा और क्रिस्तोफर दर्द से कराहते हुए दीवार में सिर पटकने लगा। दोनों भिषगाचार्यों ने रोगियों के पेट और मस्तक की ही नहीं शरीर के अन्य अंगों की भी बस कर जाँच की पर रोग का कोई लक्षण दिखाई नहीं दिया। उधर रोगियों की छटपटाहट बढ़ती ही जा रही थी। बीचबीच में रहीमखाँ मुहम्मद साहब के नाम से और क्रिस्तोफर साहब मसीहा के नाम की पुकार करके राहत की भीख माँगते जाते थे। पर इससे वेदना कम होने के बजाय बढ़ती ही जा रही है। यह देख कर उन्होंने यह प्रयत्न भी छोड़ दिया। ईसाई और यूनानी अश्विनीकुमारों के भरसक प्रयत्नों के बावजूद दोनों की हालत में कोई फर्क नहीं पड़ा। अन्त में हार कर दोनों यह कह कर विदा हुए कि घर जाकर दवा भेज देंगे। यह दवा बड़ी गुणकारी रही होगी। क्योंकि उसके उल्लेख मात्र से दोनों की पीठ फिरते ही, रोगियों का सारा कष्ट दूर हो गया और वे लंबी तान कर सो गए। पर दूसरे दिन पादरी साहब और हकीम साहब के कमरे में प्रवेश करते ही वे फिर बधिया किए जाने वाले बैलों की तरह डकराने लगे। पुत्रवत्सल पिता पास ही खड़े थे। उनसे जब पुत्रों का कष्ट देखा न गया तो भराए हुए कंठ से वे बोले, यह इनके धर्मांतर का ही परिणाम है। मैंने इन्हें मियादी बुखार से बचाने के लिए यह जीवन भर का रोग इनके पीछे लगा दिया। अब किसी हिंदू देवी देवता की मनौती माने बिना छुटकारा नहीं। हे भगवान हे हनुमानजी, हे दुर्गा माँ, अगर मेरे लड़के अच्छे हो गए तो मैं इन्हें हिंदू बना कर तुम्हारी शरण में वापस ले आऊँगा।

तात्या के मुँह से ये शब्द निकले ही थे कि जैसे चमत्कार हुआ। दोनों लड़के मुस्कराते हुए बिस्तर से उठ खड़े हुए और दोनों विधर्मियों की आँखों के सामने अपने पिता के चरणों में झुक गए। फिर भावना में रुंधे हुए कंठ से बोले, पिताजी आज आपने हमारी देह ही नहीं हमारी आत्मा की भी रक्षा की है। हिंदू धर्म के प्रभाव का इससे बड़ा साक्षात्कार कहाँ दिखाई देगा। उसका नाम लेते ही हम स्वस्थ हो गए। अब हम अपने धर्म की शरण छोड़ कर कहीं नहीं जाएँगे।

ऐसे असाध्य रोगों का कारण के बिना होना, और उपचार के बिना अच्छा

होना वाकई बड़े चमत्कार की बात थी। दोनों धर्म प्रचारक विस्फारित नेत्रों से उसे देखते रहे। शीघ्र ही उन्हें यह महसूस हुआ कि अब कहने-सुनने को कुछ भी बाकी नहीं रहा। धीरे धीरे वे उठ खड़े हुए और कमरे के बाहर निकल गए। उस दिन के बाद उनकी चरणधूलि ताया के घर में फिर कभी नहीं पड़ी।

बहूनाना ने दोनों लड़कों के कंधे पर हाथ रख भग्नवाक्य का उच्चारण किया 'चलो बच्चो, जो हुआ सो अच्छा ही हुआ। सुबह का भूला यदि शाम को घर लौट आए तो उसे भटका हुआ नहीं कहते।'